सामवेद-संहिता

(सायणाचार्य कृत भाष्यानुकूल)

सान्वय भाषानुवाद सहित

[illegible] भारद्वाजगोत्र पण्डित [illegible]

सनातनधर्मपताका—सम्पादक

ऋषिकुमार रामस्वरूप शर्मा गौड़

द्वारा सम्पादित.

Sri Samvedsamhita

Edited Printed and Published

by

RAMSWARUP SHARMA

at

THE SANATANDHARM PRESS

MORADABAD

[illegible]

मूल्य ३) रुपया Price 3 Rs.

* श्रीहरिः *

सामवेद संहिता

(सायणाचार्य कृत भाष्यानुकूल)

सान्वय भाषानुवाद सहित

मुरादाबादनिवासि भारद्वाजगोत्र पण्डित भोलानाथात्मज

सनातनधर्मपताका—सम्पादक

ऋषिकुमार रामस्वरूप शर्मा गौड़

द्वारा सम्पादित.

SAMVED SAMHITA

Edited Printed and Published

by

RAMSWARUP SHARMA

at

THE SANATANDHARM PRESS

MORADABAD.

1912

मूल्य ३) रुपया

Price 3 Rs.

॥ श्रीहरिः ॥

भूमिका

सनातनधर्मके प्रेमी सज्जनो ! लीजिये यह आप का सर्वस्वधन, आपके भवनको पवित्र करनेवाली और संसारभरके कल्याणकी साधन श्रीसामवेद संहिता आपके पवित्र करकमलोंमें सादर समर्पित है, जिन सनातनधर्मपताकाके ग्राहक महानुभावों के हाथमें यह उपहार पहुँचेगा, उनमेंसे कितने ही लोगोंको यह जिज्ञासा होना भी सम्भव है, कि—इस अमूल्यरत्नके द्वारा हम अपना, क्या और किसप्रकार कल्याण साधन करें, प्रियसज्जनो ! एक समय वह था, कि—हमारे पूर्वपुरुषा इस वेदशास्त्रको धारण करके संसारसंग्राममें पूर्णविजय पातेहुए सब प्रकारसे सफलमनोरथ हुआ करते थे, पुत्रैषणा, धनैषणा और लोकैषणाको सफल करनेमें वह सदा सिद्धहस्त रहते थे, इसीकारण उन को अवर्षा, सन्तानहीनता आदि कोई भी कष्टदशा शोक नहीं देती थी इस ही वेदके अनुष्ठानसे संसारभरके अजेय और जगद्गुरु बनेहुए थे, परन्तु आज उस ही वेदके होतेहुए उन ही महर्षियोंके वंशधर ऐसा कौनसा दुःख शेष है, जिसको नहीं भोगरहे हैं ? क्या आजकल के अग्रणी बननेवाले द्विज कभी इस बातके तत्त्वकी खोज करते हैं, आजकलका जगत् अन्तःसार शून्य होगया है बाहरी दृष्टि है सो भी नए प्रकाशसे ऐसी चौंधागई है, कि—उसके आगे तिलमिले आकर वस्तुका स्वरूप कुछका कुछ दीखनेलगा है, तभी तो वेदके माननेवालों में बहुतसे हमारे भाई वेदके अन्तःसारको वेदके अलौकिक तत्त्वको भूलकर उसको आजकलके प्रकृतिप्रेमी वैज्ञानिकोंके अनुभवका छोटा भाई बनाना चाहते हैं, अर्थात् मनुष्यके विचारस्फुरणरूप रेल तार आदिका स्मारकमात्र बना वेदके अलौकिक भावको अज्ञानकी गुफा मेंको ढकेलरहे हैं, संसारमें अहङ्कार भी वह वस्तु है कि—उसके प्रतापसे प्राणी हिरण्यकशिपुके भाई बनतेहुए ईश्वरीय इतिकर्त्तव्यतामें

भी दोषदृष्टि रखकर वेदोंके मंत्रोंका भी मनमाना अर्थ कर भारतके द्विजसमाजको अवनतिसागरकी अथाह तलोमें डुबोना चाहते हैं, पहिले महापुरुष शास्त्रोक्तविधिसे गर्भाधान कर स्वच्छ रजवीर्यसे उत्पन्न हुई सन्तानको वैदिक संस्कारोंसे सम्मार्जित करतेहुए वैदिक अनुष्ठानपूर्वक वेदाध्ययन कराते थे, वह वेदपाठी योगसाधनासे दिव्य दृष्टि पाकर वेदमंत्रोंका उच्चारण करतेहुए भारतीय प्रजाकी हरएक मनःकामनाको पूर्ण किया करतेथे, परन्तु अब भारतका वह उदयकाल नहीं है, भारतके मन्त्रपूत रुधिरकी जो रेड़ लगरही है, उसक स्मरण करनेसे भी रोमाञ्च खड़े होते हैं, ऐसे मलिनांतःकरणवाले वेदभाष्य या वैदिक अनुष्ठान करने बैठें तो क्या उससे कुछ लाभ होने की आशा कीजासकती है? कहाँ तो दिव्यदृष्टिवाले महापुरुष भाष्य और अनुष्ठान करकै वेदका महत्व दिखा जगत्को चमत्कृत करतेथे और कहाँ अब हियेकी दिव्यदृष्टिसे शून्य और नवीन प्रकाशके कारण बाहरकी शास्त्रीय दृष्टिको तिलांजलि देनेवाले विषमदृष्टि स्वार्थान्ध अपनेको वेदभाष्य का कर्त्ता वा वैदिकतत्त्वका आविष्कर्त्ता कहनेलगे, यदि उनको वेदका शत्रु, द्विजसमाजका शत्रु और प्रलापी कहाजाय तो कुछ अनुचित नहा है, हमारे छोटेसे विचारके अनुसार हमारे पूर्वपुरुषा वेदको जिस दृष्टिसे देखते थे, आजकल उस दृष्टिसे देखनेवालोंका अभावसा हो गया, आजकलके द्विजोंका यह कहना, कि—हम वेदको मानते हैं, हम वैदिक हैं, और हमारी वेद पर श्रद्धा है, यह केवल वाणीका विनाद-मात्र है, वेद कोई कहानी या इञ्जीनियरीकी पुस्तक नहीं है, कि—जिसको बाँचकर आप मनोविनोद या कोई शिल्पविज्ञानकी प्राप्ति करकै उसके माननेवाले बनबैठें! वेद अनुष्ठान ग्रन्थ है, प्यारे सनातन धर्मियों! वेदका अर्थमात्र बांचलेनेसे तुम वेदके प्रेमी वा वैदिक नहीं होसकते, यदि सच्चा वैदिक बनना है तो पश्चिमकी ओरसे पूर्वको मुख करो, यदि सब नहीं तो प्रतिसैंकडा दश द्विजकुमार वेदोद्धारकी भारतोद्धारको और अपने मनुष्यजन्मको सार्थक करनेकी सुध लें, यज्ञोपवीतको केवल सामाजिक रूढ़ि ही न समझें, किन्तु यज्ञोपवीत धारणके साथ २ समझलें कि—हमने अपने शरीरको वैदिक अनुष्ठान में दीक्षित करदिया, इस शरीरको सदा वेदसेवामें लगावेंगे, प्यारे

मित्रों ! यह वेदके मन्त्र और २ ग्रन्थोंमें लिखीं अक्षरोंकी पंक्तियोंकी समान नहीं हैं, इनमें वह कल्याणमयी किरणें गुथीहुई हैं, जो तपस्वियों की साधनासे उद्गत होकर संसारभरका दुःखान्धकार दूर करती हैं, और ग्रन्थोंका केवल अर्थ ही कार्यसाधक होता है परन्तु वेदके सनातन क्रमवद्ध अक्षर ही यथावत् उच्चारित होने पर इष्टसिद्धि देते हैं, इसीकारण वेदके यथावत् उच्चारणके लिये उदात्त अनुदात्त आदि स्वरोंका वन्धन रक्खा है, वह स्वर अर्थानुगत होते हैं अथवा वेदका अर्थ ही स्वरानुगत होता है, इसलिये वेदका अर्थ स्वरमर्यादाके अनुसार ही ठीक होसकता है और वही सायण, उव्वट, महीधर आदि ने लिखा है। उन सायणभाष्यादिके अनुसार ही यह अनुवाद लिख दियागया है, इसमें मेरी अपनी कल्पना कुछ नहीं है, अब धर्मप्रेमियों से इतनी ही प्रार्थना है कि—वह अपनी सन्तानोंमेंसे एकाधको अवश्य ही हरिद्वारके ऋषिकुलमें भेजकर वा किन्हीं योग्य गुरुकी सेवामें रखकर वेदाध्ययन करा वैदिकानुष्ठानकी परिपाटी चलातेहुए सच्चे वेदानुयायी होनेका परिचय दें।

इस अनुवादको मैंने कलकत्तेके प० जीवानन्द विद्यासागरके यहाँ छपीं सायण भाष्यसहित सामवेदसंहिताके अनुसार लिखा है। आशा है इस ग्रन्थरत्नको पाकर हमारे धार्मिक पाठकोंको सन्तोष होगा।

भाद्रशुक्ला ११
विक्रमाब्द १९६९

निवेदक—(ऋ० कु०) प० रामस्वरूप शर्मा
मुरादाबाद.

॥ हरिः ॐ ॥

सामवेदसंहिता

(आग्नेय पर्व)

सान्वय भाषानुवाद सहित

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (वीतये) हविको भक्षण करनेके निमित्त (गृणानः) हमारे स्तुति किये हुए (आयाहि) आइये । और (हव्यदातये) देवताओंको हवि पहुँचाने के निमित्त (होता) उनको बुलानेवाले बनकर (बर्हिषि) बिछेहुए कुशासन पर (निषत्सि) विराजिये १

त्वमग्ने यज्ञाना ँ होता विश्वेषा ँ हितः ।
देवेभिर्मानुषे जने ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (त्वम्) तुम (विश्वेषाम्) सकल (यज्ञानाम्) यज्ञोंके (होता) होमको सिद्ध करनेवाले । अथवा (यज्ञानाम्) यजन के योग्य (विश्वेषाम्) देवताओंके (होता) आह्वान करनेवाले तुम (मानुषे) मनुष्य यजमान के विषयमें (देवेभिः) स्तुति करनेवाले ऋत्विजों करकै (हितः) गार्हपत्य आदिरूपसे स्थापन कियेजाते हो २

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥

(होतारम्) देवताओंका भलेप्रकार आह्वान करनेवाले (विश्ववेदसम्) सकल के ज्ञाता अथवा सकल धनके स्वामी (अस्य, यज्ञस्य, सुक्रतुम्) इस वर्त्तमान यज्ञको सुसिद्ध करनेवाले (दूतम्) देवताओं का दूतकर्म करनेवाले (अग्निम्) अग्निदेवको (वृणीमहे) भले प्रकार भजते हैं ॥ ३ ॥

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ४ ॥

(द्रविणस्युः) अपने उपासकोंको धन देना चाहनेवाला वा अपने लिये हविरूप धनकी इच्छा वाला (समिद्धः) समिधा आदिसे प्रज्वलित किया हुआ (शुक्रः) प्रदीप्त (आहुतः) आहुतियें दिया हुआ (अग्निः) अग्नि देवता (विपन्यया) हमारी की हुई स्तुतियों से (वृत्राणि) बलसे जगत् को कष्ट देनेवाले राक्षसादिकों को वा बलात्कारसे जगत्को आच्छादित करनेवाले अज्ञानान्धकारों को (जङ्घनत्) नष्ट करे ॥ ४ ॥

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम्।
अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ ५ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (प्रेष्ठम) स्तुति करनेवालों को धनदाता होने से परमप्रिय (अतिथिम्) अतिथिकी तुल्य सबके पूज्य (मित्रमिव प्रियम्) सखाकी समान प्रसन्नता देनेवाले (रथं न वेद्यम्) रथकी समान लाभके हेतु अर्थात् जैसे रथसे धन मिलता है तैसे स्तुतिकर्त्ता अग्निसे धन पाते हैं ऐसे (वः) पूज्य आपको (स्तुषे) स्तुतिसे प्रसन्न करता हूँ ॥ ५ ॥

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः।
उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वम्) तुम (नः) हमें (महोभिः) बहुतसा धन देकर (अरातेः) धन न देनेवालों से (उत) और 'बल देकर' (द्विषः) द्वेष करनेवाले (मर्त्यस्य) मनुष्यों से (पाहि) रक्षा करो ॥ ६ ॥

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ ७ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (एहि) आइये (ते) तुम्हारे लिये (गिरः) स्तुतियें (इत्था) इसप्रकार (सु—ब्रवाणि) भले प्रकार उच्चारण करूँगा उनको सुनिये, (उ) और (इतराः) असुरोंकी स्तुतियोंको

मुनिये । तथा आये हुए आप (एभिः) इन (इन्दुभिः) सोमरसोंसे (वर्धास) वृद्धिको प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।
अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ ८ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (वत्सः) वत्स (गिरा) स्तुति से (ते) तुम्हारे (मनः) मनको (परमाच्चित्) परमोत्तम भी (सधस्थात्) द्युलोक धामसे (आयमयत्) आकर्षण करता हुआ (त्वाम्) तुम्हें (कामये) चाहता हूँ अर्थात् आपका मन मेरी ओरको लगै यह प्रार्थना करता हूँ ॥ ८ ॥

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ९ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (अथर्वा) अथर्वा (त्वाम्) तुमको (मूर्ध्नः) मूर्धाकी समान धारण करनेवाले (विश्वस्य वाघतः) सकल जगत् के धारणकर्त्ता (पुष्करात् अधि) कमलके पत्तेमें (निरमन्थत) अरणियोंसे मथकर उत्पन्न करताहुआ ॥ ९ ॥

अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे ।
देवो ह्यसि नो दृशे ॥ १० ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (त्वम्) तुम (अस्मभ्यम्) हमारी (महे) बड़ी (ऊतये) रक्षाके लिये (विवस्वत्) स्वर्गादि लोकोंमें विशेषरूपसे निवास के हेतु इस कर्म को (आभर) सिद्ध करो (हि) क्योंकि (नः) हमको (दृशे) दर्शन देने के निमित्त (देवः) प्रकाशवान् (असि) हो ॥ १० ॥

प्रथमाध्यायस्य प्रथम खण्ड समाप्त

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ।
अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥

(अग्ने देव) हे अग्निदेव ! (कृष्टयः) मनुष्य (ओजसे) बलके निमित्त (ते) तुम्हारे अर्थ (नमः) नमस्कार शब्दको (गृणन्ति) उच्चारण करते हैं । इसकारण मैं भी तुम्हें नमस्कार करताहूँ (अमैः) बलोंसे (अमित्रम्) शत्रुको (अर्दय) नष्ट करो ॥ १ ॥

दूतं वो विश्ववेदसꣳ हव्यवाहममर्त्यम् ।
यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ २ ॥

हे अग्निदेव (विश्ववेदसम्) सर्वज्ञ (हव्यवाहम्) हवियों को देवताओंके समीप पहुँचानेवाले (अमर्त्यम्) अमर (यजिष्ठम्) यज्ञ के परम साधन (दूतम्) देवताओं के दूत (वः) तुम्हें (गिरा) स्तुतिकी वाणीसे (ऋञ्जसे) वृद्धि को प्राप्त करता हूँ ॥ २ ॥

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।
वायोरनीके अस्थिरन् ॥ ३ ॥

हे अग्निदेव ! (हविष्कृतः) यजमानकी (गिरः) स्तुतियें (जामयः) बहिनों की समान (देदिशतीः) गुणकीर्त्तन करती हुई (त्वा, उप) तुम्हारे समीप उपस्थित होती हैं (वायोः, अनीके) वायुके समीप (अस्थिरन्) तुम्हें प्रज्वलित करती हुई स्थित होती हैं ॥ ३ ॥

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (वयम्) हम अनुष्ठान करनेवाले (दिवे दिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) रातमें और दिनमें (धिया) बुद्धिसे (नमः भरन्तः) नमस्कार करते हुए (त्वा, उप) तुम्हारे समीप (एमसि) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

जराबोध तद्विविड्ढि विशे विशे यज्ञियाय ।
स्तोमꣳ रुद्राय दृशीकम् ॥ ५ ॥

(जराबोध) हे स्तुतिसे बोध्यमान अग्ने (विशे विशे) प्रत्येक यजमानरूप प्रजा पर अनुग्रह करनेको (यज्ञियाय) यज्ञसम्बन्धी अनुष्ठान की सिद्धिके निमित्त (तत्) यज्ञस्थानमें (विविड्ढि) प्रवेश कर । यजमान भी (रुद्राय) तुझ क्रूर अग्निके अर्थ (दृशीकम्) देखनेयोग्य (स्तोमम्) स्तुतिको, करता है ॥ ५ ॥

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे ।
मरुद्भिरग्न आगहि ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (तम्) उस (चारुम्) अङ्गवैकल्यरहित (अध्वरं प्रति) यज्ञकी ओर लक्ष करके तुम (गोपीथाय) सोमपान करनेके लिये (प्रहूयसे) अधिकतासे आह्वान कियेजाते हो (मरुद्भिः, आगहि) देवताओं के सहित आइये ॥ ६ ॥

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः।
सम्राजं तमध्वराणाम् ॥ ७ ॥

(वारवन्तम्) पूंछवाले (अश्वं न) घोड़ेकी समान (अध्वराणाम्) यज्ञोंके (सम्राजम्) स्वामी (तं त्वां अग्निम्) तुझ प्रसिद्ध अग्निको (नमोभिः) स्तुतियोंसे (वन्दध्यै) वन्दना करनेको प्रवृत्त हुए हैं अर्थात् जैसे घोड़ा पूंछके बालोंसे पीड़ा देनेवाले मच्छर आदिको दूर करदेना है तैसे ही तू भी ज्वालाओंसे हमारे विरोधियोंको हटा॥ ७ ॥

और्वभृगुवच्छुचिं नप्नवानवदाहुवे ।
अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ८ ॥

(और्वभृगुवत्) और्वभृगु की समान (अप्नवानवत्) अप्नवान की समान (समुद्रवाससम्) समुद्र के मध्य में वर्त्तमान वाडवनामा (शुचिम्) शुद्ध(अग्निम्) अग्नि को (आहुवे) आह्वान करता हूँ ॥ ८ ॥

अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः।
अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥ ९ ॥

(मर्त्यः) मनुष्य (अग्नि इन्धानः) अग्नि को समिधाओं से प्रज्वलित करता हुआ। (मनसा) मानसिक श्रद्धा से (धियम्) कर्म को (सचेत) यथासमय करै (विवस्वभिः) ऋत्विजों के द्वारा (अग्निम्, इन्धे) अग्नि को प्रज्वलित करै ॥ ९ ॥

आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम्।
परो यदिध्यते दिवि ॥ १० ॥

(दिवि परः) द्युलोक से ऊपर (यत्) जब, यह वैश्वानर अग्नि सूर्य रूप से (इध्यते) दीप्त होता है (आदित्) अनन्तर ही सकल जीव (प्रत्नस्य) चिरन्तन (रेतसः) गमन करने वाले सूर्य के (वासरम्) निवास के हेतु भूत (ज्योतिः) प्रकाशवान् तेज को (पश्यन्ति) देखते हैं ॥ १० ॥

प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः खण्ड समाप्तः

अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरुतमम्।
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥

हे ऋत्विजो ! (वः) तुम (अध्वराणाम्) हिंसा न करने योग्य बलवानों के (नप्त्रे) बन्धु (सहस्वते) बलवान् (वृधन्तम्) ज्वालाओंसे बढ़ते हुए (पुरुतमम्) बहुत अधिक (अग्निम) अग्निको (अच्छा) अभिगमन करो वा पूजो ॥ १ ॥

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यँसद्विश्वं न्याऽत्रिणम्। अग्निर्नो वँसते रयिम् ॥ २ ॥

(अय, अग्नि.) यह अग्नि (तिग्मेन, शोचिषा) तीक्ष्ण तेजसे (विश्वं, अत्रिणम) सकल भक्षक राक्षसादि को (नियंसत) नष्ट करे (अग्नि) अग्नि (नः) हमें (रयिम) धन (वसते) देय ॥ २ ॥

अग्ने मृड महाँ असि य ईमा देवयुं जनम्।
इयेथ बर्हिरासदम् ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (मृड) हमें सुख दो (महान्, असि) तुम महान् हो (यः) गमन करनेवाले तुम (देवयुम) देवताओं का दर्शन चाहनेवाले (जनम्) यजमान के समीप (बर्हिः, आसदम्) दर्भासन पर विराजने को (आ-इयेथ) आते हो ॥ ६ ॥

अग्ने रक्षा णो अँहसः प्रतिस्म देव रीषतः।
तपिष्ठैरजरो दह ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (नः) हमें (अंहसः) पापसे (रक्षा) रक्षा करो (देव) हे प्रकाशमान विभावसो ! (अजरः) जरारहित तुम (रीषतः) हिंसा करना चाहने वाले शत्रुओं को (तपिष्ठैः) अत्यन्त ताप देनेवाले तेजोंसे (प्रति दह स्म) भस्म करो ॥ ४ ॥

अग्ने युंक्ष्वा हि ये तवाऽश्वासो देव साधवः
अरं वहन्त्याशवः ॥ ५ ॥

(देव, अग्ने) हे प्रकाशवान् अग्ने ! उन घोड़ों को अपने रथ में (युंक्ष्वा)

जोड़ो (ये हि,) जो (तव) तुम्हारे (आशवः) शीघ्रगामी (साधवः) सुशील (अश्वासः) घोड़े (अरम्) ठीक (वहन्ति) तुम्हारे रथ को लेजाते है ॥ ५ ॥

नित्वा नक्ष्य विश्पते, द्युमन्तं धीमहे वयम्

सुवीरमग्न आहुत ॥ ६ ॥

(नक्ष्य) उपासना करने योग्य (विश्पते) धनपते (आहुत) अनेकों यजमानों से होमेहुए (अग्ने) हे अग्निदेव (द्युमन्तम्) दीप्तिमान् (सुवीरम्) जिस की स्तुति करनेवाले कल्याण के भागी होते हैं ऐसे (त्वा) तुम्हे (वयम्) हमने (निधीमहे) स्थापन किया है ॥ ६ ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिःपृथिव्या अयम् ।

अपा ँ रेता ँ सि जिन्वति ॥ ७ ॥

(मर्धा) देवताओं में श्रेष्ठ (दिवः, ककुत्) द्युलोक से ऊंचा (पृथिव्याः, पतिः)पृथिवी का स्वामी (अयं, अग्निः)यह अग्नि (अपां, रेतासि) जलों के वीर्य्य रूप स्थावर जङ्गम प्राणियों को (जिन्वति) प्रेरणा करता है ॥ ७ ॥

इयमू षु त्वमस्माक ँ सनिं गायत्रं नव्या ँ सम्

अग्ने देवेषु प्रवोचः ॥ ८ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (अस्माकम्) हमारे (इममूषुम्) इस अनुष्ठान किये जाते हुए (सनिम्) हविर्दान को (नव्यांसम) अतिनवीन (गायत्रम्) स्तुतिरूप वचन को (देवेषु) देवताओं के आगे (प्रवोचः) कहो ॥ ८ ॥

तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः ।

स पावक श्रुधी हवम् ॥ ९ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (तं, त्वाम) उन आपको (गोपवनः) गोपवन (गिरा) स्तुतिसे (जनिष्ठत्) उत्पन्न करता है या बढ़ाता है (अङ्गिरः) हे सर्वत्र गमन करनेवाले (पावक) शोधक अग्निदेव ! (हवम्) आह्वानको (श्रुधि) सुनो ॥ ९ ॥

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ १० ॥

(वाजपतिः) अन्नोंका पालक (कविः) अतीत विषयोंको देखनेवाला (दाशुषे) हवि देनेवाले यजमानके अर्थ (रत्नानि) रमणीय धनोंको (दधत्) देतेहुए (अग्निः) अग्निदेव (हव्यानि) हवियोंको (पर्यक्रमीत्) व्याप्त करते हैं ॥ १० ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ११ ॥

(केतवः) सूर्यकी किरणें (विश्वाय, द्रष्टुम्) सकल भुवनोंको देखने को (त्यम्) प्रसिद्ध (जातवेदसम्) प्राणियोंके ज्ञाता (देवम्) दीप्तिमान् (सूर्यम्) सूर्यको (उद्वहन्ति-उ) ऊपरको उठाता हैं ॥ ११ ॥

कविमग्निमुपस्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।
देवममीवचातनम् ॥ १२ ॥

हे उपासकों ! (अध्वरे) यज्ञमें (कविम्) मेधावी (सत्यधर्माणम्) सत्यवचन रूप धर्मसे युक्त (देवम्) द्योतमान (अमीवचातनम्) शत्रुओंके नाशक (अग्निम्) अग्निदेवको (उपस्तुहि) उपस्थित होकर स्तुति करो ॥ १२ ॥

शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये ।
शं योरभिस्रवन्तु नः ॥ १३ ॥

(नः, शम्) हमारे पाप दूर होकर सुख प्राप्त हो (देवी, आपः, अभिष्टये, भवन्तु) दिव्य जल हमारे यज्ञके अङ्ग बनें (नः, पातये, शं, भवन्तु) हमारे पीनेके लिये सुखरूप हों (शम्) उत्पन्नहुए रोगों को शान्त करनेवाले हों (योः) न उत्पन्न हुए रोगोंको दूर करें (नः, अभि, स्रवन्तु) हमारे ऊपर अमृतरूपसे टपकें ॥ १३ ॥

कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते ।
गोषाता यस्य ते गिरः ॥ १४ ॥

(सत्पते) हे सज्जनों के पालक अग्ने । (नूनम्) इस समय

(कस्य) कैसे मनुष्यके (धियः) कर्मोंके (परीणसि) ब्रह्म में (जिन्वसि) पहुँचा रहे हो (यस्य) जिस (ते) तेरे सम्बंधकी (गिरः) स्तुतियें (गोषाता) गौओंका लाभ करानेवालीं [भवन्तु] हों। अर्थात् इस समय आप किस भगवद्भक्त का कार्यसाधन करतेहुए कहाँ हो ? इस समय हमको गौओंको पानेकी इच्छा है ॥ १४ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य तृतीय खण्डः ४-२-१

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे। प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषम्

हे स्नाताओ ! (वः च) तुम भी (यज्ञायज्ञ) सब यज्ञोंमें (दक्षसे) वृद्धिको प्राप्त (अग्नये) अग्निके अर्थ (गिरागिरा) स्तुति रूप वाणी करकै [स्तुति करो], (वयम्) हम [अपि] भी (अमृतम्) मरणरहित (मित्रं, न) मित्रकी समान (प्रियम्) अनुकूल (जातवेदसम्) प्राणीमात्रके ज्ञात अग्निको (प्रप्रशंसिषम्) स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया । पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (नः) हमको (एकया) एक ऋचारूप वाणी से (उत) और (द्वितीयया) दूसरी ऋचासे (पाहि रक्षा करो, (ऊर्जाम्) बलोंके वा अन्नोंके (पते) स्वामिन् अग्ने ! (तिसृभिः) तीन (गीर्भिः) स्तुतियोंसे (पाहि) रक्षा करो (वसो) हे अग्ने ! (चतसृभिः) चार स्तुतियोंसे (पाहि) रक्षा करो ॥ २ ॥

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा। भरद्वाजे समिधाना यविष्ठ रेवत्पावक दीदिहि॥३॥

(देव) दानादि गुणयुक्त (यविष्ठ) अत्यन्त युवा (पावक) शोधन करने वाले (अग्ने) हे अग्ने (शुक्रेण) निर्मल (शोचिषा) तेज करकै (भरद्वाजे) हमारे भ्राताके विषयमें (समिधानः) प्रज्वलित होतेहुए तुम (बृहद्भिः) बड़े (तेजोभिः) तेजों करकै (नः) हमारे निमित्त (रेवत्) धनयुक्त होकर (दीदिहि) दीप्त हूजिये ॥ ३ ॥

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः । यन्ता-

रो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ४

(स्वाहुत) यजमानों के द्वारा भले प्रकार हवन किये हुए (अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वे) तुम्हारे (सूरयः) प्रेरक स्तोता (प्रियासः) प्रिय (सन्तु) हों। (ये) जो (मघवानः) धनवान् (यन्तारः) देनेवाले (जनानाम्) हमारे पुरुषोंके (गोनाम्) गौओंके (ऊर्वम्) समूहको (दयन्त) देते हैं [वह भी आप के प्रिय हों] ॥ ४ ॥

अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः। अप्रोषिवान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ ५ ॥

(अग्ने देव) हे अग्निदेव ! (जरितः) स्तुति के योग्य (विश्पतिः) प्रजाओंका पालक (रक्षसः) राक्षसजातिका (तपानः) सन्तापदायक (असि) है (गृहपते) हे यजमान के घरकी रक्षा करनेवाले अग्ने ! (अप्रोषिवान्) यजमान के घरको न त्यागनेवाले तुम (महान्) परमपूज्य (असि) हो। (दिवः) द्युलोकके (पायुः) रक्षक (दुरोणयुः) यजमानके घर सदा वर्त्तमान (असि) हो ॥ ५ ॥

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रꣳराधो अमर्त्य। आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाꣳउषर्बुधः ॥ ६ ॥

(अमर्त्य) मरणधर्मरहित (जातवेदः) प्राणिमात्रके ज्ञाता (अग्ने) अग्निदेव !)त्वम्)तुम (उषसः) उषा देवतासे विवस्वत्)।विशिष्ट निवासयुक्त (चित्रम्) नानाप्रकारके (राधः) धनको (दाशुषे) हवि देनेवाले यजमानके अर्थ (आवह) लाकर प्राप्त कराओ (अद्य) आज (उषबुधः) उषःकालमें जागेहुए (देवान्) देवताओंको (आवह) लाकर पहुँचाइये ॥ ६ ॥

त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधाꣳसि चोदय। अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ ७ ॥

(वसो) व्यापक (अग्ने) अग्निदेव ! (चित्रः) दर्शनीय तुम (ऊत्या) रक्षासहित (राधांसि) धन (नः) हमारे अर्थ (चोदय) प्रेरणा करो (अस्य) इस लोकमें दीखतेहुए (राधः) धनके (रथीः) प्रेरक (असि) हो [इसकारण हमारे अर्थ भी धनको प्रेरणा करिये और] (नः) हमारे (तुचे) पुत्रके अर्थ (गाधम्) प्रतिष्ठाको (तु) शीघ्र (विदाः) दीजिये ॥ ७ ॥

त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः । त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥ ८ ॥

(त्रातः) रक्षक (अग्ने) अग्निदेव (ऋत) सत्य (कविः) ज्ञान दृष्टि (त्वमित्) तुमही (सप्रथाः) सबसे बड़े (असि) हो (समिधान) प्रज्वलित होतेहुए (दीदिवः) हे दीप्त अग्ने (विप्राः) मेधावी (वेधसः) स्तुति करनेवाले (त्वाम्) तुमको (आविवासन्ति (उपासना करते हैं ॥ ८ ॥

आ नो अग्ने वयोवृधꣳरयिं पावक शꣳस्यम् । रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहꣳसुनीती सुयशस्तरम् ॥ ९ ॥

(पावक) शोधक (अग्ने) हे अग्निदेव ! (वयोवृधम्) अन्न को बढ़ानेवाले (शंस्यम्) स्तुतिके योग्य (रयिम्) धनको (नः) हमारे अर्थ (आभर) लाइये । (उपमाते) हे धृनकी समीपतावाले अग्ने (नः) हमारे अर्थ (सुनीती) सुन्दर नीतिके द्वारा (पुरुस्पृहम्) अनेकों के चाहने योग्य (सुयशस्तरम्) सर्वथा हमारा अपनी कीर्त्तिरूप धन (रास्व) दीजिये ॥ ९ ॥

यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् । मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्रस्तोमा यन्त्वग्नये

(होता) देवताओंका आह्वान करनेवाला (मन्द्रः) आनन्द देने वाला (यः) जो अग्नि (जनानाम्) यजमानोंको (विश्वा) सकल (वसु) धन (दयते) देता है (अस्मै) ऐसे इस (अग्नये) अग्निके

अर्थ (मन्द्रोः) मदकारी सोमके (प्रथमानि) मुख्य (पात्रा, न) पात्रों की समान (स्तोमाः) स्तोत्र (प्रयन्तु) प्राप्त हो हैं ॥ १० ॥

५-२-२१ इति प्रथमाध्यायस्य चतुर्थ खण्ड

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे। प्रियं चेतिष्ठमरतिᳫंस्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्।

हे स्तोताओं ! (वः) तुम्हारे निमित्त (ऊर्जः) बलके (नपातम्) पुत्र वा रक्षक (अस्माकम्) हमारे (प्रियम्) प्यारे (चेतिष्ठम्) पूर्ण ज्ञाता (अरतिम्) स्वामी (स्वध्वरम्) सुन्दर यज्ञवाले (विश्वस्य) सकल यजमानोंके (दूतम्) दूत (अमृतम्) नित्य (अग्निम्) अग्निको (एना) इस (नमसा) स्तोत्रसे (आहुवे) आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥

शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्त्तास इन्धते । अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥ २ ॥

हे अग्ने ! (वनेषु) वनोंमें (मातृषु) माताओं में (शेषे) वर्त्तमान रहते हो, ऐसे (त्वा) तुम्हें (मर्त्तासः) मनुष्य [मन्थनके द्वारा उत्पन्न करके] (समिन्धते) प्रज्वलित करते हैं। तब पूर्णरूपसे बढ़े हुए तुम (अनलसः) आलस्य रहित होकर (हविष्कृतः) यजमान के (हव्यम्) हविको (वहसि) देवताओं के समीप पहुँचाते हो (आदित्) अनन्तर (देवेषु) देवताओं में (राजसि) शोभा पाते हो ॥ २ ॥

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः उपो षु जातमार्यस्य वर्द्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥

(यस्मिन्) जिस अग्निमें (व्रतानि) कर्मोंको (आदधुः) यजमानोंने स्थापन किया (गातुवित्तमः) मार्गोंका पूर्ण ज्ञाता वह अग्नि (अदर्शि) दीखा (सुजातम्) भले प्रकार प्रकट हुए (आर्यस्य) श्रेष्ठ वर्णके (वर्द्धनम्) बढ़ाने वाले (अग्निम्) अग्निको (नः) हमारी (गिरः) स्तुतिरूप वाणियें (उपोनक्षन्तु) प्राप्त हों ॥ ३ ॥

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हि-रध्वरे । ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ॥ ४ ॥

(उक्थे) स्तोत्र ही है शस्त्र जिस में ऐसे (अध्वरे) हिंसा रहित इस यज्ञ में (अग्निः) अग्नि (पुरोहितः) यज्ञसे आगे उत्तर वेदी में ऋत्विजों के द्वारा स्थापित किया गया [यथा] जैसे (ग्रावाणः) पाषाण सोमका रस निकालनेको आगे रक्खेगए (बर्हिः) कुश आगे रक्खेगए [ऐसा होने पर] (मरुतः) हे उनञ्चास मरुद्गणो! (ब्रह्मणस्पते) हे स्तोत्रके रक्षक ब्रह्मणस्पति देव ! (देवाः) हे इन्द्रादि देवताओ ! (वरेण्यम्) वरणीय (अवः) रक्षाका (ऋचा) सूक्तरूप स्तुतिके द्वारा (वः) तुम्हारी शरण में आया हुआ मैं (यामि) याचना करता हूँ ॥ ४ ॥

अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीर-शोचिषम् । अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ॥ ५ ॥

(पुरुमीढ) हे पुरुमीढ तू (शीरशोचिषम्) फैली हुई ज्योति (अग्निम्) अग्निको (अवसे) रक्षाके अर्थ (राये) धनके अर्थ (गाथाभिः) मंत्ररूप वाणियों से (ईडिष्व) स्तुति कर (श्रुतम्) ऐसे सुनेहुए इसकी (नरः) अन्य यजमान भी अपने मनोरथ के निमित्त स्तुति करते हैं (अग्निः) वह अग्नि देवता (सुदीतये) मेरे अर्थ (छर्दिः) घर (प्रयच्छतु) देय ॥ ५ ॥

श्रुधि श्रुत्कर्ण वन्हिभिर्देवैरग्ने सयावभिः । आसीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे ॥ ६ ॥

(श्रुत्कर्ण) श्रवणसमर्थ कानोवाले (अग्ने) हे अग्निदेव हमारे वचन को (श्रुधि) सुनो [यः] जो (मित्रः) मित्र देवता (अर्यमा) अर्यमा देवता है वह (प्रातर्यावभिः) प्रातःकाल देवजन में जानेवाले देवताओं के साथ (सयावभिः) आहवनीय अग्निको समान गतिवाले

(बर्हिभिः) सब देवताओं के साथ (अध्वरे) यज्ञके विषै (बर्हिषि) कुशासन पर (आसीदतु) विराजमान होय ॥ ६ ॥

प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना । अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ।

(देवः) दीप्तिमान (इन्द्रः) ऐश्वर्यवाला (दैवोदासः) देवभक्तों करकै आह्वान कियाहुआ (अग्निः) अग्नि (मातरम्) सब लोकोंको धारण करनेवाली माता (पृथिवीम्) पृथिवीको (अनु प्र वि वावृते) देवताओंके समीप हवि पहुँचाने को विशेष करकै प्रवृत्त करता है, क्योंकि यजमान इसको (मज्मना न) बल करकै मानो [आजुहाव] पुकारता हुआ इसकारण यह (नाकस्य) स्वर्गके (शर्मणि) अपने स्थानपर (तस्थौ) स्थित हुआ ॥ ७ ॥

अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि । अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥ ८ ॥

हे इन्द्र (अध) इस समय (ज्मः) पृथिवीसे । अध वा । या (दिवः) अन्तरिक्षसे (बृहतः) बड़े (रोचनात् अधि) नक्षत्रों से दीप्तिमान स्वर्ग से [आगत्य] आकर (अया) इस (तन्वा) शरीर करकै, तथा विस्तार वाली (ममा) मेरी (गिरा) स्तुतिसे (वर्धस्व) वृद्धिको प्राप्त हो (सुक्रतो) हे शोभनकर्मा इन्द्र ! (जाता) हमारे जनोंको (पृण) इच्छित फलों से पूर्ण करो ॥ ८ ॥

कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः । न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद्दूरे सन्निहाभुवः ९

(अग्ने) हे अग्निदेव (वना) वनोंको (कायमानः) इच्छा करता हुआ भी (त्वम्) तू (यत्) जो, उनको त्यागकर (मातॄः) मातारूप (अपः) जलोंको (अजगन्) प्राप्त हुआ है अर्थात् जलोंमें प्रविष्ट होकर शान्तभावसे स्थित है (तत्) जिससे (ते) तेरा (निवर्तनम्) तहां अत्यन्त वास (न) नहीं (प्रमृषे) सहाजाता है, (यत्) क्योंकि (दूरे सन्) अदृश्यरूपसे रहकर भी (इह) इन हमारे अरणी काष्ठोंमें (आभुवः) सब ओरसे प्रकट होजाते हो अर्थात् मथन करनेपर आप क्षणमात्रमें

हमारे समीप आजाते हैं, इस कारण आपके दूर रहनेको हम नहीं सह सकते, क्योंकि—आपके बिना तो कल्याणकारी यज्ञक्रिया ही लुप्त हो जायगी ॥ ६ ॥

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते । दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ १० ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (ज्योतिः) प्रकाशरूप (त्वाम्) तुझको (शश्वते) अनेक प्रकारके यजमानके अर्थ (मनुः) प्रजापति (निदधे) देवयजनस्थानमें स्थापन करताहुआ (ऋतजातः) यज्ञके निमित्तसे उत्पन्न हुआ (उक्षितः) हवियोंसे तृप्त हुआ (कण्वे) कण्वके निर्मित्त (दीदेथ) दीप्त हुएहो (यम्) जिसको (कृष्टयः) मनुष्य (नमस्यन्ति) नमस्कार करते हैं ॥ १० ॥

इति प्रथमाध्यायस्य पञ्चमः खण्ड

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् । उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥ १ ॥ ५-२-२२

(द्रविणोदाः) धनोंका दाता (देवः) अग्निदेवता (वः) तुम्हारी (पूर्णाम्) हविसे पूर्ण (आसिचम्) चारों ओरसे सिंचित (स्रुचम) स्रुकको (विवष्ट) चाहे (वा) और (उत्सिञ्चध्वम्) सोमसे पात्रको सींचो (वा) और (उपपृणध्वम्) होताके चमसको सोमसे पूर्ण करो अर्थात् अग्निके निमित्त सोम अर्पण करो (आदित्) इसके अनंतर ही (देवः) अग्नि (वः) तुम्हें (ओहते) आहुति पहुँचाकर पूर्णमनोरथ करता है ॥ २ ॥

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरं नर्यं पंक्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः २

(ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्मणस्पति देवता (प्रैतु) प्राप्त हो (सूनृता) सत्य और प्रिय (देवी) वाग्देवता (प्रैतु) हमें प्राप्त हो (देवाः) ब्रह्मणस्पति आदि देवता (वीरम्) शत्रुको [दूरे] निःशेषभाव से

दूर करें। तिस (नर्य्यम्) मनुष्यों के हितकारी (पंक्तिराधसम्) ब्राह्मणोक्त हवि करके पंक्ति आदि के द्वारा सम्पन्न हुए (यज्ञम्) यज्ञके समीप (नः) हमें (अच्छा) अभिमुख करके (नयन्तु) पहुँचावें॥

ऊर्ध्व उ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता। ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ ३ ॥

हे यूपकाष्ठस्थित अग्निदेव (नः) हमारी (ऊतये) रक्षाके निमित्त (ऊर्ध्वः) ऊँचा होकर (सुतिष्ठा) सुन्दर प्रकार से स्थित हो (सविता, देवः न) सूर्य देवताकी समान (ऊर्ध्वः) ऊँचे पदपर स्थित होता हुआ (वाजस्य) अन्नका (सनिता) देनेवालाहो(यत्) क्योंकि (अञ्जिभिः) यज्ञसे यूपको अञ्जित करने वाले (वाघद्भिः) यज्ञको समाप्तिपर पहुँचानेवाले ऋत्विजों के साथ (विह्वयामहे) आह्वान करते हैं अर्थात् हम अन्नदान के लिये आपसे प्रार्थना करते हैं, इसकारण आप हमें अन्नदान दीजिये ॥ ३ ॥

प्र यो राये निनीषति मर्त्तो यस्ते वसो दाशत्। स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥ ४ ॥

(वसो) व्यापक (अग्ने) हे अग्निदेव ! (यः) जो तुम्हारा भक्त (राये) धनके निमित्त (प्रनिनीषति) तुम्हें प्रसन्न करना चाहताहै (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (ते) तुम्हारे अर्थ (दाशत्) हवि देना चाहता है (सः) वह मनुष्य (उक्थशंसिनम्) वेदपाठी (त्मना) अपने द्वारा (सहस्रपोषिणम्) सहस्रों मनुष्योंका पालन करनेवाले अर्थात् बहुधनी (वीरम्) पुत्रको (धत्ते) धारण करता है ॥ ४ ॥

प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम्। अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यं समिदन्य इन्धते

हे ऋत्विक यजमानो ! (देवयतीनाम्) देवताओंकी शरण आनेवाले (पुरूणाम्) बहुत से (विशाम्) प्रजाकेऊपर (वः) तुम्हारे,अनुग्रहके निमित्त (यह्वम्) महान् (अग्निम्) अग्निको (सूक्तेभिः)सूक्त-

रूप (वचोभिः) वाणियों से (वृणीमहे) आराधना करते हैं (अन्य, इत्) अन्य ऋषि भी (यम्) जिस अग्निको (समिन्धते) भलेप्रकार से दीप्त करते हैं ॥ ५ ॥

अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य। राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ६

(अयम्) यह यजन करनेयोग्य (अग्निः) अग्नि (सुवीर्यस्य) शोभन सामर्थ्ययुक्त (सौभगस्य) सौभाग्यका (हि) निश्चय (ईशे) स्वामी है, अर्थात् सबोंको बल और आरोग्यका दाता होनेसे सौभाग्यदाता है (गोमतः) गौ आदि पशुयुक्त (स्वपत्यस्य) सुन्दर सन्तानका (रायः) धनका (ईशे) स्वामी है (वृत्रहथानाम्) शत्रुभूत पापोंके विनाशों का (ईशे) स्वामी है, अर्थात् हे अग्ने ! हम अपने किये कर्म तुम्हें समर्पण करते हैं. तुम्हारे अनुग्रह से हमें धन, जन, पशु आदिकी प्राप्ति होती है और हमारे पापोंका भी नाश होता है ॥ ६ ॥

त्वमग्ने गृहपतिस्त्वꣳहोता नो अध्वरे : त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्य्यम् ७

(अग्ने) अग्निदेव ! (नः) हमारे (अध्वरे) यज्ञमें (त्वम्) तुम (गृहपतिः) यजमान (त्वम्) तुम (होता) देवताओंका आह्वान करने वाले [असि] हो (विश्ववार) हे सबके आराधन करनेयोग्य अग्ने (त्वम्) तुम (पोता) पोता नामवाले ऋत्विक् हो (प्रचेताः) उत्तम बुद्धिवाले तुम (वार्यम्] वरणीय हविको (यक्षि) यजन करो (च) और (यासि) हमको धन प्राप्त कराओ ॥ ७ ॥

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्त्तास ऊतये। अपां नपातꣳ सुभगꣳ सुदꣳससं सुप्रतूर्त्तिमनेहसम् ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! (सखायः) सोम घृतादि हवि देनेके कारण उपकारी होनेसे मित्ररूप (मर्त्तासः) मनुष्य, हम ऋत्विज् (अपांनपातम्) जलोंके नप्ता (कुभगम्) शोभन धनयुक्त (सुदंससम्) श्रेष्ठ कर्म करनेवाले (सुप्रसुर्त्तिम्) कर्मानुष्ठान करनेवालों को सुखपूर्वक प्राप्त

होने योग्य (अनेहसम्) उपद्रवरहित तुम्हें (ऊतये) रक्षा के लिये (वृमहे) वरण करते हैं ॥ ८ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य षष्ठ खण्डः समाप्त.

आजुहोता हविषा मर्जयध्वं निहोतारं गृहपतिं दधिध्वम्। इडस्पदे नमसा रातहव्यꣳ सपर्यता यजतं पस्त्यानाम्॥ १ ॥

हे ऋत्विजो (आजुहोता) अग्निका आह्वान करो (हविषा) हवि करकै (मर्जयध्वम्) सुखीकरो (इडः) भूमिकी (पदे) उत्तरवेदी में (होतारम्) देवताओंका आह्वान करनेवाले (गृहपतिम्) गृहरक्षक अग्निको (निदधिध्वम्) पूर्णरूप से स्थापन करो (नमसा) नमस्कार वा हविसे युक्त (रातहव्यम्) दिया है हवि जिसे ऐसे (पस्त्यानाम्) यज्ञगृहों में (यजतम्) पूजनीय अग्निको (सपर्यता) आराधन करो ॥ १ ॥

चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे। अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत्सद्यो महि दूत्यं चरन्॥ २ ॥

(शिशोः) बालरूप (तरुणस्य) तरुण अग्निका (वक्षथः) हवि को पहुँचाना (चित्र इत्) आश्चर्यभूत है (यः) जो उत्पन्न हुआ अग्नि (मातरौ) सबके निर्माता वा सबके माता समान द्यावापृथिवीको वा दोनों अरणियों को (धातवे) स्तन पीनेके लिये (न, अन्वेति) नहीं प्राप्त होता है (यद्) जो (अनूधाः) ऐन रहित यह लोक (अजीजनत्) इस अग्नि को उत्पन्न करै [तब यदि स्तन पीनेको न जाय तो ठीक है, परन्तु सबकी अभिलाषा पूरी करनेवाले द्यावापृथिवी उत्पन्न करते हैं फिर भी यह स्तन पीनेको नहीं जाता, अतः इसका हविर्वहन आश्चर्य है] (अधचित्) उत्पत्तिके अनन्तरही (सद्यः) तत्काल (महि) बड़ेभारी (दूत्यम्) दूतकर्मको (चरन्) करताहुआ (चरन्) देवताओं को हवि पहुँचाता है ॥ २ ॥

इदं त एकं परि ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा

संविशस्व । संवशनस्तन्वे ३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥ ३ ॥

हे मृत प्राणिन्! (ते) तेरी (इदम्) यह अग्नि नामक ज्योति (एकम्) एक अंश है, अतः अपने देहव्यापी अग्निके अंशसे बाहर के अग्निमें मिलजा (ऊ) और (ते) तेरा (एकम्) एक वायु नामक अंश है, उस प्राणवायु नामक अंशसे बाहर के वायुमें मिलजा, शरीर में का अग्नि और प्राणवायु तथा बाहर के अग्नि और वायु एकरूप हैं, इसकारण अंश कहा (तृतीयेन) तीसरे (ज्योतिषा) आदित्य-नामक तेजसे अपने आत्माको (संविशस्व) मिला, क्योंकि—सूर्य-गत चैतन्य और आत्मचैतन्य में कोई भेद नहीं है (तन्वे) फिर शरीर ग्रहण करने के निमित्त (चारुः) कल्याणरूप होकर (प्रियः) उसके साथ प्रीति करता हुआ (देवानाम्) देवताओं के (परमे) उत्तम (जनित्रे) उत्पादक सूर्य में (संवेशनः) भलेप्रकार प्रवेश करने वाला (एधि) हो ॥ ३ ॥

इम ७ͫ स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महे मा मनीषया । भद्रा हि नः प्रमतिरस्य स ७ͫ सद्यग्ने सख्ये मा रिषाम वयं तव ॥४॥

(अर्हते) पूजनीय (जातवेदसे) प्राणिमात्रके ज्ञाता (जातवेदसे) अग्नि के अर्थ हम (मनीषया) तीक्ष्ण बुद्धि से (इमम्) इस (स्तोमम्) स्तोत्रको (रथं, इव) जैसे तक्षा रथका संस्कार करता है तैसे (संमहेम) सम्यक् प्रकारसे पूजित करते हैं (अस्य) इस अग्नि के (संसदि) सम्यक् प्रकार सेवन में (नः) हमारी (प्रमतिः) श्रेष्ठ बुद्धि (भद्रा, हि) निःसन्देह कल्याणमयी और समर्थ होय (अग्ने) हे अग्निदेव (तव, सख्ये) तुम्हारे साथ हमारा मित्रभाव होनेपर हम (मा रिषामः) किसी से कष्ट न पावें अर्थात् आप हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥

मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् । कवि ७ͫ सम्राजमतिथिं जनाना-मासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ ५ ॥

(दिवः) द्युलोक के (मूर्द्धानम्) शिरोभूत (पृथिव्याः) भूमि के (अरतिम्) स्वामी (वैश्वानरम्) सकल पुरुषोंके संबन्धी (ऋतम्) सत्य वा यज्ञके साधन (आ) सृष्टिकी आदि में उत्पन्न हुए (कविम्) भूत विषयों के ज्ञाता (सम्राजम्) भले प्रकार विराजमान (अतिथिम्) यजमानों का हव्य पहुँचाने के निमित्त निरन्तर गमन करने वाले अथवा अतिथिकी समान पूज्य (आसन्) देवताओं के मुखरूप (पात्रम्) रक्षक अथवा मुखरूप से धारण करनेवाले अग्निको (नः) हमारे यज्ञमें (देवाः) ऋत्विजोंने वा देवताओं ने (आजनयन्त) अरणियों में से उत्पन्न किया ॥ ५ ॥

वित्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः । तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिं न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (त्वत्) तुमसे (उक्थेभिः) स्तोत्र, यज्ञ और हविया करके (देवाः) स्तोता अपने मनोरथों का (व्यजनयन्त) नानाप्रकार से उत्पन्न करते हैं (पर्वतस्य) मेघके (पृष्ठात्) ऊपरके भागसे (आपः, न) जलोंको जैसे । और (गिर्ववाहः) स्तुतिरूप वाणियोंके अनुसार चलनेवाले हे अग्ने, स्तुति करने वाले (तम्) तिस प्रसिद्ध (त्वा) तुझको (वाजयन्ति) बलवान् करते हैं अथवा तुमसे अन्न चाहते हैं और तुम्हें (सुष्टतयः) सुन्दर स्तुतिरूप वेदवाणियें (जिग्युः) वशमें करलेती हैं (अश्वाः) घोड़े (आजिं, न) जैसे शीघ्र ही संग्रामको वशमें करलेते हैं ॥ ६ ॥

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रᳬहोतारᳬसत्ययजᳬरोदस्योः । अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ ७ ॥

हे ऋत्विक् और यजमानो ! (अध्वरस्य) यज्ञके (राजानम्) अधिपति (होतारम्) देवताओंका आह्वान करनेवाले (रुद्रम्) शत्रुओंको रुलानेवाले (रोदस्योः) द्यावा पृथिवीके (सत्ययजम्) अन्न के दाता अथवा आनन्दस्वरूप सत्यको प्राप्त करानेवाले (हिरण्यरूपम्) सुवर्णकी समान कान्तिमान् (अग्निम्) अग्निको (वः) तु-

म्हारी (अवसे) रक्षाके लिये (तमयित्नोः) वज्रकी समान (अचित्तात्) मरण से (पुरा) पहिलै ही (आकृणुध्वम्) चारों ओरसे हवियोंके द्वारा आराधन करो ॥ ७ ॥

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन । नरो हव्येभिरीडते सबाध अग्निरग्र मुषसामशोचि ॥ ८ ॥

(राजा) दीप्त (अर्यः) स्वामी वा हवियोंका प्रेरणा करनेवाला (अग्निः) अग्नि (नमोभिः) स्तुतियोंके साथ (समिन्धते) प्रदीप्त होता है (यस्य) जिस अग्निका (प्रतीकम्) रूप (घृतेन, आहुतम्) घृत करकै चारों ओरसे होमा हुआ होता है । और जिसको (नरः) मनुष्य, (सबाधः) बाधाओंको प्राप्त होकर (हव्येभिः) हवियों के साथ (ईडते) स्तुति करते हैं । वह (अग्निः) अग्नि (उषसाम्) उषःकालसे (अग्रम्) पहिले (आ अशोचि) सब ओरसे दीप्त होता है ॥ ८ ॥

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति । दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामु. पस्थे महिषो ववर्द्ध ॥ ९ ॥

(अग्निः) अग्नि (बृहता) बड़े (केतुना) ज्ञान करकै युक्त हो (आ) इस समय (रोदसी) द्यावा पृथिवी को (प्रयाति) प्राप्त होता है और देवताओं को बुलाने के समय (वृषभः) वृषभकी समान (रोरवीति) अत्यन्त शब्द करता है (दिवश्चित्) अन्तरिक्ष लोकके भी (अन्तात्) समीपसे (उपमाम्) मेघके समीप (उदानट्) प्रकाशमय आदित्यरूप होता हुआ ऊपरको फलजाता है (अपाम्) वृष्टिरूप जलों के (उपस्थे) स्थान अन्तरिक्षमें विद्युतरूप से (महिषः) महान् (ववर्द्ध) बढ़ता है ॥ ९ ॥

अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् । दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् १०

(नरः) ऋत्विज् (प्रशस्तम्) अत्यन्त स्तुति किये हुए (दूरेदृ-

सम्) दूर से दीखते हुए (गृहपतिम्) घरों के रक्षक (अथव्युम्) अगम्य (हस्तच्युतम्) हाथों से उत्पन्न हुए अग्निको (दीधितिभिः) अंगुलियों से (जनयत) उत्पन्न करते हैं ॥ १० ॥

इति प्रथमाध्यायस्य सप्तम खण्डः

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् । यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥

(अग्निः) यह अग्नि (जानानाम्) अध्वर्यु आदिकोंकी (समिधा) समिधाओंसे (अबोधि) प्रज्वलित हुआ (धेनुम, इव) अग्निहोत्र की गौके निमित्त जैसे प्रातःकालमें जागाजाता है तैसे(आयतीम्)आतेहुए उषासम्) उषःकालके समय सावधान रहना होता है । और प्रज्वलित हुए अग्निकी (भानवः) लपटें (यह्वा) बड़े (वयाम्) शाखाओंको फैलातेहुए वृक्षोंकी समान (प्रोज्जिहानाः) अपने स्थान को त्यागती हुई (अच्छ) भलेप्रकार (नाकम्) अन्तरिक्ष पर्यन्त (प्रसस्रते) फैलती हैं ॥ १ ॥

प्रभूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमुरं पुरां दर्माणं नयन्तं गीर्भिर्विना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम् ॥ २ ॥

हे स्तुति करनेवाले ! तू (जयन्तम्) असरसेनाको जीतनेवाले (महाम्) बड़े (विपोधाम्) मेधावियोंको धारण करनेवाले (मूरैः) मूढ़ों करकै अधिष्ठित (पुराम्) शरीरोंके (दर्माणम्) आदर के साथ रक्षक (अमुरम्) अमूढ़ अग्निको (प्रभूः) स्तुति करने को समर्थ हो (गीर्भिः) स्तुतियोंसे (वना) आराधना करने योग्य (नयन्तम्) धनोंको प्राप्त करानेवाले (वर्मणा) कवचसमान लपटोंसे युक्त (हरिश्मश्रुं न) हरितवर्णकेशवालेकी समान (धनर्चितम्) प्रसन्न करनेवालाला है स्तोत्र जिसका ऐसे अग्निके निमित्त (धियम्)पूजन क्रिया को (धाः) करो ॥ २ ॥

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी

द्यौरिवासि । विश्वा हि माया अवसि स्वधावन् भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ ३ ॥

(पूषन्) हे पूषा देवता (ते) तुम्हारा (शुक्रम्) शुक्ल वर्ण (अन्यत्) एकदिन होता है, तथा (ते) तुम्हारा (यजतम्) प्रकाश से जानने योग्य स्वयं कृष्णवर्ण (अन्यत्) रात्रिनामक अन्य दिन होता है, इसप्रकार (विषुरूपे) शुक्ल कृष्ण होनेसे नानाप्रकारके (अहनी) दिन, तुम्हारी महिमासे होते हैं । अथवा हे पूषन् ! तुम्हारा एकरूप निर्मल है जो दिन होनेका कारण है और दूसरा एक रूप है जो केवल यजनीय है, प्रकाशक नहीं है, रात्रिका उत्पादक है, इसकारण ही विषुव कहिये विषमरूप दिन और रात होतेहैं, क्योंकि—दिन और रात्रिका कर्त्ता सूर्य ही है (द्यौः इव) आदित्यकी समान प्रकाशक (असि) है (हि) क्योंकि (स्वधावन्) हे अन्नवाले पूषदेव ! (विश्वाः) सकल (मायाः) प्रज्ञाओंको (अवसि) रक्षा करता है, इस कारण तू सूर्यकी समान ही है, ऐसे (ते) तेरा (भद्रा) कल्याणरूप (रातिः) दान (इह) हमारे विषय में (अस्तु) हो ॥ ३ ॥

इडामग्ने पुरुदꣳसꣳ सनिं गोः शश्वत्तमꣳ हवमानाय साध । स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (पुरुदंसम्) बहुत हैं काम जिसकेऐसी (गोः) गौओंकी (सनिम्) देनेवाली (इडाम्) इडानामक गोरूप देवताको (शश्वत्तमम्) निरन्तर (हवमानाय) हवन करतेहुए मुझ यजमान के अर्थ (साध) साधन कर, और (नः) हमारा (सूनुः) पुत्र (तनयः) पौत्र (स्यात्) हो, ऐसी जो (ते) तुम्हारी (सुमतिः) सुन्दर बुद्धि है वह (विजावा) सफल (अस्मे) हमारी (भूतु) हो ॥ ४ ॥

प्रहोता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्त्ते । दधद्यो धायी सु ते वयाꣳसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥ ५ ॥

(यः) जो (नृषद्मा) होताओं के समीपस्थानवाला अग्नि (अपाम्) अन्तरिक्ष के (विवर्त्ते) प्रदेश में विद्युतरूप से स्थित हुआ, वह

इस समय (होता) यजमान के होमको सुसिद्ध करनेवाला (जातः) हुआ है (महान्) गुणों से पूजनीय (नभोवित्) अन्तरिक्षका ज्ञाता (प्रसीदत्) वेदी में प्रसन्न होता है वह (दधत्) हवियोंको धारण करता हुआ (सुधायी) वेदीमें सम्यक् प्रकार से स्थापन कियागया। हे स्तोतः ! वह अग्नि (विधते) उपासना करते हुए (ते) तेरे अथ (वयांसि) अन्नोंको (वसूनि) धनोंको (यन्ता) प्रेरणा करनेवाला (तनूपाः) शरीरका रक्षा करने वाला [भवतु] हो ॥ ५ ॥

प्रसम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुꣳसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य । इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ॥ ६ ॥

(असुरस्य) बलवान् (पुंसः) वीरके (कृष्टीनाम्) मनुष्यों के (अनुमाद्यस्य) स्तुतियोग्य (तवसः) बलवान् (इन्द्रस्य इव) इन्द्र की समान उस अग्नि के (प्रशस्तम्) उत्तम (सम्राजम्) भले प्रकार विराजमान स्वरूपको [प्रस्तौतु] स्तुति करो (वन्दद्वारा) स्तुति आदि (वन्दमाना) सबके बखाने हुए कर्मोंको (प्रविवष्टु) अधिकता से चाहो ॥ ६ ॥

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भइवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः । दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥ ७ ॥

(जातवेदाः) सब विषयोंके ज्ञानवाला (अग्निः) अग्नि (गर्भिणीभिः) गर्भिणिया करके (सुभृतः) भले प्रकार धारण कियाहुआ (गर्भ इव इत्) गर्भ जैसे, तिसी प्रकार (अरण्योः) अरणियों में (निहितः) देवताओंने यज्ञके निमित्त स्थापन किया, वह अग्नि (हविष्मद्भिः) हविको लियेहुए (जागृवद्भिः) कर्मानुष्ठानमें सावधान (मनुष्येभिः) हम मनुष्यों करके (दिवे दिवे) प्रतिदिन (ईड्यः) स्तुतिरूप वाणियोंसे स्तुति करने योग्य है ॥ ७ ॥

सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षाꣳसि पृतनासु जिग्युः । अनु दह सहमूरान्कयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ ८ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (सनात्) चिरकालसे (यातुधानान्) राक्षसोंको (मृणसि) बाधा देते हो, तो भी (त्वा) तुमको (पृतनासु) संग्रामोंमें (रक्षांसि) राक्षस (न जिग्युः) नहीं जीत सके, वह तुम इस समय (अनु) क्रमसे (सहमूरान्) मारक व्यापाररूप मूल सहित (क्रव्यादः) मांसभक्षी राक्षसोंको (दह) तेजसे भस्म करो (ते) तुम्हारी (दैव्यायाः) दिव्य (हेत्याः) लपटरूप आयुध से (मा मुक्षत) न छूटें ॥ ८ ॥

प्रथमाध्यायस्य अष्टम खण्डः समाप्तः ४-१-२

अग्न ओजिष्ठमाभर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (ओजिष्ठम) परम बलवान् (द्युम्नम्) कटक कुण्डलादि रूपसे सर्वत्र प्रकाशयान् धन (अस्मभ्यम्) हमें (आभर) लाकर दीजिये (अध्रिगो) नहीं रुकती है गति जिसकी ऐसे हे अग्ने (पनीयसे) स्तुतियोग्य (राये) धन करके (नः) हमें (प्र) प्रकर्ष करके युक्त करो (वाजाय) अन्नके लिये (पन्थाम्) मार्गको (रत्सि) दो ॥ १ ॥

यदि वीरो अनुष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः ।
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् २

(यदि) जब, मनुष्यके (वीरः) पुत्र (स्यात्) होय तब वह (मर्त्यः) मनुष्य (अग्निम्) अग्निको (इन्धीत) प्रदीप्त करे (अनु) फिर (आनुषक्) अविच्छिन्न (हव्यम्) हविको (आजुह्वत्) अभिमुख होकर होमें (दैव्यम्) दिव्य (शर्म) सुखको (भक्षीत) भोगे ॥ २ ॥

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥३॥

हे अग्ने ! (त्वेषः) प्रज्वलित हुए (ते) तुम्हारा (शुक्रः) निर्मल श्वेतवर्ण (धूमः) धुआँ (दिवि) अन्तरिक्ष में (आततः) फैलता हुआ (ऋण्वति) मेघरूपसे परिणत होजाता है और (पावक) हे शोधक अग्ने ! (सूरः, न) सूर्यकी समान (कृपा) अभिमुख करसकनेवाली स्तुतिसे प्रशंसा किये हुए तुम (द्युता) दीप्तिसे (हि) निश्चय (रोचसे) प्रकाशित होते हो ॥ ३ ॥

त्व ७ँ हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! (हि) निश्चय (त्वम्) तू (क्षैतवत्) सूखते हुए काठ सहित (यशः) अन्नको (मित्रः न) दिनके अभिमानी मित्र देवता की समान (पत्यसे) प्राप्त होता है, इसकारण (विचर्षणे) सबके द्रष्टा ! (वसो) हे व्यापक अग्ने (त्वम्) तू (श्रवः) यजमानकेघर अन्नको (पुष्टिं, न) पुष्टिको भी (पुष्यसि) बढ़ाता है ॥ ४ ॥

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।
विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्त्तास इन्धते ॥ ५ ॥

(पुरुप्रियः) बहुतोंका प्रिय (विशः) यजमानों के घर धन स्थापन करनेवाला (अतिथिः) यजमानों के घर सदा जानेवाला (अग्निः) अग्नि (प्रातः) प्रातःकाल के समय (स्तवेत) स्तुति किया जाता है (अमर्त्ये) अमरणधर्मी (यस्मिन्) जिस अग्नि में (विश्वे) सब (मर्त्तासः) मनुष्य (हव्यम्) हव्यको (इन्धते) स्थापन करतेहै ५

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥ ६ ॥

(वाहिष्ठम्) अधिकता से पहुँचाने वाला (यत्) जो स्तोत्र है (तत्) वह (अग्नये) अग्निके अर्थ कियाजाता है, इसकारण(विभावसो) हे प्रभारूप धनवाले अग्ने (बृहत्) बहुतसा धन और अन्न (अर्च) हमें दीजिये, क्योंकि (त्वत्) तुमसे (महिषी) बहुत से (रयिः) धनको (उदीरते) पाते हैं ॥ ६ ॥

विशो विशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ ७ ॥

हे ऋत्विज और यजमानो ! (वः) तुम (वाजयन्तः) अन्नकी इच्छा करते हुए (विशोविशः) सब प्रजाके (पुरुप्रियम्) अधिक प्रिय (अतिथिम्) पूज्य (अग्निम्) अग्निको, स्तुति से आराधन करो, मैं भी (वः) तुम्हारे निमित्त (दुर्यम्) घरके हितकारी अग्नि को (शूषस्य) सुखके लाभार्थ (मन्मभिः) मनन करने योग्य स्तोत्ररूप (वचः) वाणियोंसे (स्तुषे) स्तुति करता हूँ ॥ ७ ॥

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तये मर्त्तासो दधिरे पुरः ॥८॥

यज्ञ में (भानवे) दीप्तिमान् (अग्नये) अग्निके अर्थ (बृहत्) बड़ा (वयः) हविरूप अन्न दिया जाता है (हि) इस कारण तुम भी (देवाय) प्रकाशवान् अग्नि के अर्थ (अर्च) दो (मर्त्तासः) मनुष्य (यम्) जिस अग्निको (मित्रं न) मित्रकी समान (प्रशस्तये) श्रेष्ठ स्तुतिके लिये (पुरः दधिरे) सत्कार करते हैं ॥ ८ ॥

अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यते ॥ ९ ॥

(वृत्रहन्तमम्) पापोंके अतिशय नाशक (ज्येष्ठम्) प्रशंसनीय (आनवम्) मनुष्यों के हितकारी (अग्निम्) अग्निको (अगन्म) हम प्राप्त हुए (यः) जो अग्नि ((आर्क्षे) ऋक्षपुत्र (श्रुतर्वन्) श्रुतर्वन् के निमित्त (बृहत्) महान् (अनीकः) ज्वाला समूह रूप होकर (इध्यतेस्म) प्रज्वलित किया गया ॥ ९ ॥

जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः ।
पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (परेण) उत्तम (धर्मणा) आधान आदि कर्म करके (जातः) प्रकट हुएहो (यत्) जो (सवृद्भिः) ऋत्विजों के साथ (अभुवः) भूमि संबंधी यज्ञमें रहना है (यत्) जिस अग्निका (कश्यपः) कश्यप (पिता) पिता (श्रद्धा) श्रद्धादेवी (माता) माता (मनुः) मनु (कविः) स्तोता हुआ ॥ १० ॥

सोमꣳ राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
आदित्यं विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्

(राजानम्) ईश्वर (सोमम्) सोमको (वरुणम्) वरुण को (अग्निम्) अग्निको (आदित्यम्) अदिति के पुत्र (विष्णम्) विष्णु को, (सूर्यम्) सूर्यको (ब्रह्माणम्) ब्रह्माको (च) और (बृहस्पतिम्) बृहस्पति को (अन्वारभामहे) रक्षाके लिये आह्वान करते हैं ॥ ११ ॥

इत एत उदारुहन् दिवः पृष्ठान्यारुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथोद्यामङ्गिरसो ययुः ॥ २ ॥

(एते) यह (भूर्जयः) हवियों वाले (आङ्गिरसः) आङ्गिरस (यथा) जैसे (उत्) मार्ग करके (द्याम्) द्युलोकको (प्रययुः) प्राप्त हुए, जैसे कि (पथा) मार्गके द्वारा मनुष्य ग्राम आदिको जाते हैं तैसे ही (इतः) भूमिसे (उदारुहन्) ऊपरको गए और आकर (दिवः) स्वर्ग के (पृष्ठानि) स्थानोंपर (आरुहन्) चढ़े ॥ २ ॥

राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।
ईडिष्वा हि महे वृषं द्यावा होत्राय पृथिवी ३

(अग्ने) हे अग्निदेव (त्वा) तुम्हें (महे) बहुतसे (राये) धन-दान के लिये (समिधीमहि) भले प्रकार से प्रदीप्त करते हैं (वृषन्) वरदानों की वर्षा करनेवाले अग्ने ! (महते) बड़े (होत्राय) हवन-रूप अग्निहोत्रके लिये (द्यावा, पृथिवी) द्यावापृथिवीयोंका (ईडिष्वा) स्तुति करो ॥ ३ ॥

दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्मेति वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ॥ ४ ॥

(वा) अथवा (ईम) इस यज्ञको (अनु) लक्ष्य करके (दधन्वे) अध्वर्यु आदि (ब्रह्म) स्तोत्रको (अनुवोचत्) उच्चारण करते हैं (तत्) उस सबको (वेः, उ) जानता ही है । यह अग्नि (विश्वानि) सब (काव्याः) बुद्धिमान् ऋत्विजों के सकल कर्मोंको (नेमिः) नेमि (चक्रमिव) पहियेको जैसे वश में करे रहता है तैसे (पर्यभुवत्) अपने वशमें रखता है ॥ ४ ॥

प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि ।
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्ज वीर्यम् ॥ ५ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (हरसा) अपने तेजसे वा क्रोध से (यातुधानस्य) राक्षसके (हरः) हरणशील (बलम्) बलको (विश्वतः) सब ओरसे (परि) फैले हुएको (प्रतिशृणाहि) नष्टकरो (रक्षसः) राक्षसके (वीर्यम्) पराक्रमको (न्युब्ज) विशेषरूपसे तोड़दो ॥ ५ ॥

त्वमग्ने वसूꣳरिह रुद्राꣳ आदित्याꣳ उत ।
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (त्वम्) तुम (इह) इस कर्ममें (वसून्) वसुओंको (रुद्रान्) रुद्रोंको (आदित्यान्) आदित्योंको (उत्) और (स्वध्वरम्) शोभनयागयुक्त (मनुजातम) प्रजापति से उत्पन्न किये हुए (घृतप्रुषम्) जलको सींचनेवाले (जनम्) अन्य देवताको (यज) यजन करो ॥ ६ ॥

पुरु त्वा दाशिवाꣳ वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (महस्य) बड़े (तोदस्य) शिक्षकस्वामीके (शरणआ) दासकी समान (तव स्विदा) तुम्हाराही (अरिः) सेवक मैं (त्वा) तबसे (पुरु) बहुतसे (दाशिवान्) पुत्र धन आदि वरदानोंको (वोचे) कहताहूँ ॥ १ ॥

प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
विपां ज्योतीꣳषि बिभ्रते न वेधसे ॥ २ ॥

यजमान होता आदि से कहताहै, कि-हे होता आदिकों ! (विपाम्) अध्वर्यु आदि विप्रोंके (ज्योतींषि) सत्कर्मोंके अनुष्ठानसे प्राप्त हुए तेजों को (बिभ्रते) निश्चितरूपसे करनेवाले (वेधसे) जगत्के विधाता (होत्रे) देवताओंका आह्वान करनेवाले (अग्नये) अग्निके अर्थ (बृहत्) बड़े (पूर्व्यम्) पुरातन (वचः) स्तोत्रको (प्रभरता) संपादन करो २

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३ ॥

(सहसायहो) बलके पुत्र (अग्ने) हे अग्ने (गोमतः) अनेकों गौओंसे युक्त (वाजस्य) अन्नके (ईशानः) ईश्वर तुम हो, इसकारण (जातवेदः) प्राणिमात्रके अन्तर्यामी अग्ने ! (अस्मे) हमें (महि) बहुतसा (श्रवः) अन्न (देहि) दो ॥ ३ ॥

अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवां देवयते यज ।
होता मन्द्रो विराजस्यति स्रिधः ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (यजिष्ठः) विशेषरूपसे यजन करनेवाला तू (अध्वरे) यज्ञमें (देवयते) अपने कर्ममें देवताओंको चाहनेवाले यजमानके निमित्त (देवान्, यज) देवताओंका यजन करो (होता) देवताओंका आह्वान करनेवाले (मन्द्रः) यजमानको आनन्द देनेवाले तुम (स्रिधः) शत्रुओंको (अति) अतिक्रमण करके (विराजसि) विशेषरूपसे शोभायमान होते हो ॥ ४ ॥

जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये।

अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥ ५ ॥

(ध्रुवः) स्थिर (अयम्) यह अग्नि (रयीणाम) धनोंका (आचिकेतत्) अनुशासन करना जानता है (सप्त) सात (मातृभि) अपनेमें हवि डालनेवाली जिह्वाओं करकै (सह) सहित (जज्ञानः) प्रकट हुआ है, ऐसा यह अग्नि (मेधाम्) कर्मके विधाता सोमको (श्रिये) सेवाके निमित्त (आशासते) अनुशासन करता है ॥ ५ ॥

उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्या गमत् ।

सा शन्ताता मयस्करदप स्रिधः ॥ ६ ॥

(उत) और (स्या) वह पूर्वोक्त (मतिः) स्तुति करने योग्य (अदितिः) अदिति (ऊत्या) रक्षासहित (दिवा) दिनमें (नः) हमैं (आगमत्) प्राप्त हो और आकर (शन्ताता) शान्ति करनेवाले (मयः) सुखको (सा) वह अदिति (करत) करैं (स्रिधः) शत्रुओंको (अप) दूरकरै ६

ईडिष्वा हि प्रतीव्या३ यजस्व जातवेदसम् ।

चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥ ७ ॥

(प्रतीव्य) शत्रुओंमें प्रतिकूलभावसे जानेवाले अग्निको (हि) ही (यजस्व) स्तुति करो (चरिष्णुधूमम्) सर्वत्र विचरता है धुआं जिसका ऐसे (अगृभीतशोचिषम्) जिसकी दीप्तिको राक्षस नहीं पकड़सकते ऐसे (जातवेदसम्) सकल प्राणियोंके ज्ञाता अग्निको (यजस्व) हवियोंसे पूजो ॥ ७ ॥

न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः ।

यो अग्ने ददाश हव्यदातये ॥ ८ ॥

(मर्त्यः) मनुष्य (रिपुः) शत्रु (मायया चन) माया करके भी (तस्य) तिसका (न ईशीत) ईश्वर नहीं बनसकता कि (यः) जो (हव्यदातये) हवियोंको ग्रहण करनेमें समर्थ (अग्नये) अग्निके अर्थ (ददाश) हवि देता है ॥ ८ ॥

अप त्यं वृजिनꣳ रिपुꣳ स्तेनमग्ने दुराध्यम् द्रविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ ९ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (त्यम्) उस प्रसिद्ध (वृजिनम्) कुटिल (रिपुम्) पापकारी (दुराध्यम्) खोटे अभिप्रायवाले (स्तेनम्) हिंसकको (द्रविष्ठम्) बहुत दूर (अपास्य) फेंको । (सत्पते) हे सज्जनोंके पालक अग्ने ! हमारे (सुगम) सुगमतासे पाने योग्य सुख को (कृधि) करो ॥ ९ ॥

श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते । नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ॥ १० ॥

(वीर) हे शत्रुओंके विनाशक ! (विश्पते) हे यजमानों के पालक अग्ने ! (नवस्य) इस समय कियेजानेके कारण नवीन (मे) मेरे (स्तोमस्य) स्तोत्रादिको (श्रुष्टी) सुनकर (मायिनः) मायावी (रक्षसः) कर्ममें विघ्नकरनेवाले राक्षसोंको (तपसा) ताप देनेवाले तेजसे (निदह) अत्यन्त भस्म करिये ॥ १० ॥

प्र मꣳहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥

(उपस्तुतासः) हे उपस्तोताओं ! तुम (मंहिष्ठाय) परम दाता (ऋताव्ने) यज्ञवाले वा सत्यवाले (बृहते) महान् (शुक्रशोचिषे) दीप्ततेजवाले (अग्नये) अग्निके अर्थ (प्रगायत) स्तोत्र पढो ॥ १ ॥

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः । यस्य त्वꣳ सख्यमाविथ ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वम्) तू (यस्य) जिस यजमानके (सख्यम्) मित्रभावको (आविथ) प्राप्त होताहै (सः) वह यजमान (तव) तेरी (सुवीराभिः) श्रेष्ठ पुत्रादिवाली (वाजकर्मभिः) अन्न और बलोंकी रक्षा करनेवाली (ऊतिभिः) रक्षाओंसे (प्रतरति) बढ़ताहै

तं गर्द्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दध-न्विरे। देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ ३ ॥

हे स्तोतः! (स्वर्णम्) स्वर्ग में देवताओं को हवि पहुँचाने वाले (तम्) तिस अग्निको (गर्द्धया) स्तुति कर (देवासः) ऋत्विज (देवम्) दानादि गुणयुक्त (अरतिम्) जिस इष्टदेवको (दधन्विरे) स्तुति आदि से उपासना करते हैं और उस अग्निके द्वारा (देवत्रा) देवताओंको (हव्यम्) हवि (आ ऊहिषे) पहुँचादेते हैं ॥ ३ ॥

मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्र-शस्त एषः। यः सुहोता स्वध्वरः ॥ ४ ॥

हे ऋत्विजों के स्वामिन्! (नः) हमारे यज्ञमें से (अतिथिम्) अतिथिकी समान प्यारे अग्निको (मा हृणीथाः) मत दूर करो (यः) जो (अग्निः) अग्नि (सुहोता) उत्तमतासे देवताओं का आह्वान करनेवाला (स्वध्वरः) सुन्दर यज्ञवाला होता है (एषः) यह (पुरुप्रशस्तः) अनेकोंसे स्तुति किया हुआ (वसुः) बसानेवाला होता है ॥ ४ ॥

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः। भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ५ ॥

(आहुतः) हवियों से तृप्त किया हुआ (अग्निः) अग्नि (नः) हमारा (भद्रः) कल्याणरूप हो (सुभग) हे सुन्दर धन वाले! हमें (भद्रा) कल्याणरूप (रातिः) दान प्राप्त हो (भद्रः) कल्याणकारी (अध्वरः) यज्ञ प्राप्त हो (उत) और (भद्राः) कल्याणरूप (प्रशस्तयः) स्तुतियें प्राप्त हों ॥ ५ ॥

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारमम-र्त्यम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ६ ॥

हे अग्ने! (यजिष्ठम्) श्रेष्ठ यष्टा (देवत्रा) देवताओंमें (देवम्) अधिकतासे दान करनेवाले (होतारम्) देवताओंको बुलानेवाले (अमर्त्यम्) अविनाशी (अस्य) इस (यज्ञस्य) यज्ञके (सुक्रतुम्) श्रेष्ठ कर्त्ता (त्वा) तुझे (ववृमहे) भजते हैं ॥ ६ ॥

यदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासाहा सदने कं चिदत्रिणम्। मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥ ७ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (तत्) उस (द्युम्नम्) यशको (आभर) हमें दो कि (यत्) जब (आसदने) यज्ञमण्डपमें वर्त्तमान (कञ्चित्) किसी भी (अत्रिणम्) भक्षण करनेवाले राक्षसादिको (सासाहा) अत्यन्त तिरस्कारयुक्तकरो तथा (दूढ्यम्) पापबुद्धि शत्रुको (जनस्य) जनके (मन्युम्) क्रोधको भी तिरस्कारयुक्त करो ॥ ७ ॥

यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥ ८ ॥

(विश्पति) यजमानोका पालन करनेवाला (शितः) हवियोंसे तीक्ष्ण कियाहुआ (अग्निः) अग्नि (सुप्रीतः) भलेप्रकार प्रसन्न हुआ (मनुषः) मनुष्यके (विशे) घर जब होता है तब (अग्निः) अग्नि (विश्वा इत्) उसको पीड़ा देनेवाले सब ही (रक्षांसि) राक्षसोंको (प्रतिसिसेधति) नष्ट करदेताहै (उ) यह बात प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥

प्रथमाध्यायस्य द्वादश खण्ड समाप्तः

(अथ ऐन्द्रं पर्व

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥ ४-१-२५

हे स्तोताओं ! (वः) तुम (सुते) सोमके अभिषुत होनेपर (पुरुहूताय) बहुतसे यजमानोसे आह्वान कियेहुए (सत्वने) शत्रुओं को घटानेवाले अथवा धनोंके देनेवाले इन्द्रके अर्थ (तत्) स्तोत्रको(सचा) इकट्ठे होकर (गाय) गान करो (यत्) जो स्तोत्र (शाकिने) शक्तिमान् इन्द्रको (गवे न) गौको भुसकी समान (शम्) सुखदायक होता है ॥ १ ॥

यस्ते नूनछं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः । तेन नूनं मदे मदेः ॥ २ ॥

(शतक्रतो) सैंकड़ों प्रकारका ज्ञान रखनेवाले हे इन्द्र ! (द्युम्नितमः) परमयशस्वी (यः) जो (मदः) सोम (नूनम्) निश्चय पहिले ही (ते) तुम्हारे लिये हमने अभिषुत किया है (तेन) उस हमारे

दिये हुए सोमसे (नूनम्) इस समय (मदे) उसके पीनेसे आपको प्रसन्नता होनेपर हमें भी (मदेः) धन आदि देकर आप हाषत कीजिये॥

गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ ३ ॥

(गावः) हे गौओं ! तुम (अवटे) महावीर के प्रति (उपवद) प्राप्त हूजिये (यज्ञस्य) धर्मयाग के साधनभूत (रप्सुदाः) मन्त्रके द्वारा दुहने योग्य गौ और बकरियोंके दूध (मही) बहुतसे आवश्यक हैं, और इस महावीर के (उभा) कर्णस्थानीय दो रुक्म (हिरण्यया) सुवर्ण और रजतके हैं ॥ ३ ॥

अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे ।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥

यज्ञकर्त्ता अपनेसे कहै कि-(श्रुतकक्ष)हे वेद प्रिय आत्मन् (अश्वाय) इन्द्रके दिये हुए अश्वके निमित्त (अरम्) पूर्णरूपसे (गवे) गौओंके निमित्त (अरम्) पूर्णरूपसे (इन्द्रस्य) इन्द्रसंबंधी (धाम्ने) गृहकी प्राप्ति केनिमित्त (अरम्) पूर्णरूपसे (गायत) वैदिकस्तुतिका गानकर ॥४॥

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ५ ॥

यजमान कहते हैं, कि—(तम्) उस (महे) बड़े (वृत्राय हन्तवे) जलोंको रोकनेवाले वृत्रासुरके नाशक (इन्द्रम्) इन्द्रको (वाजयामसि) बलवान् करते है (वृषा) धनोंका दाता (सः) वह इन्द्र (वृषभः) हमैं धन देनेवाला (भुवत्) होय ॥ ५ ॥

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।
त्व ँ सन् वृषन् वृषेदसि ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वम्) तू (सहसः) दूसरोंका तिरस्कार करने वाले (बलात्) बलसे (ओजसः) हृदयमें के धैर्यसे (अधिजातः) प्रसिद्ध हुआ है (वृषन्) हे वरदानोंकी वर्षा करनेवाले (सन्) श्रेष्ठ (त्वम्) तू (वृषा--इत्--असि) इच्छित फलोंकी वर्षा करनेवालाहै ६

यज्ञ इन्द्रमवर्द्धयद्यद्भूमिं व्यवर्त्तयत् ।

चक्राण ओपशं दिवि ॥ ७ ॥

(यज्ञः) यजमानोंके कियेहुए यज्ञने (इन्द्रम्) इन्द्रदेवताको (अवर्द्धयत्) बढ़ाया, (यत्) क्योंकि (दिवि) अन्तरिक्षमें मेघको (ओपशम्) फैलःहुआ (चक्राणः) करतेहुए उस इन्द्रने (भूमिम्) पृथिवीको (व्यवर्त्तयत्) वर्षा आदिके द्वारा बढ़ाया ॥ ७ ॥

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (यथा) जैसे (त्वम्) तू (एक इत्) अकेलाही (वस्वः) धनका स्वामी है, ऐसेही (अहम्) मैं (यत्) जो (ईशीय) ऐश्वर्ययुक्त होऊँ तो (मे) मेरा (स्तोता) स्तोता (गोसखा) गौओं सहित (स्यात्) हो ॥ ८ ॥

पन्यं पन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय ।
सोमं वीराय शूराय ॥ ९ ॥

(सोतारः) हे सोमका रस निकालनेवाले अध्वर्युओ ! (मद्याय) प्रसन्न करनेयोग्य (वीराय) पराक्रमी (शूराय) शूर इन्द्रके अर्थ (पन्यं पन्यं इत्) सर्वत्र प्रशंसाके योग्य (सोमम्) सोमको (आ धावत) अर्पण करो ॥ ९ ॥

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
अनाभयिन् ररिमा ते ॥ १० ॥

(वसो) हे अन्तर्यामिन् इन्द्र ! (इदम्) इस वर्त्तमान (सुतम्) अभिषव कियेहुए (अन्धः) सोमरूप अन्नको (पिबा) पियो, जिससे कि (उदरम्) तुम्हारा पेट (सुपूर्णम्) सम्यक् पूर्ण हो (अनाभयिन्) हे सब ओरसे निर्भय इन्द्र ! (ते) तुम्हारे अर्थ (ररिमा) वह सोम अर्पण करते हैं ॥ १० ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥

(सूर्य) हे सूर्यस्वरूप श्रेष्ठ वीर इन्द्र (श्रुतामघम्) जिसका धन सर्वदा देनयोग्य प्रसिद्ध है, इसीसे (वृषभम्) याचकोंके निमित्त धनकी वर्षा करनेवाले (नर्यापसम्) मनुष्योंका हितकारी कर्म करने वाले (अस्तारम्) उदारस्वभाव (इदम्) ऐसे अपने प्रभावको तुम (उदेषि) चारों ओरसे प्रकाशित करते हो (च) यह प्रसिद्ध है ॥१॥

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभिसूर्य ।

सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ २ ॥

(वृत्रहन्) हे जलोंको रोकनेवाले मेघके नाशक (सूर्य) हे सूर्यरूप इंद्र (अद्य) आजके दिन जो कुछ पदार्थ समूह (अभि) उन्नतदशामें (उदगाः) प्रकाशित किया है (इन्द्र) हे इन्द्र (तत्) वह (सर्वम्) सब (ते) तेरे (वशे) वशमें है ॥ २ ॥

य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् ।

इन्द्रः स वो युवा सखा ॥ ३ ॥

(यः) जो इन्द्र (तुर्वशम्) तुर्वशको (यदुम्) यदुको शत्रुओंके द्वारा दूर फेंके जानेपर (सुनीती) श्रेष्ठ नीतिके द्वारा (परावतः) जिस दूर देशसे (आनयत्) लौटालाया (युवा) तरुण (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (सखा) मित्र हो ॥ ३ ॥

मा न इंद्राभ्या३ दिशः सूरो अक्तुष्वा यमत् ।

त्वा युजा वनेम तत् ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (आदिशः) चारों ओरसे शस्त्र बरसाने वाला (सूरः) सर्वत्र विचरनेवाला राक्षस (अक्तुषु) रात्रियोंमें (नः) हमारे (मा अभ्यागमयत) अभिमुख होकर न आसके । और आ-जाय तो (तत्) उस राक्षसको हम (त्वायुजा) तेरी सहायतासे (वनेम) नष्ट करें ॥ ४ ॥

एन्द्र सानसिꣳ रयिꣳ सजित्वानꣳ सदासहम् ।

वर्षिष्ठमूतये भरा ॥ ५ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ऊतये) हमारी रक्षाके लिये (सानसिम्) सम्यक् प्रकार भोगने योग्य (सजित्वानम्) समानशत्रुओंपर विजय

खिलानेवाले (सदासहम्) सदा शत्रुओंका तिरस्कार करनेके साधन (वर्षिष्ठम्) बहुतसे (रयिम्) धनको (आभर) दीजिये ॥ ५ ॥

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे ।
युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ६ ॥

(वयम्) हम (अर्भे) थोड़ासा धन होनेपर (इन्द्रम्) इन्द्रको (महाधने) बहुतसे धनके निमित्त (युजम्) सहायक (वृत्रेषु) धनलाभमें विघ्न डालनेवालोंको निवारण करनेके लिये (वज्रिणम्) वज्रधारी (इन्द्रम्) इन्द्रको (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥ ६ ॥

अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे ।
तत्राददिष्ट पौंस्यम् ॥ ७ ॥

(इन्द्रः) इन्द्र (कद्रुवः) कद्रुके (सुतम्) निकालेहुए सोमरसको (अपिबत्) पीताहुआ (सहस्रबाह्वम्) सहस्रबाहुको [अहनत्] नष्ट करता हुआ (तत्र) उससमय (पौंस्यम्) इन्द्रकी वीरता (आददिष्ट) प्रकाशित हुई ॥ ७ ॥

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् ।
विद्धी त्वाऽस्य नो वसो ॥ ८ ॥

(वृषन्) हे मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (इन्द्र) इन्द्र (त्वायवः) तेरी कामना करनेवाले हम तुझको (अभि प्र नोनुमः) अभिमुख होकर बहुत २ प्रणाम करते हैं (वसो) हे व्यापक इन्द्र (अस्य) इस (नः) हमारे स्तोत्रको (विद्धी) समझ लीजिये ॥ ८ ॥

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ९ ॥

(ये) जो (आ घा) निश्चय अभिमुख होकर (अग्निम्) अग्नि को (इन्धते) दीप्त करते हैं (येषाम्) जिनका (युवा) सदा तरुण (इन्द्रः) इन्द्र (सखा) मित्र होता है वह (आनुषक्) क्रमसे (बर्हिः) कुशाओंको (स्तृणन्ति) आच्छादन करते हैं ॥ ९ ॥

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १० ॥

हे इन्द्र (विश्वाः) सम्पूर्ण (द्विषः) द्वेष करनेवाली शत्रुसेनाओं को (अप भिन्धि) विदीर्ण करो (बाधः) नाश करनेवाले (मृधः) संग्रामोंको (परिजही) नष्ट करो, तदनन्तर उनके (स्पार्हम्) स्पृह करने योग्य (तत्) उस प्रसिद्ध (वसु) धनको (आभर) हमें लाकर दो ॥ १० ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः

इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् ।
नियामं चित्रमृञ्जते ॥ १ ॥ २-३-१२

(एषाम्) इन मरुतोंके (हस्तेषु) हाथोंमें स्थित (कशाः) अपने २ वाहनोंको ताडन करनेके कोड़े (यद् वदान्) जो ध्वनि करते हैं उस ध्वनिको (इहेव) यहाँ ही स्थित होकर (शृण्वे) सुनता हूँ, वह ध्वनि (यामम्) संग्राम में (चित्रम्) नानाप्रकारकी शूरताको (मृञ्जते) अत्यन्त शोभित करता है ॥ १ ॥

इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः
पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (सोमिनः) सोमरस लियेहुए (सखायः, इमे, उ) निःसन्देह यह हमारे पुरुष (पुष्टावन्तः) पाशधारी (पशुंयथा) जैसे पशु की ओरको देखा करते हैं तैसे ही एकाग्र चित्त होकर (त्वा) तुम्हें (विचक्षते) विशेषरूपसे देखरहे हैं ॥ २ ॥

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ३ ॥

(विशः) बैठतीहुई (विश्वाः) सब (कृष्टयः) प्रजाएं (अस्य) इस इन्द्रके (मन्यवे) क्रोधके निमित्त वा मननके साधन स्तोत्रके निमित्त (समुद्राय, सिन्धवः, इव) जैसे समुद्रकी ओरको बहनेवाली नदियें स्वयं ही झुकती चलीजाती हैं, तैसे ही (संनमन्त) भलेप्रकारसे आप ही नमती चलीजाती हैं ॥ ३ ॥

देवानामिद्वो महत् तदा वृणीमहे वयम् ।
वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥ ४ ॥

हे देवताओ (देवानाम्) सब ओरसे अपने तेजके द्वारा दीप्यमान आपका (इत्) ही (महत्) पूजनीय (अवः) पालन है (वृष्णाम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले आपके निजधनरूप (तत्) उस पालनको (वयम्) हम यजमान (अस्मभ्यम् ऊतये) अपनी रक्षाके लिये (आ वृणीमहे) चारों ओरसे प्रार्थना करते हैं ॥ ४॥

सोमानाᳬं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।

कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ ५ ॥

(ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्मणस्पति देव ! तुम (सोमानाम्) सोमका रस निकालनेवाले मुझ अनुष्ठाताको (कक्षीवन्तम्) जैसे कि कक्षीवान् देवताओंमें प्रधान है (यः) जो कक्षीवान् (औशिजः) उशिजका पुत्र है उसकी समान ही मुझे (स्वरणम्) देवताओंमें प्रकाशवाला (कृणुहि) करिये ॥ ५ ॥

बोधन्मना यदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः ।

शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ ६ ॥

(वृत्रहा) वृत्रासुरका नाशक (भूर्यासुतिः) जिसके निमित्त बहुत से देशोंमें सोमका रस निकालाजाता है ऐसा (नः) हमारे (बोधन्मनाः) सर्वदा मनोरथोंको जाननेवाला (इद्) ही (अस्तु) होय (शक्रः) संग्राममें शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ वह इन्द्र (आशिषम्) हमारी स्तुतिको (शृणोतु) सुने ॥ ६ ॥

अद्य नो देव सवितः प्रजावत्सावीःसौभगम् ।

परा दुःष्वप्न्यᳬं सुव ॥ ७ ॥

(सवितः देव) हे सूर्यदेव (नः) हमें (अद्य) इस यज्ञके दिन आज (प्रजावत्) पुत्रादि सहित (सौभगम्) धन (सावीः) दीजिये (दुःस्वप्न्यम्) खोटे स्वप्नकी समान दुःखदायक दारिद्र्यको (परासुव) दूरकरो

क्वा३स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः ।

ब्रह्मा कस्तᳬं सपर्यति ॥ ८ ॥

(सः) वह (वृषभः) मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला (युवा) नित्य तरुण (तुविग्रीवः) बढ़ीहुई ग्रीवावाला (अनानतः) कभी भी किसी

को न नमनेवाला इन्द्र (क) कहां है इस बातको कौन जानता है ? (कः) कौन (ब्रह्मा) स्तोता (तम्) उस इन्द्रको (सपर्यति) पूजता है ॥ ८ ॥

उपह्वरे गिरीणाᳬ सङ्गमे च नदीनाम् । धियो विप्रो अजायत ॥ ९ ॥

(गिरीणाम्) पर्वतोंके (उपह्वरे) प्रदेशमें (च) और (नदीनाम) नदियोंके (सङ्गमे) सङ्गम पर (धिया) की हुई स्तुतिसे (विप्रः) मेधावी इन्द्र (अजायत) स्तुतिके सुननेको प्रकट होताहै ॥ ९ ॥

प्रसम्राजं चर्षणीनामिन्द्रᳬस्तोता नव्यं गीर्भि नरं नृषाहं मꣳहिष्ठम् ॥ १० ॥

(चर्षणीनाम्) मनुष्योंमें (सम्राजाम्) भलेप्रकार विराजमान अथवा मनुष्योंके अधीश्वर (गीर्भिः) स्तोत्रोंकरकै (नव्यम्) स्तुति करने योग्य (नरम्) नेता नृषाहम्) शत्रु मनुष्योंका तिरस्कार करने वाले (मंहिष्ठम्) परम दाता (इन्द्रम्) इन्द्रको (प्रस्तोता) अधिक स्तुति करो ॥ १० ॥

अपादु शिप्र्यन्धससः सुदक्षस्य प्रहोषिणः। इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ १ ॥

(शिप्री) सुंदर ठोड़ीवा सुन्दर पगड़ीवाला (इन्द्रः) इन्द्र (प्रहोषिणः) अधिकताके साथ देवताओंके निमित्त हवि होमनवाले (सुदक्षस्य) सुदक्षके (यवाशिरः) यवोंके साथ पकेहुए (इन्द्रोः) सोमलतासे सब पात्रोंमे टपकते हुए (अन्धसः) सोमरूप अन्नको (उ) निश्चय (अयात्) पीताहुआ ॥ १ ॥

इमा उ त्वा पुरूवसोभि प्र नोनवुर्गिरः । गावो वत्सं न धेनवः ॥ २ ॥

(पुरूवसो) हे बहुत धनवाले इन्द्र (त्वा, अभि) तुम्हारे ओरको (इमाः) यह हमारी (गिरः) स्तुतियें (प्रनोनुवः) अधिकतासे बार २ आकर प्राप्त होती हैं गाव धेनवः, वत्सं, न) जैसे कि—धेनु गोएं अपने घर बँधेहुए बछड़ेके समीप आपहुँचती हैं ॥ २ ॥

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥

(अत्रा ह) इसही (गोः) गमन करनेवाले (चन्द्रमसः) चन्द्रमा के (गृहे) मण्डलमें (त्वष्टुः) त्वष्टा नामक आदित्यका (अपीच्यम्) रात्रिमें अन्तर्धान हुआ जो अपना (नाम) तेज है वह सूर्यकी किरणें हैं (इत्था) इसप्रकार (अमन्वत) मानागया है अर्थात् जलमय स्वच्छ चन्द्रमण्डलमें प्रतिबिम्बित हुई सूर्यकी किरणें वही चेष्टा करती हैं, कि—जो सूर्यमण्डलमें करती हैं, सूर्यका तेज दिनकी समान रात में भी चन्द्रमण्डलमें प्रविष्ट हो अन्धकारका नाश करकै सबको प्रकाशित करदेता है, ऐसे तेजवाला सूर्य इन्द्रही है, क्योंकि बारह आदित्यों में इन्द्रकी भी गिनती है, इसकारण दिनरात का प्रकाशक इन्द्रही है॥३॥

यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः ।
तत्र पूषा भुवत्सचा ॥ ४ ॥

(यत्) जब (वृषन्तमः) अतिशय वर्षा करनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (रितः) जातेहुए (महीः) बहुतसे (अपः) वर्षा के जलोंको (अनयत्) इस लोक में पहुँचाता है (तत्र) उस समय (पूषा) पोषक देवता (सचा) सहायक (भुवत्) होता है ॥ ४॥

गौर्धयति मरुताᳪं श्रवस्युर्माता मघोनाम् ।
युक्ता वह्नी रथानाम् ॥ ५ ॥

(मघोनाम्) धनवान् (मरुताम्) मरुतोंकी (माता) रचने वाली माता (रथानाम्) मरुतोंकी (वह्निः) बड़वाओंसे वहन कराने वाली (युक्ता) सर्वत्र पूजित (गौः) पृश्निरूपा गौ (श्रवस्युः) अन्नकी कामना करती हुई (धयति) अपने पुत्रोंका पोषण करती है ॥ ५ ॥

उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ६ ॥

(मदानाम्) सोमोंके (पते) स्वामिन् इन्द्र ! (हरिभिः) सैंकड़ों सहस्रों घोड़ों सहित (नः) हमारे यज्ञमें (सुतं उपयाहि) निचोड़े हुए सोमको पीनेके लिये शीघ्र आइये [उप नो हरिभिः सुतम्, ऐसा मंत्रमें दूसरी बार आदरार्थ कहा है] ॥ ६ ॥

इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे ।
अच्छावभृथमोजसा ॥ ७ ॥

(अध्वरे) हमारे यज्ञमें (वृधन्तः) हवियोंसे इन्द्रको बढ़ातेहुए (इष्टाः) यज्ञ करनेवाले सात (होत्राः) होता (अवभृथं अच्छ) यज्ञान्त स्नान होने पर्यन्त (ओजसा) अपने तेजसे सम्पन्न होकर (इन्द्रम्) इन्द्रको (असृक्षत) आहुतिदान करतेहुए ॥ ७ ॥

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।
अहꣳसूर्य इवाजनि ॥ ८ ॥

(अहम्, इत्) मैंने ही (पितुः) पालनकर्त्ता (ऋतस्य) सत्यस्वरूप इन्द्रकी (मेधाम्) अनुग्रहरूपा बुद्धिको (परिजग्रह) ग्रहण किया है (हि) ऐसा होने कारण हीमैं (सूर्यः, इव,अजनि) जैसे सूर्य प्रकाश करता हुआ प्रकट होता है तैसेही मैं भी प्रकट हुआ हूँ ॥ ८ ॥

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ ९ ॥

(क्षुमन्तः) अन्नवाले हम (याभिः) जिन गौओंसे (मदेम)हर्षित होते हैं (इन्द्रे, सधमादे) इन्द्रके हमारे साथ हर्षयुक्त होनेपर (नः) हमारी वह गौएं (रेवतीः) दूध घी आदि धनवालीं (तुविवाजाः) अधिक बलवती (सन्तु) हों ॥ ९ ॥

सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासाꣳसुक्षितीनाम् ।
देवत्रा रथ्योर्हिता ॥ १० ॥

(देवत्रा) देवताओं में (रथ्यः) रथके योग्य (आहता) सवार होनेवाला (सोमः) सोम (पूषा च) सूर्यभी (विश्वासाम्) सकल (सुक्षितीनाम्) श्रेष्ठ मनुष्यों करके इन्द्रके निमित्त किये हुए हवियोंको (चेततुः) जानैं ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थ खंड समाप्त

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहꣳशतक्रतुं मꣳहिष्ठं चर्षणीनाम् १

हे ऋत्विजो (वः) तुम (विश्वासाहम्) सकल शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले (शतक्रतुम्) विचित्रकर्मा (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (मंहिष्ठम्) परम धनदाता (अन्धसः) सोमरूप अन्नको (आ पातम्) अभिमुख होकर पीनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रको (अभि प्र गायत) विशेषरूपसे स्तुति करो ॥ १ ॥

प्र व इन्द्राय मादनꣳ, हर्यश्वाय गायत ।
सखायः सोमपाव्ने ॥ २ ॥

(सखायः) हे सखाओ (वः) तुम (हर्यश्वाय) हरि नामक अश्ववाले (सोमपाव्ने) सोमपान करनेवाले (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (मादनम्) प्रसन्न करनेवाला स्तोत्र (प्रगायत) गाओ ॥ २ ॥

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (त्वायन्तः) तुम्है अपना वनानेकी इच्छा करते हुए (सखाय) मित्ररूप (वयम्) हम (तदिदर्थाः) केवल आपकी स्तुति करनेको ही अपना कर्त्तव्य मानतेहुए (त्वा) तुम्हारी स्तुति करते है (कण्वाः उ) कण्वगोत्री हमारे पुत्र भी (उक्थेभिः) वेदमन्त्रोंसे (जरन्ते) तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ ४ ॥

(मद्वने) प्रसन्नस्वभाव (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (सुतम्) निचोड़ेहुए सोमको (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियें (परिष्टोभन्तु) सोम की सर्वथा प्रशंसा करें, तदनंतर (कारवः) स्तुति करनेवाले (अर्कम्) सबके पूजनीय सोमको (अर्चन्तु) पूजें ॥ ॥ ४ ॥

अयन्त इन्द्र सोमो निपूतो अधिबर्हिषि ।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे निमित्त (अयं सोमः) यह सोम (बर्हिषि अधि) वेदी पर बिछेहुए कुशों पर (निपूतः) पवित्रे से शुद्ध किया गया (इदम्) इस समय (अस्य) इस सोमके समीप (एहि)

आओ, और आकर जहाँ रसरूप सोमका हवन कियाजाता है उस स्थान पर (द्रव) शीघ्र जाओ, तदनन्तर उस सोमको(पिब)पियो ५

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।

जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ ६ ॥

(सुरूपकृत्नुम्) सुरूप कर्मके कर्त्ता इन्द्रको (ऊतये) अपनी रक्षा के निमित्त (गोदुहे) गौ दुहनेके निमित्त (सुदुघाम् इव) सुन्दर दूधवाली गौको जैसे पुकारते हैं तैसे (द्यविद्यवि) प्रतिदिन (जुहूमसि) आह्वान करते हैं ॥ ६ ॥

अभि त्वा वृषभा सुते सुतꣳसृजामि पीतये ।

तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ ७ ॥

(वृषभ) हे मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले इन्द्र (त्वा) तुम्हें (सुते) सोमका अभिषव होनेपर उस (सुतम्) अभिषव कियेहुए सोमको (पीतये) पीनेके लिये (अभिसृजामि) अर्पण करता हूँ (तृप्यम्) तृप्त करनेवाले (मदम्) आनन्ददायक सोमको (व्यश्नुहि) विशेषरूपसे ग्रहण करो ॥ ७ ॥

य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः ।

पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे निमित्त (सुतः) निचोड़ा हुआ जो (सोमः) सोम (चमसेषु) चमस नामक पात्रों में (चमूषु) ग्रह नामक पात्रोंमें (आ) पूर्णरूपसे भराहुआ है (अस्य) इस सोमको (त्वम्) तुम (पिब इत्) अवश्य पियो, हे इन्द्र ! तुम (ईशिषे) ईश्वर हो ॥ ८ ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।

सखाय इन्द्रमूतये ॥ ९ ॥

(योगे योगे) प्रत्येक कर्मके आरंभमें प्रवेश होनेके समय (वाजे वाजे) कर्म विघातकोंके साथ संग्राम होनेपर (तवस्तरम्) अतिबलवान् (इन्द्रम्) इन्द्रको (ऊतये) रक्षाके निमित्त (सखाय) मित्रोंकी समान प्रीति करनेवाले हम (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥ ९ ॥

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
सखायः स्तोमवाहसः ॥ १० ॥

(स्तोमवाहसः) स्तोमको पहुँचानेवाले (सखायः) हे सखा ऋत्विजो ! (आ तु आ) अतिशीघ्र (इत) आओ, और आकर (निषीदत) विराजो (इन्द्रम्) इन्द्रको (अभिप्रगायत) सब प्रकारसे स्तुति करो ॥ १० ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य पञ्चम. खण्ड

इद७ं ह्यन्वोजसा सुत७ं राधानाम्पते ।
पिबा त्वास्य गिर्वणः ॥ १ ॥

हे (राधानाम्) धनोंके (पते) स्वामिन् ! (गिर्वणः) स्तुतियोंसे प्रार्थना करनेयोग्य इन्द्र (ओजसा) बलसे युक्त हुए तुम (इदम्, अनु) इस क्रमसे (ओजसा) बलके द्वारा पत्थरों से (सुतम्) निकाले हुए (अस्य) इस सोमको (तु) शीघ्र (पिब हि) पियो॥१॥

महा७ं इन्द्रः परश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे ।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ २ ॥

(नः) हमारा (इन्द्रः) यह इन्द्र (महान्) शरीरसे बड़ा है(परः) गुणों करके श्रेष्ठ है (वज्रिणे) वज्रधारी इन्द्रके अर्थ (महित्वम्) पूर्वोक्त दो प्रकारका गौरव सर्वदा (अस्तु) हो, और (द्यौर्न) द्युलोक की समान (शवः) इन्द्रका सेनारूप बल (प्रथिना) अधिक प्रसिद्ध हो॥२॥

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभ७ं सं गृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (महाहस्ती) बड़े २ हाथोंवाला तू (तु) इसी समय (नः) हमें देनेके लिये (क्षुमन्तम्) स्तुतिके योग्य (चित्रम्) नानाप्रकारके (ग्राभम्) ग्रहण करनेके योग्य धनको (दक्षिणेन) दाहिने हाथसे (आ संगृभाय) अभिमुख होकर ग्रहण करो ॥ ३ ॥

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
सूनु७ं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

(गोपतिम्) गौओंके स्वामी (सत्यस्य) यज्ञके (सूनुम्) पुत्र (सत्पतिम्) यजमानोंके पालक (इन्द्रम्) इंद्रको (गिरा) स्तुति से (अभि अर्च) पूर्ण रीतिसे पूजो (यथा विदे) जैसे कि--वह हमारे स्तुति करनेको और यज्ञमें अवश्य जाना चाहिये इस बातको जान-जाय ॥ ४ ॥

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ ५ ॥

(सदा वृधः) सर्वदा वृद्धिको प्राप्त (चित्रः) विचित्रगुणोंवाला (सखा) मित्र इन्द्र (कया) किस (ऊती)तृप्तिसाधक कर्मसे (नः) हमारे (आ भुवत्) अभिमुख होय (शचिष्ठया)समझकर कियेहुए (कया वृत्ता) किस वर्त्तावसे अभिमुख होय ॥ ५ ॥

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।
आच्यावयस्यूतये ॥ ६ ॥

यजमान कहै कि—हे स्तोतः ! (सत्रासाहम् बहुतोंका तिरस्कार) करनेवाले (वः) तुम्हारे (विश्वासु) सकल (गीर्षु) स्तोत्रोंमें (आयतम्) फैलेहुए (त्यम्, उ) उस इन्द्रको ही (ऊतये) हमारी रक्षाके लिये (आच्यावयसि) अभिमुख करकै भेजो ॥ ६ ॥

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिंद्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषम् ॥ ७ ॥

(मेधाम्) बुद्धिको पानेके निमित्त (अद्भुतम)आश्चर्य करनेवाले (इन्द्रस्य प्रियम्) इन्द्रके प्यारे (काम्यम्) चाहने योग्य (सनिम्) धनके दाता (सदसस्पतिम्) सदसस्पति देवताको (अयासिषम्) प्राप्त हुआ हूँ ॥ ७ ॥

ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः ।
उत श्रोपन्तु नो भुवः ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! (दिवः) द्युलोकके (अधः) नीचे (ये) जो (पन्थानः) मार्ग हैं, (येभिः) जिन मार्गोंसे (विश्वम्) सकल जगत्को (ऐरयः) प्राप्त हुआ है (ते) वह मार्ग यजमानोंके स्तुति करने योग्य हैं (उत) और (नः) हमारे (भुवः) निवासस्थानोंको यजमान सुनै ॥ ८ ॥

भद्रं भद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो ।
यदिन्द्र मृडयासि नः ॥ ९ ॥

(शतक्रतो) सैंकड़ों कर्म करनेवाले (इन्द्र) हे इन्द्र (भद्रं भद्रं) परमसुखदायक धन (नः) हमें (आभर) दीजिये, तथा(इषं ऊर्जम) बलवान् अन्न दीजिये (नः) हमें (यम्) जो (मृडयासि) सुख देना चाहते हो तो धन आदि दो ॥ ९ ॥

अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।
उत स्वराजो अश्विना ॥ १० ॥

(अयम्) यह (सोमः) सोम (सुतः) मरुतोंके लिये हमारे द्वारा संस्कार कियागया (अस्ति) है, तिससे (अस्य) इस सोमको (स्वराजः) अपने तेजसे दीप्यमान (मरुतः) मरुत् प्रातःकालके समय (पिबन्ति) पीते हैं (उत) और (अश्विनः) अश्विनीकुमार भी प्रातःसवनमें पीते हैं ॥ १० ॥

द्वितीयध्यायस्य षष्ठ खण्डः समाप्त

इङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।
वन्वानासः सुवीर्यम् ॥ १ ॥

(इङ्खयन्तीः) स्तुति आदिके द्वारा इन्द्रको प्राप्त होता हुई (अपस्युवः) अपने कर्मको चाहती हुई इन्द्रकी मातायें (जातम्) प्रकट हुए (तम्) उस इन्द्रको (उपासते) सेवती हैं (सुवीर्यम्) सुंदर वीरतायुक्त धनको (वन्वानासः) उस इन्द्रसे प्राप्त करती हैं ॥ १ ॥

न कि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि ।
मंत्रश्रुत्यं चरामसि ॥ २ ॥

(देवाः) हे इन्द्रादि देवताओं ! तुम्हारे विषयमें (न कि इनीमसि) हम कुछ भी हानि नहीं करते (न कि योपयामसि) और विपरीत अनुष्ठानसे मोहित भी नहीं करते है (मंत्रश्रुत्यम्) मंत्रोंमें अनेकों वाक्योंसे वर्णन कियेहुए तुम्हारे विषयके कर्मको (चरामसि) आचरण करते हैं ॥ २ ॥

दोषो आगाद्बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण ।
स्तुहि देवꣳ सवितारम् ॥ ३ ॥

(बृहद्गाय) हे बृहत् सामका गान करनेवाले (द्युमद्गामन्) हे प्रकाशयुक्त गमन करनेवाले (आथर्वण) आथर्वण तू (दोषः) ऋत्विक् यजमानके अपराधसे जो कोई दोष (आगात्) आवे, उसको दूर करनेकेलिये (सवितारम्) सविता (देवम्) देवको (स्तुहि) स्तुति कर ॥ ३ ॥

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ ४ ॥

(एषः) यह हमें दीखतीहुई (प्रिया) सबकी प्रसन्नताकी कारण (अपूर्व्या) पहिले मध्यरात्र आदि समयमें न रहनेवाली इस समय की (उषा) उषा देवता (दिवः) द्युलोकसे आकर (व्युच्छति) अन्धकारका नाश करती है (अश्विनौ) हे अश्विनीकुमारो ! (वाम्) तुम्हें (बृहत्) बहुत (स्तुषे) स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।
जघान नवतीर्नव ॥ ५ ॥

(अप्रतिष्कुतः) प्रतिकूल शब्दरहित (इन्द्रः) इन्द्र (दधीचः) आथर्वण दधीचि ऋषिकी (अस्थभिः) पसुली शिर आदिकी हड्डियोंसे (नव) नौ (नवतीः) नब्बे अर्थात् नौ वार नब्बे, आठसौ दस (वृत्राणि) असुरोंको (जघान) मारताहुआ [इस मन्त्र पर शाट्यायनि इतिहास कहते हैं, कि—आथर्वण दधीचिको जीवित देखते ही असुरोंकी पराजय होजाती थी, जब वह दधीचि स्वर्गको पधारगए तब असुरोंने सब पृथिवीको जीतलिया और इन्द्र असुरों साथ युद्ध न करसके तब इन्द्रने उन ऋषिको खोजते हुए सुना कि-वह स्वर्गवासी होगए, इसपर तहाँके निवासियोंसे बूझा कि—यहाँ उनके शरीरमें का कुछ बचा भी है तब उत्तर मिला कि—हाँ उनका घोड़ेके आकारका शिर है, जिस शिरसे उन्होने अश्विनीकुमारोंको मत्युविद्या सिखाई थी, परन्तु यह नहीं मालूम कि—वह शिर कहाँ है, इस पर इन्द्रने कहा कि—उसको ढूँढो, तब सबोंने ढूँढा, उसको

कुरुक्षेत्रकी भूमिमें शर्यणावत् सरोवर में पाया, और उसशिरकी हड्डियोंसे इन्द्रने असुरोंका बध किया । असुरोंने जब पहिले देवताओं को जीता था तब प्रथम त्रिलोकीके देवताओंको जीतनेके लिये आसुरी माया तीन प्रकारकी हुई फिर वह भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनोंकाल के देवताओं को जीतनेके लिये हरएक त्रिगुण होकर नौ होगई, फिर उत्साह आदि तीनोशक्तियोंके भेदसे त्रिगुणी होकर सत्ताईस हुई, फिर सत्त्व आदि तीनो गुणोंके भेदसे त्रिगुणी होनेपर इक्यासी हुई, वह इक्यासी गुणी माया जब दशों दिशाओंमें भिन्न२ रूपसे रही तब आठसौ दश होगई, उनही मायारूपी आठसौ दश आवरण करनेवाले असुरों को इन्द्रने मारा] ॥ ५ ॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ२ऽअभिष्टिरोजसा ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (एहि) इस कर्ममें आओ, और आकर (विश्वेभिः) सब (सोमपर्वभिः) सोमरसरूप (अन्धसः) अन्नों करकै (मत्सि) प्रसन्न हूजिये, तदनन्तर (ओजसा) बलसे (महान्) बड़े होकर (अभिष्टिः) शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले हजिये ॥ ६ ॥

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमा गहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥ ७ ॥

(वृत्रहन्) हे शत्रुओंके नाशक इन्द्र तुम (नः) हमारे समीप(आ तु) शीघ्र आओ । हे इन्द्र ! महान् हुएतुम (महीभि) बड़ी (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ (अस्माकम्) हमारे (अर्द्धम्) समीप (आ गहि) आओ ॥ ७ ॥

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्त्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ८ ॥

(अस्य) इस इन्द्रका (तत्) वह प्रसिद्ध (ओजः) बल (तित्विषे) प्रदीप्त हुआ (यत्) जिस बलसे यह (इन्द्रः) इन्द्र (उभे रोदसी) द्यावा पृथिवी दोनो को (चर्मेव) चर्मकी समान (समवर्त्तयत्) वर्त्तता है अर्थात् जैसे कोई चर्मको कभी खोललेता है और कभी तै करलेता है तेसे ही द्युलोक और भूलोक इन्द्रके अधीन हैं ॥ ८ ॥

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भाधिम्।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ९ ॥

हे इन्द्र (अयम, उ) यह भी दृश्यमान सोम (ते) तुम्हारे लिये तयार किया है, जिस सोमको (समतसि) निरन्तर सम्यक् प्रकार से प्राप्त होते हो (कपोत इव) जैसे कबूतर पक्षी (गर्भधारिणीम्) गर्भ धारण करनेवाली कपोतीको प्राप्त होताहै (तच्चित्) तिसी कारणसे (नः) हमारे (वचः) वचनको (ओहसे) प्राप्त होताहै ९

वात आ वातु भेषजꣳ शम्भु मयोभु नो हृदे ।
प्र न आयूꣳषि तारिषत् ॥ १० ॥

(वातः) वायु (नः) हमारे (हृदे) हृदयके अर्थ (शम्भु) रोग-शान्ति करनेवाले (मयोभु) सुख देनेवाले (भेषजम्) औषध या जलको (आ वातु) प्राप्त करावे, और (नः) हमारी (आयूंषि) आयुओंको (प्रतारिषत्) बढ़ावे ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

यꣳ रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्य्यमा।
न किः स दभ्यते जनः ॥ १ ॥

(प्रचेतसः) श्रेष्ठ ज्ञानवाले (वरुणः) वरुण देवता (मित्रः) मित्र देवता (अर्यमा) अर्यमा देवता (यम्) जिस यजमानको (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं (सः) वह यजमान (जनः) पुरुष (न किः दभ्यते) किसीसे भी हिंसित नहीं होता ॥ १ ॥

गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया ।
वरिवस्या महोनाम् ॥ २ ॥

हे इन्द्र (यथा) जैसे (पुरा) पहिले हमारे यज्ञमें गौ आदि देनेको आप आये थे तैसे ही अब (नः) हमैं (सु—गव्या) सुन्दर गौ देने की इच्छा करकै (उ) और (अश्वया) अश्वदानकी इच्छा करकै (उत) और (रथया) रथ देनेकी इच्छा करकै (महोनाम्) प्रतिष्ठा करानेवाले धनोंको देनेके लिये (वरिवस्या) आइये ॥ २ ॥

इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् ।

एनामृतस्य पिप्युषीः ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारी (इमाः) यह (पृश्नयः) श्रेष्ठ वर्णकी (ऋतस्य) सत्य, इंद्र और यज्ञकी (पिप्युषीः) बढ़ानेवालीं गौएं (घृतम्) टपकनेवाले (एनाम्) इस (आशिरम्) दूधको (दुहते) पात्रमें पूर्ण करदेती हैं ॥ ३ ॥

अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरुष्टुत ।
यत्सोमे सोम आभुवः ॥ ४ ॥

(पुरुणामन्) हे अनेकों नामवाले (पुरुष्टुत) हे अनेकों से स्तुति कियेहुए इंद्र (सोमे सोमे) मेरे सब सोमयागोंमें तुम (यद्) जब (आभुवः) उसके पीनेको आये तब हम (अया) इस (गव्यया) अपने अर्थ गौओंको चाहनेवाली (धिया) बुद्धिसे युक्त हों अर्थात् जब आप सोम पियें तब हम गौ आदि धनसे युक्त हों ॥ ४ ॥

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥ ५ ॥

(पावका) पवित्र करनेवाली (वाजिनीवती) अन्नदायक शक्ति- (धियावसुः) कर्मसे प्राप्त होने योग्य धनकी कारणरूप (सरस्वती) सरस्वती देवी (वाजेभिः) देनेयोग्य अन्नों सहित (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञको (वष्टु) चाहै और उसको पूर्ण करै ॥ ५ ॥

क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् ।
स नो वसून्या भरत् ॥ ६ ॥

(नाहुषीषु) मानुषी प्रजाओं में (इमम्) इस (इन्द्रम्) इन्द्रको (कः) कौन (तर्पयात्) तृप्त करसकता है (सः) वह मानुषी प्रजाओं से तृप्त करनेको अशक्य इन्द्र (नः) हमारे यज्ञमें तृप्त होकर (वसूनि) धनोंको (आभरत्) देय ॥ ६ ॥

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र तुम (आयाहि) आओ, हमने (ते) तुम्हारे निमित्त

(सुषुमा-हि) सोमका अभिषव किया है, ऐसे (इमम्) इस सम्पादन कियेहुए (सोमम्) सोमको (पिब) पियो, तुम्हारे निमित्त स्थापन किये (मम) मेरे (इदम्) इस (बर्हिः) वेदीपर बिछेहुए कुशासन पर (आसदः) विराजमान हूजिये ॥ ७ ॥

महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः ।
दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ८ ॥

(मित्रस्य) मित्रका (अर्यम्णः) अर्यमाका (वरुणस्य) वरुणका (त्रीणाम्) तीनोका (द्युक्षम्) दीप्त (दुराधर्षम्) दूसरोंसे बाधित न होनेवाला (महि) बड़ा (अवः) रक्षण, हमारा (अस्तु) हो ॥ ८ ॥

त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः ।
स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥ ९ ॥

(पुरूवसो) बहुत धनवाले (प्रणेतः) कर्मोको उत्तमतासे पार लगानेवाले (हरीणाम्) हरिनामक अश्वोंके (स्थातः) अधिष्ठाता (इन्द्र) हे इन्द्र (त्वावतः) तुम्हारे निज (वयम्) हम (स्मसि) हैं ९

द्वितीयाध्यायस्य अष्टम खण्ड. समाप्तः

उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! (त्वा) तुम्हे (सोमाः) सोम (उत्) उत्तम (मदन्तु) प्रसन्नता दे (अद्रिवः) हे वज्रधारिन् इन्द्र ! तुम हमें (राधः) धन (कृणुष्व) दो, और (ब्रह्मद्विषः) ब्राह्मणोंके द्वेषियोंको (अवजहि) नष्ट करो ॥ १ ॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।
इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥ २ ॥

(गिर्वणः) हे स्तुतियों से प्रार्थना करने योग्य इन्द्र ! (नः) हमारे (सुतम्) सम्पादन किये हुए इस सोमको (पाहि) पियो, क्योंकि (मधोः) मदकारी सोमकी (धाराभिः) धाराओंसे (अज्यसे) सींचे जातेहो (इन्द्र) हे इन्द्र (त्वादातं इत्) तुम्हारा शुद्ध किया हुआ ही (यशः) अन्न हमारे पास होता है ॥ २ ॥

सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन् ।
नः देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥ ३ ॥

हे ऋत्विक यजमानो ! (इन्द्रः) इन्द्र (सदा) सर्वदा (उपोनु) तुम्हारे समीप (सपर्यन्) बार२ प्रार्थना करता हुआ (वः) तुम्हे (आचर्कृषत्) यज्ञानुष्ठानके निमित्त करना चाहता है (नः) हमारा (वृतः) वरण किया हुआ (इन्द्रः) इन्द्र (देवः)देव(शूरः) शूरहै ॥३॥

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
न त्वा मिन्द्राति रिच्यते ॥ ४ ॥

हे इन्द्र (इन्दवः) हमारे दियेहुए टपकते हुए सोम (सिंधवः, समुद्र, इव) बहनेवालीं नदियें जैसे समुद्र को प्राप्त होती है तैसे(त्वा) तुम्हें (आविशन्तु) प्राप्त हों, इसकारण (इन्द्र) हे इन्द्र ! कोई भी देवता धनसे या बलसे (न अतिरिच्यते) तुम्हारी अपेक्षा बड़ा नही होसकता ॥ ४ ॥

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ५ ॥

(गाथिनः) गाये जातेहुए सामसे युक्त उद्गाता (इन्द्रम्, इत्) इन्द्रको ही (बृहत्) बृहत् सामके द्वारा (अनूषत) स्तुति करते हैं (अर्किणः) अर्चनके मन्त्रों सहित होता (अर्केभिः) उक्थरूप मंत्रों से स्तुति करते हैं और जो शेष अध्वर्यु है वह (वाणीः) यजुरूप वाणियों से (इन्द्रम्) इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुँ रयिम् ।
वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ६ ॥

(इन्द्रः) हमसे इसप्रकार स्तुति किया हुआ इन्द्र (ऋभुक्षणम्) सबों में श्रेष्ठ (रयिम) दाता (ऋभुम्) सोमपानसे अमर हुए ऋभु नामक देवताको (नः) हमै (इषे) अन्नके लिये (ददातु) दो, तथा (वाजी) बलवान् इन्द्र (वाजिनम्) बलवान् छोटे भाईको हमैं अन्न की प्राप्तिके निमित्त (ददातु) दो ॥ ६ ॥

इन्द्रो अङ्गमहद्भयमभी षदप चुच्युवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ७ ॥

(स्थिरः) किसीसे चलायमान न होसकनेवाला (विचर्षणिः) विश्वका द्रष्टा (इन्द्रः) इन्द्र (महत्) अधिक (भयम्) भयको (अङ्ग) शीघ्र (हि) निश्चय (अभीषत्) तिरस्कृत करता है (अपचुच्युवत्) दूर भी करता है ॥ ७ ॥

इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः ।
गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥

(गिर्वणः) हे ऋचाओंसे स्तुति करनेयोग्य इंद्र ! (सुते सुते) सोम का अभिषव होनेपर (इमाः) यह हमारी (गिरः) स्तुतियें (धेनवः) दूध देनेवाली (गावः) गौएं (वत्सं न) जैसे शीघ्र ही बछड़ेके समीप पहुँचती हैं तैसे ही (त्वा) तुम्हें (नक्षन्ते) प्राप्त होती हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रा नु पूषणा वयँ सख्याय स्वस्तये
हुवेम वाजसातये ॥ ९ ॥

(इन्द्रा पूषणा) इन्द्र और पूषा देवताको (नु) आज ही (वयम्) हम (स्वस्तये) कल्याणरूप (सख्याय) मित्रभावके निमित्त (वाजसातये) अन्न और जलकी प्राप्तिके लिये (हुवेम) आह्वान करते हैं

न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।
न क्येवं यथा त्वम् ॥ १० ॥

(वृत्रहन्) वृत्रासुरके नाशक (इन्द्र) हे इंद्र ! इन्द्रलोकमें भी (त्वत्) तुमसे (उत्तरः) उत्तम (न कि अस्ति) नहीं है (ज्यायान्) तुमसे श्रेष्ठ भी कोई नहीं है. हे इन्द्र ! (त्वम्) तुम लोकमें (यथा) जैसे प्रसिद्ध हो (एवम्) ऐसा एक भी (नकि अस्ति) नहीं है १०

द्वितीय अध्यायका नवम खण्ड समाप्त

तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः ।
समानमु प्र शँसिषम् ॥ १ ॥

हे हमारे पुरुषो (वः) तुम (जनानाम्) पुत्र पौत्रादिकोंके (तरणिम्) तारक (अदम्) शत्रुओंको भय देनेवाले (गोमतः) पशुओं-वाले (वाजस्य) अन्नके दाता इन्द्रको (समानम् उ) निरन्तर ही (प्रशंसिषम्) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत ।
सजोषा वृषभं पतिम् ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते गिरः) तेरी स्तुतियोंको (असृग्रम्) मैंने रचा है, वह स्तुतिये स्वर्ग में स्थित (वृषभम्) मनोरथों की वर्षा करनेवाले (पतिम्) सोमपीने वाले (त्वाम् प्रति) तुम्हारे समीप (उदहासत) पहुँचीं (सजोषाः) उनको तुमने सेवन किया ॥ २ ॥

सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा ।
मित्राः पान्त्यद्रुहः ॥ ३ ॥

(यम्) जिसको (अद्रुहः) द्रोह न करनेवाले (मरुतः) मरुत् (यम्) जिसको (अर्यमा) अर्यमा (मित्राः) मित्र देवता (पान्ति) रक्षा करते हैं (सः) वह (मर्त्यः) यजमान (सुनीथः) सुन्दर यज्ञ वा सुन्दर नेत्रोंवाला होता है (घ) यह बात प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! तुमने (वीडौ) किसीसे चलायमान न होसकने वाले पुरुषमें (यत्) जो धन (यत्) जो (स्थिरे) स्वयं अचल पुरुष में (यत्) जो (पर्शाने) असहन में (पराभृतम्) स्थापित किया (तत्) वह (स्पार्हम्) चाहने योग्य(वसु)धन(आ भर)हमें दीजिये॥४॥

श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् ।
आशिषे राधसे महे ॥ ५ ॥

(श्रुतम्) प्रसिद्ध (वृत्रहन्तमम्) अतिशय करके वृत्रासुरके नाशक (शर्द्धम्) परमवेग वाले इन्द्रको (चर्षणीनाम्) मनुष्यों में (वः) तुम्हारे (महे) बहुत से (राधसे) अन्नके लिये (प्र आशिषे) प्र करके विशेषरूप से अर्पण करता हूँ ॥ ५ ॥

अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः ।
अरꣳ शक्र परेमणि ॥ ६ ॥

(शूर) वीर (इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तेरी (श्रवसे) कीर्त्तिके सुननेको (अरम्) पर्याप्तरूपसे (गमेम) प्रवृत्त हों (शक्र)हे इन्द्र ! (त्वावतः) तेरी समान (परेमणि) श्रेष्ठ अन्य देवता की कीर्त्तिकोभी (अरम्) पर्याप्तरूप से प्राप्त हों ॥ ६ ॥

धानावन्तं करम्भिणमपूपवंतमुक्थिनम् ।
इंद्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ ७ ॥

यजमान कहता है कि—(इन्द्र) हे इन्द्र (धानावन्तम) भुने हुए यववाले (करम्भिणम्) दधिमिले सत्तुओंवाले (अपूपवन्तम्)यज्ञीय पुरोडाशसे युक्त (उक्थिनम्) स्तुति कियेहुए (नः) हमारे इस सोम को (प्रातः) प्रातःकाल के सवनमें (जुषस्व) सेवन करो ॥ ७ ॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्त्तयः ।
विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ८ ॥

कहते हैं, कि—पहिले इन्द्रने सब असुरोंको तो जीतलिया परन्तु नमुचि को न पकड़सका, किंतु युद्ध करतेमें उस असुरने ही इन्द्र को पकड़लिया उस समय इंद्रसे कहा कि यदि रातमें वा दिनमें सूखे वा गीले शस्त्रसे मुझे न मारनेकी प्रतिज्ञा करै तो मैं तुझे छोड़दूं इस प्रतिज्ञा पर छोडेहुए इंद्रने दिन और रात्रि के सन्धिकाल में सूखे और गीले दोनोसे विलक्षण झागोंके शस्त्रसे उसका शिर काटा इसका ही आभास इस मंत्रम हैं, कि-(यत्) जब (विश्वाः) सब (स्पृधः) डाह करनेवाली असुरोंकी सेनाओं को (अजयः) जीतलिया, तव (इंद्रः) इंद्रने (अपां फेनेन) वज्ररूप हुए जलके झागोंसे (नमुचेः) नमुचि नामक असुरका (शिरः) शिर (अवर्त्तयः) काटलिया ॥ ८ ॥

इमे त इंद्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः ।
तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥ ९ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (ते) तुम्हारे लिये (इमे) यह (सोमाः) सोम (सुतासः) सम्पादन किये हैं (च) और (ये) जो (सोत्वाः)

सम्पादन कियेजायँगे (प्रभूवसो) हे बहुतसे धनवाले इंद्र (तेषाम्) उन सब सोमरसोंसे (मत्स्व) प्रसन्न हूजिये ॥ ६ ॥

तुभ्यँ सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो स्तोतृभ्य इंद्र मृडय ॥ १० ॥

(विभावसो) दीप्तिरूप धनवाले इन्द्र (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (सोमाः) सोम (सुतासः) सम्पादन करे हैं (बर्हिः) कुशासन (स्तीर्णम्) विछाया है, इसकारण (इन्द्र) हे इन्द्र! तुम कुशासन पर बैठकर सोमोंको पीकर (स्तोतृभ्यः) हम स्तुति करनेवालोंको (मृडय) सुख दीजिये ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्त

आ व इंद्रं कृविं यथा वाजयंतः शतक्रतुम् । मँहिष्ठँ सिञ्च इंदुभिः ॥ १ ॥

(वाजयन्तः) अन्नको चाहनेवाले हम, हे ऋत्विक् यजमानो ! (वः) तुम्हारे (शतक्रतुम्) सैंकड़ों पराक्रम करने वाले (मंहिष्ठम्) परम पूज्य (इन्द्रम्) इन्द्रको (कृविं यथा) जैसे खेतीको जलसे सींचते हैं तिसप्रकार (इन्दुभिः) सोमोंसे (आसिञ्चे) सब ओरसे सींचकर तृप्त करते है ॥ १ ॥

अतश्चिदिंद्र न उपा याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥ २ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (अतश्चित्) द्युलोकसे ही (शतवाजया) सैंकड़ों प्रकारके बलसे युक्त (सहस्रवाजया) सहस्रों प्रकारके अन्नसे युक्त (इषा) अन्नरसको साथमें लियेहुए (नः) हमारे (उपयाहि) अभिमुख होकर पास आइये ॥ २ ॥

आ बुंदं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्विमातरम् । क उग्राः केह शृण्विरे ॥ ३ ॥

(जातः) उत्पन्न हुआ (वृत्रहा) इंद्र (बुन्दम्) बाणको (आददे) ग्रहण करताहुआ, और उस बाणको लेकर (उग्राः) बल दिखानेवाले (के के) कौन कौन (इह) इस जगत्में (शृण्विरे) विख्यात हुए हैं यह बात अपनी मातासे (विपृच्छात्) बूझताहुआ ॥ ३ ॥

बृबदुक्थꣳ हवामहे सृप्रकरस्नमूतये ।
साधः कृण्वंतमवसे ॥ ४ ॥

(ऊतये) लोककी रक्षाके लिये (सृप्रकरस्नम्) फैलेहुए बाहुको (अवसे) लोकोंके पालन के लिये (साधः) साधक धन (कृण्वन्तम्) अर्पण करतेहुए (बृबदुक्थम्) महान् स्तुतिवाले इंद्रको (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥ ४ ॥

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् ।
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ ५ ॥

दिनका अभिमानी देवता (मित्रः) मित्र, रात्रिका अभिमानी देवता (वरुणः) वरुण (विद्वान्) पहुँचाने योग्य उत्तम स्थानको जानताहुआ (नः) हमें (ऋजुनीती) सरल गतिके द्वारा (नयति) अभिमत फल प्राप्त कराता है (देवैः) अन्य देवताओंके साथ (सजोषाः) समान प्रीतिवाला (अर्यमा) दिनरातका विभाग करनेवाला सूर्यभी हमें सरल मार्गसे उस स्थान पर पहुँचावें ॥ ५ ॥

दूरादिहेव यत्सतोऽरुणप्सुरशिश्वितत् ।
वि भानुं विश्वथातनत् ॥ ६ ॥

(दूरात्) दूर, आकाशके पूर्वी भागमें (इह, सतः, इव) समीपमें वर्त्तमानसी (अरुणप्सुः) प्रकाशस्वरूपा उषा (यत्) जब (अशिश्वितत्) प्रकाश फैलाती है, तब (भानुम्) दीप्तिको (विश्वथा) अनेकों प्रकारका (व्यतनत्) करती है ॥ ६ ॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
मध्वा रजाꣳसि सुक्रतू ॥ ७ ॥

(सुक्रतू) हे शोभन कर्मवाले मित्रावरुण ! (नः) हमारे (गव्यूतिम्) गौओंके निवासस्थानको (घृतैः) घृतके साधन दूधोंसे (आ उक्षतम्) सब ओरसे सींचो अर्थात् हमें दूधवाली गौएं दो (रजांसि) हमारे पारलौकिक निवासस्थानोंको (मध्वा) मधुर दुग्धसे सींचो ७

उदुत्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत ।
वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ ८ ॥

(त्ये) उन प्रसिद्ध (गिरः सूनवः) वाणीको उत्पन्न करनेवाले मरुतोंने, जोकि तालु ओष्ठ आदिमें विचरकर शब्दका उत्पन्न करते हैं तिन वायुओंने (यज्ञेषु) अपने यज्ञोंके होनेपर (काष्ठाः) जलोंको (उत, उ) उत्कर्ष करकै (अत्नत) विस्तारित किया और जलको फैलाकर उसको पीनेके लिये (वाश्राः) रँभातीहुई गौओंको (अभिज्ञु) घुटनों के बल (यातवे) जानेको प्रेरणा किया ॥ ८ ॥

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांसुले ॥ ६ ॥

(विष्णुः) त्रिविक्रमावतार धारण करनेवाले भगवान् (इदम्) इस दृश्यमान सब जगत्को (विचक्रमे) विशेषरूपसे लाँघतेहुए, उससमय (त्रेधा) तीनप्रकारसे (पदम्) चरणको (निदधे) स्थापन करतेहुए (अस्य) इन विष्णुके (पांसुले) धूलियुक्त चरणस्थानमें (समूढम्) यह सब जगत् सम्यक् प्रकारसे अन्तर्गत होगया ॥ ६ ॥

द्वितीयाध्यायस्य एकादशः खण्ड समाप्त ।

अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय । अस्य रातौ सुतं पिब ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! (मन्युषाविणम्) क्रोधसे सोमका रस निकालनेवालेको (अतीहि) त्यागदे और तहां (सुषुवांसम्) सुन्दर प्रकारसे रस निकालनेवालेको (उपेरय) भेजो (अस्य) इस यजमानके (रातौ) यज्ञसंबंधी दानमें (सुतम्) संपादित सोमको (पिब) पियो ॥ १ ॥

कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते । तदिध्यस्य वर्धनम् ॥ २ ॥

(महे) महान् (प्रचेतसे) श्रेष्ठ ज्ञानवाले (देवाय) इन्द्रदेवताके अर्थ (कदु) हमारा कुत्सित (वचः) स्तोत्ररूप वचन (शस्यते) प्रशंसित हो अर्थात् हमारे यथार्थरूपसे न हुए भी स्तोत्रको इंद्रदेव अनुग्रह करकै स्वीकार करैं (तदित्) वह ही (अस्य) इस यजमान का (वर्धनम्) वृद्धिका साधन है ॥ २ ॥

उक्थञ्च न शस्यमानं नागो रयिराचिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ॥ ३ ॥

(अगोः) स्तुति न करनेवालेका (अयिः) शत्रु इन्द्र (शस्यमानम्) होताके पढेहुए (उक्थं च) स्तोत्रको भी (आचिकेत) जानता है, (न) इस समय प्रस्तोता आदिके गायेहुए (गायत्रम्) गायत्र साम को जानता ही है, इसकारण हम भी उस इन्द्रकी स्तुति करतेहैं ॥ ३ ॥

इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानाञ्च वाजपतिः। हरिवांत्सुतानाꣳ सखा ॥ ४ ॥

(वाजानाम्) अन्नोंमें (वाजपतिः) उत्तम अन्नका स्वामी (हरिवान्) हरिनामक घोडेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (उक्थेभिः) होताओंके बोलेहुए स्तोत्रोंसे (मन्दिष्ठः) अत्यन्त तृप्त हुआ (सुतानाम्) सोमों का (सखा) मित्रवत् प्रीतिकर्त्ता हो ॥ ४ ॥

आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः। महाꣳइव युवजानिः ॥ ५ ॥

हेइन्द्र हमारे (सुतम्) संपादनकियेहुए सोमको (उपयाहि) आकर ग्रहण कीजिये और (वाजेभिः) औरोंके हविरूप अन्नोंसे (मा हृणीयथाः) लोभमें नपड़िये (युवजानिः) युवति स्त्रीवाला (महान् इव) प्रभु जैसे अर्थात् जैसे रूपवती स्त्रीवाला राजा अन्य स्त्रियों पर चित्त नहीं डुलाता किंतु अपनी नवयौवनाके पास ही आता है ॥ ५ ॥

कदा वसो स्तोत्रꣳ हर्यत आ अव श्मशा रुधद्वाः। दीर्घꣳसुतं वाताप्याय ॥ ६ ॥

(वसो) हे व्यापक इन्द्र ! (स्तोत्रम्) हमारे कियेहुए स्तोत्रको (हर्यते) चाहतेहुए आपको (श्मशा) कृत्रिम नदीकी समान (वाताप्याय) जलदानके निमित्त (दीर्घम्) फैलेहुए (सुतम्) सम्पादित सोमके प्रति (कदा) कब (अवारुधत्) रोकोगे और रोककर कब (वाः) वारण करोगे ॥ ६ ॥

ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूꣳरनु। तवेदꣳ सख्यमस्तृतम् ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र(ब्राह्मणात्) ब्रह्मसंबंधी (राधसः) धनभूत पात्र से (सोमम्) सोमको (ऋतून् अनु) देवताओंके पीछे (पिब) पियो

क्योंकि (तव) तुम्हारा (इदम्) यह (सख्यम्) देवताओंके साथ मित्रभाव (अस्तृतम्) अविच्छिन्न है ॥ ७ ॥

वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः।
त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ८ ॥

(गिर्वणः) वाणियोंसे प्रार्थना करनेयोग्य (इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे भी (वयं घ) हम निश्चय (स्तोतारः) स्तुति करनेवाले (स्मसि) हों (सोमपाः) हे सोम पीनेवाले इन्द्र ! (त्वम्) तुम (नः) हमें (जिन्वसि) तृप्त करते हो ॥ ८ ॥

एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः।
सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥ ९ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (पृक्षु) संपृक्त (कासुचित्) किन्ही (नः) हमारे (तनूषु) अङ्गोंमें (नृम्णम्) बलको (आ धेहि) स्थापन करो (उग्र) हे पूर्णबल इन्द्र ! (सत्राजित्) बारह दिनमें यज्ञोंके द्वारा वशमें होते हुए (पौंस्यम्) पुरुषके हितकारी फलको (आ धेहि) दो ॥ ९ ॥

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
एवा ते राध्यं मनः ॥ १० ॥

हे इंद्र ! तुम (वीरयुः) युद्धमें वीर शत्रुओंको मारनेकी कामनावाले (एव) ही (असि) हो (हि) यह बात प्रसिद्ध है. इसी कारण तुम (शूरः) शूर हो (उत) और (स्थिरः) संग्रामोंमें धैर्यधारी हो, एक स्थान पर स्थिर रहकर ही शत्रुओंका संहार करते हो. ऐसा होनेसे (ते) तुम्हारा (मनः) मन (राध्यम्) स्तुतियोंसे आराधना करने योग्य है ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य द्वादश खंड समाप्त

द्वितीयोऽध्यायश्च समाप्त

अथ तृतीयोऽध्यायः

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः

(शूर इन्द्र) हे शूर इन्द्र (अस्य) इस (जगतः) जंगमके (तस्थुषः)

स्थावरके (ईशानम्) स्वामी (स्वर्दृशम्) सबके दृष्टा (त्वा) तुम्हें (अदुग्धाः) बिना दुहीं दूधभरे थनवाली (धेनवः इव) गौओंकी समान, सोमभरे चमस लियेहुए हम (अभि नोनुमः) बार २ प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः।
त्वां वृत्रेष्विंद्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः २

(कारवः) स्तुति करनेवाले हम (वाजस्य) अन्नके (सातौ) दानके निमित्त (इन्द्र) हे इंद्र ! (त्वामिद्धि) आपको ही (हवामहे) स्तुतियोंसे पुकारते हैं. हे इंद्र ! (सत्पतिम्) सज्जनोंके पालक आप को (नरः) अन्य मनुष्य भी (वृत्रेषु) शत्रुओंके होनेपर (हवन्ते) उनको जीतनेके निमित्त आह्वान करते हैं और (अर्वतः) अश्वसंबंधी (काष्ठासु) संग्रामोंमें युद्धकी इच्छासे आपको ही पुकारते हैं इसकारण हम भी आपको ही पुकारते हैं ॥ २ ॥

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुःसहस्रेणेव शिक्षति

(पुरूवसुः) पशु आदि बहुतसे धनवाला (यः) जो (मघवा) इंद्र (जरितृभ्यः) स्तुति करनेवाले हमारे अर्थ (सहस्रेणेव) सहस्र संख्या के धनसे मानो (शिक्षति) शिक्षा देताहै अर्थात् हमें पशु आदि बहुत सा धन देता है, (यथाविदे) जैसे हम जानें तिस प्रकार हे ऋत्विजो (वः) तुम (सुराधसम्) शोभनधनयुक्त (इंद्रम्) इंद्र देवताको (अभि) अभिमुख होकर (प्रार्च) अधिकतासे पूजो ॥ ३ ॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः। अभि
वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥४॥

हे ऋत्विक् यजमानो (दस्मम) दर्शनीय (ऋतीषहम्) बाधक शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले (वसोः) दुःखको दूर करनेवाले (अंधसः) सोमरूप अन्नके पीनेसे (मंदानम्) प्रसन्न होतेहुए (वः) तुम्हारे पूजनेयोग्य इंदको (स्वसरेषु) गोशालाओंमें (धेनवः) गौएं (वत्सं न) जैसे बछड़ोंको देखकर शब्द करती हैं तिसीप्रकार (गीर्भिः) स्तुतिरूपा वाणियोंसे (अभि नवामहे) प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥

हे ऋत्विजो ! (वः) तुम (तरोभिः) वेगवान् घोड़ोंवाले (विद्द्वसुम्) धन देनेवाले (इंद्रम्) इन्द्रको (सबाधः) बाधाओंको प्राप्त हुए (ऊतये) रक्षाके लिये (बृहत्) बृहत्सामको (गायंतः) गातेहुए आराधन करो, हम भी (सुतसोमे) संपादन किया है सोम जिसमें ऐसे (अध्वरे) यज्ञमें (भरम्) पोषण करनेवाले (कारिणं न) अपने हितकारीको जैसे पुत्रादि आराधना करते हैं तैसे (हुवे) आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥

तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा । आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥ ६ ॥

(तरणिरित्) युद्धादिमें त्वरा करनेवाला पुरुष (युजा) सहायभूत (पुरंध्या) बड़ी बुद्धिसे (वाजम्) अन्नको (सिषासति) प्राप्त होता है (सुद्रुवम्) सुंदर काष्ठवाली (नेमिम्) पहियेकी पुट्ठीको (तष्टा इव) जैसे बढ़ई नम्र करलेता है तैसे हे यजमानो (पुरुहूतम्) अनेकोंसे आह्वान कियेहुए (इन्द्रं) इद्रको (गिरा) स्तुति करके (वः) तुम्हारे निमित्त (आ नमे) अभिमुख करता हूँ ॥ ६ ॥

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः । आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (रसिनः) रसवाले (गोमतः) गौके दूध घृतादि से युक्त (नः) हमारे (सुतस्य) सम्पादन किये हुए सोमको (पिब) पियो और पीकर (मत्स्व) प्रसन्न हूजिये और (सधमाद्ये) जिस में शीघ्र ही देवता प्रसन्न होते हैं ऐसे यज्ञ में (आपिः) धनादि देनेवाले तुम (बन्धुः सन्) बान्धव बनतेहुए (नः) हमारी (वृधे) वृद्धिके निमित्त (बोधि) सावधान हूजिये (ते) तुम्हारे (धियः) अनुग्रह करनेवाले विचार हम सेवकोंकी (अवन्तु) रक्षा करें ॥ ७ ॥

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये । उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (हि) निश्चय (त्वम्) तुम दाताहो इसकारण (वसुत्तये) मुझे धन देनेके अर्थ (एहि) आओ और आकर (चेरवे) सदाचारवाले मुझे (भगम्) धन (विदाः) दो (मघवन्) हे इन्द्र! (गविष्टये) गौओंकी इच्छा करनेवाले मुझे (उद्वावृषस्व) गोधनसे सींचो (इन्द्र) हे इन्द्र अश्व चाहनेवाले मुझै (उत्) अश्वधन से सींचो अर्थात् मुझे धन, गौएं और घोड़े दो ॥ ८ ॥

न हि वश्चरमं च न वशिष्ठः परिमꣳसते। अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः

हे मरुतो ! (वशिष्ठः) वशिष्ठ (वः) तुम्हारे विषे (चरमं चन) छोटेको भी (नहि परिमंसते) छोड़कर स्तुति नहीं करता है किन्तु सबकी ही स्तुति करता है (अद्य) आज (अस्माकम्) हमारे (सुते) सोमका सम्पादन होनेपर (मरुत्) सोमकी इच्छा करनेहुए (विश्वे) सब (सचा) इकट्ठे होकर (पिबन्तु) पियें ॥ ९ ॥

मा चिदन्यद्विशꣳसत सखायो मा रिषण्यत । इन्द्रमित्स्तोता वृषणꣳसचा सुते मुहुरुक्था च शꣳसत ॥ १० ॥

(सखायः) हे स्तोताओ (अन्यत्) इन्द्रके स्तोत्रसे अन्य स्तोत्रको (मा चिद्विशंसत) मत उच्चारण करो (मा रिषण्यत) वृथा क्षीण मत होओ (सुते) सोमका संपादन होनेपर (वृषणम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (इन्द्रमित्) इन्द्रको ही (सचा) इकट्ठे होकर (स्तोत) स्तुति करो (उक्था च) इन्द्रविषयक शस्त्रोंको भी (मुहुः) वार वार (शंसत) उच्चारण करो ॥ १० ॥

इति तृतीयध्यायस्य प्रथम खंड

न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम्। इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्त्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा १

(यः) जो यजमान (सदावृधम्) सदा बढानेवाले (विश्वगूर्त्तिम्) सबके स्तुति करनेयोग्य (ऋभ्वसम्) बड़े (ओजसा) बल करके (अधृष्टम्) किसीसे न दबनेवाले (न) और (धृष्णुम्) शत्रुओं का धमकानेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रको (यज्ञैः) यज्ञोंसे अनुकूल (चकार)

करचुकता है (तम्) उसको (कर्मणा, नकिः, नशत्) दुःख देना आदि कर्मसे नहीं दबाता है ॥ १ ॥

न ऋते चिदभिश्रिषःपुरा जत्रुभ्य आतृदः। सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्त्ता विहृतं पुनः ॥ २॥

(यः) जो इन्द्र (अभिश्रिषः) जोड़नेकी सामग्रीके (ऋतेचित्) विना भी (जत्रुभ्यः) ग्रीवाओंसे (आतृदः) रुधिर निकलनेसे (पुरा) पहिले (सन्धिम्) जोडने योग्य वस्तुको (सधाता) जोड़नेवाला होताहै (मघवा) धनवान् (पुरूवसुः) अनेकों ऐश्वर्योंवाला वह इन्द्र (विहृतम्) कटकर अलग हुएको (पुनः) फिर (निष्कर्त्ता) संस्कार करदेता है ॥ २॥

आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये । ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये

(इन्द्र) हे इन्द्र (ब्रह्मयुजः) स्तोत्र पढ़कर हमारे दियेहुए हविसे युक्त (केशिनः) ग्रीवापर लंबे केशोंवाले (हिरण्मये) सुवर्णके बने-हुए (रथे) रथमें (युक्ताः) आगे पीछे जुतेहुए (आ सहस्रम शतम) सहस्रों और सैकडों (हरयः) घोड़े (त्वा) तुम्हें (सोमपीतये) सोमपान करनेके लिये (आ वहन्तु) हमारे यज्ञमें लावें ॥ ३ ॥

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः । मा त्वा केचिन्नियेमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र! (मन्द्रैः) आनन्द देनेवाले (मयूररोमभिः) मोर केसे रोमोंवाले (हरिभिः) घोड़ों सहित तुम (धन्वेव) जैसे बटोही मरुदेशको शीघ्र ही लाँघजाते हैं तैसे (तान्) उन गमनके प्रतिबन्ध-कोंको (अति) लाँघकर (आयाहि) आइये (इत्) और (पाशिनः न) जैसे हाथमें पाश लियेहुए व्याध पक्षियोंको पकड़ते हैं तैसे (त्वा) तुम्हें (मा नियेमुः) कोई न रोके (एहि) आइये ॥ ४ ॥

त्वमङ्ग प्रशꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् । न त्वदन्या मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः

(अङ्ग वशिष्ठ) हे जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ इन्द्र ! (देवः) प्रकाशित होतेहुए तुम (मर्त्यम्) अपनी स्तुति करनेवाले मनुष्यको (प्रशंसिषः) इसने भलेप्रकार स्तुतिकी इसप्रकार प्रशंसा करते हो (मघवन् इंद्र) हे धनवान् इन्द्र ! (त्वदन्यः) तुमसे अन्य कोई भी (मर्डिता) सुख देनेवाला (नास्ति) नहीं है, इसकारण तुम्हारे अर्थ यह (वचः) स्तुतिरूप वचन (ब्रवीमि) उच्चारण करता हूँ ॥ ५ ॥

त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः । त्वं वृत्राणि हꣳस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (शवसस्पतिः) बलका पालन करनेवाले (ऋजीषी) पूजित सोमको प्राप्त होनेवाले (त्वम्) तुम (यशा) यशस्वी (असि) हो, क्योंकि—(अप्रतीनि) बडे २ बलवान् भी जिनके सन्मुख न आवें ऐसे (पुरु) बहुतसे (वृत्राणि) राक्षसोंको (अनुत्तः) किसीके विना प्रेरणा किये ही (चर्षणीधृतिः) यजमानोंके रक्षक तुम (एक इत्) अकेले ही (हंसि) नष्ट करदेते हो ॥ ६ ॥

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे । इन्द्रꣳसमीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ७ ॥

(देवतातये) देवताओंके निमित्त किये जानेवाले यज्ञके अर्थ (इंद्रमित्) सब देवताओंमें इन्द्रको ही (हवामहे) आह्वान करते हैं (अध्वरे प्रयति) यज्ञके होते में (इन्द्रम्) इन्द्रको आह्वान करते हैं (समीके) यज्ञके सम्पूर्ण होनेपर अथवा संग्राम के समय (वनिनः) आराधना करनेवाले हम (इंद्रम्) इंद्रको आह्वान करते हैं (धनस्य) धनके (सातये) लाभके निमित्त (इद्रम्) इन्द्रका ही आह्वान करते हैं इसकारण हे इन्द्र शीघ्र आइये ॥ ७ ॥

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम । पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत

(पुरूवसो) हे बहुत धन वाले इन्द्र ! (मम) मेरी (इमाः) यह (याः) जो (गिरः) स्तुतिरूप वाणियें हैं (त्वा) तुम्है (वर्द्धन्तु) बढ़ावें (पावकवर्णाः) अग्निकी समान तेजस्वी (शुचयः) शुद्ध (विपश्चितः) विद्वान् (स्तोमै.) स्तोत्रोंसे (अभ्यनूषत) स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

उदुत्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते । सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ ९ ॥

(सत्राजितः) सदा शत्रुओंको जीतनेवाले (धनसा) अधिक धन वाले (अक्षितोतयः) क्षयरहित है रक्षा जिनकी ऐसे (वाजयन्तः) अन्नकी इच्छावाले रथ जैसे इधर उधर जाते हैं तैसे ही, (त्ये) प्रसिद्ध (मधुमत्तमाः) अत्यन्त मधुर (गिरः) श्रेष्ठ वचन (स्तोमासः) बहिष्पवमान् आदि स्तोत्र भी (उदीरते) तुम्हारे निमित्त उच्चारण कियेहुए ऊपरको फैलते हैं ॥ ९ ॥

यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् । आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सुसचा पिब ॥ १० ॥

(गौरः) गौरः मृग (तृष्यन्) प्यासा होकर (अपा) जलोंसे (कृतम्) पूर्ण कियेहुए (इरिणम्) तृणरहित तडागस्थान पर (यथा) जैसे (अवैति) अभिमुख होकर जाताहै तैसे ही (आपित्वे) बन्धुभावके (प्रपित्वे) प्राप्त होने पर (इन्द्र) हे इंद्र तुम (नः) हमारे पास (तूयम्) शीघ्र (आगहि) आओ, और आकर (कण्वेषु) हम कण्वों में (सचा) सबके इकट्ठे होकर सपादन करेहुए सोमको (सुपिब) सुन्दरता से पियो ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य द्वितीय खण्ड

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः । भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि

(शचीपते, शूर, इन्द्र) हे शचीपति पराक्रमी इन्द्र ! (विश्वाभिः)

सकल (ऊतिभिः) रक्षाओं सहित (शग्धि) इच्छित वरदान दो (भगं न) हमारे भाग्यकी समान (यशसम्) यशस्वी (वसुविदम्) धन देनेवाले (त्वा) तुम्हें (परिचरामि) आराधन करता हूँ ॥ १ ॥

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वा॑ऽअसुरेभ्यः । स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्द्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (स्वर्वान्) स्वर्गवाले तुमने (याः) जिन (भुजः) भोगने के धनोंको (असुरेभ्यः) बलवान राक्षसों से (आभरः) उन को मारकर लिया है, इसकारण (मघवन्) हे धनवान् इन्द्र! (अस्य) इस लाये हुए धनके दानसे (स्तोतारमित्) अपनी स्तुति करनेवाले को ही (वर्द्धय) वृद्धिवाला करो (च) और (ये) जो यजन करने वाले (त्वे) तुम्हारे अर्थ (वृक्तबर्हिषः) कुशासन बिछाते हैं, उनको भी धनसे बढ़ाओ ॥ २ ॥

प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो । वरूथ्ये३ वरुणे छंद्यं वचः स्तोत्रꣳ राजसु गायत

(ऋतावसो) हे यज्ञधन ! (मित्राय) मित्र देवताके अर्थ (सचथ्यम्) सेवायोग्य (छन्द्यम्) यज्ञशालामें होनेवाले (वचः) स्तोत्रको (अर्यम्णे) अर्यमा देवताके अर्थ (वरूथ्ये) यज्ञशाला में स्थित (वरुणे) वरुणके अर्थ (राजसु) इनके विराजमान होनेपर (प्रगायत) गाओ ॥ ३ ॥

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः । समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (आयवः) स्तुति करनेवाले मनुष्य (पूर्वपीतये) सब देवताओंसे प्रथम सोम पीनेके निमित्त (स्तोमेभिः) स्तोत्रों से (त्वाम् अभि) तुम्हारी स्तुति करते हैं (समीचीनासः) इकट्ठे हुए (ऋभवः) सर्वोने (समस्वरन्) भले प्रकार तुम्हारी ही स्तुति की (रुद्राः) रुद्रके पुत्र मरुतोंने (पूर्व्यम्) तुम पुरातन पुरुष की ही (गृणन्त) स्तुति की ॥ ४ ॥

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत । वृत्रꣳ हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ५ ॥

(मरुतः) हे स्तोताओ ! (बृहते) महान् (वः) तुम्हारे अपने इन्द्रके अर्थ (ब्रह्म) सामरूप स्तोत्रको (प्रार्चत) उच्चारण करो, तब (वृत्रहा) पापका नाशक (शतक्रतुः) इन्द्र (शतपर्वणा) सौ धारों-वाले (वज्रेण) वज्रसे (वृत्रम्) पापको (हनति) नष्ट करे ॥ ५ ॥

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् । येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ६

(मरुतः) हे मितभाषी स्तोताओ ! (वृत्रहन्तमम्) अत्यन्त पाप-नाशक (बृहत्) बृहत्सामको (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (गायत) गाओ (ऋतावृधः) सत्यको बढ़ानेवाले देवता वा ऋषि (देवाय) दीप्तिमान् इन्द्रके अर्थ (देवम्) दिव्य (जागृवि) सबको जगानेवाले (ज्योतिः) सूर्यको (येन) जिस सामके द्वारा (अजनयन्) उत्पन्न करतेहुए ॥ ६ ॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा । शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्यो-तिरशीमहि ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (नः) हमें (क्रतुम्) कर्म वा ज्ञान (आभर) दो और (यथा) जैसे (पिता) पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रोंको धन देता है तैसे (नः) हमें (शिक्ष) धन दो (पुरुहूत) हे इन्द्र ! (यामनि) यज्ञमें (जीवाः) हम जीव (ज्योतिः) सूर्यको (अशीमहि) प्रतिदिन प्राप्त हों

मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये । त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ८

(इन्द्र) हे इन्द्र (नः) हवि देनेवाले हमें (मा परावृणक्) मत त्यागो, तुम (नः) हमारे (सधमाद्ये) आनन्दके कारणभूत यज्ञमें सोमपानके अर्थ (भव) प्राप्त होओ (इंद्र) हे इंद्र (नः) हमें (त्वमित्) तुम ही (ऊती) रक्षामें स्थापित करो (त्वम्) तुम (नः) हमारे (आप्यम्) बन्धु हो (इंद्र) हे इंद्र (नः) हमें (मा परावृणक्) मत त्यागो ॥ ८ ॥

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।

पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ ९ ॥

(वृत्रहन्) हे इन्द्र (त्वा) तुम्हें (वयम्) हम (घ) निश्चय(सुतावन्तः) सोमका सम्पादन कियेहुए (आपः, न) जलोंकी समान नमे हुए प्राप्त होते हैं (पवित्रस्य) पवित्र सोमके (प्रस्रवणेषु) रस निकलते में (वृक्तबर्हिषः) आसन बिछाने वाले (स्तोतारः) स्तोता भी तुम्हारी (परिआसते) उपासना करते हैं ॥ ९ ॥

यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु । यद्वा पञ्चक्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ १० ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (नाहुषीषु) मानुषी (कृष्टिषु) प्रजाओंमें(ओजः) बल (च) और (नृम्णम्) धन है (यद्वा) और जो (पञ्च) पाँच (क्षितीनाम्) भूमियोंका (द्युम्नम्) दमकता हुआ अन्न है वह सब हमारे अर्थ (आ भर) दो, तथा (सत्रा) बड़े (विश्वानि) सब (पौंस्या) बलोंको भी दो ॥ १० ॥

इति तृतीयाध्यायस्य तृतीय खण्ड

सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोविता । वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः

(उग्र) हे दर्पवाले इन्द्र ! तुम (सत्यम्) सत्य (इत्था) इसप्रकार (वृषेत्) इच्छित वरदानों की वर्षा करनेवाले हो (वृषजूतिः) सोमरसका सेचन करनेवालोंसे आह्वान किये हुए(नः)हमारे(अविता) रक्षक होते हो (वृषाहि) तुम वरदान देनेवाले ही (शृण्विषे) सुने जाते हो (परावति) दूर भी (वृषेव) वरदानोंकी वर्षा करनेवाले ही हो (अर्वावति) समीपमें भी (वृषः) मनोरथ पूरक (श्रुतः) सुनेगए हो ॥१॥

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् । अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥ २ ॥

(शक्र) हे इन्द्र ! (यत्) जब (परावति) दूर द्युलोकमें (असि) होते हो और (वृत्रहन्) हे इन्द्र ! (यत्) जब (अर्वावति) उससे समीप अन्तरिक्ष देश में होते हो (अतः) इसलोक मे (इन्द्र) हेइन्द्र अपनी कान्ति से सर्वत्र फैलनेवाली (केशिभिः) केशवाले घोड़ों की समान स्थित (गीर्भिः) स्तुतियों से (त्वा) तुम्हें (सुतवान्) सोम संपादन करनेवाला यजमान (आविवासति) अपने यज्ञमें बुलाताहै॥२॥

अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् । इन्द्रं नाम श्रुत्य॑ शाकिनं वचो यथा

हे उद्गाता आदि (वः) तुम अथवा हे यजमानो (व) तुम्हारे हित के लिये (अन्धसः) सोमके (मदेषु) सम्पादन करते समय(वीरम्) शत्रुओंको भयदेनेवाले (नाम) शत्रुओंको नमानेवाले (विचेतसम्) विशिष्ट बुद्धिवाले (श्रुत्यं) सर्वत्र स्तुतियोग्य (शाकिनम) शक्तिमान् (इन्द्रम्) इन्द्रको (महा) बड़ी (गिरा) स्तुतिसे (वचः) तुम्हारी वाणी (यथा) जिसप्रकार प्रवृत्त होती हैं तैसे (गाय) गाओ ॥३॥

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये । छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यवया दिद्युमेभ्यः ॥ ४ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (त्रिधातु) तिमंजले (त्रिवरूथम्) शीत, धूप और वर्षाका वारण करनेवाले (स्वस्तये) कल्याण के लिये (छर्दिः) छये हुए (शरणम्) गृहको (मघवद्भ्यः) हविरूप धनवाले हमारे यजमानोंको (मह्यम्, च) मुझे भी दो (एभ्यः) इनके समीपसे (दिद्युम्) शत्रुओंके छोड़ेहुए दीप्तिमान् आयुधको (यवय) अलग करदो ॥४॥

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत । वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रतिभागं न दीधिमः ॥ ५ ॥

हे हमारे पुरुषों ! (श्रायन्त इव सूर्य्यम्) जैसे आश्रयमें रहनेवाली किरणें सूर्य्यका सेवन करती हैं तैसे (इन्द्रस्य) इंद्रके (विश्वेत्) सकल धनोंको (भक्षत) सेवन करो, वह इंद्र (वसूनि) जिन धनोंको (जाते)

उत्पन्न होनेपर (जनिमानि) उत्पन्न होजानेपर (ओजसा) बलसे (करोति) करता है, उसमेंसे (भाग न) पिताके धनमेंके भाग की समान उन धनोंको (प्रतिदीधिमः) हम धारण करें ॥ ५ ॥

न सीमदेव आप तदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतशा युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥ ६ ॥

(दीर्घायो) हे चिरञ्जीव इन्द्र ! वह (अदेव) इन्द्रनामक देवता से रहित (मर्त्यः) मरणधर्मा मनुष्य (सीम्) सब (तत्) प्रसिद्ध अन्नको (न आप) नहीं प्राप्त होता है (यः) जो मनुष्य इस इन्द्रके तुम्हारे अभिमत स्थान में जानेके निमित्त (एतग्वाचित्) विचित्र वर्णके घोड़ेवाला है (यः) जो (एतशः) घोड़ोंको (युयोजते) जोड़ता है (इंद्रः) इंद्र (हरी) हरिनामक घोड़ोंको (युयोजते) यज्ञमें जाने के निमित्त रथमें जोड़ता है, उसकी जो स्तुति नही करता वह उस को नही पाता है ॥ ६ ॥

आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रꣳसमत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम् ॥ ७ ॥

हे स्तोताओ (विश्वासु) सब (समत्सु) असुरोंके साथ युद्धोंमें (हव्यम्) जिसको अपनी रक्षाके निमित्त सब देवता अवश्य बुलाते हैं ऐसे (इन्द्रम्) इंद्रके निमित्त (नः) हमारे यज्ञमें (ब्रह्माणि) स्तोत्रों को (उपभूषत) शोभित और संगत करो (वृत्रहन्) हे पापनाशक ! (परमज्याः) युद्धोंमें शत्रुओंका वध करनेके लिये जिसके पास अविनाशी प्रत्यञ्चा है (ऋचीषम) हे स्तुतियोंसे अभिमुख करनेयोग्य देव (सवनानि) प्रातःसवन आदि तीन (ब्रह्माणि) स्तोत्रोंको (उपभूषत) अलंकृत करो ॥ ७ ॥

तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥ ८ ॥

(इंद्र) हे इंद्र (अवमम्) भूमिका नीची श्रेणीका (वसु) धन (तवेत्) तेरा ही है (त्वम्) तुम (मध्यमम्) चांदी सोना आदि मध्यम धनको (पुष्यसि) पुष्टकरते हो (विश्वस्य) सम्पूर्ण (परमस्य) रत्न आदि श्रेष्ठ धनके (सत्रा) सत्य ही (राजसि) राजा हो (त्वाम्) तुम्हैं (गोषु) गौ आदि धनादेनेमें (नकि वृण्वते) कोई भी वारण नहीं करसकते ॥ ८ ॥

क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः । अलर्षि युध्म खजकृत्पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥ ९ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र पहिले (क्व) कहां (इयथ) गएथे (क्वेत् असि) और इस समय कहां हो (पुरुत्राचित् हि) बहुतोंमें (ते) तुम्हारा (मनः) मनजाता है (युध्म) हे युद्धकुशल (खजकृत्) हे युद्ध करनेवाले (पुरन्दर) हे असुरोंके नाशक (अलर्षि) आइये (गायत्रा) गानेमें कुशल हमारे स्तोता (प्रगासिषु) स्तुति आदिको गाते हैं ९

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् । तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते १०

(वयम्) हम यजमान (एनम्) इस वज्रधारी इन्द्र को (इदा) इस समय (ह्यः) कलके बीतेहुए दिनमें (इह) इन दिनोंमें (अपीपेम) सोमसे तृप्त करचुके हैं (तस्मात् उ) तिस कारणसे ही (अद्य) आजके (सवने) सवनमें (सुतम्) सम्पादन कियेहुए सोमको (भर) धारण करो (नूनम्) इस समय (श्रुते) स्तुतिको सुनने पर (आभूषत) शोभायमान करो ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः । विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे

(यः) जो इन्द्र (चर्षणीनाम्) मनुष्योंका (राजा) स्वामी है (रथेभिः) रथोंसे (याता) यात्रा करता है (अध्रिगुः) जिसकी समान कोई गमन नहीं करसकता (विश्वासाम्) सकल (पृतनानाम्) सेनाओंका (तरुता) पार लगानेवाला है, (यः) जो (वृत्रहा) पापका

नाशक है उस (ज्येष्ठम्) सबके बड़े महाभाग इंद्रकी (गृणे) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ २ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! हम (यतः) जिस हिंसकसे (भयामहे) डरते हैं (ततः) तिससे (नः) हमें (अभयम्) अभय (कृधि) करो (मघवन्) हे इन्द्र ! (शग्धि) हमें अभय देनेकी शक्ति रखते हो (तव) तुम्हारी (ऊतये) रक्षाके लिये (द्विषः) हमारे शत्रुओंको (विजहि) नष्ट करो (मृधः) हमारे हिंसकोंको (वि) नष्ट करो ॥ २ ॥

वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणाꣳसत्रꣳ सोम्यानाम् द्रप्सः पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनाꣳ सखा ॥ ३ ॥

(वास्तोष्पते) हे गृहपते ! (स्थूणा) घरके आधारका खंभा (ध्रुवा) स्थिर हो (सोम्यानाम) सोमका सम्पादन करनेवाले हमको (अंसत्रम) कंधे आदि शरीरकी रक्षा करनेवाला बल प्राप्त हो (द्रप्सः) सोम पीनेवाला (शश्वतीनाम्) बहुतसी (पुराम्) असुरोंकी नगरियोंका (भेत्ता) विदारण करनेवाला (इंद्र) इन्द्र (मुनीनाम्) हम ऋषियोंका (सखा) मित्ररूप हो ॥ ३ ॥

बण्महाꣳ असि सूर्य्य बडादित्य महाꣳ असि महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाꣳ असि ॥ ४ ॥

(सूर्य) हे प्रेरक इन्द्र ! तुम (महान्) तेज करके अधिक (असि) हो (बट्) यह बात सत्य है (आदित्य) हे अदितिके पुत्र ! तुम (महान्) बलसे अधिक (असि) हो (बट्) यह बात सत्य ही है (महः) महान् (सतः) होनेवाले (ते) तुम्हारी (महिमा) महिमा (पनिष्टम) स्तोताओंसे स्तुतिकी जाती है (देव) हे सूर्यदेव (मह्ना) वीर्यसे भी (महान्) बड़े (असि) हो ॥ ४ ॥

अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ२ यदिन्द्र ते सखा। श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ॥ ५ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (यत्) जब (ते) तुम्हारा (सखा) मित्ररूप पुरुष होजाता है तब (इत्) अवश्य ही (अश्वी) घोड़ोंवाला (रथी) रथोंवाला (सुरूपः) सुन्दर रूपवाला (गोमान्) बहुतसी गौओंवाला होताहै और (श्वात्रभाजा) शीघ्र प्राप्त होनेवाले श्रेष्ठ धनसहित (वयसा) अन्न करके (सदा) सर्वदा (सचते) युक्त होताहै अर्थात् शीघ्र ही धन और अन्न पाता है तदनन्तर (चन्द्रैः) सबको प्रसन्न करनेवाले स्तोत्रोंमें युक्त होकर (सभाम्) ज्ञानियोंकी सभा आदिमें (उपयाति) जाताहै ॥ ५ ॥

यद्द्याव इन्द्र ते शतँ२ शतं भूमीरुत स्युः। न त्वा वज्रिन्त्सहस्रँ२ सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (यत्) यदि (द्यावः) द्युलोक (शतम्) सैकड़ों (स्युः) हों तो भी (त्वा) तुम्हें (न) नहीं (अनु अष्ट) व्यापसकते अर्थात् आपकी व्यापना नहीं करसकते (उत) और (भूमीः) भूमी (शतम्) सौ हों तो भी आपकी मूर्त्तिका प्रतिबिम्ब बनानेमें पर्याप्त नहीं होसकतीं (वज्रिन्) हे वज्रधारी ! (सहस्रम्) सहस्रों (सूर्याः) सूर्य (त्वा) आपको (न) प्रकाशित नहीं करसकते अर्थात् आपकी प्रभाके सामने सहस्रोंसूर्योंकी प्रभा भी दबजाती है (जातम्) उत्पन्न हुए पदार्थों में से कोई पदार्थ भी आपको नहीं व्यापसकता (रोदसी) द्यावापृथिवी आपको नहीं व्यापसकते, क्योंकि—तुम सबसे ही बड़े हो ॥ ६ ॥

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः। सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे।

(इन्द्र) हे इंद्र (यत्) यदि (प्राक्) पूर्व दिशामें वर्त्तमान (वा) या (अपाक्) पश्चिम दिशामें वर्त्तमान (उदक्) उत्तर दिशामें वर्त्त-

मान (न्यक्) नीचे वर्त्तमान (नृभिः) स्तुति करनेवाले मनुष्यों करके (हूयसे) अपने २ कार्यके लिये आह्वान कियेजाते हो (सिम) हे श्रेष्ठ इन्द्र ! तो भी (आनवे) आनवके विषयमें (पुरु) बहुत (नृषूतः) उन के स्तुति करनेवालोंसे प्रेरणा कियेहुए (असि) होते हो अर्थात् स्तोता आपको राजाको हित करनेके निमित्त प्रेरणा करते हैं और (प्रशर्ध) हे अधिकतासे शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले इन्द्र ! (तुर्वशे) तुर्वशके विषयमें भी स्तोताओंसे आह्वान कियेजाते हो ॥ ७ ॥

कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति । श्रद्धाहि ते मघवन् पार्य्ये दिवि वाजी वाजꣳसिषासति

(वसो इन्द्र) हे व्यापक इन्द्र ! (तम्) तिन प्रसिद्ध (त्वा) तुम्है (कः) कौन मनुष्य (आदधर्षति) धमकी देसकता है ? (मघवन्) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे अर्थ जो (श्रद्धा) श्रद्धायुक्त हुआ यजमान (वाजी) हविवाला होताहै वह (पार्ये दिवि) सोम सम्पादनके दिन (वाजम्) हविरूप अन्नको (सिषासति) देना चाहता है ॥ ८ ॥

इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः । हित्वा शिरो जिह्वया रारपच्चरत्त्रिꣳशत्पदा न्यक्रमीत्

(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र अग्नि देवताओं ! (अपात) चरणरहित (इयम्) यह उषा (पद्वतीभ्यः) चरणवाली (सुताभ्यः) प्रजाओंमे (पूर्वा) प्रथम (आगात्) आती है, तथा प्राणियोंके (शिरः) शिरको (हित्वा) त्यागकर (जिह्वया) प्राणियोंमें स्थित उनकी वाक् इन्द्रियके द्वारा (रारपत) अत्यन्त शब्द करती हुई (चरत्) ऐसा वर्त्ताव करती हुई उषा (त्रिशत्) तीस मुहूर्त्तोंको (न्यक्रमीत्) एक दिनमें ही लाँघ-लेती है यह सब वीरता तुम्हारी ही है ॥ ९ ॥

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः । आ-शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (नेदीयः) बहुत समीपकी हमारी यज्ञशाला में (मितमेधाभिः) परिमित बुद्धियोंके और (ऊतिभिः) रक्षाओंके साथ (एदिहि) अवश्य आओ (शन्तम) हे परमसुखरूप (शन्तमाभि) परमसुखरूप (अभिष्टिभिः) प्राप्तियोंके साथ (आ) आओ (स्वापे) हे बन्धो (स्वापिभिः) सुखदायक प्राप्तियोंके साथ (आ) आओ १०

तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्ड समाप्त

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्। आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्रियावृधम्॥

हे हमारे पुरुषो ! (वः) तुम (अजरम्) जरारहित (प्रहेतारम्) शत्रुओंके प्रेरक (अप्रहितम्) किसीके भी न भेजेहुए (आशुम्) वेगवान (जेतारम्) शत्रुओंको जीतनेवाले (हेतारम्) यज्ञभवनमें पहुँचनेवाले (रथीतमम्) रथियोंमें श्रेष्ठ (अतूर्तम) जिनको कोई नहीं मारसकता ऐसे (तुग्रियावृधम्) जलको बढ़ानेवाले इन्द्रको (ऊतये) रक्षाके निमित्त (इतः कुरुत) आगे करो ॥ १ ॥

मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन्। आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (त्वा) तुम्हें (वाघतश्चन) यजमान भी (अस्मत्) हमसे (आरे) दूर (मो निरीरमन्) रमण न करावें, इस कारण तुम (आरात्ताद्वा) दूर रहकर भी (नः) हमारे (सधमादम्) यज्ञको (आगहि) प्राप्त हूजिये (वा) या (इह) यहां (सन्) वर्त्तमान होते हुए (उपश्रुधि) हमारी स्तुतिको सुनिये ॥ २ ॥

सुनोत सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे। पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः

हे मेरे पुरुषो ! (वज्रिणे) वज्रधारी (सोमपाव्ने) सोमपान करने वाले (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (सोमम्) सोमको (सुनोत) सम्पादन करो (अवसे) इन्द्रको तृप्त करनेके निमित्त (पक्तीः) पुरोडाशोंको (पचता) पकाओ (कृणुध्वमित्) इन्द्रको प्रसन्न करनेवाले कर्म करो क्योंकि इन्द्र (मयः) सुख (पृणन्नित्) यजमानको देताहुआ ही (पृणते) हवियोंको ग्रहण करता है ॥ ३ ॥

यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम्। सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥ ४ ॥

जो इन्द्र (सत्राहा) शत्रुओंका वध करता है (विचर्षणिः) विशेषकपसे सबको देखनेवाला है, उस इन्द्रको हम (हुमहे) स्तुति के पदोंसे आह्वान करते हैं (सहस्रमन्यो) हे शत्रुओंका नाश करनेको सहस्रों प्रकार के कोपसे युक्त (तुविनृम्ण) हे बहुधन (सत्पते) हे सज्जनों के पालक (समत्सु) संग्रामो में (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि के अर्थ (भव) हूजिये ॥ ४ ॥

शचीभर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् । मा वां रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ॥ ५ ॥

(शचीवसू) हे हमारे किये हुए ज्योतिष्टोम आदि कर्मको ही धन मानने वाले अश्विनीकुमारों ! तुम (शचीभिः) हमारे यज्ञरूप कर्मोंसे (दिवा-नक्तम्) रात दिन (दिशस्यतम्) अभिमत फलदो (वाम) तुम्हारा (रातिः) दान (कदाचन) कभी भी (उपदसत्) उपक्षीण न हो और [illegible] हमारा भी (रातिः) दान (कदाचन) कभी उपक्षीण न [illegible] आप सदा [illegible] अभीष्ट देते रहें और हम सदा आप के निमित्त यज्ञादि करते रहें ॥ ५ ॥

यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः । आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम् ॥ ६ ॥

(यदा कदा च) जिस किसी समय भी (मीढुषे) हवि देनेवाले यजमानके लिये (मर्त्यः) मनुष्य (स्तोता) स्तुति करनेवाला (जरेत) स्तुति करै (आदित्) तदनन्तर ही (वरुणम्) पापों को दूर करनेवाले (विव्रतानाम) नाना प्रकारके कर्मों के (धर्त्तारम्) धारण करनेवाले वरुण नामक देवताको (विपा) विशेष रक्षा करने वाली (गिरा) स्तुतिसे (वन्देत) स्तुति करै ॥ ६ ॥

पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मध्यातिथे । यः संमिश्लो हर्य्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ७ ॥

(इन्द्राय) हे इन्द्र ! (मेध्यातिथे) हे यज्ञमें अतिथि बनने वाले (अन्धसः) पिये हुए सोमका (मदे) आनन्द आनेपर तुम हमारी (गाः) गौओंको (पाहि) रक्षा करो (यः) जो (इन्द्रः) इन्द्र (हर्यौ) हरि नामक घोड़ोंको (संमिश्लः) रथमें जोतता है (वज्री) वज्रधारी है (हिरण्ययः) हितकारी और रमणीय है (हिरण्ययः) सुवर्ण के रथवाला है ॥ ७ ॥

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः । सत्राच्या मघवान्त सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ ८ ॥

(उभयम) स्तोत्र और शस्त्र दोनों प्रकारका (नः) हमारा (इदं वचः) यह वचन (अर्वाक्) [illegible] (इन्द्रः) इन्द्र (शृणवत्) सुने (च) और [illegible] ([illegible]) [illegible] करने वाली (धिया) बुद्धिसे [illegible] (मघवान्) धनवान् (शविष्ठ) अत्यन्त बलवान् इन्द्र (सोमपीतये) सोम पान करनेको (आ गमत्) आवै ॥ ८ ॥

महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय देयसे । न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ९ ॥

(अद्रिवः) हे वज्रवाले इन्द्र ! (महे च) महान भी (शुल्काय) मूल्य के लिये मैं तुम्हें (न) नहीं (परादेयसे) बेचता हूं (वज्रिवः) हे वज्रहस्त (सहस्राय) सहस्रके लिये (न) नहीं (अयुताय) दश सहस्रके लिये (न) नहीं बेचता हूँ (शतामघ) हे बहुत धनवाले (शताय) अपरिमित धनके लिये भी नहीं बेचता अर्थात् चाहे जितना धन मिलजाय परंतु मैं हवियोंके द्वारा आपका पूजन त्यागना नहीं चाहता ॥ ६ ॥

वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः । माताच मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (तुम (मे) मेरे (पितुः) पितासे भी (वस्या-

म्) अधिक धनवान् हो (उत) और (अभुञ्जतः) पालन न करते हुए (भ्रातुः) मेरे भ्रातासे अधिक धनवान् हो, (वसो) हे व्यापक (मे) मेरी (माता) माता (च) और तुम भी (समा) समान होकर (वसुत्वनाय) धनवान् होनेके निमित्त (राधसे) अन्नके लिये (छदयथ.) मुझे प्रतिष्ठित करो ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य पञ्चम खण्ड समाप्त

इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः । ताꣳ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ १ ॥

(वज्रहस्त) हे वज्रधारी (दध्याशिरः) दहीमें मिलेहुए (इमे) यह (सोमासः) सोम (इन्द्राय) तुम्हारे निमित्त (सुन्विरे) संपादन कियेगए थे (तान्) उन सोमोंको (मदाय) आनन्दके निमित्त (पीतये) पीनेको (ओकः) यज्ञमण्डपमें (आ) अभिमुख (हरिभ्याम्) अश्वोंके द्वारा (आयाहि) आइये ॥ १ ॥

इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः । मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे (मदाय) हर्षके निमित्त (उक्थिनः) स्तोत्रयुक्त (इमे) यह (सोमाः) सोम (चिकित्रे) दीखते हैं और (मधोः) प्रसन्नता देनेवाले सोमको (पपानः) अधिकतासे पीनेहुए हमारी (गिरः) स्तोत्ररूप वाणियोंको (उपशृणु) सुनिये (गिर्वणः) हे स्तुतियोंसे प्रार्थना करनेयोग्य इन्द्र ! (स्तोत्राय) स्तुति करनेवाले मुझे (रास्व) इच्छित फल दीजिये ॥ २ ॥

आ३ त्वाद्य सबर्दुघाꣳ हुवे गायत्रवेपसम् । इन्द्र धेनुꣳ सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरं कृतम्

(इन्द्र) हे इन्द्र (अद्य) इस समय (सर्वदुघाम्) अधिक दूध देनेवाली (गायत्रवेपसम्) प्रशंसनीय वेगवाली (सुदुघाम्) सुखसे दुहने योग्य (अन्याम्) विलक्षण प्रकारकी (उरुधाराम्) जिसके स्तनोंमें

से अनेकों दुग्धधारा निकलती हैं ऐसी (इषम्) चाहनेयोग्य (धेनुम) धेनुरूप (अरमकृतम्) शोभा देनेवाले इन्द्रको (नु) शीघ्र (आहुवे) आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥

न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः । यच्छिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (बृहन्त) बलसे बड़े (पीडवः) बलवान् दृढ़ (अद्रयः) पर्वत भी (त्वा) तुम्हें (न) नहीं (वरन्ते) बलसे निवारण करसकते हैं (स्तुवते) स्तुति करनेवाले (मावते) मुझसे पुरुष को (यत्) जो (वसु) धन (शिक्षसि) देते हो (ते) तुम्हारे (तत्) उस धनको (नकिः) कोई नहीं (आमिनाति) रोकसकता है ॥४॥

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे । अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥५॥

(सुते) सोमरसके सम्पन्न होनेपर (सचा) ऋत्विजोंके साथ (पिबन्तम्) सोमको पीनेहुए (ईम्) इस इन्द्रको (को वेद) कौन जानता है ? अर्थात् कोई नहीं जानता (कत्) कितने (वयः) अन्न को (दधे) धारण करता है (यः अयम)जो यह इन्द्र (शिप्री) वेगवाला (अन्धसः) सोमसे (मन्दानः) आनन्दित होताहुआ(ओजसा) बलसे (पुरः) शत्रुओंके नगरों को (विभिनत्ति) नष्ट करता है ॥५॥

यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि । अस्माकमꣳशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! (यत्) क्योंकि (शासः) तुम यज्ञके विघ्नकर्त्ताओंको दण्ड देते हो इसकारण (सदसः) हमारी यज्ञशाला के (परि) चारों ओर वर्त्तमान (अव्रतम्) यज्ञकर्मके विरोधीको (च्यावय) दूर निकाल दो और (मघवन्) हे धनपते ! (पुरुस्पृहम्) बहुतोंके चाहने योग्य (अस्माकम्) हमारे (अंशुम्) सोमको(वसव्ये) निवास योग्य स्थान में (अधिवर्धय) अधिक बढ़ाओ ॥ ६ ॥

त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः। पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः॥७

(त्वष्टा) रूपका अभिमानी त्वष्टा देवता (पर्जन्यः) मेघका अधिष्ठात्री देवता (ब्रह्मणस्पतिः) मंत्राभिमानी ब्रह्मणस्पति देवता (पुत्रैः भ्रातृभिः) अपने पुत्र और भ्राताओं सहित (अदितिः) देवमाता अदिति (नः) हमारे (दुस्तरम्) विघ्नकर्त्ताओंके कारण तरनेको अशक्य (त्रामणम्) रक्षा करने योग्य (वचः) यज्ञीय स्तुतिको (नु) शीघ्र (पातु) रक्षाकरें ॥ ७ ॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे। उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! तू (कदाचन) कभी भी (स्तरीः) हिंसक (न असि) नहीं है (दाशुषे) हवि देनेवाले यजमानके अर्थ (सश्चसि) ऋत्विजोंको प्राप्त कराते हो (मघवन्) हे धनवन (देवस्य) प्रकाश स्वरूप (ते) तुम्हारा (भूयः) बहुतसा (दानम्) दान (उपोपेत् पृच्यते) हमारे समीप आकर प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

युंक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः। अर्वाचीनो मघवन्त सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरागहि ॥ ९ ॥

(वृत्रहन्तम) हे सर्वथा पापका नाश करनेवाले इन्द्र ! (हि) निश्चय (हरी) अपने घोड़ोको (युङ्क्ष्व) रथमें जोडो (मघवन्) हे धनवन् (उग्रः) प्रकट बलवाले तुम (अर्वाचीनः) हमारे अभिमुख (ऋष्वेभिः) दर्शनीय (मरुद्भिः) मरुतोंके साथ (परावतः) दूर द्युलोकसे (आगहि) आइये ॥ ९ ॥

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः। स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि

(वज्रिन्) हे वज्रधारी ! (त्वाम्) जिन तुम्है (भूर्णयः) हवि

अर्पण करनेवाले (नरः) कर्मकर्त्ता यजमानोंने (ह्यः) आज (ह्यः) पहिले दिन (अपीप्यन्) सोम पिलाया था (इंद्र) हे इंद्र (सः) वह तुम (स्तोमवाहसः) स्त्रोत्र पढ़नेवाले हमारे स्तोत्रको (इह) इस यज्ञमें (श्रुधि) सुनो (स्वसरम्) हमारे स्थानमें (आगहि) आइये

तृतीयाध्यायस्य सप्तम खण्ड समाप्त

प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः । अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥

(आयती) आतीहुई (उच्छन्ती) अन्धकारोंको दूर करतीहुई (दिवः) सूर्यकी पुत्री उषा (प्रत्यदर्शि उ) सबोंने निश्चितरूप देखी (चक्षुषा) दर्शनसे (मही) बड़े भारी रात्रिके अन्धकारको (उप-उ-वृणुते) दूर करती है (सुनरी) मनुष्योंकी श्रेष्ठ नेत्र रूप उषा (ज्योतिः) प्रकाश को (कृणोति) करती है ॥ १ ॥

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना । अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशं विशꣳहि गच्छथः ॥ २ ॥

(इमाः) यह (दिविष्टयः) द्युलोकको चाहनेवाली प्रजाएं (उ) ऋत्विज भी (अश्विना) हे अश्विनीकुमारो ! (उस्रौ) व्यापक (वाम्) तुम्हें (हवन्ते) आह्वान करते हैं (अयम्) यह मैं भी (शचीवसू) हे कर्मको धन माननेवाला (वाम्) तुम दोनो को (अवसे) अपनी रक्षाके लिये अथवा तुम दोनोंको तृप्त करनेके लिये (अह्वे) आव्हान करता हूँ (हि) क्योंकि तुम (विशंविशम्) अपनी स्तुति करनेवाले प्रत्येक यजमानके समीप (गच्छथः) जाते हो ॥ २ ॥

कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः । घ्नता वामश्नया क्षयमाणोꣳशुनेत्थमु आद्वन्यथा

(देवा) प्रकाशवान् (अश्विना) हे अश्विनीकुमारो ! (कुष्ठः) भूमण्डल पर निवास करनेवाला (कः) कौन (मर्त्यः) मनुष्य (वाम्) तुम्हारा (तपानः) प्रकाशक होता है ? (वाम्) तुम्हारे निमित्त (अश्नया) सोमरस निकालनेके पाषाणों कहके (घ्नता) कूटेहुए

(अंशुना) सोमसे (तृयमाणः) थकाहुआ यजमान (आढ्न् यथा) यथेच्छ अन्न रसादि खानेवाले राजाकी समान (इत्थम्-उ) इसप्रकार ही ऐश्वर्यवान् होता है ॥ ३ ॥

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु । तमश्विना पिबतं तिरो अह्न्यं धत्तꣳ रत्नानि दाशुषे ॥ ४ ॥

(अश्विना) हे अश्विनीकुमारो ! (वाम्) तुम्हारे (दिविष्टिषु) यज्ञोंमें (मधुमत्तमः) अत्यन्तमधुर (अयम) यह सोम (सुतः) सम्पादन कियागया है (तिरो अह्न्यम्) पहिले दिन सम्पादन किये हुए सोमको (पिबतम्) पियो (दाशुषे) हवि देनेवाले यजमानको (रत्नानि) श्रेष्ठ धन (धत्तम) दो ॥ ४ ॥

आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या। भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥ ५ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (भूर्णिम) भरणकर्त्ता (मृगं न) सिंहकी समान (त्वा) तुम्हे (सवनेषु) यज्ञोंमें (सोमस्य) सोमके (गल्दया) रससे (ज्या) विजयशील स्तुति करके भी युक्त (अहम्) मैं (सदा) सर्वदा (याचन्) याचना करताहुआ (आचुक्रुधम) क्रोधको दूर करता हूँ (कः) कौन पुरुष (ईशानम्) अपने स्वामीसे (न) नहीं (याचिषत्) याचना करता है ? अर्थात् सब ही स्वामीसे याचना करते हैं, इसी कारण मैं भी अपने स्वामी आपसे याचना करता हूँ, कि—ऐसी कृपा करिये, जिससे मुझे किसीके ऊपर क्रोध न आवे ५

अध्वर्यो द्रावया त्वꣳ सोममिन्द्रः पिपासति । उपो नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥ ६ ॥

(अध्वर्यो) हे यज्ञके नेता अध्वर्यु ! तू (सोमम्) सोमको (द्रावया) उत्तरवेदी नामक स्थानपर पहुँचा क्योंकि (इन्द्रः) इंद्र (पिपासति) पाना चाहता है (वृषणा) युवा (हरी) घोड़ों को (नूनम्) आज

(उपोयुयुजे) सारथिने रथमें जोड़ा है (वृत्रहा) वृत्रासुरके नाशक इंद्र (आजगाम) आगए॥ ६ ॥

अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः । पुरूवसुर्हि मघवन् वभूविथ भरे भरे च हव्यः ७

(इन्द्र)हेइन्द्र (ज्यायः) हे सर्वोसे बड़े इंद्र ! (इषतः) याचना किये हुए (तत्) प्रसिद्ध धन (कनीयसः) मुझ छोटेको (अभ्याभरः) सब ओरसे लाकर दीजिये (मघवन्) हे धनवान् ! (पुरूवसुः) बहुतों से याचना करने योग्य (वभूविथ) हुएहो (भरे भरे) प्रत्येक संग्राम में (हव्यः) आह्वान करने योग्य और हवि देनेयोग्य भी हुए हो ॥७॥

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय । स्तोता-रमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ८

(इन्द्र) हे इंद्र (यत) जिसकारणसे (त्वम्) तुम(यावतः) जितने धनके (ईशिषे) स्वामी हो (एतावत्) उतने ही धनका (अहम्) मैं (ईशीय) स्वामी होऊं (रदावसो) हे धन देनेवाले इन्द्र ! तिससे मैं (स्तोतारम्) अपने सामगान करनेवाले स्तोताको (इत् दधिषे) धन देकर अवश्य रखसकूं (पापत्वाय) वृथा नष्ट करनेको (न) नहीं (रंसिषम्) दूँ ॥ ८ ॥

त्वमिन्द्र प्रतूर्त्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः । अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः

(इंद्र) हे इंद्र (त्वम) तुम (प्रतूर्त्तिषु) संग्रामों में (विश्वाः) सब (स्पृधः) युद्ध करनेवाली शत्रुओंकी सेनाओंका (अभ्यसि) तिरस्कार करते हो (तूर्य) हे शत्रुओंके बाधक इंद्र ! (त्वम्) तुम (अशस्तिहा) दैवी आपत्तियों के नाशक हो (जनिता) हमारे शत्रुओं की आपत्ति उत्पन्न करनेवाले हो (वृत्रतूः) सकल शत्रुसमूह का नाश करनेवाले (असि) हो (तरुष्यतः) हमारे विघ्नकर्त्ताओं का निवारण करते हो ॥ ९ ॥

प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि । न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ॥ १० ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! जो तुम (दिवः) द्युलोकके (सदोभ्यः) स्थानोंसे (ओजसा) बल करके (प्ररिरिचे) अधिकता करके श्रेष्ठ होते हो और हे इंद्र ! (पार्थिवम्) पृथिवीपर उत्पन्न हुआ (रजः) लोक (त्वा) तुम्हें अपने बड़े शरीरसे (न विव्याच) व्याप्त नहीं करसका ऐसे बलवान् तुम हमें (विश्वम्) विश्वको (अति) त्यागकर (ववक्षिथ) धारण करो अर्थात् हमें सबसे श्रेष्ठ बनाओ ॥ १० ॥

इति तृतीयाध्यायस्य अष्टम खण्ड समाप्त

असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच । बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसो मदेषु ॥ १ ॥

(देवम्) प्रकाशमय (गोऋजीकम्) गोघृत दुग्धादिसे संस्कार किये हुए (अन्धः) सोमरूप अन्नको (असावि) संपादन किया (ईम्) यह (इंद्रः) इंद्र (अस्मिन्) इस सम्पादन कियेहुए सोमरूप अन्नमें (जनुषा) स्वभावसे ही (न्युवोच) अत्यन्त तत्पर होता है (हर्यश्व) हे इन्द्र ! (त्वा) तुम्हें (यज्ञैः) स्तोत्र और हवियोंमें (बोधामसि) बोध कराते हैं (अन्धसः) सोमके (मदेषु) मदोंमें (नः) हमारे (स्तोमम्) स्तोत्रको (बोध) जानो ॥ १ ॥

योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्रयाहि । असो यथा नोऽविता वृधश्चिद्ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे (सदने) विराजमान होनेके निमित्त (योनिः) स्थान (अकारि) रचागया (पुरुहूत) हे अनेकोंके आह्वान कियेहुए इन्द्र (नृभिः) नेता मरुतोंके साथ (तम्) उस स्थान पर (आ प्रयाहि) आइये (नः) हमारे (यथा) जैसे (अविता) रक्षक (वृधश्चित्) वृद्धि करनेवाले (असः) होओ हमें (वसूनि) धन (ददः) दीजिये (च) और (सोमैः) हमारे सोमोंसे (ममदः) आनन्दित हूजिये ॥ २ ॥

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान् बद्बधानाँ अरम्णाः । महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः

सृजद्धारा अव यद्दानवान् हन् ॥ ३ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (त्वम्) तुमने (उत्सम्) जलभरे मेघको (अदर्दः) विदीर्ण किया है, फिर (खानि) मेघमेंके जल निकलनेके द्वारोंको (व्यसृजः) विशेषरूपसे रचा है (बद्धधानान्) बाधा देनेवाले (अर्णवान्) जलवाले मेघोंको (अरम्णाः) उपकाया है (यत्) जिन तुमने (महान्तम्) बहुतसे (पर्वतम्) मेघको (व्यसृजत्) विवृत किया है (धाराः) जलकी धाराओंको छोड़ा है (यत्) जब (दानवान्) दानवोंको (अवहन्) विनष्ट किया है ॥ ३ ॥

सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण वाजम् । आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्याम त्वोताः ॥ ४ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र (सुष्वाणासः) सोमका अभिषव करनेवाले हम (त्वा स्तुमसि) तुम्हारी स्तुति करते हैं (तुविनृम्ण) हे बहुत धनवाले इन्द्र (वाजम्) सुन्दर पुरोडाशरूप अन्न (सनिष्यन्तः) विभाग करके देते हुए हम स्तुति करते हैं, इस कारण (नः) हमें (सुवितम्) प्राप्त होनेयोग्य श्रेष्ठ धनको (आभर) दीजिये (यस्य) जिस धनको अतिप्रिय होनेसे (कोना) कामना करते हो वह धन हमें दो (त्वोताः) तुम्हारे रक्षा कियेहुए (तना) बहुतसे धनोंको (त्मना) स्वयं ही (सह्याम) आपके अनुग्रहसे पाते हैं ॥ ४ ॥

जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनां । विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ५ ॥

(वसूनाम्) बहुतसे धनोंमें (वसुपते) हे धनोंके स्वामी (ते) तुम्हारे (दक्षिणं हस्तम्) दाहिने हाथको (वसूयवः) धनकी इच्छा करनेवाले हम (जगृह्म) ग्रहण करते हैं (शूर) हे पराक्रमी !(गोनाम्) बहुतसी गौओंमें (त्वा) तुम्हें (गोपतिम्) गौओंका स्वामी (विद्मः) जानते हैं, इस कारण हमें (चित्रम्) अनेकप्रकार के (वृषणम्) मनोरथोंके पूरक (रयिम्) धनको (दाः) दो ॥ ५ ॥

इन्द्रं नरो नेमधिताहवन्ते । यत्पार्या युनजते

धियस्ताः । शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ ६ ॥

(यत्) जब (पार्याः) युद्धमें रक्षा के कारणभूत (ताः) प्रसिद्ध (धियः) कर्म (युनजते) प्रयोग किये जाते हैं तब (नरः) यज्ञ वा संग्राम करनेवाले मनुष्य (मेधिता) यज्ञ वा संग्राममें (इन्द्रम) जिस इन्द्रको (हवन्ते) आह्वान करते हैं वह (शूरः) वीर (नृषाता) मनुष्योंको विभाग करके यथास्थान पर खड़ा करनेवाले तुम (श्रवसः) अन्न वा बलके (चकाने) चाहने पर (गोमति) गौआदि पशुओंसे युक्त (व्रजे) गोठमें (नः) हमें (भज) भागी करो ॥ ६ ॥

वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः । अपध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्या३स्मान्निधयेव बद्धान् ॥ ७ ॥

(वयः) गमन करने वाली (सुपर्णाः) सुख देता है पड़ना जिन का ऐसी (प्रियमेधाः) यज्ञको प्रेम करने वाली (ऋषयः) देखनेवाली (नाधमानाः) प्रकाशकी याचना करती हुई सूर्यकी किरणें (इन्द्रम्) इन्द्रको (उपसेदुः) प्राप्त हुई (इन्द्र) हे इन्द्र (ध्वान्तम्) अंधकारको (अपोर्णुहि) दूर करो (चक्षुः) तेजको (पूर्द्धि) पूर्ण करो (निधया इव बद्धान्) पाशियोंसे बँधेहुएसे (अस्मान्) हमें (मुमुग्धि) छुड़ाओ ॥ ७ ॥

नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तः हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा । हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ८ ॥

(सुपर्णम) सुन्दर है पतन जिसका (पतन्तम्) अन्तरिक्षमें जाते हुए (हिरण्यपक्षम्) सुवर्णके पक्षोंवाले (वरुणस्य) जलाभिमानी देवताके (दूतम्) दूत (यमस्य) नियामक विद्युताग्नि के (योनौ) स्थान अन्तरिक्ष (शकुनम्) पक्षीरूपसे वर्त्तमान (भुरण्युम्) वर्षा आदिके द्वारा सब जगतका पोषण करनेवाले (त्वा) तुम्हें (हृदा) मनसे (वेनन्तः) चाहतेहुए स्तोता (नाके) अन्तरिक्ष की ओरको (अभ्यचक्षत) देखते हैं, तब तुम जाते हो ॥ ८ ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः॥ ९॥

पूर्व मन्त्रमें वर्णन किया हुआ (वेनः) वेन नामक गन्धर्व (पुरस्तात्) पूर्वकाल में (जज्ञानम्) उत्पन्न हुए अथवा ज्ञानवान (ब्रह्म) ब्राह्मण जातिरूप (प्रथमम्) आद्य शरीरको(विसीम) मुखसे आनन्द सूचक शब्द करता हुआ (अतः) इस सबको दीखती हुई (सुरुचः) श्रेष्ठ कान्ति से (आव) रक्षा करता हुआ अर्थात् ब्राह्मण शरीरको बड़ा कान्तिमान् करदिया (सः) वह गन्धर्व (बुध्न्याः) अन्तरिक्ष में की (अस्य. उपमा.) इस शरीरकी कान्ति की समान आदित्य आदिके प्रकाशरूप कान्तियों को (विष्ठाः) विशेषरूप से स्थापन करता हुआ तथा (सतः) इस समय विद्यमान (च) और (असतः) आगे को होने वाले इस समय अविद्यमान (योनिम्) उत्पत्तिके कारणको या निवासस्थानको (विवः) विभाग करता हुआ॥ ९॥

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय। विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांसि स्यस्मै स्थविराय तस्थुः॥ १०॥

(महे) महान् (वीराय) अनेकों शत्रुओं का वध करनेवाले (तवसे) बलवान् (तुराय) शीघ्रता करनेवाले (विरप्शिने) विशेषरूपसे स्तुतिके योग्य (वज्रिणे) वज्रधारी (स्थविराय) वृद्ध (अस्मै) इस इन्द्रके अर्थ (अपूर्व्या) नवीन (पुरुतमानि) बहुत से (शन्तमानि) परम सुखदायक (वचांसि) स्तुतिरूप वचनोंको (तक्षुः) स्तोता उच्चारण करते हैं॥ १०॥

तृतीयाध्यायस्य नवमः खण्ड समाप्त

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः। आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं नृमणा अधद्राः॥ १॥

(द्रप्सः) शीघ्र गमन करनेवाला (दशभिः सहस्रैः) दश सहस्र असुरोंके साथ (इयानः) चढ़ाई करता हुआ (कृष्णः) कृष्णनामक असुर (अंशुमती) अंशुमती नदीपर (अवातिष्ठत्) आकर प्राप्त होगया, तदनन्तर (शच्या) अपने कर्म वा प्रज्ञानसे (धमन्तम्) जगत् को भयदायक शब्द करनेवाले (तम्) उस कृष्णासुरको (इन्द्रः) इन्द्र मरुतों सहित (आवत्) प्राप्तहुआ (अथ) इसके अनन्तर (नृमणाः) ऋत्विजों में एकतान होकर जिसका मन लगरहा है ऐसा इन्द्र (स्नीहितिम्) हिंसा करनेवाली उसकी सेनाको (अपद्राः) वध करताहुआ अर्थात् उसको मारकर उसकी सेनाको भी मारडाला ॥ १ ॥

वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः । मरुद्भिरिन्द्र सख्यन्ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तेरे (ये) जो (विश्वे देवाः) विश्वे देवता पहिले(सखायः) युद्धमें सहायता करनेवाले मित्रथे, वह सब देवता (वृत्रस्य) वृत्रासुरके (श्वसथात्) सबको आते हुए देखकर वृत्रासुरने जो श्वास छोड़ा था उससे भयभीत होकर (ईषमाणाः) चारों ओरको भागते हुए (त्वा) तुम्हें (अजहुः) छोड़गए थे, ऐसा होने पर हे इन्द्र ! (मरुद्भिः) तेरा साथ न छोड़नेवाले मरुतोंके साथ (ते) तेरा (सख्यम्) मित्रभाव (अस्तु) हो (अथ) फिर (इमाः) इन (विश्वाः) सब (पृतनाः) शत्रु सेनाओं को (जयासि) अपने बलसे जीतोगे ॥ २ ॥

विधुं दद्राणꣳसमने बहूनां युवानꣳसन्तं पलितो जगार । देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ ३ ॥

कालस्वरूप इन्द्रकी स्तुति कीजाती है, कि—(विधुम्) युद्ध आदिक विधाता तथा (समने) संग्राम में (बहूनाम्) बहुतसे शत्रुओं के (दद्राणम्) भगानेवाले भी (युवानम्) युवा पुरुषको इन्द्रकी कृपा से (पलितः) बूढ़ा पुरुष (जगार) निगलजाता है अर्थात् जीतलेता है, यह तथा आगे कहीहुई भी (देवस्य) कालस्वरूप इन्द्रकी(महित्वा) महत्वभरी (काव्यम्) सामर्थ्यको (पश्य) देख, हे जीवात्मन् । जो जराको प्राप्तहुआ (अद्य) आज (ममार) मरता है(सः) वह (ह्यः) दूसरे दिन (समान) अन्य जन्म धारण करके संसारमें आजाताहै॥३॥

त्वᳮ᳭ ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र। गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः॥ ४॥

हे इन्द्र (त्वम् ह) तुम निश्चय (त्यत्) ऐसा पराक्रम करनेवाले हो, कि—(जायमानः) प्रकट होतेही (अशत्रुभ्यः)शत्रुरहित (सप्तभ्यः) कृष्ण वृत्र नमुचि आदि सात असुरों के अर्थ (शत्रुः) शत्रु (अभवः) हुए वा सात पुरोंको नष्ट करनेवाले हुए अथवा सात होतावाले यज्ञों में विघ्न करनेवालों के शत्रु हुए, और हे इन्द्र ! तुमने (गूढे) अन्धकारसे ढकेहुए (द्यावापृथिवी) द्युलोक और भूलोकको (अन्वविन्दः) सूर्यरूप से प्रकाशित करके पाया तथा (विभुमद्भ्यः) गौरवयुक्त (भुवनेभ्यः) लोकोंसे (रणम्) रमणको (धाः) धारण करते हो॥४॥

मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभᳮ᳭स्थिरप्स्नुम्। करोष्यर्य्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे॥ ५॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (दुवस्युः) स्तुति आदि आराधना की इच्छा करतेहुए तुम (अर्यः) हमारे शत्रुओंको क्षीण (तरुषीः) हमें विजय पानेवाला (करोषि) करते हो, इसकारण (मेडिं न) जिस प्रकार वृष्टिकारिणी वाणीकी वर्षा के निमित्त प्रार्थना करते हैं, तैसे ही (वृत्रहणम्) मेघोंके प्रेरक (द्युक्षम) द्युलोकमें वर्त्तमान (पुरुधस्मानम्) बहुतसे जलोंके धारक वा अनेकों शत्रुओंके नाशक (वृषभम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (स्थिरप्स्नुम) स्थिररूप (वज्रिणम्) वज्रधारी (भृष्टिमन्तम) शत्रुओंको भूननेवाले (त्वा) तुम्हें (गृणीषे) स्तोत्र पढ़कर मनाता हूँ॥ ५॥

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्। विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः॥६॥

हे हमारे पुरुषों ! (वः) तुम (महिवृधे) बहुतसे धनोंकी वृद्धि करनेवाले (महे) महान् इन्द्रके अर्थ (प्रभरध्वम्) सोम अर्पण करो (प्रचेतसे) श्रेष्ठ ज्ञानवान् इन्द्रके अर्थ (सुमतिम्) श्रेष्ठ स्तुति (प्रकृणुध्वम्) करो। हे इन्द्र ! (चर्षणिप्राः) मनोरथोंसे प्रजाओं को पूर्ण

करनेवाले तुम (पूर्वीः) हवि समर्पण करनेवाली (विशः) प्रजाओंको (प्रचर) अभिमुख होकर प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

शुनꣳहुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानि ॥ ७ ॥

हम (वाजसातौ) अन्न की प्राप्ति करानेवाले (अस्मिन्) इस (भरे) योधाओंका विजयलक्ष्मी प्राप्त करानेवाले संग्राममें (शुनम्) उत्साहसे बढ़े हुए (मघवानम्) धनवान् (नृतमम्) सकल जगत्के सर्वोपरि नेता (इन्द्रम्) इन्द्र का (हुवेम) यज्ञके निमित्त आह्वान करते हैं । तथा (शृण्वन्तम्) हमारी स्तुतिको सुननेवाले (उग्रम्) शत्रुओंको भयदायक (समत्सु) संग्रामोंमें (वृत्राणि) शत्रुओं को (घ्नन्तम्) मारनेवाले (धनानि) शत्रुओं के धनोंको (सञ्जितम्) जीतनेवाले तुम्हें (ऊतये) रक्षाके लिये हम बुलाते हैं ॥ ७ ॥

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रꣳसमर्ये महया वसिष्ठ । आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचाꣳसि ॥ ८ ॥

(श्रवस्या) अन्नकी इच्छा करके (ब्रह्माणि) स्तोत्र और हवियों को सब ऋषि इन्द्रके अर्थ (उदैरत) अर्पण करो (वसिष्ठ) हे जितेन्द्रियोंमें प्रतिष्ठित तू भी (समर्ये) यज्ञमें (इन्द्रम्) इन्द्रका (महय) स्तोत्र और हविसे पूज और (यः) जो इन्द्र (विश्वानि) लोकोंको (श्रवसा) अन्न और कीर्तिसे (आततान) बढ़ाता हुआ वह (ईवतः) उपासना करने वाले (मे) मेरे (वचांसि) वचनोंको (उपश्रोता) सुने ॥ ८ ॥

चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्च्छद्यात् । पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥ ९ ॥

(अस्य) इस इन्द्रका (चक्रम्) आयुध (अप्सु) अन्तरिक्ष में (आ) सब ओर (निषत्तम्) मेघके हननके निमित्त स्थित था (उतो)

और यह भी (अस्मै) इस इन्द्र के अर्थ (मध्वित्) जल को भी (चच्छ्यात्) वशमें करना है (पृथिव्यां) पृथिवीमें (अतिषितम) छोड़ा हुआ (यदूधः) जो जल है वह (पयोगोषु) ओषधियोंमें (आदधात्) थापन करता है ॥ ६ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य दशम खण्डः समाप्त

त्यमु षु वाजिनं देवजूतᳬ सहोवानं तरुतारᳬ रथानाम्। अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुᳬ स्वस्तये ताक्ष्यर्मिहा हुवेम ॥ १ ॥

(त्यम) उस प्रसिद्ध (वाजिनम) अन्नयुक्त वा बलवान् (देवजूतम्) साम लानेके निमित्त देवताओंके प्रेरणा कियेहुए (सहोवानम) शक्तिमान (रथानाम) औरोंके रथोंको सग्राममें (तरुतारम्) तारनेवाले (अरिष्टनेमिम) नीदण आयुधवाले (पृतनाजम) शत्रुसेनाओंको जाननेवाले (आशु) शीघ्रगामी (तार्क्ष्यम) तृक्ष्मे उत्पन्न हुए सुपर्णको (स्वस्तये) कल्याणके लिये (इह) इस कर्ममें (हुवेम) वारंवार बुलाते हैं ॥ १ ॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रᳬ हवे हवे सुहवᳬ शूरमिन्द्रम। हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदᳬ हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ॥ २ ॥

(त्रातारम) शत्रुओंसे रक्षा करनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रको (हुवे) आह्वान करताहूँ (अवितारम्) मनोरथोंसे तृप्त करनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रको आह्वान करताहूँ (हवे हवे) सकलसग्रामोंमें (सुहवम्) सुखसे बुलानेयोग्य (शूरम्) वीर (शक्रम्) सकल कार्योंमे समर्थ (पुरुहूतम्) जिसको अनेकोंने रक्षाके लिये बुलाया ऐसे (इन्द्रम) इन्द्रको आह्वान करताहूँ (मघवान्) धनवान् वह इन्द्र (इदम्) इस (हविः) हविको (वेतु) भक्षण करै ॥ २ ॥

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणᳬ हरीणाᳬ रथ्यां३ विव्रतानाम्। प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद्वि सेनाभिर्भयमानो वि राधसा ॥ ३ ॥

(वज्रदक्षिणम्) दाहिने हाथमें वज्र धारण करनेवाले (विवृतानाम्) रथोंको लेजाना आदि अनेकों कर्म करनेवाले (हरीणाम्) हरि नामक घोड़ोंको (रथ्यम्) वशमें रखकर चलानेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रको (यजामहे) सोमरूप हवियोंसे पूजते हैं। वह इन्द्र सोमपानके अनंतर (श्मश्रुभिः दोधुवत्) अपनी दाढ़ीमूछोंको वार वार कँपाताहुआ (ऊर्ध्वधाः) ऊपर (अविभुवत्) प्रकट होता है (सेनाभिः) और अपनी देवसेनाओंसे (भयमानः) शत्रुओंको भयभीत करता हुआ (राधः) नाना प्रकारका धन (वि) स्तुति करनेवालोंको देता है।३।

सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभꣳ सुवज्रम्। हन्ता यो वृत्रꣳ सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥ ४ ॥

हम स्तुति करनेवाले (सत्राहणम्) अनेकों शत्रुओंको मारनेवाले (दाधृषिम्) अत्यन्त धमकानेवाले (तुम्रम्) शत्रुओंको भगानेवाले (महान्) बड़े (अपारम्) विनाशरहित (वृषभम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (सुवज्रम्) श्रेष्ठ वज्रको धारण करनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रकी स्तुति करते हैं (यः) जो इन्द्र (वृत्र हता) वृत्रासुर का वध करता है (उत) और (वाजम् सनिता) अन्नका दाता होताहै (सुराधाः) श्रेष्ठ धन वाला (मघवा) जो इन्द्र (मघानि दाता) धनोंका दाता होता है ॥ ४ ॥

यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा। क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभीष्याम वृषमणस्त्वोताः ॥ ५ ॥

(यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (नः) हमें (वनुष्यन्) मारनेकी इच्छा करता हुआ (अभिदाति) चढ़ाई करके आता है और जो (मन्यमानः) अपनेको बहुत मानता हुआ मनुष्य (क्षिधी) क्षयकारी (युधा) आयुधलेकर (शवसा) वेगसे (उगणाः) श्रेष्ठ समूहरूप (तुरः) प्रहार करनेवाली हमारी प्रजाओंके ऊपर चढ़ाई करके आताहै (त्वोताः) तुम्हारे रक्षा करेहुए (वृषमणः) वृषकी समान आचरण करतेहुए हम (तम्) उसको (आभष्याम) तिरस्कृत करें ॥ ५ ॥

यं वृत्रेषु क्षितय स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो

हवन्ते। यꣳ शूरसातौ यमपामुपज्मन्यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥ ६ ॥

(वृत्रेषु) युद्धोंमें (स्पर्धमानाः) क्रोधयुक्त (क्षितयः) मनुष्य (यम्) जिसको (हवन्ते) पुकारते हैं (युक्तेषु) आयुध उठेहुए संग्रामोंमें (तुरयन्तः) परस्पर हिंसा करते हुए पुरुष (यम्) जिसको पुकारते हैं (शूरसातौ) योधाओंका विभाग होनेपर वा योधाओंकी प्राप्तिके लिये (यम्) जिसको पुकारते हैं (अपाम्) जलोंकी प्राप्तिके विषयमें (यम्) जिसको पुकारते हैं (उपज्मन्) वर्षाकी प्राप्तिके लिये (यम्) जिसकी शरणमें जाते हैं (विप्रासः) बुद्धिमान् यजमान (वाजयन्ते) जिसको हवि अर्पण करके बलवान् करते हैं (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है ॥ ६ ॥

इन्द्रा पर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतꣳ सुवीराः। वीतꣳ हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥ ७ ॥

(इन्द्रापर्वता) हे इन्द्र और पर्वत (बृहता) बड़े (रथेन) रथ में आकर (वामीः) प्रार्थना करनेयोग्य (सुवीराः) श्रेष्ठ पुत्रों सहित (इषः) अन्नोंको (आवहत) दो (देवा) हे प्रकाशवान् इन्द्र पर्वत (अध्वरेषु) हमारे यज्ञोंमें (हवियोंको (वीत) भक्षण करो तथा (इडया) हमारे दियेहुए अन्नसे (मदता) प्रसन्न होतेहुए तुम (गीर्भिः) स्तुतिरूप हमारी वाणियोंसे (वर्धेथाम्) बढ़ो ॥ ७ ॥

इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत्सगरस्य बुध्नात्। यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥ ८ ॥

(इंद्राय) इंद्रके अर्थ (अनिशितसर्गाः) निरंतर उच्चस्वरसे उच्चारण की हुई जो (गिरः) स्तुतियें हैं उनसे (सगरस्य) अंतरिक्षके (बुध्नात्) स्थानसे (अपः) जलोंको (प्रेरयत्) प्रेरणा करता है (यः) जो इंद्र (शचीभिः) यज्ञादि कर्मोंसे (पृथिवीम्) पृथिवीको (उत) और (द्याम्) द्युलोक को भी (चक्रियौ अक्षेण इव) रथके पहिये जैसे

थुरेसे थमे रहते हैं तैसे (विष्वक्) सब ओर से (तस्तम्भ) स्तंभित करताहुआ ॥ ८ ॥

आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिदर्णवां जगम्याः। पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन् क्षये प्रतरां दीद्यानः ॥ ९ ॥

हे इन्द्र (सखायः) स्तोता (सख्या) प्रिय स्तुतियों से (त्वा)तुम्हें (आववृत्युः) अभिमुख करते हैं, क्योंकि तुम (तिरः) उड़नेवाले होकर (पुरु) विस्तारवाले (अर्णवम्) अंतरिक्षमेंको (जगम्याः) चले-गए थे (अस्मिन्) इस (क्षये) निवासस्थानरूप यज्ञ में (प्रतराम) अत्यन्त (दीद्यानः) तेजसे दमकताहुआ (वेधा)विधाता इन्द्र(पितुः) मेरे पिताके (नपातम्) पौत्रको अर्थात् मेरेपुत्रको (आदधीत) देय॥९॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् । आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥ १० ॥

(अद्य) आज इस कर्मके (ऋतस्य) यज्ञमें जानेवाले इन्द्रके रथ के (धुरि) जुएमें (गाः) जुड़हुए (शिमीवतः) वीरताके काम करने वाले (भामिनः) तेजस्वी (दुर्हृणायून्) शत्रुओंके असह्य क्रोध से युक्त (अप्सुवाहः) यज्ञादिकर्मोमें इन्द्रको लेजानेवाले (मयोभून्) सुखदायक अश्वोंको वा उनकी लगामोंको (आसन)मुखसे उच्चारण कियेहुए स्तोत्रके द्वारा (कः)कौन (युङ्क्ते) नियुक्त करसक्ता है ? अर्थात् कोई नहीं रोकसकता (यः) जो यजमान (एषाम्)इन घोड़ों की (भृत्याम्) रथको लेजाने की क्रियाकी (ऋणधत्) स्तुति करता है (सः) वह यजमान (जीवात्) आयुष्मान् होता है ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य एकादश खण्ड समाप्त ॥

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः । ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥

(शतक्रतो) हे इन्द्र ! (त्वा) तुम्हें (गायत्रिणः) उद्गाता (गायंति) स्तुति करते हैं (अर्किणः) पूजन के मंत्र बोलते हुए होता (अर्कम्)

पूजनीय इन्द्रकी (अर्चन्ति) मंत्रों से प्रशंसा करते है (ब्रह्माणः) अन्य ब्राह्मण (वंशमिव) जैसे बांसकी नोकपर नाचनेवाले नट दृढ़ बांसको ऊँचा करते हैं तैसे (त्वा) तुम्हें (उद्येमिरे) उन्नति पर पहुँचातेहैं ॥१॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् २

(विश्वाः) सकल (गिरः) हमारी स्तुतियोंने (समुद्रव्यचसम्) समुद्रकी समान महान् (रथीनाम्) योधाओं में (रथीतमम्) श्रेष्ठ योधा (वाजानाम्) अन्नों के (पतिम) स्वामी (सत्पतिम्) सज्जनों के पालक (इन्द्रम्) इन्द्रको (अवीवृधन्) बढ़ाया ॥ २ ॥

इमामिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ३

(इन्द्र) हे इन्द्र (इमम्) इस (ज्येष्ठम्) परम प्रशंसनीय(मदम्) आनन्ददायक (अमर्त्यम्) अन्य मदोंकी समान नष्ट न करने वाले (सुतम्) सम्पादन किये हुए सोमको (पिब) पियो (ऋतस्य) यज्ञ के (सादने) मण्डप में वर्त्तमान (शुक्रस्य) दीप्त सोमकी (धाराः) धाराएं (त्वा अभ्यक्षरन्) तुम्हारे अभिमुख होकर चलीआरही हैं॥३॥

यदिंद्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ ४ ॥

(चित्र) विचित्र गुणसम्पन्न (अद्रिवः) वज्रधारी (विदद्वसो) प्राप्तधन (इन्द्र) हे इन्द्र (यत्) जो (त्वादातम्) तुम्हारे देनेयोग्य (राधः) धन (इह) इस लोकमें (मे) मेरे (नास्ति) नहींहै(तत्) वह धन (नः) हमें (उभयाहस्त्या) दोनो हाथों से(आभर) दो॥४॥

श्रुधी हवं तिरश्च्या इंद्र यस्त्वा सपर्य्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महां असि ॥५॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (यः) जो (त्वा) तुम्हें (सपर्यति) हवियों से आराधन करता है उस (तिरश्च्या) मुझ तिरश्च्य की (हवम्) स्तुतिको (श्रुधि) सुनो और सुनकर तुम (सुवीर्यस्य) श्रेष्ठ वीरता वा श्रेष्ठ पुत्रों से युक्त (गोमतः) गौ आदि पशु सहित (रयः) धन देकर (पूर्द्धि) हमें पूर्ण करो (महान् असि) तुम सब देवताओं से गुणवान् हो ॥ ५ ॥

असावि सोम इंद्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियꣳ रजः सूर्यो न रश्मिभिः

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे निमित्त (सोमः) सोम (असावि) संपादन किया गया (शविष्ठ) हे परमबली ! (धृष्णः) हे शत्रुओंका तिरस्कार करने वाले (आगहि) इस देवयजन के स्थान में आओ (सूर्यः, रश्मिभिः, रजः, न) जैसे सूर्य किरणों से अन्तरिक्षको पूर्ण करता है, तैसे (इन्द्रियम) सोमपान से उत्पन्न हुई बड़ीभारी शक्ति (त्वा) आयेहुए तुम्हें (आपृणक्तु) पूर्ण करें ॥ ६ ॥

एंद्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (कण्वस्य) कण्वकी (सुष्टुतिम्) श्रेष्ठ स्तुति के समीप (हरिभिः) अश्वों के द्वारा (उपायाहि) आइये (अमुष्य) इस के (दिवः) द्युलोक के (शासनः) शासन करने पर, हम सुख पाते हैं (दिवावसो) हे दीप्त हविवाले इन्द्र ! (दिवम्) स्वर्ग को (यय) जाइये ॥ ७ ॥

आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।
अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः ॥८॥

(गिर्वणः) वेद मन्त्रों से स्तुति करने योग्य हे इंद्र ! (सुतेषु) सोम रसोंका संपादन होने पर (गिरः) हमारी स्तुतिकी वाणियें (रथीरिव) जैसे रथी रथ से जाकर वीरों के पहुँचने योग्य स्थानपर पहुँचजाता है तैसेही (त्वा आस्थुः) शीघ्रही तुम्हारे अभिमुख पहुँचती हैं । हे इंद्र ! हमारी वाणियें (त्वा अभि) तुम्हारे अभिमुख होकर (वत्सं, धेनवः, गावः न) जैसे प्रेममें भरी गौएं रंभाती हुईं बछड़े की ओर को जाती हैं तैसे (समनूषत) भले प्रकार स्तुति करतीहैं॥८॥

एतो न्विन्द्रꣳ स्तवाम शुद्धꣳ शुद्धेन साम्ना।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वाꣳसꣳ शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ९

पहिले किसी समय इंद्रने वृत्रादि असुरों का वध करके समझा कि—मैं ब्रह्महत्या आदि के दोष से लिप्त होगया हूँ और उस दोषको

दूर करने के लिये इन्द्रने ऋषियोंसे कहा, कि—तुम मुझे अपने सामसे शुद्ध करो, तब ऋषियोंने सामसे शुद्ध किया, फिर उस पवित्र हुए इंद्रको यज्ञादि कर्म में सोम आदि हवि दिया, यह तत्त्व शाट्यायनक ब्राह्मण में कहा है, यही विषय इस मन्त्रसे सूचित होता है। ऋषियोंने परस्पर कहा, कि—(नु, एत, उ) शीघ्र ही आओ और आकर (शुद्धेन, साम्ना) शुद्धि करनेवाले सामके द्वारा (शुद्धैः, उक्थैः) तथा शुद्ध करनेवाले मंत्ररूप शस्त्रों से (शुद्धम्) शुद्ध हुए इन्द्रकी (स्तवाम) स्तुति करें, तदनन्तर (वावृध्वांसम्) पापरहित होने के कारण बढे हुए उस इन्द्रको (शुद्धैः) स्तोत्रों से (आशीर्वान्) गो दुग्धादि से सस्कार किया हुआ सोम (ममत्तु) आनन्ददायक होय ॥ ९ ॥

यो रयिं वो रयिंतमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः।
सोमः सुतः स इंद्र तेऽस्ति स्वधापते मदः॥१०॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (यः) जो (रयिन्तमः) अत्यन्त धनवान् है (यः) जो (द्युम्नैः) प्रकाशवान यशोंसे (द्युम्नवत्तमः) परमयशस्वी है (सः) वह (सोमः) सोम (वः) तुम्हारे उपासकों को (रयिम्) धन देता है (स्वधापते) हे सोमरूप अन्नके पालक इन्द्र! (सुतः) अभिषुत होनेपर वह सोम (ते) तुम्हारा (मदः) मदकारी (अस्ति) होता है ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य द्वादश खण्डः, तृतीयाध्यायश्च समाप्त ॥

चतुर्थ अध्याय

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर।
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद्ध्वने नरः॥ १ ॥

हे अध्वर्यो (नरः) कर्ममें नेता तुम (अस्मै) इस (पिपीषते) सोमको पीनेकी इच्छा करनेवाले (विश्वानि) सकल जाननेयोग्य वस्तुओंको (विदुषे) जाननेवाले (अरङ्गमाय) ठीक २ पहुँचनेवाले (जग्मये) यज्ञोंमें जानेवाले (अपश्चाद्ध्वने) सबसे आगे पहुँचने वाले इन्द्रको (प्रति भर) सोम अर्पण करो ॥ १ ॥

आ नो वयोवयःशयं महांतं गह्वरेष्ठां महान्तं पूर्विनेष्ठाम्। उग्रं वचो अपावधीः ॥ २ ॥

(वयस्य) हे मित्ररूप इन्द्र (अयम्) ऐसा तू (महान्तम्) बहुत

से (गुह्वरेष्ठम्) पर्वतकी गुफामें वर्त्तमान (नः) हमारे (वयः) सोमरूप अन्नको (आ हर) लाकर (महान्तम्) बहुतसे (पूर्विनेष्ठाम्) पहिलेही संसारमें वर्त्तमान (उग्रम्) भूख प्यासके कारण भयानक (वचः) हमारे वचनको (अपावधीः) नष्ट करो अर्थात् हमें देवयोनिमें पहुँचाओ ॥ २ ॥

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्त्तयामसि ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र१ शविष्ठ सत्पतिम् ॥३॥

(शविष्ठ) हे परमबली इन्द्र ! (ऊतये) अपनी रक्षाके लिये (सुम्नाय) सुखके लिये (रथं यथा) जैसे रथको भ्रमण कराते हैं तैसे (तुविकूर्मिम) विचित्रपराक्रमी (ऋतीषहम) हिंसकोंका तिरस्कार करनेवाले (सत्पतिम्) सज्जनोंके पालक (त्वा इन्द्रम्) तुम इन्द्रको (वर्त्तयामसि) भ्रमण कराते हैं ॥ ३ ॥

स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे ।
यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ॥४॥

(सः) वह इन्द्र (पूर्व्यः) मुख्य (महोनाम्) पूज्य यजमानोंके (क्रतुभिः) यज्ञोंके द्वारा (वेनः) उनके हवियों को चाहता हुआ (आनजे) आता है (यस्य) जिस इन्द्रके (द्वारा) प्राप्तिके उपाय रूप (धियः) कर्मोंको (देवेषु-पिता) देवताओंमें सबका पालक (मनुः) मनु (आनजे) प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।
पिबंतो मदिरं मधु तत्र श्रवा१ंसि कृण्वते ॥५॥

(यदि) जिस यज्ञमे (रथेषु) रथोंमें (भ्राजमानाः) दीप्यमान (आशवः) शीघ्रगामी तुम्हारे मरुत (आवहन्ति) तुम्हें अभिमुख करके पहुँचाते हैं (तत्र) तिस यज्ञमें (मदिरम्) मदकारी (मधु) रसीले सोमको (पिबन्तः) पीतेहुए (श्रवांसि) अन्नोंको (कृण्वते) वृष्टि के द्वारा उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इंद्र विश्वासाहं नर१ंशचिष्ठं विश्ववेदसम् ॥६॥

हे ऋत्विक् यजमानो ! (वः) तुम्हारे अर्थ (त्यम्) उनही (अप्रहरणम्) भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाले (अवसः) बलके (पतिम्) पालक (विश्वासाहम्) सकल शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले (नरम्) नेता (शचिष्ठम्) यज्ञादि कर्ममें स्थित (विश्ववेदसम्) विश्व ही है धन जिनका ऐसे इन्द्रकी (गृणीषे) स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।

सुरभि नो मुखा करत्प्र न आयूंषि तारिषत् ॥ ७ ॥

(जिष्णोः) जलशील (अश्वस्य) अश्वरूपधारी (वाजिनः) वेगवान् (दधिक्राव्णः) दधिक्रावा नामक अग्निदेवताकी स्तुतिको (अकारिषम्) करता हूँ वह अग्निदेव (नः) हमारी (मुखा) मुख आदि इन्द्रियोंको (सुरभि) शक्तिसम्पन्न (करत्) करें (नः) हमारे (आयूंषि) आयुओंको (प्रतारिषत्) बढ़ावें ॥ ७ ॥

पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।

इंद्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ८ ॥

(इन्द्रः) यह इन्द्र (पुराम्) शत्रुओंके नगरोंका (भिन्दुः) तोड़ने वाला (युवा) सदा तरुण (कविः) बुद्धिमान् (अमितौजा) परमबली (विश्वकर्मणः) सकल कर्मकाण्डका (धर्त्ता) पोषणकर्त्ता (वज्री) यजमानकी रक्षार्थ सदा वज्र धारण करनेवाला (पुरुष्टुतः) अनेकोंसे स्तुति कियाहुआ (अजायत) हुआ ॥ ८ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः

प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वंदद्वीरायेन्दवे ।

धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥ १ ॥

हे अध्वर्यु आदिको ! (वः) तुम (त्रिष्टुभम्) तीन स्तोमोंसे युक्त (इषम्) अन्नको (वन्दद्वीराय) वीरोंकी प्रशंसा करनेवाले (इन्दवे) इन्द्रके अर्थ (प्रप्र) पहुँचाओ, और वह इन्द्र (वः) तुम्हें (मेधसातये) यज्ञानुष्ठानके निमित्त (पुरन्ध्या) परमप्रज्ञायुक्त (धिया) कर्म से (आविवासति) परिचर्या करता है अर्थात् इच्छित फल देकर तुम्हारा सत्कार करता है ॥ १ ॥

कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति ।

यथो विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥२॥

(कश्यपस्य) सर्वज्ञ इन्द्र के (...) ... अश्व हैं (ययोः) जिन अश्वों का (विश्वम्, अपि) सकल ही (व्रतम्) कर्म (यज्ञम्) यज्ञके प्रति है (इति) ऐसा (निचाय्य) निश्चय करके (सयुजौ) साथही जोडे जाते हैं ऐसा (स्वर्विदः) स्वर्गको पानेवाले (धीराः) पुरुष (आहु.) कहते हैं ॥ २ ॥

अर्चत प्रार्चत नरः प्रियमेधासो अर्चत ।

अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत ॥ ३ ॥

(नरः) हे कर्मों के नेता अध्वर्यु आदिको ! तुम (अर्च) इन्द्रको पूजा करो (प्रार्चत) विशेषरूप से पूजा करो (प्रियमेधासः) हे यज्ञके प्रेमियों (अर्चत) पूजो (उत) और (पुत्रकाः) हे पुत्रो ! (पुरमिद्) भक्तो के मनोरथों को अवश्य ही पूर्ण करनेवाले (धृष्णु) शत्रुओंको धमकानेवाले इन्द्रको (अर्चन्तु अर्चत) बार बार पूजन करो ॥ ३ ॥

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्द्धनं पुरुनिःषिधे ।

शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥ ४ ॥

(पुरुनिःषिधे) अनेकों शत्रुओंका नाश करनेवाले (इन्द्राय) इन्द्र के अर्थ (वर्धनम्) वृद्धिका साधन (उक्थम्)मंत्ररूप शस्त्र (शक्रः) इन्द्र (नः) हमारे (सुतेषु) पुत्रों में (च) और (सख्येषु) मित्रों में (यथा) जिसप्रकार (रारणत्) अत्यन्त शब्द करे,तिसप्रकार(शस्यम्) प्रशंसा करने योग्य है ॥ ४ ॥

विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।

एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥ ५ ॥

(विश्वानरस्य) शत्रुओं के ऊपर चढ़ाई करनेवाले (अनानतस्य) शत्रुओं से न नमनेवाले (शवसः) बलके (पतिम्) स्वामी इन्द्रको हे मरुतो ! (वः) तुम्हारे (चर्षणीनाम्) सैनिकों के (एवैः) गमनो सहित (रथानाम्) रथों की (ऊती) रक्षा के निमित्त (हुवे) आह्वाह करता हूँ ॥ ५ ॥

सघा यस्ते दिवो नरो धिया मर्त्तस्य शमतः ।

ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ६

(शमतः) कर्मानुष्ठान से शान्त अपने मार्गमें चलनेवाले (मर्त्तस्य) मनुष्यों में (दिवः) द्योतन आदि गुणयुक्त (ते) तुम्हारा (धिया) स्तुति करनेसे (नरः) मनुष्य (सखा) स्तोता होता है (सः) वह मनुष्य (यः) जो (बृहतः) महान (दिवः) प्रकाशवान् तुम्हारी (ऊती) रक्षासे (द्विषः) शत्रुओंको (अंहो न) पापकी समान (तरति) लाँघजाता है ॥ ६ ॥

विभोष्ट इंद्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।

अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नं सुदत्र मंहय ७

(शतक्रतो इन्द्र) हे विचित्रपराक्रमी इन्द्र ! (विभोः) बहुतसे (राधसः) धनका (ते) तुम्हारा (रातिः) दान (विभ्वी) बड़ाभारी है (अथ) इस कारण (विश्वचर्षणे) सबके द्रष्टा (सुदत्र) मङ्गलमय दान करनेवाले हे इन्द्र ! (नः) हमें (द्युम्नम्) धन (मंहय) दीजिये ॥ ७ ॥

वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।

उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ८ ॥

(अर्जुनि उषः) हे शुभ्रवर्ण उषा देवते ! (ते) तेरे (ऋतून् अनु) सर्वत्रप्रकाशरूप गमनके अनन्तर (द्विपात्) मनुष्य आदि (चतुष्पाद्) गौ आदि (पतत्रिणः) परोंवाले (वयश्चित्) पक्षीभी (दिवः अन्तेभ्यः) आकाशके प्रान्तोंसे (परि) ऊपर (प्रारन्) यथेच्छ विचरते हैं ॥ ८ ॥

अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिवः ।

कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिः ॥ ९ ॥

(देवाः) हे इन्द्रादि देवताओं ! (ये) जो (अमी) यह तुम (दिवः) दीप्त सूर्यके (आरोचने) प्रकाशित होनेपर (मध्ये) अन्तरिक्षलोक में (स्थन) होतेहो इससे (वः) तुम्हारे स्तोत्रके विषय का (ऋतम्) सत्य (कत्) कहां है (अनृतम्) अनृत (कत्) कहां है (वः) तुम्हारी (प्रत्ना) पुरातन (आहुतिः) आहुति (क्व) कौनसीहै अर्थात् तुम्हारा दान क्या हुआ ? ऐसे दुःखके अनुभव से मुझे अनुमान होता है कि मेरे कियेहुए यज्ञ तुम्हें प्राप्त नहीं हुए ॥ ९ ॥

ऋचᳬ साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते।
वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः ॥१०॥

होता और उद्गाता (याभ्याम) जिनऋक् और सामसे (कर्माणि) स्तोत्र आदि कर्मानुष्ठान (कृण्वते) करते हैं (ऋचं साम) उस ऋचा और सामको (यजामहे) हम पूजन करते हैं (ते) वह ऋक्साम (सदसि) ऋत्विक्सभामें (विराजतः) स्तोत्रादिरूपसे प्रकाशित होते हैं (देवेषु) इन्द्रादि देवताओं में (यज्ञम्) यज्ञीयभागको (वक्षतः) पहुँचाते हैं ॥ १० ॥

चतुर्थाध्यायस्य द्वितीय खण्ड समाप्त ।

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षु रिन्द्रं जजनुश्च राजसे। क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥ १ ॥

(विश्वाः) बहुतसी फैलीहुई (नरः) लड़ाई करनेवाली (पृतनाः) सेनाएं (सजूः) परस्पर इकट्ठी होकर (अभिभूतरम) शत्रुओं का अत्यन्त तिरस्कार करनेवाले (इन्द्रम) इन्द्रको (ततक्षुः) आयुधवाला करती हुई (च) और स्तोता (राजसे) अपने प्रकाशके अर्थ, सूर्यात्मा इन्द्रको (जजनुः) स्तोत्र आदिके द्वारा अपने रूपमें प्रकट करते हुए (उत) और (क्रत्वे) अपने वृत्रवध आदि कर्मके अर्थ (वरे) श्रेष्ठ (स्थेमनि) स्थिर स्थानपर स्थित (आमुरीम्) शत्रुओंको मारनेवाले (उग्रम्) तीक्ष्ण रूप (ओजिष्ठम्) परमतेजस्वी (तरसम) बली (तरस्विनम्) [illegible] इन्द्रकी धनप्राप्तिके लिये स्तुति करते हैं ॥१॥

श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्दस्युं नर्यं विवेरपः। उभे यत्त्वा रोदसी धावतामनु भ्यसात्ते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥२॥

(अद्रिव) हे वज्रधारी इन्द्र ! (ते) तुम्हारे (प्रथमाय) मुख्य (मन्यवे) क्रोधके अर्थ (श्रद्दधामि) श्रद्धा करता हूँ (यत्) जिस कोपसे (दस्युम) कर्मोंके विघ्नकर्त्ता असुरको (अहन) मारा (नर्यम्) निःशेषभावसे उसका वध करके (अपः) मेघोंसे रुकेहुए जलों को

(विवे) इस लोकमें पहुँचाया (यत्) जब (उभे) दोनो (रोदसी) द्यावापृथिवी (त्वां अनुधावताम) तुम्हारे अधीन होते हैं, उससमय (पृथिवीचित्) विस्तारवाला अन्तरिक्ष भी (ते) तुम्हारे (शुष्मा-त्) बलमें (भयमान्) भयभीत होता है ॥ २ ॥

समेत विश्वा ओजसा पतिं देवो य एक इद्भू-रतिथिर्जनानाम्। स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषं तं वर्तनीरनु वावृत एक इत् ॥ ३ ॥

(विश्वाः) हे सकल प्रजाओं ! (दिवः) स्वर्ग के (ओजसा) बलके (पतिम्) स्वामी इन्द्रको (समेत) स्तोत्र और हविसे भले-प्रकार प्राप्त होओ (यः) जो इंद्र (एक इत्) अकेला ही (जनानाम्) यजमानोंका (अतिथि) अतिथिका समान प्रिय (भूः) होता है (पूर्व्यः) पुरातन (सः) वह इंद्र (आजिगीषन्तम्) अपने शत्रुओं का जीतनेकी इच्छा करनेवाले (नूतनम्) इस समयके स्तोताको (एक इत्) एक ही (वर्त्तनीः) विजयके मार्ग पर (अनुवावृते) चलाता है अर्थात् विजय कराता है ॥ ३ ॥

इमे त इंद्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो। न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो वचः ॥४॥

(प्रभूवसो) अधिक धनवाले (पुरुष्टुत) अनेकों यजमानोंसे स्तुति कियेहुए (इंद्र) हे इंद्र ! (ये) जो हम (त्वा आरभ्य) तुम्हारा आश्रयकरके आलम्बन करके (चरामसि) यज्ञमें प्रवृत्त होते हैं (ते-इमे वयम्) वह हम (ते) तुम्हारे हैं (गिर्वणः) हे मंत्रोंसे स्तुति करनेयोग्य हे इंद्र ! (त्वदन्यः) तुझसे अन्य कोई भी (गिरः) स्तुतियों को (न हि) नहीं (सघत्) प्राप्त होता है (तत्) तिससे (नः) हमारे (वचः) स्तोत्रको (क्षोणीरिव) जैसे पृथिवी अपनेमें उत्पन्न हुए प्राणिमात्रको स्वीकार करतीहै तैसे (प्रतिहर्य) स्वीकार करिये ॥ ४ ॥

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्या ३ मिन्द्रं गिरो

बृहतीरभ्यनूषत । वावृधानं पुरुहूतꣳ सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवे दिवे ॥ ५ ॥

(बृहतीः) बहुतसी (गिरः) हमारे स्तोत्रकी वाणियें (चर्षणी-धृतम्) इच्छित फल देकर मनुष्योंके पोषण करनेवाले (मघवानम्) धन वा यज्ञवाले (उक्थ्यं) प्रशंसनीय (वावृधानम्) बल धन आदि सम्पदासे प्रतिक्षण बढ़नेवाले (पुरुहूतम्) अनेकोंके पुकारेहुए (अ-मर्त्यम्) अमर (सुवृक्तिभिः) सुन्दर स्तुति वाक्योंसे (दिवे दिवे जरमाणम्) प्रतिदिन स्तुति कियेहुए (इन्द्रम्) इन्द्रको (अभ्यनूषत) सब ओर से स्तुति करो ॥ ५ ॥

अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्वि-श्वा उशतीरनूषत । परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ ६ ॥

(यथा) जैसे (जनयः) स्त्रियें (मर्यं पतिम्) मनुष्य पति को (न) और जैसे (शुन्ध्युम्) शुद्ध दोषरहित (मघवानम्) भगवान् को (ऊतये) रक्षाके लिये (परिष्वजन्त) आलिङ्गन करता है तैसे ही (स्वर्युवः) स्वर्गसे मिलनेवाली (सध्रीचीः) इकट्ठी हुई (विश्वाः) व्याप्त (उशतीः) कामना करती हुई (मतयः) स्तुतियें (इन्द्रम्) इन्द्रको (अच्छा-नूषत) चारों ओरसे स्तुत करती हैं ॥ ६ ॥

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्म-दता वस्वो अर्णवम् । यस्य द्यावो न विच-रन्ति मानुषं भुजे मꣳहिष्ठमभि विप्रमर्चत ७

(त्यम्) प्रसिद्ध (मेषम्) शत्रुओंसे स्पर्धा करनेवाले (पुरुहूतम्) अनेकों यजमानोंके पुकारेहुए (ऋग्मियम्) वेदमन्त्रोंमें स्तुति किये (वस्वो अर्णवम्) धनोंके निवासस्थान इन्द्रको हे स्तोताओ ! (गीर्भिः) स्तुतियोंसे (अभिमदत) अभिमुख होकर प्रसन्न करो (यस्य) जिस इन्द्र के (मानुषम्) मनुष्योंके हितकारी कर्म (द्यावः न) सबकी हितकारी सूर्यकी किरणोंकी समान (विचरन्ति) विशेषरूपसे वर्त्त-मान होते हैं (भुजे) भोगके निमित्त (मंहिष्ठम) अत्यन्त बढ़ेहुए (विप्रम्) मेधावी इन्द्रको (अभ्यर्चत) पूजो ॥ ७ ॥

त्यछं सुमेषं महया स्वर्विदछं, शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते । अत्यं न वाजछं हवनस्यदछं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ ८ ॥

(यस्य) जिसकी (सुभ्वः) श्रेष्ठ भूमियें (साकम्) साथ(ईरते) प्राप्त होती है (त्यम्) उस (मेषम्) शत्रुओंसे स्पर्धा करनेवाले (स्वर्विदम्) धनके दाता (रथम्) रथकी समान अभीष्टस्थान पर पहुँचाने वाले (अत्यं वाजं न) गमन के साधन घोड़ेकी समान (हवनस्यदम्) यागस्थान में शीघ्रता से पहुँचानेवाले (इंद्रम्) इंद्रको (अवसे) रक्षा के लिये (सुवृक्तिभिः) श्रेष्ठ स्तुतियों से (महय) पूजो (शतम्) सौ (आववृत्याम्) प्रदक्षिणा करता हूँ ॥ ८ ॥

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ ९ ॥

(द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथ्वी लोक (घृतवती) जलवाले (भुवनानाम) भूतोंके (अभिश्रिया) आश्रय करने योग्य (उर्वी) विस्तीर्ण (पृथ्वी) बहुत कार्यरूप से प्रसिद्ध (मधुदुघे) जल को पूरित करनेवाले (सुपेशसा) सुन्दररूपवाले (वरुणस्य) ईश्वरकी सर्वनियामक शक्तिके (धर्मणा) धारण करनेसे (विष्कभिते) ठहरे हुए (अजरे) नित्य (भूरिरेतसा) बहुत बीजवाले हैं ॥ ९ ॥

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव । महान्तं त्वा महीनाछं सम्राजं चर्षणीनाम् । देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् १०

(इन्द्र) हे इन्द्र (उभे रोदसी) द्यावापृथिवी दोनोंको (यत्) जो तुम (उषा इव) जैसे उषा अपने प्रकाशसे सब जगत् को पूर्ण करदेती है तैसे (आपप्राथ) अपने तेजसे पूर्ण करते हो ऐसे (महताम्) देवताओंके भी (महान्तम) बड़े (चर्षणीनाम्) मनुष्योंके (सम्राजम) ईश्वर (इंद्रम्) इंद्र (त्वा) तुम्हें (देवी जनित्री) देवमाता अदिति

देवी (अजीजनत्) उत्पन्न करती हुई. (अजीजनत्) ऐसे पुत्रको उत्पन्न करती हुई इसकारण वह (भद्रा) श्रेष्ठ (जनित्री) जननी है ॥ १० ॥

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना । अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तꣳ सख्याय हुवेमहि ॥ ११ ॥

हे ऋत्विजो ! (मन्दिने) स्तुति के योग्य इन्द्रके अर्थ (पितुमत्) हविरूप अन्नसे युक्त (वचः) स्तुतिको (प्राचत) अधिकतासे उच्चारण करो (यः) जिस इद्रने (ऋजिश्वना) ऋजिश्वाको साथ लेकर (कृष्णगर्भाः) कृष्णनामा असुर की गर्भवर्ती स्त्रियों को (निरहन) कृष्णासुर सहित निःशेषरूपसे मारदिया (अवस्यवः) रक्षाकी इच्छावाले हम (वृषणम्) मनोरथों की वर्षा करनेवाले (वज्रदक्षिणम) दाहिने हाथ में वज्रधारी (मरुत्वन्तम) इन्द्रको (सख्याय) मित्रकी समान अनुकूलता करने के लिये (हुवेम) बुलाते हैं ॥ ११ ॥

चतुर्थोऽध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः ॥

इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् । विदे वृधस्य दक्षस्य महाꣳहि षः ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र (सोमेषु सुतेषु) सोमोंके निष्पन्न होनेपर उनको पीकर (वृधस्य) वर्धक (दक्षस्य) बलके (विदे) लाभार्थ (क्रतुम्) कर्मकर्त्ताको (उक्थम्) स्तोताको भी (पुनीषे) पवित्र करतेहो (सः) वह तुम इन्द्र (महान् हि) अवश्य ही महान् हो ॥ १ ॥

तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ २ ॥

हे स्तोताओं ! (पुरुहूतम) अनेकोंके पुकारेहुए (पुरुष्टुतम) बहुतोंके स्तुति कियेहुए (तमु) उस इन्द्रकी ही (प्रगायत) अभिमुख होकर वारवार स्तुति करो (तविषम) महान् इंद्रकी (गीर्भिः) मंत्रों से (आविवासत) आराधना करो ॥ २ ॥

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।

उलोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ३ ॥

(अद्रिवः) हे वज्रधारी इन्द्र (ते) तुम्हारे (तम्) उस (वृषणम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (पृत्सु) वैरिसम्बन्धी संग्रामोंमें (सासहिम्) शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले (लोककृत्नुम्) लोकोंके कर्त्ता (उ) और (हरिश्रियम्) हरिनामक अश्वों के सेवनीय (मदम्) सोमपानजनित हर्षको (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये । यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (विष्णवि) विष्णुके सोमपान के निमित्त आने पर दूसरे के यागमें (यत्) यद्यपि (सोमम्) सोमको पीनाहो (यद्वा) और यद्यपि (आप्त्ये त्रिते) आप्तके पुत्र त्रितके यज्ञमें सोम पीते हो (यद्वा) और यद्यपि (मरुत्सु) मरुतों के सोमपानके निमित्त आने पर अन्यके यज्ञमें (मन्दसे) साम पीकर प्रसन्न होतेहो तथापि हमारे ही (समिन्दुभिः) श्रेष्ठ सोमोंसे प्रसन्न हूजिये ॥ ४ ॥

एदु मधोर्मदिन्तरꣳ सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः । एवा हि वीर स्तवत सदावृधः ॥ ५ ॥

(अध्वर्यो) हे यज्ञ के नेता ऋत्विक्! (मधोः) मदकारी (अंधसः) सोमके (मदिन्तरम् इत्) अत्यन्त आनद देनेवाले सोमरस को ही (आसिञ्च) इन्द्रके निमित्त टपकाओ (वीरः) समर्थ (सदावृधः) सर्वदा हवियों से बढ़ानेयोग्य यह इंद (एव) ही (स्तवते हि) स्तोत्रादि से स्तुत कियाजाता है ॥ ५ ॥

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु । प्र राधाꣳसि चोदयते महित्वना ॥ ६ ॥

हे ऋत्विजो ! (इन्दु) टपकनेवाला सोम (इन्द्राय) इन्द्र के अर्थ (आसिञ्चत) अभिमुख होकर सींचो, तदनन्तर (सोम्यम) सोममय (मधु) मदकारी रसको (पिबाति) इन्द्र पिये और पीकर वह इन्द्र (महित्वना) अपनी महिमासे (राधांसि) अन्न (प्रचोदयते) स्तुति करनेवालों को अधिकतासे देय ॥ ६ ॥

एतो न्विन्द्रꣳ स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ ७ ॥

(सखायः) हे मित्ररूप ऋत्विजो ! (नु) शीघ्र ही (एत) आओ (स्तोम्यम्) स्तोम के योग्य (नरम्) सबके नेता (नरम्) उस इन्द्र की (स्तवाम) स्तुति करें (यः) जो इन्द्र (एक इत्) अकेला ही (विश्वाः) सकल (कृष्टीः) शत्रु सेनाओं का (अभ्यस्ति) तिरस्कार करता है ॥ ७ ॥

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ८ ॥

हे उद्गाताओ ! (विप्राय) मेधावी (बृहते) महान् (ब्रह्मकृते) अन्न के दाता (विपश्चिते) विद्वान् (पनस्यवे) स्तुति चाहनेवाले (इन्द्राय) इन्द्र के अर्थ (बृहत्) बृहत्सामको (गायत) गाओ ॥८॥

य एक इद्विदयते वसु मर्त्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥

(य) जो इन्द्र (एक इत्) अकेला ही (दाशुषे) हवि समर्पण करनेवाले (मर्त्ताय) मनुष्यके अर्थ (वसु) धन (विदयते) विशेष रूपसे देता है (अप्रतिष्कुतः) प्रतिकूलशब्दरहित वह (इन्द्रः) इन्द्र (अङ्ग) शीघ्र (ईशानः) सब जगत्का स्वामी होता है ॥ ९ ॥

सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥ १० ॥

(सखायः) हे मित्ररूप ऋत्विजो ! (वज्रिणे) वज्रधारी इन्द्र के अर्थ (ब्रह्म) स्तोत्रको (आशिषामहे) प्रार्थना करते हैं (वः) तुम सबोंके ही निमित्त (नृतमाय) सर्वोपरि नेता (धृष्णवे) शत्रुओंको भय देनेवाले इन्द्रके अर्थ मैं ही (सुस्तुषे) स्तुति करता हूं ॥ १० ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य सप्तम खण्ड समाप्त

गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये ।
यद्धꣳसि वृत्रमोजसा शचीपते ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र! (ते) तुम्हारे (तत् शवः) प्रसिद्ध बलकी (उपयाम्) समीप में (देवतातये) यजमान वा यज्ञके निमित्त (गृणे) स्तुति करता हूँ (यत्) क्योंकि (शचीपते) हे इन्द्र ! (ओजसा) बलसे (वृत्रम्) वृत्रको (हंसि) नष्ट करते हो ॥ १ ॥

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।
अयꣳ स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! तुम (यस्य) जिस सोमके (मदे) पीनेसे हर्ष उत्पन्न होनेपर (त्यत्) उस (शम्बरम्) शम्बरासुरको (दिवोदासाय) दिवोदास के अर्थ (रन्धयन) मारतेहो (सः) वह (अयम्) यह (सोमः) सोम (ते) तुम्हारे निमित्त (सुतः) सम्पादन किया है इसकारण तुम (पिब) पियो ॥ २ ॥

एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥

(प्रिय) सबके प्रिय (सत्राजित्) शत्रुओंको जीतनेवाले (अगोह्य) जिनका कोई भी तिरस्कार न कर सके ऐसे (इन्द्र) हे इन्द्र ! (गिरिः न) पर्वतकी समान (विश्वतः) सब ओरसे (पृथुः) बड़े (दिवः) स्वर्ग के (पतिः) ईश्वर भी तुम (नः) हमारे समीप (आगहि) आओ ॥ ३ ॥

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हꣳसि न्याऽत्रिणं तमीमहे ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (यः) जो तुम (सोमपातमः) अधिकतासे सोम पीनेवाले हो (शविष्ठ) हे परमबली ! उस सोम पीनेवाले तुम्हारा जो (मदः) मद (चेतति) पुत्रवत् अर्थ कार्योंके करनेको जानता है (येन) जिस सोमपानके मदसे (अत्रिणम्) राक्षसादिकोंको (निहंसि) दुर्गतिपूर्वक मारते हो (तम्) तुम्हारे उस मदकी (ईमहे) प्रार्थना करते हैं ॥ ४ ॥

तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे ।
आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥ ५ ॥

(सुमहसः आदित्यासः) हे श्रेष्ठ तेजवाले अदितिके पुत्र देवताओं ! (नः) हमारे (तुचे) पुत्रके अर्थ (तुनाय) पौत्रके अर्थ (जीवसे)

जीवनके अर्थ (दाघीयः) बड़ी (तत्) प्रसिद्ध (आयुः) आयु (सुकृणोतन) शोभन प्रकारसे दो ॥ ५ ॥

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् । अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ६ ॥

(वज्रहस्त) हे वज्रधारी इन्द्र (निर्ऋतीनाम्) विघ्नकर्त्ता राक्षसोंके (परिवृजम्) दूर करनेको (वेत्था हि) तुम ही जानते हो, इसमें दृष्टान्त कहते हैं कि—(अहरहः) प्रतिदिन (शुन्ध्युः) सूर्योदय होनेपर ब्राह्मण अपने कर्मको करके शुद्ध होते हैं ऐसा शुद्धिका हेतु आदित्य (परिपदां इव) चारों ओर उड़नेवाले पक्षियोंका जैसे अर्थात् जैसे प्रतिदिन सूर्यका उदय होनेपर पक्षी अपने स्थानको त्यागकर चारों ओरको चलेजाते हैं तैसेही हे इन्द्र ! तुम्हारे बलका प्रकाश होनेपर शत्रु अपने नगरोंको त्याग कर भागजाते हैं ॥ ६ ॥

अपामीवामप स्त्रिधमप सेधत दुर्मतिम् । आदित्यासो युयोतना नो अꣳहसः ॥ ७ ॥

(आदित्यासः) हे आदित्यो ! (अमीवाम्) रोगको (अपसेधत) हमारे समीपसे हटाओ (स्त्रिधम्) बाधा देनेवाले शत्रुको (अप) हमसे दूर करो (दुर्मतिम्) हमें दुःख देना विचारनेवालेको (अप) हमसे दूर करो (नः) हमें (अंहसः) पापसे (युयोतन) अलग करो ॥ ७ ॥

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यन्ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः । सोतुर्बाहुभ्याꣳ सुयतो नार्वा ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (सोमम) सोमको (पिब) पियो, वह सोम (त्वा) तुम्हें (मन्दतु) आनद देय (हर्यश्व) हे इन्द (ते) तुम्हार निमित्त (सोतुः) सोम संपादन करनेवाले की (बाहुभ्याम्) रश्मियोंसे (अर्वा न) घोड़ा जैसे (सुयतः) सुन्दरताके साथ ग्रहण कियाहुआ (अयम्) यह (अद्रिः) पाषाण (सुषाव) सोमको संपादित करता हुआ ॥ ८ ॥ चतुर्थाध्यायस्य पञ्चम खण्ड समाप्त

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिंद्र जनुषा सनादसि । युधे दापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र (त्वम्) तुम (जनुषा) जन्मसे ही (अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित (अना) नियन्तासे रहित (सनात्) सनातनसे (अनापिः) बान्धवरहित हो और जब तुम (आपित्वम् इच्छसे) किसी बान्धव की इच्छा करते हो, तब (युधेत्) युद्ध करतेहुए स्तुति करनेवालोंके सखा होजाते हो ॥ १ ॥

यो न इंद्रमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे। सखाय इंद्रमूतये ॥ २ ॥

(सखायः) हे मित्ररूप ऋत्विक् यजमानो! (यः) जो इंद्र (पुरा) पहिले (इदम्) इस (प्रवस्य) श्रेष्ठ धनको (नः) हमारे अर्थ (प्रणिनाय) अधिकतासे देताहुआ (तमु) उसही धनके लानेवाले (इन्द्रम्) इंद्रको (वः) तुम्हें धन प्राप्त होनेके अर्थ (ऊतये) रक्षाके अर्थ भी (स्तुषे) स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः। दृढा चिद्यमयिष्णवः ॥ ३ ॥

(प्रस्थावानः) हे प्रस्थान करनेवाले मरुतो! (आगन्त) हमारे समीप आइये (मा रिषण्यत) न आनेसे हमें हानि न पहुँचाइये (समन्यवः) समान तेजवाले (दृढाचित्) दृढ पर्वतादिकोंको भी (यमयिष्णवः) नियममें रखनेवाले हे मरुतो! (मापस्थात) हमें त्याग कर अन्यत्र न रहो ॥ ३ ॥

आ याह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते। सोमꣳ सोमपते पिब ॥ ४ ॥

(अश्वपते) हे अश्वोंके स्वामी! (गोपते) हे गौओंके स्वामी (उर्वरापते) हे सकल अन्नोंसे भरी भूमिके स्वामी इन्द्र! (इन्दवे) प्रकाशवान् आपके अर्थ (अयम्) यह सोम प्रस्तुत किया है (आयाहि) आइये (सोमपते) हे सोमके स्वामी! (सोमम्) सोमको (पिब) पीजिये ॥ ४ ॥

त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि। सꣳस्थे जनस्य गोमतः ॥ ५ ॥

(वृषभ) हे मनोरथ पूर्ण करनेवाले इन्द्र ! (गोमतः) गौ आदि पशुधनवाले (जनस्य) भक्तके (संस्थे) स्थान वा युद्धमें (श्वसन्तम्) हमारे ऊपर अधिक क्रोध होनेके कारण श्वास लेतेहुए शत्रुको (युजा, त्वया ह, स्वित्) तुम्हारी सहायतासे ही (प्रतिब्रुवीमहि) हम उत्तर देसकेंगे अर्थात् शत्रुको हटासकेंगे ॥ ५ ॥

गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः । रिहते ककुभो मिथः ॥ ६ ॥

(समन्यवः) हे समान तेजवाले मरुतो ! (गावश्च) तुम्हारीमाता रूप गौएं भी (सजात्येन) समान जातिकी होनेसे (सबन्धवः) समान बान्धवोंवाली होतीहुई (ककुभः) पूर्वादि दिशाओंको प्राप्त होकर (मिथः) परस्पर (लिहते) चाटती हैं ॥ ६ ॥

त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्ण शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनासहम् ॥ ७ ॥

(शतक्रतो) विविधपराक्रमी (विचर्षणे) हे अनेकों दृष्टिवाले इंद्र (त्वम्) तुम (नः) हमें (ओजः) बल (नृम्णम्) धन (आभर) दो (वीरम्) वीरतायुक्त (पृतनासहम्) सेनाओंका तिरस्कार करने वाले तुम्हें (आ) आह्वान करते हैं ॥ ७ ॥

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे । उदेव ग्मन्त उदभिः ॥ ८ ॥

(गीर्वणः) हे इन्द्र ! (अधा हि) इस समय (त्वा) तुम्हारे समीप (कामः) इच्छित पदार्थोंको (ईमहे) याचना करते हैं और (उपससृग्महे) आपको स्तुतियोंसे युक्त करते हैं, इस पर दृष्टांत कहते हैं, कि-(उदेव ग्मंतः) जैसे जलसहित जातेहुए पुरुष (उदभिः) अञ्जलिसे जल उछालकर समीपके पुरुषोंको क्रीड़ामें संयुक्त करते हैं ॥ ८ ॥

सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे । अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ९ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (गोश्रीते) गौके दूध घी से मिलेहुए (मदिरे) हर्षदायक (विवक्षणे) स्वर्गमें पहुँचानेवाले (ते) तुम्हारे (मधौ) सोमके समीप (वयो यथा) इकट्ठे होकर बैठेहुए पक्षियोंकी समान

हम (त्वा अभि नोनुमः) तुम्हारे अभिमुख होकर वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ ६ ॥

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः वज्रिन् चित्रं हवामहे ॥ १० ॥

(वज्रिन्) हे वज्रधारी (अपूर्व्य) तीनोंसवनोंमें प्रकट होनेसे नवीन इंद्र ! (भरन्तः) सोमरूप अन्नसे आपका पोषण करते हुए हम (चित्रम्) विविधरूपवाले (त्वामु) आपको ही (अवस्यवः) अपनी रक्षाके अर्थ चाहतेहुए (हवामहे) आह्वानकरते हैं (स्थूरं न) जैसे कि—अन्न आदिसे अपने घरको भरनेवाले अधिक गुणी (कच्चित्) किसी मनुष्यको बुलाते हैं ॥ १० ॥

चतुर्थाध्यायस्य पष्ठ खण्डः, समाप्त ॥

स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः । या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥

(स्वादोः) रसयुक्त (इत्था) इसप्रकार (विषूवतः) सब यज्ञोंमें काम आनेवाले (मधोः) मीठे सोमको (गौर्यः) स्वेतवर्णकी गौएं (पिबन्ति) पीती हैं (याः) जो गौएं (वृष्णा, सयावरीः) मनोरथों की वर्षा करनेवाले इन्द्रके साथ गमन करतीहुई (मदंति) प्रसन्न होती हैं (शोभथाः) शोभाको प्राप्त होती हैं (वस्वाः) दूध देतीहुई निवास करनेवाली वह गौएं (स्वराज्यम् अनु) अपने स्वामीके राज्य में स्थित रहती हैं ॥ १ ॥

इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्द्धनम् । शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहि-मर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ २ ॥

(शविष्ठ वज्रिन्) हे वज्रधारी बलवान् इन्द्र ! (इत्था हि) इस प्रकार शास्त्रोक्त रीतिसे (सोमे) तुम्हारे सोमको ग्रहण करलेने पर (मदः) स्तुति करनेवाला (वर्द्धनम्) तुम्हारी वृद्धि करनेवाले (ब्रह्म) स्तोत्रको (चकार) करताहुआ, इसकारण तुम (स्वराज्यम् अनु,

अर्चन्) अपने राज्यमें अपना स्वामित्व प्रकट करतेहुए (ओजसा) बलके द्वारा (पृथिव्याः) पृथ्वीसे (अहिम्) वृत्रासुरको (निः शशाः) पूर्णरूप से शासन करा अर्थात् उसको वध न करके भूमण्डलसे निकाल दो २

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः। तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ ३ ॥

(वृत्रहा, इन्द्रः) वृत्रासुरका नाशक इन्द्र (मदाय) हर्षके लिये (शवसे) बलके लिये (नृभिः) यज्ञकर्त्ताओंसे (वावृधे) बढ़ाया गया क्योंकि स्तुति करनेसे देवतामें बल आता है (तमित्) उस ही (महत्सु आजिषु) बड़े २ संग्रामोंमें (अर्भे) छोटे संग्रामोंमें (ऊतीम्) रक्षा करनेवाले इन्द्रको (हवामहे) आह्वान करते हैं (सः) हमारा आह्वान किया हुआ वह इन्द्र (वाजेषु) संग्रामोंमें (नः) हमारी (प्राविषत्) अधिकतासे रक्षा करै ॥ ३ ॥

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्य्यम्। यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥

(अद्रिवन् वज्रिन् इन्द्र) हे मेघरूप वाहनवाले वज्रधारी इन्द्र ! (तुभ्यमित्) तुम्हारी ही (वीर्यम्) सामर्थ्य (अनुत्तम्) शत्रुओंसे तिरस्कृत नहीं हुई है (यद्ध) जिस सामर्थ्यके द्वारा निश्चय (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपने राज्यमें अपनी प्रभुता दिखातेहुए तुमने (मायिनम्) मायावी (मृगम्) मृगरूपधारी (त्यं वृत्रम्) उस वृत्रासुरको (तव मायया) अपनी मायासे ही (अवधीः) मारडाला है, इसकारण ही तुम्हारी वीरता प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यꣳसते। इन्द्र नृम्णꣳ हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (प्रेहि) प्रकर्षके साथ चढ़ाई करो (अभीहि)

अभिमुख जाकर मारने योग्य शत्रुओं को पकड़लो (धृष्णुहि) उन शत्रुओंका तिरस्कार करनेपर (ते) तुम्हारा (वज्रः) वज्र (न नियंसते) शत्रुओंसे नहीं रुकता है (ते) तुम्हारा (शवः) बल (नृम्णम्) मनुष्योंको नमानेवाला है (हि) ऐसाहै इसकारणसे (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपने राज्यमें ही अपनी प्रभुता दिखाते हुए (वृत्रं हनः) असुरको मारो (अपः जयाः) फिर उसके रोकेहुए जलोंको जीतकरलो ५

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् । युंक्ष्वा मदच्युता हरी कꣳ हनः कं वसौ दधो-ऽस्माꣳ इन्द्र वसौ दधः ॥ ६ ॥

रहूगणका पुत्र गोतम कुरु सृञ्जय राजाओंका पुरोहित हुआ था. उन राजाओंका शत्रुओंके साथ युद्ध होनेपर गोतम ऋषिने इस सूक्त से इन्द्रकी स्तुति करके अपने यजमानोंके विजयकी प्रार्थना करी थी, यही बात इस मन्त्रमें है, कि—

(यत्) जब (आजयः) संग्राम (उदीरते) आरम्भ होते हैं उस समय (धृष्णवे) जो शत्रुओंको जीतता है उसके अर्थ (धनम्) धन (धीयते) स्थापन कियाजाता है अर्थात् जीतनेवालेको धन मिलता है (इन्द्र) हे इन्द्र ! ऐसे युद्धोंके चलनेपर (मदच्युता) शत्रुओंके गर्वको नष्ट करनेवाले (हरी) घोड़ोंको (युङ्क्ष्व) जोड़ो और (कम्) किसी अपनी आराधना न करनेवाले राजाको (हनः) मारो (कम्) किसी अपनी आराधना करनेवाले राजाको (वसौ) धनमें (दधः) स्थापन करो अर्थात् हार जीत तुम ही देतेहो अतः हे इन्द्र ! हमारे राजाओंको (वसौ) धनमें (दधः) स्थापन करो ॥ ६ ॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत । अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ७ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र ! (अक्षन्) यजमानोंने तुम्हारे दिये हुए अन्नोंको खाया और खाकर (हि) निश्चय (अमीमदन्त) तृप्त हुए (प्रियाः, अवाधूषत) परमोत्तम रसका स्वाद लेकर उसको कहनेमें असमर्थ होकर उन्होने आनंदके कारण अपने शिर हिलाये, तदनंतर (स्वभानवः) तेजसे दिपते हुए (विप्राः) बुद्धिमान् ऋत्विजोंने (नविष्ठया मती)

अतिनवीन स्तुतिसे (अस्तोषत) स्तुति करी, इसकारण (ते, हरी) अपने हरि नामक घोड़ोंको (नु) शीघ्र (योज) रथमें जोड़ो ॥ ७ ॥

उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव। कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ८ ॥

(मघवन् इंद्र) हे धनवान् इंद्र ! (गिरः) हमारी स्तुतियोंको (उपो) समीप आकर (सुशृणुहि) सम्यक् प्रकारसे सुनो (अतथा इव) और तुम पहिले जैसे थे उसके विपरीत मतबनो अर्थात् पहिले जैसा अनुग्रह करते थे तैसा ही करते रहिये और (नः) हमें (सूनृतावतः) स्तुतिरूप प्यारी और सत्य वाणीसे युक्त (कदाकरः) कब करोगे, तुम (अर्थयासइत्) हमारी की हुई स्तुतियोंको स्वीकार करते ही हो, इसकारण (ते हरी) अपने घोड़ोंको (नु) शीघ्र (योज) अपने रथमें जोड़ो ॥ ८ ॥

चन्द्रमा अप्स्वाऽन्तरा सुपर्णो धावते दिवि। न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥

(अप्सु) अन्तरिक्षमेंके जलमय मण्डलमें (अन्तः) भीतर वर्त्तमान (सुपर्णः) सुषुम्ना नामक सूर्यकी किरणसे युक्त (चंद्रमाः) चंद्रमाः (दिवि) द्युलोकमें (आधावते) एकसमान गतिसे शीघ्र गमन करता है, उस चंद्रमासे सम्बंध रखनेवाली (हिरण्यनेमयः) हे सुवर्णकी समान नोकोंवाली अथवा हित और रमणीय प्रांतवालीं (विद्युतः) प्रकाशवान् किरणों ! (वः) तुम्हारे (पदम्) चरणरूप (अग्रम्) अग्रभागको न(विन्दन्ति) कूपसे ढकी होनेके कारण मेरी इन्द्रियें नहीं पासकती हैं, इसकारण आप मुझे कूपमेंसे निकालिये (द्यावापृथिवी) हे द्युलोक और पृथ्वीलोकके अभिमानी देवताओं (मे) मेरे (अस्य) इस स्तोत्रको (वित्तम) जानो ॥ ९ ॥

प्रति प्रियतमꣳ रथं वृषणं वसुवाहनम्। स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषतिप्रति

माध्वी मम श्रुतछं हवम् ॥ १० ॥

(अश्विनौ) हे अश्विनीकुमारो ! (वाम) तुम्हारे (प्रियतमम्) अतिप्यारे (वृषणम्) फलोंकी वर्षा करनेवाले (वसुवाहनम्) धन ढोनेवाले (रथम्) रथको (स्तोता) स्तुति करनेवाला (ऋषिः) ऋषि (स्तोमेभिः) स्तोमों से (प्रतिप्रतिभूषति) शोभित करता है, इसकारण (माध्वी) हे मधुविद्या के जाननेवालो (श्रुतम्) सुनो ॥ १० ॥

चतुर्थाध्यायस्य सप्तम खण्डः समाप्तः ।

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् । यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषछं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥

(अग्ने देव) हे अग्नि देव ! (द्युमन्तम्) दीप्तिमान् (अजरम्) जरारहित (ते) तुझे (आ इधीमहि) सब ओरसे प्रज्वलित करते हैं (यद्ध) निश्चय (ते) तेरी (स्या) वह (पनीयसी) स्तुति के योग्य (समित्) दीप्ति (द्यवि) द्युलोक में (दीदयति) दमकती हैं (स्तोतृभ्यः) हम स्तुति करनेवालोंको (इषम्) अन्न (आभर) दो ॥१॥

आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे । शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे ॥ २ ॥

हे अग्ने (न) इससमय (स्ववृक्तिभिः) अपनीकी हुई निर्दोष स्तुतियों से (होतारम्) देवताओं को बुलानेवाले वा होमको सुसिद्ध करने वाले (वः) तुम्हारे (यज्ञेषु) यज्ञों में (स्तीर्णबर्हिषम्) जिसके निमित्त कुशोंका आसादन किया गया है ऐसे (शीरम्) औषधादि में सर्वत्र व्याप्त (पावकशोचिषम्) शुद्ध करनेवाली है दीप्ति जिसकी ऐसे (त्वा अग्निम्) तुझ अग्निको (विमदे) सोमपान से विशेष हर्ष प्राप्त होने के निमित्त (आवृणीमहे) अभिमुख होकर आराधना करते हैं (विवक्षसे) हे अग्ने ! तुम महान् हो ॥ २ ॥

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती । यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये

सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥

(अद्य) आज इस यागके दिन (उषः) हे उषादेवि ! (दिवित्मती) दीप्तिवाली तू (नः) हमैं (महे राये) बहुत से धनके अर्थ (बोधय) प्रकाशित कर अर्थात् प्रकाश होनेपर यज्ञके द्वारा धनकी प्राप्ति होसकती है (यथाचित्) जैसे (नः) हमैं (अबोधयः) पहिले प्रकाशित किया था (सुजाते) हे श्रेष्ठ जन्मवाली ! (अश्वसूनृते) हे सत्य प्रिय स्तुतिवाली (वाय्ये) वयके पुत्र (सत्यश्रवसि) मुझ सत्यश्रवा पर अनुग्रह कर ॥ ३ ॥

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् । अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे विवक्षसे ॥ ४ ॥

हे सोम (विवक्षसे) तुम महान् हो इसकारण (अन्धसः) सोम संबन्धी वस्तुओंके (विमदे) विशेष हर्षदायक होने पर तुम (नः) हमारे (मनः) मनको (दक्षम्) अन्तरात्माको (उत) और (क्रतुम) प्रज्ञानको (भद्रम्) कल्याण (वातय) पहुँचाओ अर्थात् ऐसी कृपा करो, कि—मेरा मन शुभ सङ्कल्प किया करै, मेरा अन्तरात्मा शुभकारी हो और मेरा ज्ञान शुभ निश्चय करै (अथा) और स्तोता (ते) तुम्हारे (सख्ये) मित्रभाव में रमण करै (यवसे, रणाः, गावः, न) जैसे कि घासमें गौएं प्रेमके साथ रमण करती हैं ॥ ४ ॥

क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृते शवः । श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवां दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ५ ॥

(क्रत्वा) प्रज्ञासे (महान्) बड़ा (भीमः) शत्रुओंको भय देनेवाला इन्द्र (अनुष्वधम) सोमरूप अन्नका पान होनेपर (शवः) अपने बल को (आ वावृते) अभिमुख होकर दिखाता है, तदनन्तर (ऋष्वः) देखने योग्य (शिप्री) बड़ी नासिका वा ठोडीवाला (हरिवान्) हरिनामक अश्वोंसे युक्त इन्द्र (उपाकयोः) समीपवर्त्ती (हस्तयो) हाथों में (आयसं वज्रम) लोहे के वज्रको (श्रिये) सम्पदाके लिये (निदधे) धारण करता है ॥ ५ ॥

स घा तं वृषणᳬ रथमधि तिष्ठाति गोविदं । यः पात्रᳬ हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ६ ॥

(सघा) वह मित्रभूत इन्द्र (वृषणम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (गोविदम्) गौओंकी प्राप्ति करानेवाले (रथं अधितिष्ठाति) रथपर चढ़े, हे इंद्र (यः) जो रथ (हारियोजनम्) धानाओंसे युक्त (पूर्णम्) सोमसे भरे (पात्रम्) पात्रको (चिकेतति) ज्ञापित करता है (ते) अपने (हरी) घोड़ोंको (नु) शीघ्र (योज) रथमें जोड़ो ॥ ६ ॥

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः । अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषᳬ स्तोतृभ्य आभर ॥ ७ ॥

(यः) जो (वसुः) उपासकोंका धन है (अस्तम्) घरकी समान सबके आश्रय (यम्) जिस अग्निको (धेनवः) गौएं (यन्ति) तृप्त करनेको जाती हैं (अस्तम्) जिस आश्रयरूप अग्निको (आशवः) शीघ्रगामी (अर्वन्तः) अश्व प्राप्त होते हैं (अस्तम्) जिस आश्रय-रूपको (नित्यासः) नित्य उपासना में लगेहुए (वाजिनः) हवि लिये हुए यजमान प्राप्त होते हैं (तम् अग्निं मन्ये) उस अग्निकी मैं स्तुति करता हूं (स्तोतृभ्यः) हम स्तुति करने वालों को (इषम्) अन्न (आभर) दो ॥ ७ ॥

न तमᳬहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् । सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः ॥ ८ ॥

(देवासः) हे देवताओं ! (सजोषसः) एक समान प्रसन्न हुए (अर्यमा) शत्रुओंको दण्ड देनेवाला अर्यमा (मित्रः) रक्षा करनेवाला मित्र (वरुणः) पापोंका नाशक वरुण (अतिद्विषः) शत्रुओंके पारकरके (यम्) जिसको (नयति) उन्नतिके पदपर पहुँचादेते हैं (तं मर्त्यम्) उस मनुष्यको (अंहः) पाप (न) नहीं (दुरितम्) उसका फलरूप दुर्गति (न) नहीं (अष्ट) व्यापते हैं ॥ ८ ॥

चतुर्थाध्यायस्य अष्टमः खण्ड. समाप्तः

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम (स्वादुः) स्वादरसवाला तू (इन्द्राय) इन्द्र के अर्थ (मित्राय) मित्र देवताके अर्थ (पष्णे) पूषाके अर्थ (भगाय) भग देवताके अर्थ (परिप्रधन्व) सब पात्रों में पूर्णरूपसे बरस ॥१॥

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥ २ ॥

हे सोम ! (सु) भले प्रकार (वाजसातये) हमें अन्न देनेके अर्थ (परिप्रधन्व) चारों ओरसे पात्रोंमें पूर्ण हो (सक्षणिः) सहन शील तुम (वृत्राणि) शत्रुओंपर(परि)चढ़कर जाओ(नः)हमारे(ऋणया) ऋणोंको नाश करनेवाले तुम (द्विषः) शत्रुओंको (तरध्यै) पार होने के निमित्त वा मारनेको (ईरसे) चढ़कर जाते हो ॥ २ ॥

पवस्व सोम महांत्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभिधाम ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम (महान्) गौरववाला (समुद्रः) रसरूपसे बहने वाला (पिता) सबका पालन करने वाला तू (देवानाम्) देवताओं के (विश्वा) सब (धाम) स्थानों की ओर को (पवस्व) पात्रोंको पूर्ण कर ॥ ३ ॥

पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥ ४ ॥

(सोम) हे सोम (अश्वो न) अश्वकी समान (नक्तः) जलों से शुद्ध कियाहुआ (वाजी) वेगवाला तू (महे) बड़े (दक्षाय) बलके अर्थ (धनाय) धनके निमित्त (पवस्व) पात्रोंको पूर्णकर ॥ ४ ॥

इन्दुःपविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ५

(चारुः) कल्याणरूप (कविः) बुद्धिवर्धक (इन्दुः) सोम (अपां उपस्थे) जलोंके भीतर (भगाय) सेवनीय धनके अर्थ (मदाय) हर्षके निमित्त (पविष्ट) क्षरित होता है ॥ ५ ॥

अनु हि त्वा सुतꣳ सोम मदामसि महे समर्य-राज्ये वाजाꣳ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ ६ ॥

(सोम) हे सोम (सुतम्) संपादन कियेहुए (त्वा) तुझै (अभि मदामसि हि) क्रमसे स्तुत करते हैं, (पवमान) हे पूयमान सोम वह तू (महे) वडे (समर्यराज्ये) मनुष्यों सहित अपने राज्यकी रक्षा करनेको (वाजान्, अभि, प्रगाहसे) शत्रुओंकी सेनाओंपर चढ़ाई करकै जाते हो ॥ ६ ॥

क ईं व्यक्ता नरः सनीड़ा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ॥ ७ ॥

(व्यक्ताः) कान्तियुक्त (नरः) प्रभुता करनेवाले (सनीड़ाः) समान स्थानवाले (मर्याः) मनुष्योंका हित करनेवाले (अथा) और (स्वश्वाः) श्रेष्ठ घोडोंवाले (इमम्) ऐसे (के) कौन (रुद्रस्य) दीनतापर्वक प्रार्थना करनेवालेके अपने होते हैं ? ॥ ७ ॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ ८ ॥

(अग्ने) हे अग्ने (अद्य) आजके दिन हम ऋत्विज आदि (ओहैः) इन्द्रादिको प्राप्त करानेवाले (स्तोमैः) स्तोत्रोंसे (अश्वंन) घोड़ेकी समान हवि पहुँचानेवाले (क्रतुं न) कर्त्ताकी समान अर्थात् उपकार करनेवाले (भद्रम्) कल्याणरूप (हृदिस्पृशम्) परमप्रिय (तम्) प्रसिद्ध तुम्है (ऋध्यामः) वृद्धियुक्त करते हैं ॥ ८ ॥

आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो अग्मं देवस्य सवितुः सवम् । स्वर्गाꣳ अर्वन्तो जयत ॥ ९ ॥

(मर्याः) मनुष्योंके हितकारी (आविः) प्रकाशवान् (वाजिनः) हविपानेवाले देवता (सवितुः) प्रेरक देवके (सवम्) संपादनीय (वाजम्) अन्नरूप सोमको (अग्मन्) प्राप्तहुए, इसकारण हे यजमानो ! (स्वर्गम्) स्वर्गको (अर्वन्तः) घोड़ोंको (जयत) जीतो ॥ ९ ॥

पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महाꣳ अवीनामनु पूर्व्यः ॥ १० ॥

(सोम) हे सोम (द्युम्नी) अन्नवाला वा यशस्वी (सुधारः) शोभनधारायुक्त (पूर्व्यः) पुरातन (महान्) बड़ा तू (अवीनाम्) रोमोंसे (अनुपवस्व) क्रमसे संपादित हो ॥ १० ॥

चतुर्थाध्यायस्य नवमः खंड समाप्त

विश्वतोदावन् विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥ १ ॥

(विश्वतो दावन्) हे सर्वत्र शत्रुओंका छेदन और भक्तोंको दान देनेवाले इंद्र ! तुम (विश्वतः) सब ओरसे (नः) हमें (आभर) इच्छित पदार्थ दो (शविष्ठम) अत्यन्त बलवान् (यं त्वाम्) जिन आप के समीप (ईमहे) अभीष्टकी याचना करते हैं ॥ १ ॥

एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे २

(ऋत्वियः) वसंत आदि ऋतुमें प्रकट होनेवाला (यः) जो इंद्र (नामश्रुतः) अपने नामसे प्रसिद्ध है (एषः) यह (ब्रह्मा) स्तोताओं के मनोरथोंको बढ़ानेवाला है जिसकी मैं (गृणे) स्तुति करता हूँ ॥२॥

ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कै-रवर्द्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ३ ॥

(अहये हंतवै) वृत्रासुरको मारनेके निमित्त (अर्कैः) प्रशंसा योग्य स्तोत्रोंसे (महयन्तः) पजते हुए (ब्रह्माणः) ब्राह्मण (इन्द्रम्) इंद्रको (अवर्धयन्) प्रसन्न करते हैं ॥ ३ ॥

अनवस्ते रथमश्वाय तक्षु-स्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ॥ ४ ॥

हे इन्द्र (अनवः) मनुष्य (ऋभवः) देवता (ते) तेरे (अश्वाय) घोड़ेके अर्थ (रथम्) रथको (ततक्षुः) रचतेहुए (पुरुहूत) हे अनेकोंके पुकारे हुए इन्द्र (त्वष्टा) विश्वकर्मा (वज्रम्) वज्रको (द्युमन्तम्) प्रकाश युक्त करता हुआ ॥ ४ ॥

शं पदं मघं रयीषिणे न काम-मव्रतो हिनोति न स्पृशद्रयिम् ॥ ५ ॥

(स्वर्गोषिणः) हवि अर्पण करनेवाले पुरुष (शम्) सुखको (पदम्) स्थानको (मघम्) धनकोभी पाते हैं (अव्रतः) इन्द्रके निमित्त यज्ञादि न करनेवाला पुरुष (न हिनोति) दानादि करने को समर्थ नहीं होता है (कामम्) अपने इच्छित (रयिम्) धनको (न स्पृशत्) स्पर्शभी नहीं करसकता है ॥ ५ ॥

सदा गावः शुचयो विश्वधा-
यसः सदा देवा अरेपसः ॥ ६ ॥

(गावः) इन्द्रकी शरण जानेवाले (सदा) सर्वदा (शुचयः) निर्मल (विश्वधायसः) विश्वभरका पोषण करनेकी शक्तिवाले (सदा) सर्वदा (देवाः) दानादि गुण युक्त (अरेपसः) पाप रहित भी होतेहैं ६

आ याहि वनसा सह गावः
सचन्त वर्त्तनिं यदूधभिः ॥ ७ ॥

(उषः) हे उषादेवी ! (वनसा सह) चाहनेयोग्य तेजके साथ (आयाहि) आओ (गावः) उषाकी वाहन गौएं (वर्त्तनिम्) रथ को (सचन्त) सेवन करती हैं (यत्) जो गौएं (ऊधभिः) बड़े२ ऐनों से युक्त हैं ॥ ७ ॥

उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः
पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥ ८ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र (मधुमति) मधुरता युक्त (प्रक्षे) राजाके बनायेहुए गलड़के चमसमें (ते क्षियन्तः) तुम्हारे समीप स्थितहुए हम (रयिम्) रमणीय अन्नको (पुष्येम) परोसते हैं (धीमहे) और तुम्हारा ध्यान भी करते हैं ॥ ८ ॥

अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ
स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥ ९ ॥

(स्वर्काः) सुन्दर अन्न वा स्तोत्रवाले (मरुतः) मरुत (अर्कं) पूजने योग्य इन्द्रको (अर्चन्ति) हवि और स्तोत्रोंसे पूजते हैं (युवा) नित्य तरुण (श्रुतः) प्रसिद्ध (स इन्द्रः) वह इन्द्र (आ स्तोभति) उनके शत्रुओंको चढ़ाई करके मारता है ॥ ९ ॥

प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय

विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥ १० ॥

(विप्राः) हे ब्राह्मणो (वृत्रहन्तमाय) अतिशयकरके वृत्रके नाशक (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (गाथम्) उस स्तोत्र को (प्रगायत) अधिकता से पढ़ो (यम्) जिस स्तोत्र को (जुजोषते) प्रसन्न होकर स्वीकार करता है ॥ १० ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः

अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड्न सुमद्रथः ॥ १ ॥

(हव्यवाट्) हवियोंको पहुँचानेवाला (चिकितिः) विशेष बुद्धिमान् (सुमद्रथः) श्रेष्ठ हवियोंसे युक्त (रथः न) रथकी समान पहुँचानेवाला (अग्निः) अग्नि (अचेति) हवि देनेवाले यजमानको जानता है ॥ १ ॥

अग्ने त्वं नो अन्तम उत

त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्नि (वरूथ्यः) सेवा करने योग्य (त्वम्) तू (नः) हमारा (अन्तमः) अधिक समीपस्थ (उत) और (त्राता) रक्षक (शिवः) सुखदायक (भुवः) हो ॥ २ ॥

भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ॥ ३ ॥

(महोनाम्) बड़ोंमें (भगो न) सूर्यकी समान (चित्रः) विचित्र गुणोंवाला वा पूजनीय (अग्निः) अग्नि, यज्ञ करनेवालोंको (रत्नम्) श्रेष्ठ धन (दधाति) देता है ॥ ३ ॥

विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वासन् यदि वेह नूनम्

(विश्वस्य) सब शत्रुओंको (प्रस्तोभः) नष्ट करता है (यदि वा) और (इह) इस यज्ञमें (नूनम्) निश्चय (पुरोवासन्) पूर्वदेशमें स्थित हुआ यह अग्नि ऋत्विजों से स्तुतिकिया जाताहै ॥ ४ ॥

उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्त्त-

यति वर्त्तनिं सुजातता ॥ ५ ॥

(उषाः) यह उषा (स्वसुः) अपनी बहिन रातके (तमः) अन्धकारको (अपसंवर्तयति) अपने तेजसे दूर करती है (सुजातता) अपने श्रेष्ठ प्रकाशको भी (वर्त्तनिम्) रथपर पहुँचाता है ॥ ५ ॥

इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः६

(इमाः) इन दीखनेवाले (भुवनाः) लोकोंको (नु) शीघ्र (कम्) सुख पानेके लिये (सीषधेम) वशमें करता हूँ (इन्द्रः) इन्द्र (च) और (विश्वे) सकल (देवाश्च) देवता भी स्तुतिसे प्रसन्न होकर मेरे इस कामको सिद्ध करें ॥ ६ ॥

वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः॥७॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (त्वत्) तुमसे (रातयः) दान (यथा स्रुतयः पथा) जैसे राजमार्गसे छोटे२ मार्ग निकलते हैं तैसे (वियन्तु) प्राप्त हों ७

अया वाजं देवहितꣳ सनेम

मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ८ ॥

(अया) इस स्तुति से (देवहितम्) इन्द्र देवताके दियेहुए (वाजम्) अन्नको (सनेम) हम भोगें (सुवीराः) सुन्दर पुत्रोंसे युक्त हम(शतहिमाः) सकडों हेमन्त ऋतुओं पर्यन्त (मदेमः) प्रसन्न रहें ॥ ८ ॥

ऊर्जा मित्रो वरुणःपिन्वतेडाः

पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र ॥ ९ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! (मित्रः) मित्र देवता (वरुणः) वरुण देवता तुम सब (ऊर्जा) बलसहित (इडा) अन्न (पिन्वत) हमें दो (नः) हमारे (इषम्) अन्नको (पीवरीम्) अधिक (कृणुहि) करो अर्थात् बहुतसा अन्न दो ॥ ९ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥ १० ॥

क्योंकि (इन्द्रः) इन्द्र (विश्वस्य) सब लोकोंका (राजति) ईश्वर होता है इस कारण प्रधानरूपसे इंद्रको ही अभिमुख करके कहा है१०

चतुर्थाध्यायस्य एकादश खण्ड समाप्त

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्म-

स्तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।

स ईं ममाद महि कर्म कर्त्तवे महामुरुꣳ सैनꣳ सश्चद्देवो देवꣳ सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् १

(महिषः) पूजनीय (सुविशुष्मः) बहुत बलवाला (तृम्पत्) तृप्त होता हुआ इन्द्र (त्रिकद्रुकेषु) ज्योति गौ और आयुनाम वाले दिनोंमें (सुतम्) सम्पादन कियेहुए (यवाशिरम्) यवके सत्तुओंसे मिले हुए (सोमम्) सोमको (विष्णुना) विष्णुके साथ (यथावशम्) जैसे पहिले इच्छा कीथी तिसीप्रकार (अपिबत्) पीता हुआ (सः) वह पिया हुआ सोम (महि) बड़े (कर्म) वृत्रवध आदि कर्मको (कर्त्तवे) करनेके लिये (महाम्) बड़े (उरुम्) विस्तार वाले (ईम्) इस इन्द्रको (ममाद) मद युक्त करता हुआ (सत्यः) श्रेष्ठ (इन्दुः) टपकताहुआ (देवः) दीप्तिमान् (सः) वह सोम (सत्यम्) सत्यरूप (देवम्) सोम चाहनेवाले (एनं इन्द्रम्) इस इंद्र को (सश्चत्) व्याप्त हो ॥ १ ॥

अयꣳ सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म । ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमन्तश्चिता गोः ॥ २ ॥

(सहस्रमानवः) सहस्रों मनुष्योंवाला (दृशः) दर्शनीय (कवीनाम्) बुद्धिमानोंका (मतिः) माननीय (विधर्म) विधाता (ज्योतिः) तेजःस्वरूप (अयम्) यह (ब्रध्नः) सूर्य (समीची) निर्मल (अरेपसः) अन्धकाररूप पापरहित (सचेतसः) समान चित्तवाली (उषसः) इन उषाओं को (समैरयत्) भलेप्रकार प्रेरणा करता है तदनन्तर (स्वसरे) दिनमें (मन्युमन्तः) प्रकाशवाले चन्द्रमा आदि (गोः) सूर्यके तेजसे (चिताः) तेजहीन होते है ॥ २ ॥

एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः । हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो न पितरं वाजसातये मꣳहिष्ठं वाजसातये ॥३॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (परावतः) स्वर्गरूप दूरदेश से (नः अच्छ उपयाहि) हमारे समीप श्रेष्ठरूपसे आइये, तहाँ दृष्टान्त कहते हैं कि—(अयं न) जैसे यह अग्नि और सुसिद्ध सोम प्राप्त हुआ है (सत्पतिः विदथानि इव) जैसे ऋत्विजोंका पालक यजमान यज्ञशालाओं में आता है (अस्ता, सत्पतिः राजा इव) जैसे तारागणोंका पालनकर्त्ता चन्द्रमा अपने धामको प्राप्त होता है (पयस्वन्तः,त्वा,सुतेषु, आ हवामहे) हवि लियेहुए हम यजमान तुम्हें सोम सम्पन्न होनेपर अभिमुख होकर आह्वान करते हैं (पुत्रासः, वाजसातये, पितरं, न) पुत्र बल वा अन्नकी प्राप्तिके लिये जैसे पिताको पुकारते हैं तैसे (वाजसातये मँहिष्ठम्) सग्राम मे जय पानेके लिये तुम्हें पुकारते हैं ॥ ३ ॥

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रꣳ सत्रा दधानमप्रतिष्कुतꣳ श्रवाꣳसि भूरि । मꣳहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त्त राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ ४ ॥

(मघवानम्) धनवान् (उग्रवम) किसीसे न दबनेवाले (सत्रा) सत्य (भूरि) बहुतसे (श्रवांसि) बलोंको (दधानम्) धारण किये (अप्रतिष्कुतम्) जिसको शत्रु न रोकसकें ऐसे (तम्) उस पूर्व मंत्रों में वर्णन कियेहुए (इंद्रम्) इन्द्रको (जोहवीमि) वारंवार आह्वान करता हूँ (महिष्ठः) परमपूज्य (यज्ञियः) यज्ञके योग्य इन्द्र (गीर्भिः) हमारी स्तुतियोंसे (आववर्त्त) यज्ञके अभिमुख होरहा है, तदनंतर (वज्री) वज्रधारी इंद्र (राये) धनके अर्थ (विश्वा) सब ही (सुपथा) सुमार्गोंको (कृणोतु) करै अर्थात् हमें सब दिशाओं से धन प्राप्त होय ॥ ४ ॥

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु त्यच्छर्द्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे । यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा सन्दाय नव्यसे । अध प्र नूनमुप यन्ति धीतयो देवाꣳ अच्छ न धीतयः ॥ ५ ॥

हे इन्द्र मैं (पुरः) आगेकी उत्तर वेदी में (अग्निम्) आहवनीय नामक अग्निको (धिया) प्रणयन आदिकर्म से (दधे) धारण कर चुका हूँ (त्यत् दिव्यं शर्धः) उस दिव्य बलवान् अग्निको (नु) शीघ्र (आ वृणीमहे)अभिमुख होकर आराधना करते हैं(इन्द्रवायू) इन्द्र और वायुको (वृणीमहे) प्रार्थना करते हैं (यद्ध) जो (विवस्वते नव्यसे) धनवान् नवीन यजमानके अर्थ (नाभा) भूमिके नाभिरूप देवयजन स्थानमें (सन्दाय) परस्पर मिलकर (कारणा) मनोरथसिद्धि करने वाले होतेहैं (श्रौषट् अस्तु) इस स्तुतिका श्रवण हो (अध) अनन्तर (नः) हमारे (धीतय) स्तुति आदि कर्म (प्रनूनम्) अवश्य ही (उपयंति) तुम्हें प्राप्त होते हैं और (देवान् अच्छ न) मानो अग्नि आदि देवताओंके अभिमुख प्राप्त होनेको (धीतयः) हमारे कर्म प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे
मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे
भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥ ६ ॥

(एवयामरुत्) इस नामके ऋषिकी (गिरिजाः) वाणीसे उत्पन्न हुई (मतयः) स्तुतियें (मरुत्वते) मरुत्सहित (विष्णवे) व्यापक (महे) महान् (वः) तुम इन्द्रको (प्रयंतु) प्राप्त हों और (प्रयज्यवे) अधिकतासे यजन करने योग्य (सुखादये) सुंदर आभरणवाले (तवसे) बलवान् (भन्ददिष्टये) स्तुतिरूप इष्टिवाले (धुनिव्रताय) मेघोंका चालनरूप कर्मवाले (शवसे) गमनशील (शर्धाय) मरुतोंके बलको (प्र) प्राप्त हों ॥ ६ ॥

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषाꣳसि
तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋ-
क्वभिः ॥ ७ ॥

(पुनानः) पवित्र करताहुआ सोम (हरिण्या) हरे वर्ण की (अया) इस (रुचा) प्रकाशवती धारासे (विश्वा) सकल (द्वेषांसि) द्वेषकरनेवाले राक्षसोंको (तरति) विनष्ट करता है (सूरः न) जैसे सूर्य (सयुग्वभिः) मिलीहुई किरणोंसे अन्धकारोंको नष्ट करता है (पृष्ठस्य) तिस जगत्को धारण करनेवाले सोमकी (धारा) धारा (रोचते) दीप्त होतीहै (पुनानः) पवित्र करताहुआ (हरिः) हरे वर्णका सोम (अरुषः) दमकता है (यत्) जो सोम (सप्तास्येभिः) रसलानेवाले (ऋक्वभिः) स्तोताओंसे (ऋक्वभिः) तेजोंसे (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपोंको (परियाति) व्यापता है ॥ ७ ॥

अभि त्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतु-
मर्चामि सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिम्
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥ ८ ॥

(कविक्रतुम्) सर्वज्ञ (सत्यसवम्) सच्ची प्रेरणा करनेवाले (रत्नधाम) रमणीय धनोंके देनेवाले (अभिप्रियम) सब ओरसे प्रिय (मतिम) स्तुतिके योग्य (त्यम्) उन (सवितारम्) प्रेरक (देवम्) देवको (अर्चामि) पूजता हूँ (यस्य) जिस सविताकी (भा) दीप्ति (ऊर्ध्वा) ऊँची होकर (ओण्योः) द्यावापृथिवीमें (अदिद्युतत्) अत्यत दीप्त होती है (सवीमनि) जिसका आविर्भाव होनेपर (अमतिः) सब की कान्ति अत्यंत दिपती है (सुक्रतुः) वह सुन्दर कर्मवाला (हिरण्यपाणिः) सविता देवता (कृपा) दया करके (स्वः) स्वर्गके निमित्त (अमिमीत) इस सोम का मान करता है ॥ ८ ॥

अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोःसूनुꣳ
सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशो-
चिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ९ ॥

(अग्निम्) सकल देवसेनाओंमें अग्रणी या यज्ञोंमें आगे कियेजाने वाले अग्निको (होतारम्) हमारे यज्ञमे देवताओंका आह्वान करनेवाला वा होमको सुसिद्ध करनेवाला (दास्वन्तम्) अधिक धन देनेवाला (वसोःसहसः)सबके प्रशंसनीय बलका(सूनुम्)पुत्र(जातवेदसं विप्रं न) विद्याओंके ज्ञाता बुद्धिमान् ब्राह्मणकी समान (जातवेदसम्) परममान्य (मन्ये) मानता हूँ (यः देवः) ऐसे गुणोंवाला जो अग्नि देवता (स्वध्वरः) भलेप्रकार यज्ञका निर्वाह करता हुआ (ऊर्ध्वया) ऊँची और श्रेष्ठ (देवाच्या)देवताओंका पूजन करनेवाली वा देवताओंके प्रति कहीहुई (कृपा) सामर्थ्यरूप कृपा करके अर्थात् देवताओंके अर्थ हवि पहुँचाने की इच्छा करके(शुक्रशोचिष)दीप्ततेजस्वी(आजुह्वानस्य) चारों ओरसे होमेजातेहुए (सर्पिषः) घीके (विभ्राष्टिम् अनु) विशेषरूपसे भस्म होनेपर स्वीकार करता है ॥ ९ ॥

तव त्यन्नर्य्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं
पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः ।
भुवो विश्वमभ्यदेवमोजसा विदे-
दूर्जं शतक्रतुर्विदेदिषम् ॥ १० ॥

(नृतः) सबको नचानेवाले अर्थात् प्रेरणा करनेवाले (इन्द्र) हे इन्द्र (नर्यम्) मनुष्योंका हितकारी (प्रथमम्) पहिलेका (पूर्व्यम्) पुरातन (तव) तुम्हारा (त्यत्) वह प्रसिद्ध (अपः) कर्म (दिवि) स्वर्ग में (प्रवाच्यम्) विशेषकर देवताओं से प्रशंसा पाने योग्य है। वह कर्म यह है कि तुमने (देवस्य) विजय चाहने वाले असुर के (असु) प्राणको (शवसा) बलसे (रिणन्) नष्ट करते हुए (अपः) उसके रोकेहुए जलों को (अरिणाः) प्रेरणा करी, वह तुम (विश्वम्) व्याप्त (अदेवम्) अंधकाररूप असुरका(ओजसा)बलसे(अभिभुवः) तिरस्कार करो (शतक्रतुः) इन्द्र (ऊर्जम्) बलको (इषम्) हविरूप अन्नको (विदेत्) पावै ॥ १० ॥

चतुर्थाध्यायस्य द्वादश खण्ड चतुर्थाध्यायश्च समाप्त द्वितीयं ऐन्द्रं पर्व च समाप्तम्

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्याददे ।

उग्रꣳ शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥

पञ्चम अध्याय—पवमानपर्व

(सोम) हे सोम (ते) तेरे (अन्धसः) रसका (उच्चा) ऊपर (जातम्) जन्म हुआ है (दिवि) द्युलोकमें (सन्) विद्यमान(उग्रम्) प्रभावशाली (शर्म) सुखको (महि) बहुत (श्रवः) अन्नको (भूम्याददे) भूमिमें जन्मनेवाले हम पाते हैं ॥ १ ॥

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।

इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २ ॥

(सोम) हे सो (इन्द्राय पातवे) इंद्रके पीनेको (सुतः) संपादन कियाहुआ तू (स्वादिष्ठया) परम स्वादयुक्त (मदिष्ठया) परम हर्ष देनेवाली (धारया) धारसे (पवस्व) त्वरित हो ॥ २ ॥

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।

विश्वा दधान ओजसा ॥ ३ ॥

हे सोम ! तुम (वृषा) स्तोताओंके मनोरथोंकीवर्षा करतेहुए (धारया) अपनी धारासे (पवस्व) कलशमें आइये (च) और आने पर जब हम तुम्हें इंद्रको अर्पण कर तब (मरुत्वते) जिसके मरुत् सहायक हैं ऐसे तिस इन्द्रके निमित्त (विश्वा) सकल धनोंको (ओजसा) अपने बलसे (दधानः) धारण करतेहुए (मत्सरः) मदकारी होओ ३

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा ।

देवावीरघशꣳसहा ॥ ४ ॥

हे सोम (ते) तेरा (देवावीः) देवताओंका इच्छित (अघशंसहा) राक्षसोंका नाशक (वरेण्य) परमश्रेष्ठ (मदः) हर्षदायक (यः) जो (रसः) रस है (तेन) उस (अन्धसा) आदरयोग्य रससे (पवस्व) कलशमें आओ ॥ ४ ॥

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।

हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ५ ॥

ऋत्विज् (तिस्रः) ऋक् आदि भेदसे तीनप्रकारकी (वाचः) स्तु-

तियोंको (उदीरते) उच्चारण करते हैं (धेनवः) दुधसे तृप्त करने वाली (गावः) गौएं (मिमन्ति) दुहनेके निमित्त रँभाती हैं (हरिः) हरा सोम (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (एति) कलशमें जाता है ॥५॥

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥

(इन्दो) हे सोम (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुर तू (अर्कस्य योनिम्) पूजनीय यज्ञस्थानमें (आसदम्) विराजमान होनेको (मरुत्वते) इंद्र के अर्थ (पवस्व) कलशमें प्राप्त हो ॥ ६ ॥

असाव्यꣳशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
श्येनो न योनिमासदत् ॥ ७ ॥

(गिरिष्ठाः) पर्वतमें उत्पन्न हुआ (अंशुः) सोम (मदाय) हर्षके अर्थ (असावि) संपादन कियागया (अप्सु) जलोंमें (दक्षः) वृद्धि को प्राप्त होताहै (श्येनः न) जैसे श्येन पक्षी [illegible] आकर अपने स्थान में स्थित होताहै तैसे ही यह सोम (योनिम् आसदत्) अपने स्थान में स्थित होता है ॥ ७ ॥

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ ८ ॥

(हरे) हे पाप हरनेवाले सोम ! (दक्षसाधनः) बलका साधक (मदः) मदकारी तू (देवेभ्यः पीतये) इन्द्रादि देवताओंके पीनेके निमित्त (मरुद्भ्यः) वायु देवताके पीनेके निमित्त (पवस्व) कलश में प्राप्त हो ॥ ८ ॥

परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ९ ॥

(सोमः) यह सोम (पवित्रे) शुद्ध पात्रमें (पर्यक्षरत्) पूर्ण होरहा है (गिरिष्ठाः) पर्वत पर उत्पन्न हुआ (स्वानः) संपादन किया जाताहुआ तू (मदेषु) सोना आदिकोंमें (सर्वधा असि) सकल अभीष्टोंका दाता है ॥ ९ ॥

परि प्रिया दिवः कविर्वयाꣳसि नप्त्योर्हितः ।

स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १० ॥

(कविक्रतुः) बुद्धिवर्द्धक सोम (नप्त्योः) अधिषवणके फलकोंमें (हितः) स्थापित हुआ (दिवः) द्युलोकके (प्रिया) प्यारे (वर्यासि) जानेवालोंको (स्वानैः) अध्वर्युओंके सहित (परियाति) प्राप्त होताहै

पञ्चमाऽध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।

सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥

(मदच्युतः) आनन्दको बरसानेवाले (सोमासः) सोम (सुताः) अभिषुत होनेपर (मघोनाम) हविवाले (नः) हमारे (विदथे) यज्ञ में (श्रवसे) अन्न और कीर्त्तिके निमित्त (प्राक्रमुः) पात्रोंमें प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः ।

वनानि महिषा इव ॥ २ ॥

(विपश्चितः) बुद्धिवर्धक (सोमासः) सोम (अपः ऊर्मयः) जलकी तरङ्गोंकी समान (महिषाः वनानि इव) जैसे पशु वनमे जाते है तैसे (प्र नयन्त) पात्रोंमे प्राप्त होतेहैं ॥ २॥

पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसे जने ।

विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥

(इन्दो) हे सोम (सुतः) निचोड़ाहुआ तू (वृषा) मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला होता हुआ (पवस्व) धारासे पात्रमें प्राप्त हो (जने) देशमें (नः) हमें (यशसः) यशवाला (कृधि) कर (विश्वाः) सब (द्विषः) शत्रुओंको (अपजहि) नष्ट कर ॥ ३ ॥

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।

पवमान स्वर्दृशम् ॥ ४ ॥

हे सोम तू (हि) निश्चय (वृषा) इच्छितफलोंकी वर्षाकरनेवाला (असि) है, इसकारण (पवमान) हे पवित्र करनेवाले सोम ! (स्वर्दृशम्) सबके द्रष्टा (भानुना) तेजसे (द्युमन्तम्) दिपतेहुए (त्वा) तुम्हें (हवामहे) यज्ञोंमें आह्वान करते हैं ॥ ४ ॥

इंदुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः ।
सृजदश्वं रथीरिव ॥ ५ ॥

(चेतनः) चेतनता देनेवाला (प्रियः) देवताओंका प्यारा (इन्दुः) सोम (कवीनाम्) ऋत्विजोंकी (मतिः) स्तुतिसे (पविष्ट) पात्रमें पूर्ण होताहै (अश्वम्) घोडेको (रथीरिव) रथी जैसे तैसे ही (सृजति) धारको रचता है ॥ ५ ॥

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ६ ॥

(वाजिनः) बलवान् (आशवः) वेगवान् (सोमासः) सोम (गव्या) गौकी इच्छासे (अश्वया) घोडोंकी इच्छासे (वीरया) पुत्रोंकी इच्छासे (प्रासृक्षत) ऋत्विजोंके द्वारा अधिकतामें रचेगये हैं ॥ ६ ॥

पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
वायुमा रोह धर्मणा ॥ ७ ॥

हे सोम (देवः) प्रकाशवान् तू (पवस्व) धारासे पात्रमें पूर्ण हो (ते) तेरा (मदः) आनंददायक रस (आयुषक्) मिलताहुआ (इंद्रम) इन्द्रको (गच्छतु) प्राप्त हो (धर्मणा) रसरूपसे (वायुम्) वायुको (आरोह) प्राप्त हो ॥ ७ ॥

पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ ८ ॥

(पवमानः) सोमने (बृहत्) बडेभारी (वैश्वानरं ज्योतिः) वैश्वानर नामवाले तेजको (दिवः) द्युलोकके (चित्रम) विचित्र (तन्यतुं न) वज्रकी समान (अजीजनत्) उत्पन्न किया है ॥ ८ ॥

परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।
मधो अर्षन्ति धारया ॥ ९ ॥

(स्वानासः) निचोडेजाते हुए (इंदव) दिपतेहुए (बर्हणा) बडी (गिरा) स्तुतिरूप वाणीसे (मधो) मदकारी सोम (धारया) धारा

से (मदाय) देवताओंके मदके अर्थ (पर्यर्षन्ति) दशापवित्रसे नीचे टपकते हैं ॥ ९ ॥

परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः।

कारुं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥ १० ॥

(कविः) बुद्धिवर्धक (सिंधोः) सिंधुकी (ऊर्मौ) तरङ्गमें (अधिश्रितः) आश्रित हुआ (पुरुस्पृहम्) अनेकोंके स्पृहायोग्य (कारुम्) स्तोताको (बिभ्रत्) धारण करता हुआ सोम (परिप्रासिष्यदत्) पात्र में टपकता है ॥ १० ॥

पञ्चमाध्यायस्य द्वितीय खण्डः समाप्तः

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्।

इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥

(सुजातम्) सम्यक् प्रकार प्रकट हुए (अप्तुरम्) जलोंके प्रेरणा करतेहुए (भङ्गम्) शत्रुओंके नाशक (गोभिः) गोघृतादिसे (परिष्कृतम) संस्कार कियेहुए (इन्दुम्) सोमको (देवाः) देवता (उपायासिषुः) प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः।

शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥२॥

(विचर्षणिः) द्रष्टा (पुनानः) सोम (विश्वाः) सब (मृधः) शत्रुसेनाओंपर (अभ्यक्रमीत्) आक्रमण करता है (विप्रम्) उस-मेधावी सोमको (धीतिभिः) शुद्धियोंसे (शुम्भन्ति) अलंकृत करते हैं २

आविशन् कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः

इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥ ३ ॥

(सुतः) निकालाहुआ (कलशम् आविशन्) कलशमें प्रवेश करता हुआ (विश्वाः) सब (श्रियः) सम्पदाओंकी (अभ्यर्षन्) वर्षा करताहुआ (इन्दुः) सोम (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (धीयते) स्थापन कियाजाता है ॥ ३ ॥

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः॥

कार्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत् ॥ ४ ॥

(रथ्यो यथा) जैसे रथका घोड़ा छोड़दियाजाता है तैसे ही यज्ञमें (चम्वोः) अधिषवणके फलकोंमें (सुतः) निचोड़ाहुआ सोम (पवित्रे) पात्रमें (असर्जि) छोड़ागया, ऐसा (वाजी) वेगवाला सोम (काष्मन्) यज्ञरूप युद्धमें (न्यक्रमीत्) आक्रमण करता है ॥ ४ ॥

प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।

घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ ५ ॥

(यत्) जो (भूर्णयः) त्वरायुक्त (त्वेषाः) प्रकाशयुक्त (अयासः) गमनशील (कृष्णाम् त्वचम्) ढकनेवाली अँधियारीको (अपघ्नन्तः) अभिषवसे दूर करतेहुए वह सोम (प्राक्रमुः) यज्ञको प्रवृत्त करते हैं तहां दृष्टान्त—(गावः न) जैसे कि गौएं शीघ्रतासे गोठमें जाती हैं ५

अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः ।

नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ ६ ॥

(सोम) हे सोम (मत्सरः) मदकारी तू (मृधः) हिंसक शत्रुओंको (अपघ्नन्) नष्ट करताहुआ (क्रतुवित्) कर्ममें ज्ञान देताहुआ (पवसे) पात्रमें पूर्ण होता है ऐसा तू (अदेवयुम्) देवताओंको न चाहनेवाले राक्षसोंको (नुदस्व) दूर कर ॥ ६ ॥

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः ।

हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥

हे सोम (मानुषीः) मनुष्योंके हितकारी (अपः) जलोंको (हिन्वानः) प्रेरणा करताहुआ तू (यया) जिस धारासे (सूर्यम्) सूर्यको (रोचयः) प्रकाशित करता है (अया) इस धारासे (पवस्व) पात्रमें आओ ॥ ७ ॥

स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे ।

वव्रिवांसं महीरपः ॥ ८ ॥

हे सोम तू (महीः) बहुत (अपः) जलोंको (वव्रिवांसम्) रोकनेवाले (वृत्राय हन्तवे) वृत्रासुरके मारनेको (इन्द्रं आविथः) इन्द्रकी रक्षाकर (सः) वह तू (पवस्व) धारासे कलशको पूर्ण कर ॥ ८ ॥

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
अवाहन्नवतीर्नव ॥ ९ ॥

(इन्दो) हे सोम ! (अया) इस रससे (वीती) इन्द्रके भक्षण करनेके निमित्त (परिस्रव) कलशमें टपक (ते) तेरा (यः) जो रस (मदेषु) संग्रामोंमें (नवतीर्नव) शंबरकी निन्यानवे पुरियोंको (अवाहन्) नष्ट करता हुआ ॥ ९ ॥

परि द्युक्षᳪ सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा ।
स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥ १० ॥

(द्युक्षम्) दीप्त (सनन) दियेजातेहुए (रयिम्) धनको (वाजम्) बलको (अन्धसा) अन्नसहित (नः) हमें (परिभरम्) सोम सब प्रकारसे देय. हे सोम (स्वानः) अभिषुत होताहुआ (पवित्रे) कलशमें (आअर्ष) सब ओरसे टपक ॥ १० ॥

पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः खंड समाप्त

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।
सᳪ सूर्येण दिद्युते ॥ १ ॥

(वृषा) मनोरथों की वर्षा करनेवाला (हरिः) हरेवर्णका (महान्) पूज्य (मित्रो न) मित्रकी समान (दर्शतः) दर्शनीय जो सोम (अचिक्रदत्) शब्द करता है वह सोम (सूर्येण सम्) सूर्यके साथ (दिद्युते) द्युलोक में प्रकाशित होता है ॥ १ ॥

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥

हे सोम ! हम यजन करनेवाले (ते) तेरे (दक्षम्) बलको (अद्य) आज यज्ञके दिन (आ वृणीमहे) अभिमुख होकर आराधना करते हैं। कैसा है वह बल (मयोभुवम्) सुखका देनेवाला (वह्निम्) धन आदि प्राप्त करानेवाला (पान्तम्) शत्रुओंसे रक्षा करनेवाला (पुरुस्पृहम्) जिसको अनेकों चाहते हैं ऐसा है ॥ २ ॥

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतᳪ सोमं पवित्र आ नय ।
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥

(अध्वर्यो) हे अध्वर्यु ! (अद्रिभिः) पाषाणोंसे (सुतम्) निकाले हुए सोमरसको (पवित्रे) कलश में (आनय) पहुँचाओ (इंद्राय पातवे) इन्द्रके पीनेके निमित्त (पुनाहि) पवित्र करो ॥ ३ ॥

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।

तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥

(सुतस्य) निचोड़ेहुए (अन्धसः) सोमकी (धारा) धार से (मन्दी) जो इंद्रको हर्षदेता है (सः) वह (तरत्) पापसे तरजाता है (धावति) ऊर्ध्वगतिको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

आ पवस्य सहस्रिणꣳ रयिꣳसोम सुवीर्यम् ।

अस्मे श्रवाꣳसि धारय ॥ ५ ॥

(सोम) हे सोम तू (सहस्रिणम्) सहस्रों संख्या के (सुवीर्यम्) श्रेष्ठ शक्तियुक्त (रयिम्) धनको (आ पवस्व) अभिमुख होकर बरसा और (अस्मे) हमारे विषै (श्रवांसि) अन्नोंको (धारय) स्थापनकर ।५।

अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।

रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ ६ ॥

(प्रत्नासः) पुरातन (आयवः) गमनशील सोमो ने (नवीयः) नवीन (पदम्) स्थानको (अन्वक्रमुः) आक्रमण किया (रुचे) दीप्ति के अर्थ (सूर्यम्) सूर्यकी समान सोमको (जनन्त) उत्पन्न करते हैं ६

अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।

सीदन्योनौ वनेष्वा ॥ ७ ॥

(सोम) हे सोम ! (द्युमत्तमः) अत्यन्त दीप्तिमान् तू (द्रोणानि) कलशमें (रोरुवत्) वारंवार शब्द करताहुआ (वनेषु) यज्ञगृहोंमें (योनौ) स्थानमें (आसीदन्) प्रथम स्थित होता हुआ (अर्ष) आगमन कर ॥ ७ ॥

वृषा सोम द्युमाꣳ असि देव वृषव्रतः ।

वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ ८ ॥

(सोम) हे सोम ! (वृषा) कामनाओंकी वर्षा करनेवाला तू

(द्युमान्) दीप्तिवाला (असि) है और (देव) हे दिव्य सोम ! (वृषा) मनोरथपूरक तू (वृषव्रतः) वर्षाके व्रतवाला है और हे सोम (वृषा) मनोरथपूरक तू (धर्माणि) देवता और मनुष्योंके हितकारी कर्मोंको (दधिषे) धारण करता है ॥ ८ ॥

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ ९ ॥

(इन्दो) हे सोम (मनीषिभिः) ऋत्विजोंसे (मृज्यमानः) शोधन कियाहुआ तू (इषे) हमें अन्न प्राप्ति करानेके लिये (धारया) धारा से (पवस्व) पात्रमें आगमन कर (रुचा) रुचिकर अन्नरूपसे (गाः) गौ आदि पशुओंको (अभीहि) प्राप्त हो ॥ ९ ॥

मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः ।
अव्या वारेभिरस्मयुः ॥ १० ॥

(सोम) हे सोम ! (वृषा) कामनाओंकी वर्षा करनेवाला (देवयुः) देवताओंका इच्छित (अस्मयुः) हमारा कामना कियाहुआ तू (अव्याः) रक्षाकर (वारेभिः) बालोंसे रचेहुए पात्रमें (मन्द्राय) आनन्ददायक धारासे (पवस्व) प्राप्त हो ॥ १० ॥

अया सोम सुकृत्यया महांत्सन्नभ्यवर्धथाः ।
मन्दान इद्वृषायसे ॥ ११ ॥

(सोम) हे सोम ! (अया) इस (सुकृत्यया) सुन्दर क्रियासे (महान्) पूजित होतेहुए (अभ्यवर्द्धथाः) देवताओंके निमित्त बढ़ो (मन्दान इत्) प्रसन्न होतेहुए (वृषायसे) वृषकी समान शब्द करते हो ११

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति
हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १२ ॥

(विचर्षणिः) विशेषरूपसे ज्ञानमय (हितः) पात्रमें स्थित (पवमानः) शोधन कियाजाता हुआ (अयम्) यह सोम (आप्यम्) जलसे उत्पन्न हुए (बृहत्) बहुतसे अन्नको (हिन्वानः) देताहुआ (सचेतति) सब पुरुषों से जाना जाता है ॥ १२ ॥

प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि ।
अभि देवाँ अयास्यः ॥ १३ ॥

(इंदो) हे सोम! गीलो होता हुआ तू (नः) हमारे (महे) बहुतसे (तुने) धनके अर्थ (प्रार्षसि) कलशमें जाताहै (न) इस समय (अयास्यः) ऋषि (ऊर्मिम्) तुम्हारी तरङ्गको (बिभ्रत्) धारण करताहुआ (देवान् अभि) देवताओं का यजन करनेको जाता है ॥ १३ ॥

अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १४ ॥

(सोमः) सोम (मृधः) शत्रुओंको (अपघ्नन्) मारता हुआ (अराव्णः) शक्ति होने पर धनका दान न करनेवालों को भी मारताहुआ और (इन्द्रस्य) इन्द्रके (निष्कृतम्) स्थानको (गच्छन्) प्राप्त होताहुआ (पवते) धारासे क्षरित होता है ॥ १४ ॥

पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः खंड समाप्त

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हि-
रण्ययः ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम! (पुनानः) पवित्र करनेवाला तू (अपः) जलों को (वसानः) आच्छादन करताहुआ (धारया) धारासे (अर्षसि) द्रोणकलशमें जाता है (रत्नधा) रमणीय धनोंका देनेवाला तू (ऋतस्य) यज्ञके (योनिम्) स्थानको (आसीदसि) प्राप्त होता है और (देवः) दिपता हुआ सोम (उत्सः) बहताहुआ (हिरण्ययः) देवताओंका हितकारी और रमणीय होता है ॥ १ ॥

परीतो षिञ्चता सुतँ सोमो य उत्तमँ हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वा३न्तरा सुषाव सो-
ममद्रिभिः ॥ २ ॥

(यः) जो (सोमः) सोम (उत्तमं हविः) देवताओंका श्रेष्ठ हवि

होताहै (नर्यः) मनुष्योंका हितकारी (यः) जो साम (अप्सु, अन्तः) जलोंके भीतर (वृधन्वान्) गमन करता है (सोमम्) जिस सोमको (अद्रिभिः सुषाव) अध्वर्युने पाषाणोंसे निचोड़ा (सुनम्, इतः, परिषिञ्चत) उस निकालेहुए सोमरसको इस स्थानसे ऊपरको जलोंमें सींचो ॥ २ ॥

आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया। जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे

(सोम) हे सोम (अद्रिभिः) पाषाणोंसे (स्वानः) निचोड़ाहुआ तू (अव्यया, वाराणि) रक्षक वालोंको (तिरस्) व्यवधान करता हुआ (आ यवसे) अभिमुख होकर कलशमें प्राप्त होताहै (हरिः) हरे वर्णका वह सोम (चम्वोः) अधिषवणके काष्ठोंपर धरेहुए कलश में (पुरि जनो न) जैसे नगरमें पुरुष प्रवेश करता है तैसे (विशन्) प्रवेश करताहै वह तू (वनेषु) काठके पात्रोंमें (सदः) स्थानको (दधिषे) बनाता हुआ ॥ ३ ॥

प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा। अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ ४ ॥

(सोम) हे सोम (त्वम्) तू (देववीतये) देवताओंके पीनेके अर्थ (सिन्धुः न) सिंधुकी समान (अर्णसा) वसतीवरी नामक जलसे (प्रपिप्ये) वृद्धिको प्राप्त और पूर्ण होता है (न) इससमय (मदिरः) मदकारी (जागृविः) जागरणशील तू (अंशोः) लताके टुकड़ेके (पयसा) जलसे (मधुश्चुतम्) मधुररसको बहानेवाले (कोशम्) द्रोण कलशको (अच्छ) प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम्। अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥ ५ ॥

(सोतृभिः) निचोड़नेवालोंसे (स्वानः) निचोड़ाजाताहुआ (सोमः) सोम (अवीनाम्) अवियोंके (स्नुभिः) वालोंसे शुद्ध होकर (अधि-

याति) पहुँचता है (उ) यह प्रसिद्ध है (अश्वया इव) बडवाके द्वारा जैसे (हरिता) हरी (धारया) धारा करके (याति) प्राप्त होता (मन्द्रया) आनन्ददायक (धारया) धाराकरके (याति) प्राप्त होता है ५

तवाहꣳ सोम रारण सख्य इन्दो दिवे दिवे । पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीꣳरति ताꣳ इहि ॥ ६ ॥

(इन्दो) हे सोम (सख्ये) तेरे मित्रभावमें (दिवे दिवे) प्रतिदिन (रारण) रमण करूँ (बभ्रो) हे सोम ! (पुरूणि) बहुतसे राक्षस (माम्) मुझे (न्यवचरन्ति) बाधा देते हैं (तान्) उन (परिधीन्) राक्षसोंको तू (अतीहि) नष्ट कर ॥ ६ ॥

मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि । रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ७

(सुहस्त्या) हे सुंदर अंगुलियोंसे संपादन करेहुए सोम ! (मृज्यमानः) पवित्र कियाजाता हुआ तू (समुद्रे) कलशमें (वाचम्) शब्द को (इन्वसि) प्रेरणा करता है (पवमान) हे सोम ! (पिशङ्गम्) सोना चांदी आदिसे पीतवर्ण (बहुलम्) बहुतसे (पुरुस्पृहम्) अनेकोंके चाहेहुए (रयिम्) धनको (अभ्यर्षसि) स्तोताओंको देते हो ७

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् । समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥ ८ ॥

(आयवः) गमनशील (मनीषिणः) मनको प्रिय लगनेवाले (मत्सरासः) मदकारी (मदच्युतः) मदकारी रसको टपकानेवाले (सोमासः) सोम (समुद्रस्य) कलशके (विष्टपे) ऊपर (मद्यम्) मदकारी (मदम्) अपने रसको (अभिपवन्ते) सब ओर को निकालते हैं ॥ ८ ॥

पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः । त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्षणः ९

हे सोम ! (जागृविः) जागरणशील (प्रियः) तृप्त करनेवाले तुम (पुनानः) पवित्र होते हुए (अव्याः) भेड़ीके (वारैः) बालों से बने हुए दशापवित्र में (परि) टपकते हो (अङ्गिरस्तम) हे आङ्गिरसों में श्रेष्ठ (विप्रः) बुद्धिवर्धक तुम (अभवः) पितरों के नेता होते हो, वह तुम (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञको (मध्वा) अपने मधुर रससे (मिमिक्ष) सींचना चाहते हो ॥ ६ ॥

इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः। सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः॥

(मदः) आनन्ददायक (सुतः) खिचा हुआ (सोमः) सोम (मरुत्वते) मरुतों से युक्त (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (पवते) पात्रमें पूर्ण होता है, तदनन्तर (सहस्रधारः) अनेकों धाराओं से युक्त सोम (अव्यम्) भेड़ीके पवित्रमें को (अत्यर्षति) छनकर निकलता है, उसको(आयवः) मनुष्य ऋत्विज (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं ॥ १० ॥

पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या। त्वᳯं समुद्रः प्रथमे विधर्मं देवेभ्यः सोम मत्सरः॥

(सोम) हे सोम ! (विश्वानि) सब (वार्या) स्तोत्रोंको (अभि) लक्ष्य करके (वाजसातमः) अधिकता से अन्न प्राप्त कराने वाला तू (पवस्व) प्राप्त हो, हे सोम ! (देवेभ्यः) देवताओं का (मत्सरः) मदकारी (समुद्रः) तृप्त करनेवाला (विधर्मन) विशेषरूपसे पोषक तू (प्रथमे) श्रेष्ठ यज्ञ में देवताओं के निमित्त क्षरित हो ॥ ११ ॥

पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया। मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयाᳯंसि च॥ १२॥

(मरुत्वन्तः) मरुतोंसे युक्त (मत्सराः) मदकारी (इन्द्रियाः) इन्द्र के प्रिय (मेधाम्) स्तुतिको (प्रियांसि च) अन्नोंको भी (अभि) लक्ष्य करके अर्थात् स्तोताओंको अन्न देनेके निमित्त (हयाः) यज्ञमें जानेवाले (पवमानाः) सोम (धारया) अपनी धारसे (पवित्रम्) पवित्रको अतिक्रमण करके (असृक्षत) संपादित होते हैं ॥ १२ ॥

इति पञ्चमाध्यायस्य पञ्चम खण्ड. समाप्त. ।

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष । अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्हीं रशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥

हे सोम ! (तु) शीघ्र (प्रद्रव) आकर प्राप्त हो और (कोशं परिनिषीद) कलशमें स्थित हो (नृभिः) ऋत्विजोंसे (पुनानः) पवित्र किया जाता हुआ (वाजम्) यजमान के निमित्त अन्नको (अभ्यर्ष) दे (वाजिनं, अश्वं न) बलवान् घोड़े की समान (त्वा) तुझे (मार्जयन्तः) शुद्ध करते हुए अध्वर्यु आदि (प्रतिरशनाभिः) अगुलियों से (बर्हिम्, अच्छ नयन्ति) यज्ञ में भले प्रकार पहुँचाते हैं ॥ १ ॥

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति । महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥ २ ॥

(उशना इव) उशनाकी समान (काव्यम्) स्तोत्रको (ब्रुवाणः) बोलता हुआ (देवः) स्तोता (देवानाम्) इन्द्रादि देवताओंके (जनिम्) अवतारोंको (प्रविवक्ति) अधिकतासे वर्णन करता है (महिव्रतः) अनेकों कर्मवाला (शुचिबन्धुः) दिपरहा है तेज जिसका ऐसा (पावकः) पापोंको शुद्ध करनेवाला (वराहः) श्रेष्ठ दिनमे संपादित हुआ सोम (रेभन्) शब्द करताहुआ (पदा) पात्रोंमें (अभ्येति) आता है ॥२॥

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् । गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ३ ॥

(वन्हिः) हवि पहुँचानेवाला यजमान (तिस्रः वाचः) ऋक् यजु सामरूप स्तुतियोंको (प्रेरयति) उच्चारण करता है (ऋतस्य) यज्ञकी (धीतिम्) धारण करनेवाली (ब्रह्मणः) महान् सोमकी (मनीषाम्) कल्याणरूप वाणीको उच्चारण करताहै (गोपतिं, गावः यन्ति) वृषभके समीप गौएं जाती हैं तिसीप्रकार (पृच्छमानाः) पूछतेहुए (वावशानाः) कामनावाले (मतयः) स्तोता (सोमं, यन्ति) सोमके समीप स्तुति करनेको जाते हैं ॥ ३ ॥

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिःसमपृक्त रसम् । सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥ ४ ॥

(अस्य) इस सोमके (प्रेषा) प्रेरक (हेमना) हिरण्यसे (पूयमानः) पवित्र कियाजाता हुआ (देवः) दिव्य सोम (रसम्) अपने रसको (देवेभिः) देवताओंके साथ (समपृक्त) संयुक्त करता है, तदनंतर (सुतः) खेंचाहुआ सोम (रेभन्) शब्द करता हुआ (पवित्रं, पर्येति) ऊनके पवित्रेमेंको पात्रमें प्राप्त होता है (होता, मिता, पशुमन्ति, सद्म, इव) जैसे देवताओंका आह्वान करनेवाला यज्ञका निर्माता ऋत्विक् पशुयुक्त यज्ञशालामें प्रवेश करता है ॥ ४ ॥

सोमःपवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः । जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेंद्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ ५ ॥

(मतीनाम्) बुद्धियोंका (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (दिवः) द्युलोकका (जनिता) प्रकट करने वाला (पृथिव्याः) पृथिवीका (जनिता) पोषक (अग्नेः) अग्निका (जनिता) प्रकाशक (सूर्यस्य) सबके प्रेरक आदित्यका (जनिता) तृप्तिकर्त्ता (इन्द्रस्य) इन्द्रका (जनिता) पीनेसे आनंददायक (उत) और (विष्णोः) व्यापक देवका (जनिता) तृप्तिकर्त्ता (सोमः) संपादन कियाजाताहुआ सोम (पवते) पात्रमें प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः । वना वसानो वरुणो न सिंधुर्विरत्नधा दयते वार्याणि ॥ ६ ॥

(त्रिपृष्ठम्) तीन सवन वाले (वृषणम्) कामनाओंके दाता (वयोधाम्) अन्न देनेवाले (अङ्गोषिणम) ऊँचा शब्द करनेवाले सोम की (वाणीः अवावशन्त) स्तुतियें कामना करती हैं (वनाः) जलोंको (वसानः) छाता हुआ (सिंधुः) जलोंको वहानेवाला (वरुणः इव)

वरुण जैसे (रत्नधाः) रत्नोंको देनेवाला सोम (वार्याणि) धन (दयते) स्तोताओंको देता है ॥ ६ ॥

अक्रांत्समुद्रः प्रथमे विधर्मं जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः । वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥ ७ ॥

(समुद्रः) जलोंकी वर्षा करनेवाला (गोपाः)यज्ञका रक्षक (वृषा) कामनाओंकी वर्षा करनेवाला (स्वानः) अभिषवकियाजाता हुआ सोम (प्रथमे) विस्तीर्ण (भुवनस्य) जलके (विधर्मन्) विशेषरूपसे धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें (प्रजाः) प्रजाओंको (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (अक्रान्) सबको अतिक्रमण करता है ॥ ७ ॥

कनिक्रन्ति हरिरा मृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः । नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः ॥ ८ ॥

(आसृज्यमानः) सब ओरसे खेंचाजाताहुआ (हरिः) हरे वर्णका सोम (कनिक्रन्ति) वारंवार शब्द करता है, तथा (पुनानः) पवित्र कियाजाताहुआ (वनस्य) चाहने योग्य द्रोणकलशके (जठरे) भीतर (सीदन्) स्थित होताहुआ शब्द करता है (नृभिः) ऋत्विजों करके (यतः) दबायाहुआ सोम (गाः) गोदुग्धादिको आच्छादन करता हुआ (निर्णिजम्) अपने शुद्धरूपको (कृणुते) ग्रह आदिमें करता है अतः इस सोमके अर्थ (मतिम्) स्तुतिको (स्वधाभिः) हवियोंके साथ (जनयत) स्तोता करें ॥ ८ ॥

एष स्य ते मधुमाꣳ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः । सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! (वृष्णः) मनोरथपूरक (ते) तुम्हारे अर्थ (एषः) यह (स्यः) वह सोम (मधुमान्) मधुरता युक्त (वृषा) वरसनेवाला (पवित्रे) दशापवित्र में को (पर्यक्षाः) टपकता है, तथा वह ही (सहस्रदाः) सहस्रों संख्याका धन देनेवाला(शतदाः)सैंकड़ों संख्या

का धन देनेवाला (भूरिदावा) बहुतसा धन देनेवाला (वाजी) बलवान् सोम (शश्वत्तमम्) अत्यन्त पुरातन (बर्हिः) यज्ञमें (अस्थात्) स्थित, हुआ ॥ ९ ॥

पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये । अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥ १० ॥

(सोम) हे सोम ! (मधुमान्) मधुरता युक्त तू (अपः) वसतीवरी नामक जलोंको (वसान) आच्छादन करता हुआ (अधि) अधिक (सानो) ऊंचे (अव्य) ऊनके पवित्रमें (पवस्व) क्षरित हो. तदनन्तर (मदिन्तमः) अत्यन्त मदकारी (इन्द्रपानः) इन्द्रके पीने योग्य (मत्सरः) आनन्द देनेवाला सोम (घृतवन्ति) जल युक्त (द्रोणानि) द्रोणकलश में (अवरोह) प्रकट होता है ॥ १० ॥

पञ्चमाध्यायस्य षष्ठ खण्ड समाप्त

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना । भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवांत्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥ १ ॥

(सेनानी) सेनाओंके आगे जानेवाला (शूरः) शत्रुओंको बाधा देनेवाला (सोम) सोम (गव्यन्) यजमानोंके गौ आदि पशुओंको इच्छा करता हुआ (रथानाम्) रथोंके (अग्रे) आगे (प्रति) सम्यक् प्रकार से संग्राममें जाता है (अस्य) इस सोमकी (सेना) सेना (हर्षते) प्रसन्न होतीहै (सखिभ्यः) यजमानोंके अर्थ (इन्द्रहवान्) उनके कियेहुए इन्द्रके आह्वानोंको (भद्रान्) कल्याणरूप (कृण्वन्) करता है अर्थात् आह्वान कियाहुआ इन्द्र सोमको पीकर अभिलाषाओंको सिद्ध करताहै (रभसानि) इन्द्रके वेगसे आनेके निमित्तभूत (वस्त्रा) वस्त्रकी समान आच्छादक दूध आदिको (आदत्ते) ग्रहण करता है ॥ १ ॥

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन् वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम् । पवमान पवसे धाम गोनां जनयंत्सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥ २ ॥

(ते) तेरी (मधुमतीः) मधुरतायुक्त (धाराः) धारायें (प्रासृग्रन्) तब छोड़ीजाती हैं (यत्) जब (पूतः) वसतीवरी जलोंसे पवित्र कियाहुआ तू (अव्यम) भेडीकी (वारम्) ऊनको अर्थात्, ऊनके पवित्रे को (अत्येषि) अतिक्रमण करके पात्र में जाता है और (पवमान) हे सोम ! (गोनाम्) गौओंके (धाम) दूधको लक्ष्य करके (पवसे) क्षरित होता है तदनंतर (जनयन्) सुसिद्ध होताहुआ तू (अर्कैः) पूजनीय अपने तेजोंसे (सूर्यम) सूर्यको (अपिन्वः) पूर्ण करता है ।२

प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमꣳ हिनोत महते धनाय । स्वादुः पवतामति वारमव्यमा सीदतु कलशं देवः इन्दुः ॥ ३ ॥

हे स्तोताओ ! (प्रगायत) सोमकी सम्यक् प्रकार से स्तुति करो हम तो (देवान् अभ्यर्चाम) देवताओंका पूजन करते हैं (महते) बहुतसे धनके लिये सोमको (हिनोत) अभिषव के निमित्त प्रेरणा करो, तदनन्तर (स्वादुः) मीठा सोम (अव्यं वारम्) भेडीके बालों के पवित्रेको (अतिपवताम्) अतिक्रमण करके क्षरित हो (देवः) दिव्य सोम (इन्दुः) दीप्त होता हुआ (कलशम् , अभि आसीदतु) अभिमुख होकर द्रोण कलशमें स्थित होय ॥ ३ ॥

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजꣳ सनिषन्नयासीत् । इन्द्रं गच्छन्नायुधा सꣳ शिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥ ४ ॥

(प्रहिन्वानः) अध्वर्युओंका प्रेरणा कियो हुआ (रोदस्योः) द्यावा पृथिवीका (जनिता) वर्षा और हविको पहुँचानेके द्वारा उत्पन्न करने वाला (वाजम्) अन्नको (सनिष्यन्) देताहुआ (आयुधा, संशिशानः) आयुधोंको सम्यक् प्रकार से तीक्ष्ण करता हुआ (विश्वा) सकल (वसु) धनोंको (हस्तयोः, आदधानः) हमें देनेके निमित्त हाथों में धारण करता हुआ (प्रायासीत्) प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य धर्म द्युक्षोरनीके । आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं

पतिं कलशे गाव इंदुम् ॥ ५ ॥

(वेनतः) चाहेहुए (मनसः) स्तोताकी (वाक्) स्तुतिरूप वाणी (यत्) जिसका (तक्षत्) संस्कारयुक्त करती है (धर्मन्) यज्ञमें (ज्येष्ठस्य) प्रशंसनीय (द्युक्षोः) सवनके (अनीके) आग अर्थात् जब यज्ञोंमें सवनके स्तोताकी वाणी सोमकी प्रशंसा करतीहै (आ) तदनंतर ही (वरम्) श्रेष्ठ (जुष्टम्) देवताओंके मदके निमित्त पर्याप्त (पतिम) सबके पालक (कलशे) कलशमें स्थित (इन इन्दुम्) इस सोमको (वावशानाः) चाहती हुई (गावः) गौएं (आयन्) अपने दूधसे मिलानेको आती है ॥ ५ ॥

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः । हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ ६ ॥

(साकमुक्षः) एक साथ सीचनेवाली (स्वसारः) कर्म करने को इधर उधरको चलती हुइ अगुलियें (मर्जयन्त) सोम को शुद्ध करती हैं (दश धीतयः) वह दश अंगुलियें (धीरस्य) देवताओंके कामना कियेहुए सोम की (धनुत्रीः) प्रेरणा करनेवाली हैं, तदनतर (हरिः) हरे वर्णका सोम (सूर्यस्य जाः) सूर्यकी दिशाओंको (पर्यद्रवत्) चारों ओर जाता है (अत्यः) गमनशील (वाजी न) अश्वकी समान सोम (द्रोण ननक्षे) कलशमें व्याप्त होताहै ॥ ६ ॥

अधि यदस्मिन् वाजिनीव शुभ स्पर्धन्ते धियःसूरे न विशः । अपो वृणानः पवते कवीयान् व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ ७ ॥

(यद्) जब (अस्मिन्) इस सोमके विषयमें (वाजिनीव शुभः) घोड़के वस्त्रादि अलङ्कारोंकी समान (सूरे विशः न) जैसे सूर्यमें किरणोंका उदय होताहै तैसे (धियः, अधिस्पर्धन्ते) मैं पहिले शुद्ध करूंगी मैं पाहले शुद्ध करूंगी, इसप्रकार अङ्गलिय उपस्थित होती ह, तदनंतर यह सोम (अपः) वसतीवरी जलोंको (वृणानः) आच्छादन करताहुआ (कवीयान) स्तोताओंकी इच्छा करताहुआ (पवते) कलशमें प्राप्त होताहै (पशुवर्धनाय, मन्म, व्रजं न) जैसे कि—पशु-

ओंकी वृद्धि करनेके लिये रक्षा करनेयोग्य गोठमें गोपाल जाताहै ॥ ७ ॥

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय । हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन् वृजनस्य राजा ॥ ८ ॥

(इन्दुः) क्षरणशील (वाजी) बलवान् (गोन्योघाः) गमनशील नीचेमेंको जानेवाला रसससूह (इन्द्रे) इन्द्रके निमित्त (सहः) बलदायक रसको (इन्वन्) प्रेरणा करनेवाला (वरिवः) धन (कृण्वन्) यजमानको देनेवाला (वृजनस्य) बलका (राजा) ईश्वर (सोमः) सोम (मदाय) इन्द्रको मद होनेके निमित्त (पवते) पात्रमें टपकता है (रक्षः) राक्षसोंको (हन्ति) नष्ट करताहै (अरातीः) शत्रुओंको (परिबाधते) चारों ओरसे बाधा देता है ॥ ८ ॥

अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इंदो सरासि प्र धन्व । ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥ ९ ॥

हे सोम ! (अया) इस (पवा) पवमान धाराके साथ (एना) इन (वसूनि) धनोंको (पवस्व) बरस (इन्दो) हे सोम ! तू (मांश्चत्वे) मान्योंके चाहनेयोग्य (सरसि) वसतीवरी नामक कलशमें (प्रधन्व) पहुँच, तदनंतर (यस्य) जिस सोमको (ब्रध्नश्चित्) सबका मूलभूत आदित्य (वातो न) वायुकी समान (नरम्) प्रेरक (जूतिम्) वेगको (धात) धारण करताहुआ, और (पुरुमेधाश्चित्) अनेकों प्रकारकी बुद्धिवाला इन्द्र भी (तकवे) प्राप्त होय ॥ ९ ॥

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् । अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ १० ॥

(महिषः) महान् (सोमः) सोम (महत्) बहुतसे (तत्) उस कर्मको (चकार) करताहुआ, वह कर्म दिखाते हैं, कि—(यत्) जो (अपांगर्भः) जलोंका उत्पादक होनेसे गर्भरूप यह सोम (देवान्)

देवताओंको (अवृणीत) भजताहुआ और (पवमानः) पूयमान सोम (इन्द्रे) इन्द्रमें (ओजः) सोमपानजनित बलको (न्यधात्) धारण करताहुआ, तथा (इन्दुः) सोम (सूर्ये) सूर्यमें (ज्योतिः) तेजको (अजनयत्) उत्पन्न करताहुआ ॥ १० ॥

असर्जि वक्का रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा । दश स्वसारो अधि सानौ अव्ये मृजन्ति वह्निꣳ सदनेष्वच्छ ॥ ११ ॥

(मनोता) जिसमें देवताओंके मन ओतप्रोत होरहे हैं (प्रथमा) मुख्य (मनीषा) स्तुति कियाहुआ (वक्का) शब्दायमान सोम (आजौ) यज्ञ में (धिया) स्तोत्रके साथ (रथ्ये यथा) जिसप्रकार संग्राम में घोड़ेको संसृष्ट कियाजाता है तैसे (असर्जि) संयुक्त कियागया (दश स्वसारः) दश अंगुलियें (सदनेषु) यज्ञगृहोंमें, पात्रोंकी ओरको (वह्निम) आनन्दपद पर पहुँचानेवाले सोमको (सानौअधि) ऊँचे स्थान पर (अव्ये) ऊनके पवित्रमें को (अच्छ मृजन्ति) भले प्रकार प्रेरणा करतेहैं॥

अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ। नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥ १२ ॥

(अपां ऊर्मयः इव) जैसे जलकी तरंगे शीघ्रता करती हैं तैसे ही (तर्त्तुराणाः इत्) कर्ममें देवताओंकी स्तुति करनेके निमित्त शीघ्रता करनेवाले ऋत्विज् (मनीषाः) स्तुतियोंको (सोमम् अच्छ) सोमके प्रति (प्रेरयन्ति) प्रेरणा करते हैं (उशतीः) स्तुतियें (नमस्यन्तीः) सत्कार करती हुई (उशन्तम्) कामना करनेवाले (तम्) उस सोम को (उपयन्ति च) समीपमें पहुँचती हैं (सं च) संयुक्त होतीहैं (आविशन्ति च) और इसमें अपना प्रवेश भी करती हैं ॥ १२ ॥

पञ्चमाध्यायस्य सप्तम खण्डः समाप्तः

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे । अप श्वानꣳ श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् १

(सखायः) हे मित्र स्तोताओं (वः) तुम (पुरोजिती) जिसके

सामने विजय स्थित है ऐसे (अन्धसः) सोमके (सुताय) खेंचेहुए (नादयित्नवे) अत्यन्त मददायक रसके अर्थ (दीर्घजिह्वयम्) लंबी जीभवाले (श्वानम्) कुत्तेको (अवश्नथिष्टन) हटाओ ॥ १ ॥

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥२॥

(पूषा) पोषक (भगः) सेवनयोग्य (रयिः) धनप्राप्तिका कारण (अयम्) यह सोम (पुनानः) पवित्रेमें शुद्ध होताहुआ (अर्षति) कलश में प्राप्त होताहै तथा (विश्वस्य) सकल (भूमनः) प्राणिमात्रका (पतिः) पालन करनेवाला (सोमः) सोम (उभे रोदसी) द्युलोक और पृथ्वी लोक दोनोको (व्यख्यत्) अपने तेजसे प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरं देवान् गच्छन्तु वो मदाः ३

(मधुमत्तमाः) अत्यन्त मधुरतायुक्त (मन्दिनः) मदकारी (सुतासः) खेंचेहुए सोम (पवित्रवन्तः) पवित्रेमें वर्त्तमान होतेहुए (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (क्षरन्) पात्रोंमें टपकते हैं (वः) हे सोमो ! तुम्हारे (मदाः) मदकारी रस (देवान्) इन्द्रादि देवताओंको (गच्छन्तु) प्राप्त हों ॥ ३ ॥

सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥४॥

(गातुवित्तमाः) श्रेष्ठ मार्ग पर लेजानेवाले (मित्राः) देवताओंके मित्ररूप (स्वानाः) सुसिद्ध कियेजातेहुए (अरेपसः) पापरहित (स्वाध्यः) भलेप्रकार ध्यान करानेवाले (स्वर्विदः) स्वर्गप्रापक (इन्दवः) दिपतेहुए (सोमाः) सोम (पवन्ते) हमारे निमित्त आते हैं ४

अभी नो वाजसातमꣳरयिमर्ष शतस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥५॥

(इन्दो) हे दीप्तिमान् सोम ! (शतस्पृहम्) सैंकड़ोंके चाहनेयोग्य (सहस्रभर्णसम्) सहस्रोंका भरण करनेवाले (तुविद्युम्नम्) बहुत से अन्न और यशवाले (विभासहम्) प्रकाशका तिरस्कार करनेवाले

अर्थात् अत्यन्त तेजस्वी (वाजसानमम्) बलदायक (रयिम्) पुत्र-धनको (नः) हमें (अभ्यर्ष) प्राप्त कराओ ॥ ५ ॥

अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातꣳ रिहन्ति मातरः ६

(न) जैसे (मातरः) बछड़ोंकी माता गौएं (पूर्वे) पहिले (आयुनि) वयमें (जातम्) उत्पन्न हुए (वत्सम्) बछडेको (रिहन्ति) चाटती हैं, तैसे ही (अद्रुहः) द्रोहरहित वसतीवरी नामका जल (इन्द्रस्य) इन्द्रके (प्रियम्) प्यारे (काम्यम्) सबके चाहना किये हुए सोमको (अभिनवन्ते) प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

आ हर्य्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौꣳस्यम्।
शुक्रा वि यन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ॥ ७ ॥

(हर्यताय) सबके इच्छा करनेयोग्य (धृष्णवे) शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले सोमके अर्थ (पौंस्यम्) पुरुषत्वके प्रकाशक श्रेष्ठ (धनुरातन्वन्ति) धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाते हैं, यह एकप्रकारसे सोम की धारा छोड़नेके निमित्त फैलायेहुए पवित्रेका वर्णन है, तिसको ही स्पष्ट करके कहते हैं, कि—(विपाम) विद्वानोंके (अग्रे) आगे (महीयुवः) पूजा चाहनेवाले अध्वर्यु (शुक्लाः) स्वेत गोदुग्धोंको (असुराय) बलवान् (निर्णिजे) स्वरूपके अर्थ शुद्ध करनेको (वयन्ति) आच्छादन करते हैं ॥ ७ ॥

परि त्यꣳ हर्य्यतꣳ हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।
यो देवान् विश्वाꣳ इत्परि मदेन सह गच्छति ८

(हर्यतः) सबके स्पृहा करनेयोग्य (हरिम्) हरेवर्णके (बभ्रुम्) बभ्रुवर्णके (त्यम्) उस सोमको (वारेण) ऊनके पवित्रेसे (परिपुनन्ति) शुद्ध करते हैं (यः) जो सोम (विश्वान्) सकल (देवान् इत्) इन्द्रादि देवताओंको ही (मदेन सह) मदकारी रसके साथ (परिगच्छति) प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

प्र सुन्वानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तद्वचः ।

अप श्वानमराधसꣳ, हता मखं न भृगवः॥९

(सुन्वानाय) सुसिद्ध कियेजातेहुए (अन्धसः) सोमके (तत्) प्रसिद्ध (वच) वचनको (मर्त्तः) कर्ममें विघ्न करनेवाला (न प्रवष्ट) न सुनै, तथा हे स्तोताओं ! (अराधसं, मखं, भृगवः, न) जैसे पहिले दक्षिणाहीन मखको भृगुओंने हटाया था तैसे (श्वानम्) कुत्तेको (अपहत) दूर करो ॥ ९॥

पञ्चमाध्यायस्य अष्टम खण्ड समाप्तः

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्द्धते । आ सूर्य्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विश्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥

(चनोहितः) भोजन करने योग्य और हितकारी सोम (प्रियाणि) जगत्को तृप्त करनेवाले (नामानि) जलोंको (अभिपवते) सब ओर से प्राप्त होता है (येषु) जिन जलोंमें (यह्वः) यह महान सोम (अधि वर्द्धते) अधिक वृद्धिको प्राप्त होताहै तदनंतर (बृहन्) वह महान सोम (बृहतः) बड़े (सूर्यस्य) सूर्यके (विश्वञ्चम्) सर्वत्र गमन करने वाले (रथम्, अधि) रथके ऊपर (विचक्षणः) विश्वका द्रष्टा होता हुआ (आरुहत्) चढ़ता है ॥ १ ॥

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद्देवेषु हरयः । वि चिदश्नाना इषयो अरातयोऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः ॥ २ ॥

(अचोदसः) अन्यकी प्रेरणासे रहित (हरयः) पापहारी वा हरेवर्ण के (स्वानासः) सुसिद्ध कियेजाने वाले (इन्दवः) सोम (नः) हमारे (बृहद्देवेषु)अनेकों देवताओंसे युक्त यज्ञोंमें (प्रधन्वन्तु) प्राप्त हों (अरातयः) धन आदिका दान न करनेवाले (नः) हमारे (अर्यः) शत्रु (इषय) अन्नोंकी इच्छा करतेहुए (अश्नाना विचित्) भोजन से वियुक्त (सन्तु) हों (नः) हमारे (धिया) देवविषयक स्तोत्र (सनिषन्तु) देवताओंको प्राप्त हों ॥ २ ॥

एष प्र कोशे मधुमाꣳ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो

वपुषो वपुष्टमः । अभ्य१तस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥ ३ ॥

(इन्द्रस्य) इन्द्रका (वज्रः) बलदायक होनेसे वज्ररूप (वपुषः) बीज बोनेवालोंसे (वपुष्टमः) श्रेष्ठ बीज बोनेवाला (एषः) यह (मधुमान्) मधुररसयुक्त सोम (कोशे) द्रोणकलशमें (प्राचिक्रदत्) शब्द करताहै (ऋतस्य) अमोघफलवालेसोमकी (सुदुघाः) फलोंको सुंदरतासे बरसानेवाली (घृतश्चुतः) जलको गिरानेवाली (वाश्राः) शब्द करती हुई धारायें (पयसा धेनवः च) दुधेर गौओंकी समान (अभ्यर्षन्ति) प्राप्त होतीहैं ॥ ३ ॥

प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतꣳ सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् । मर्य्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ ४ ॥

(इन्दुः) सोम (इन्द्रस्य) इन्द्रके (निष्कृतम्) संस्कार युक्त स्थान उदरको (प्रो अयासीत्) अधिकतासे जाताहै और जाकर (सखा) मित्ररूप सोम (सख्युः) मित्र इंद्रके (सङ्गिरम्) सम्यक् निगलेहुए के आधाररूप उदरको (न प्रमिनाति) कष्ट नहीं देताहै और (युवतिभिः मर्य इव) जैसे तरुणियोंके साथ पुरुष सङ्गत होताहै तैसे ही मिलानेके वसतीवरी जलोंके साथ (समर्षति) मिलता है (सोमः) और वह सोम (शतयामना) अनेकों शोधनके छिद्र युक्त (पथा) दशापवित्र के मार्गसे (कलशे) द्रोणकलशमें प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

धर्त्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः । हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजाꣳसि कृणुते नदीष्वा ॥ ५ ॥

(धर्त्ता) सबका धारक (कृत्व्यः) शोधने योग्य (रसः) रसरूप (देवानां दक्षः) देवताओंको बल देनेवाला (नृभिःअनुमाद्यः) ऋत्विजोंके स्तुति करनेयोग्य (हरिः) हरे वर्णका सोम (दिवः) अन्तरिक्ष में स्थित दशापवित्रमेंसे (पवते) पवित्र होकर आता है (सत्वभिः) हम प्राणियोंसे (सृजानः) सुसिद्ध कियाजाता हुआ (अत्यो न) जैसे

घोडा अनायास जाताहै तैसे ही (वृथा) प्रयत्नके विना ही (पाजांसि) अपने वेगोंको (नदीषु) बसतीवरी जलोंके प्रवाहोंमें (कृणुते) करताहै ५

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः । प्राणा सिन्धूनांकलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥ ६ ॥

(मतीनां वृषा) स्तोताओंके मनोरथोंकी वर्षा करनेवाला (विचक्षणः) विशेष द्रष्टा (अह्नाम्) दिनोंका (उषसाम्) उषःकालोंका (दिवः) द्युलोकका धा आदि[illegible] (प्रतरीता) बढ़ानेवाला (सोमः) यह सोम (पवते) सुसिद्ध कियाजाताहै और (सिन्धूनाम्) जलोंसे (प्राणा) पूर्ण सोम (मनीषिभिः) स्तुतियोंके साथ (इन्द्रस्य) इंद्रके (हार्दि, आविशन्) हृदयमें प्रवेश करना चाहता हुआ (कलशान्) अभि) कलशोंकी ओरको लक्ष्य करके (अचिक्रदत्) धारासे प्रवेश करनेमें शब्द करता ॥ ६ ॥

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि । चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्द्धत ॥ ७ ॥

(परमे व्योमनि) श्रेष्ठ यज्ञमें स्थित (अस्मै) इस सोम के अर्थ (त्रिः सप्त) इक्कीस (धेनवः) गौएं (सत्याम्) यथार्थ (आशिरम्) दूध आदिको(दुदुह्रिरे) दुहीजाकर पात्रोंमें पूर्ण करती हैं, अर्थात् बारह मास पाँच ऋतु तीन लोक और आदित्य, यह इक्कीस मिलकर गौओंमें दूधको उत्पन्न करते हैं उसको ही गौओंसे दुहाजाता है और यह सोम (यत्) जब (ऋतैः) यज्ञोंसे (अवर्द्धत) बढ़ता है, तब (अन्या) और (चत्वारि) चार (भुवना) बसतीवरी आदि जलोंको (निर्णिजे) शुद्ध करनेके लिये (चारूणि) कल्याणरूप (चक्रे) करता है ॥ ७ ॥

इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह । मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥ ८ ॥

(सोम) हे सोम! तू (सुषुतः) सुन्दरप्रकारसे सिद्ध किया हुआ (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (परिस्रव) सब ओरसे रसको छोड़ (अमीवा) रोग (रक्षसा सह) राक्षसके साथ (अपभवतु) दूर हो (ते) तेरे (रसस्य) रसके अपने अंशको पीकर (मा मत्सत) मदयुक्त न हों, जोकि (द्वयाविनः) झूठ सत्य दोनोंसे युक्त पापी हैं। (इन्दवः) तेरे रस (इह) इस यज्ञमें (द्रविणस्वन्तः सन्तु) हमारे लिये धनवान् हों ।८।

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत्। पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत्॥९॥

(अरुषः) दमकदार (वृषा) कामनाओंकी वर्षा करनेवाला (हरिः) हरे वर्णका (सोमः) सोम (असावि) सम्पादित हुआ (राजेव दस्मः) राजाकी समान दर्शनीय होताहुआ (गाः अभि) जलोंकी ओरको लक्ष्य करके (अचिक्रदत्) अपना रस निकलनेके समय शब्द करता है, फिर (पुनानः) पवित्र होताहुआ (अव्य वारम्) भेडीकी ऊनके पवित्रमेंको (अत्येषि) छनकर निकलता है, तदनन्तर (श्येन न) श्येन पक्षीकी समान (घृतवन्तम्) जलमय (योनिम्) अपने स्थानको (आसदत्) प्राप्त होताहै ॥९॥

प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यन्दत गाव आ न धेनवः। बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥ १० ॥

(मधुमन्तः) मधुर रसवाले (इन्दवः) सोम (देवं अच्छ) इन्द्रदेवके प्रति (प्रासिष्यदन्त) ग्रह आदि पात्रोंमे प्राप्त होते हैं (न) जैसे (धेनवः) दूधसे तृप्त करनेवाली (गावः) गौएं (आ) अपने बछड़ों के प्रति दूध टपकाती हैं और (बर्हिषदः) यज्ञमें स्थित (वचनवन्तः) रँभातीहुई (उस्रियाः) गौएं (ऊधभिः) अपने दूधके थनोंसे (परिस्रुतम्) चारों ओरसे टपकनेवाले (निर्णिजम्) शुद्ध दुग्धरूप सोम रसको (धिरे) इन्द्रके निमित्त धारण करती हैं ॥ १० ॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते। सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्त-

मुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ११

ऋत्विज सोमको (अञ्जते) गौओंके दुग्धादिके साथ मिलाते हैं (व्यञ्जते) अनेकों प्रकारसे मिलाते हैं (समञ्जते) सम्यक् प्रकार से मिलाते हैं । देवता (क्रतुम्) बलकर्त्ता सोमको (रिहन्ति) स्वाद लेते हैं और फिर (मध्वा) गोघृतसे (अभ्यञ्जते) मिलातेहैं उस ही सोमको (सिंधोः) जलके आधारभूत (उच्छ्वासे) उच्चदेशमें (पतयन्तम्) जातेहुए (उक्षणम्) सेचन करनेवालेको (हिरण्यपावः) सुवर्णसे पवित्र करतेहुए (पशुम्) दृष्टारूपमें (गृभ्णते) ग्रहण करतेहैं॥

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः । अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥ १२ ॥

(ब्रह्मणस्पते) हे मंत्रके स्वामी सोम ! (ते) तेरा (पवित्रम्) श्रेष्ठ अङ्ग (विततम्) सर्वत्र फैलाहुआ है (प्रभुः) शक्तिमान् तू (गात्राणि) पीनेवालेके अङ्गोंको (पर्येषि) प्राप्त होता है (विश्वतः) सब ओरसे तेरे उस पवित्रको (अतप्ततनूः) प्रयोगव्रत अग्निसे जिसका शरीर सन्तप्त नहीं हुआहै ऐसा (आमः) परिपाक रहित (नाश्नुते) व्याप्त नहीं होता है (शृतासः इत्) परिपक्व होकर ही (वहन्तः) यज्ञका निर्वाह करतेहुए (तत्) उस पवित्रमें (समाशत) व्यापते हैं ॥ १२ ॥

पञ्चमाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥

(श्रुष्टे) शीघ्र (जातासः) सुसिद्ध हुए (इन्दवः) पात्रोंमें टपकतेहुए (स्वर्विदः) सर्वज्ञ (हरयः) हरे वर्णके (सुताः) खेंचेहुए (इमे) यह सोम (वृषणम्) कामनाओंकी वर्षा करनेवाले इन्द्रको (अच्छयन्तु) प्राप्त हों ॥ १ ॥

प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव । द्युमन्तꣳ शुष्ममा भर स्वर्विदम् ॥ २ ॥

(सोम) हे सोम (जागृविः) जागरणशील तू (प्रधन्व) पात्रमें

प्राप्त हो (इन्दो) हे सोम (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (परिस्रव) पात्रमें चारों ओरसे बरस (द्युमन्तम्) दिपते हुए (स्वर्विदम्) स्वर्ग प्राप्त करानेवाले (शुष्म) शत्रुओंके शोषक बलको (आभर) दो ॥ २ ॥

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत ।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ ३ ॥

(सखायः) हे मित्ररूप स्तोताओ (आनिषीदत) स्तुति करनेको बैठो (पुनानाय) पवित्र कियेजाते हुए सोमके अर्थ (प्रगायत) साम गान करो (शिशुम् न) जैसे पिता अपने बालक पुत्रको आभूषणोंसे सुशोभित करताहै तैसे इस सोमको (श्रिये) शोभाके अर्थ (यज्ञैः) यजनके योग्य हवियोंसे (परिभूषत) अलंकृत करो ॥ ३ ॥

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ ४ ॥

(सखायः) हे मित्र ऋत्विजो ! (वः) तुम (मदाय) देवताओंके मदके निमित्त (पुनानम) सुसिद्धकिये जातेहुए (तम्) उस सोमकी (अभिगायत) स्तुति करो (शिशु न) बालककी समान (हव्यैः) हवियोंसे (गूर्त्तिभिः) स्तुतियोंसे (स्वदयन्त) स्वादुकरो ॥ ४ ॥

प्राणा शिशुर्महीनाᳪं हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ ५ ॥

(प्राणा) यज्ञविधिको परिपूर्ण करनेवाला (महीनाम्) पूजनीय (अपाम्) जलोंका (शिशुः) शिशुसमान सोम (ऋतस्य) यज्ञके (दीधितिम्) प्रकाशक अपने रसको (हिन्वन्) प्रेरणा करता हुआ (विश्वा) सकल (प्रिया) प्रिय हवियोंको (परिभुवत्) व्यापता है और (द्विता) द्युलोक भूलोक दोनो स्थान पर वर्त्तमान होताहै ॥ ५ ॥

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ ६ ॥

(इन्दो) सोम ! (देववीतये) देवताओंके भक्षणके लिये (ओजसा) बलकेसाथ (धाराभिः) अपनी धाराओंसे (पवस्व) पात्रमे पूर्ण हो (सोम) हे सोम ! (मधुमान) मदकारी रसवाला तू (नः) हमारे (कलशम् आसद) द्रोणकलशमें स्थित हो ॥ ६ ॥

सोमः पुमान ऊर्मिणाऽव्यं वारं वि धावति ।
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

(पवमानः) पवित्र (वाचः, अग्रे) स्तोत्रके आगे (कनिक्रदत्) वारं वार शब्द करताहुआ (पुनानः) सुसिद्ध कियाजाता हुआ (सोमः) सोम (ऊर्मिणा) अपनी धारासे (अव्य वारम्, विधावति) ऊनके दशापवित्रमेंको नानाप्रकारसे गमन करताहै ॥ ७ ॥

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते ।
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ ८ ॥

स्तोता अपने आत्मासे कहता है, कि—(पुनानाय) पवित्रसे शुद्ध होतेहुए (वेधसे) कर्मों के विधाता (सोमाय) सोमके अर्थ (वचः) (स्तोत्रको (प्रोच्यते) उच्चारण करो और (मतिभिः) स्तुतियोंसे (जुजोषते) प्रसन्न होनेवालेके अर्थ (प्रभर) अधिकतासे स्तुति करो (भृतिं न) जैसे कि—सेवकको धन देतेहैं ॥ ८ ॥

गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव ।
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ ९ ॥

(सुदक्ष, इन्दो) हे बलशाली सोम ! (सुतः) सुसिद्ध कियाहुआ तू (नः) हमें (गोमत्) गौओं सहित (अश्ववत्) घोडों सहित (धनिव) धन दो, तदनन्तर मैं (शुचिम्) पवित्र और दिपतेहुए (वर्णम्) रसको (गोषु) गोरसमें (अधि धारय) अधिक पाऊं ॥ ९ ॥

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ १० ॥

हे सोम (वसुविदम्) धनकेदाता (त्वा) तुम्हें (अस्मभ्यम्) हमें धन आदि देनेके निमित्त (वाणीः) हमारी वाणियें (अभ्यनूषत) सब ओरसे स्तुति करती हैं और हम (ते वर्णम्) तुम्हारे रसको (गोभिः) गौओंके दुग्ध आदि से (अभिवासयामसि) सब ओरसे आच्छादित करते हैं ॥ १० ॥

पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ ११ ॥

(हर्यतः) इच्छा करनेयोग्य (हरि) हरे वर्णका सोम (रंह्या) श्रेष्ठ वेगसे (ह्वरांसि) तिरछे पवित्रोंको लेकर (अति पवते) निकल कर जाता है, हे सोम ! तुम (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवालों को (वीरवत्) पुत्रयुक्त (यशः) कीर्ति (अर्षय) दो ॥ ११ ॥

परि कोशं मधुश्चुतꣳ सोमः पुनानो अर्षति । अभि वाणीर्ऋषीणाꣳ, सप्ता नूषत ॥ १२ ॥

(पुनानः) वह पवित्र कियाजाता हुआ (सोमः) सोम (मधुश्चुतम्) मधुरताको टपकानेवाले अपने रसको (कोशं, परि अर्षति) कलशमें पहुँचाता है, इस सोमको (ऋषिणाम्) ऋषियोंकी (सप्त-वाणीः) सात छन्दोंवाली वाणियें (अभ्यनूषत) स्तुति करती हैं॥१२॥

पञ्चमाध्यायस्य दशम खण्डः समाप्त

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम (मधुमत्तम) अत्यन्त मधुरतायुक्त (क्रतुवित्तमः) प्रज्ञा या कर्मका प्राप्त करानेवाला (महि) पूजनीय (द्युक्षतमः) परमदीप्त (मदः) हर्षदायक तू (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (मदः) मदकारी होताहुआ (पवस्व) पवित्र हो ॥ १ ॥

अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् । वि कोशं मध्यमं युव ॥ २ ॥

(इषस्पते देव) हे अन्नके स्वामी स्तुतियोग्य सोम (देवयुम्) देवताओंको प्राप्त होनेयोग्य तुम्हारी हम स्तुति करते हैं, तुम हमें (द्युम्नम) दीप्यमान (बृहत्) बहुतसा (यशः) अन्न (अभिदीदिहि) अभिमुख होकर दो (मध्यमम्) अन्तरिक्षमें स्थित (कोशम्) मेघको (वियुव) वर्षाके लिये छिन्न भिन्न करो ॥ २ ॥

आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरꣳ, रजस्तुरम् । वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ३ ॥

हे ऋत्विजों ! (अश्वं न) घोड़ेकी समान वेगवान् (स्तोमम्) स्तुतिके योग्य (अप्तुरम्) अन्तरिक्षमें स्थित जलोंके प्रेरक (रजस्तु-

रम्) तेजोंके प्रेरक (वनप्रक्षम्) जलोंमें मिलेहुए वा पात्रोंमें फैलेहुए (उद्प्लुतम्) जलमें जानेहुए सोमको (आ सोत) अभिषुत करो (परिषिञ्चत)चारों ओरसे बसतीवरी आदिसे सींचो ॥ ३ ॥

एतमु त्यं मदच्युतꣳ सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम् । विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ४ ॥

(दिवः) देवताओंकी कामना करनेवाले ऋत्विज (मदच्युतम) मदके प्रेरक (सहस्रधारम्) अनेकों धारावाले (वृषभम) कामनाएं पूरी करनेवाले (विश्वा वसूनि) सकल धनोंको (बिभ्रतम्) धारण करनेवाले (एतं त्यमु) इस सामको ही (दुहम्) दुहने हुए ॥ ४ ॥

स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् । सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ ५ ॥

(यः) जो (वसूनाम्) धनोंका (यः) (रायाम) दुग्ध आदि देनेवाली गौओंका (यः) जो (इडानाम) भूमियोंका (यः) जो (सुक्षितीनाम्) श्रेष्ठ मनुष्योंका (आनेता) लानेवाला है (सः) वह सोम (सुन्वे) ऋत्विजोंसे अभिषुत कियागया ॥ ५ ॥

त्वꣳ ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः अमृतत्वाय घोषयन् ॥ ६ ॥

(पवमान) हे पूयमान सोम (द्युमत्तमः) अत्यन्त दीप्तिमान् (त्वम् हि) तू ही (दैव्यं जनिमानि) देवसन्धी जन्मोंको अर्थात् देवताओंको जानने हो (अमृतत्वाय) उनके अमरणके लिये (अङ्ग) शीघ्र (घोषयन) ऋत्विजोंसे शब्द उत्पन्न कराता है ॥ ६ ॥

एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः । क्रीडन्नूर्मिरपामिव ॥ ७ ॥

(मदिन्तमः) परम आनन्द देनेवाला (अपां, ऊर्मिः, इव, क्रीडन्) जलके प्रवाहकी समान इधर उधरको क्रीडाकरता हुआ (स्यः) वह (एषः) यह (सुतः) अभिषुत सोम (अव्याः, वारेभिः) ऊनके पवित्रेमेंको (धारया) अपनी धारसे (पवते) कलशमें टपकता है ७

य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा। अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज। ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज॥ ८ ॥

(यः) जो सोम (उस्रियाः) गरजनेवाले (अपियाः) अन्तरिक्षमें असुरोंके घेरेहुए (अश्मनि अन्तः) मेघोंके भीतरके (गाः) जलोंको (ओजसा) बलसे (निरकृन्तत्) छिन्न भिन्न करताहै अर्थात् अन्तरिक्षमेंसे वर्षा करता है, वह तू सोम (गव्यम्) असुरोंके हरण कियेहुए गौओंके (अश्व्यम्) अश्वोंके (व्रजम्) समूहको (अभितत्निषे) सब ओरसे व्याप्त करता है (धृष्णो) हे शत्रुओंको भय देनेवाले सोम ! तुम (वर्मीव) कवचधारीकी समान (आरुज) असुरोंको नष्ट करो ८

पञ्चमाध्यायस्य एकादशः खण्डः समाप्तः

पवमानं पर्व समाप्तम्

|| श्रीः ॐ नमः ||
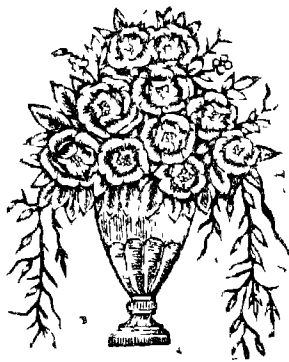
सामवेद संहिता उत्तरार्चिक।

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे।

अभि देवाꣳइयक्षते ॥ १ ॥

(नरः) हे ऋत्विजों (देवान्, अभि, इयक्षते) देवताओंके अभिमुख होकर यजन करना चाहनेवाले(पवमानाय) शुद्ध होकर टपकनेहुए (अस्मै इन्दवे) इस सोमके अर्थ (उपगायत) स्तुतिगान करो ॥१॥

अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः।

देवं देवाय देवयु ॥ २ ॥

हे सोम ! (ते) तेरे (देवम्) प्रशंसनीय (देवयुम) देवताओंके अभिलषित रसको (देवाय) इन्द्रके अर्थ (मधुना, पयः) मधुररस वाले गौके दूधसे (अथर्वाणः) ऋषियोंने (अभ्यशिश्रयुः) मिलाया २

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।

शꣳराजन्नोषधीभ्यः ॥ ३ ॥

(राजन्) हे सोम (सः) प्रसिद्ध तू (नः) हमारी (गवे) गौओं के अर्थ (शम्) सुखरूप (जनाय) पुत्रके अर्थ (शम) सुखरूप (अर्वते) घोड़ेके निमित्त (शम्) सुखरूप (ओषधीभ्यः) ओषधियोंके लिये (शम्) सुखरूप (पवस्व) पात्रमें टपक ॥ ३ ॥

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा।

सोमः शुक्रा गवाशिरः ॥ ४ ॥

(दविद्युतत्यारुचा) अत्यन्त दिपतीहुई कान्ति से (परिष्टोभन्त्या कृपा) चारों ओरको शब्द करतीहुई धारा करके शुक (शुक्राः) स्वच्छ (सोमाः) सोम (गवाशिरः) गोदुग्धमें मिलते हैं ॥ ४ ॥

हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत्।
सीदन्तो वनुषो यथा ॥ ५ ॥

(वाजी) बलवान् सोम (हेतृभिः) स्तोताओंसे (हिन्वानः) स्तोत्रों से स्मरण कियाहुआ (हितः) हितकारी होताहुआ (वाजम्) यज्ञको (अक्रमीत्) आक्रमण करता है (यथा) जैसे (वनुषः) योधा (सीदन्तः) युद्धके निमित्त रणभूमिमें प्रवेश करतेहुए आक्रमण करते हैं ५

ऋधक् सोम स्वस्तये सञ्जग्मानो दिवा कवे।
पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ६ ॥

(सोम) हे सोम ! (कवे) हे क्रान्तदर्शी ! (सूर्यः) श्रेष्ठवीर तू (ऋधक्) चढ़ता बढ़ता हुआ (सञ्जग्मानः) संयुक्त होताहुआ (स्वस्तये) कल्याणके अर्थ (दृशे) दर्शनके अर्थ (दिवा) अन्तरिक्षसे (पवस्व) क्षरित हो ॥ ६ ॥

पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत ।
अर्वन्तो न श्रवस्य वः ॥ ७ ॥

(कवे, वाजिन्) हे क्रान्तदर्शी अन्नवान् सोम ! (पवमानस्य) दशापवित्रसे शुद्ध कियेजातेहुए (ते) तेरी (श्रवस्यवः) यजन करने वालोंका अन्न देना चाहनेवाली (सर्गाः) धारायें (अर्वन्तो न) जैसे घोड़े घुड़शालमेंसे निकलतेहैं तैसे (असृक्षत) निकलती हैं ॥ ७ ॥

अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये ।
अवावशन्त धीतयः ॥ ८ ॥

(मधुश्चुतम्, कोशं, अच्छ) जिसमें मधुर रस टपकायाजाता है ऐसे द्रोणकलश में (अव्यये, वारे) ऊनके दशापवित्र में को (असृग्रम्) सोमोंको ऋत्विज् सिद्ध करते हैं (धीतयः) अंगुलियें (अवावशन्त) उन सोमोंको वार २ शुद्ध करना चाहती हैं ॥ ८ ॥

अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः ।
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ ९ ॥

(इन्दवः) टपकते हुए सोम (समुद्रं, कलशं, अच्छ) सोमों के एकत्र इकट्ठे होनेके स्थानरूप द्रोणकलश में को जाते हैं (नः) जैसे (धेनवः) दूधदेकर मनुष्योंको तृप्त करनेवाली नवप्रसूता गौएं (अस्तम्) अपने घरको जाती हैं तैसे ही वह सोम (ऋतस्य, योनिम्) सत्यस्वरूप यज्ञके स्थानको (आ अग्मन्) अभिमुख होकर जाते हैं ॥ ६ ॥

उत्तरार्चिक प्रथमाध्यायस्य प्रथम खण्ड. समाप्त ।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ' तुम (गृणानः) हमसे स्तुति कियेजाते हुए (वीतये) चरुपुरोडाश आ[illegible] भक्षण करने के निमित्त (हव्यदातये) देवताओंको हवि पहुँचाने के निमित्त (आयाहि) हमारे यज्ञमें आओ (होता) देवताओंका आह्वान करते हुए (बर्हिषि) बिछेहुए, कुशोंपर (निषत्सि) विराजो ॥ १ ॥

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि ।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ २ ॥

(अङ्गिरः) हे सुन्दर अग्ने (त, त्वाम्) उन कहेहुए गुणोंवाले तुम्हे (समिद्भि) समिधाओं से (घृतेन) घीसे (वर्द्धयामसि) प्रज्वलित करते है (यविष्ठ्य) हे अतितरुण अग्ने (बृहत्) अधिक (शोच) दीप्त हूजिये ॥ २ ॥

स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि ।
बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

(देव) हे अग्निदेव ! (स.) पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त तुम (पृथु) विस्तीर्ण (श्रवाय्यम) श्रवण [illegible] (बृहत्) बहुत (सुवीर्यम्)सुन्दर वीर्ययुक्त अन्न (न) [illegible] (अच्छ विवाससि) प्राप्त कराओ ॥ ३ ॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ ४ ॥

(सुक्रतू) श्रेष्ठ कर्मोंवाले (मित्रावरुणा) हे मित्रावरुण देवताओं ! (नः) हमारे (गव्यूतिम) गौओंके निवासस्थान को (घृतैः) घृतके

साधन दुग्धोंसे (अउक्षतम्) चारों ओरसे सींचो (मध्वा) श्रेष्ठ रससे (रजांसि) हमारे पारलौकिक निवासस्थानोंको सींचो ॥ ४ ॥

उरुशꣳसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥ ५ ॥

(शुचिव्रता) परमशुद्ध कर्मवाले हे मित्रावरुण देवताओं ! (उरुशंसा) अनेकोंके प्रशंसा करनेयोग्य (नमोवृधा) हविरूप अन्नसे वा वा स्तोत्रसे वृद्धिको प्राप्त होनेवाले (द्राघिष्ठाभिः) बड़ी २ स्तुतियों से युक्त तुम (दक्षस्य) धन वा बलके (मह्ना) महत्त्वसे (राजथः) दिपते हो ॥ ५ ॥

गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातꣳ सोममृतावृधा ॥ ६ ॥

हे मित्रावरुणों ! (जमदग्निना) इस नामके ऋषिसे वा प्रज्वलित अग्निसे (गृणाना) स्तुति कियेजाते हुए तुम (ऋत्विस्य, योनौ) देवयजनस्थानमें (सीदतम्) विराजमान होओ (ऋतावृधः) कर्म फलके बढ़ानेवाले तुम (सोमं पातम्) हमारे सम्पादन कियेहुए सोम को पियो ॥ ६ ॥

आयाहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (आयाहि) तुम मेरे यज्ञमें आओ, हमने (ते) तुम्हारे लिये (सुषुमा हि) निश्चय सोम सुसिद्ध किया है (इमं सोमम्) इस सोमको (पिब) पियो, तुम्हारे लिये (मम) मेरे (एदं बर्हिः) इस वेदीमें बिछेहुए कुशासन पर (आ सदः) विराजमान हूजिये ७

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (ब्रह्मयुजा) मंत्रयुक्त (केशिनौ) केशवाले (हरी) पापनाशक अश्व (त्वा) तुम्हे (अवहताम्) पहुँचावें और तुम हमारे यज्ञोंमें आकर (नः) हमारे (ब्रह्माणि) स्तोत्रोंको (उपशृणु) भले प्रकार चित्तमें धारण करो ॥ ८ ॥

ब्रह्माणस्त्वा युजा वयꣳ सोमपामिन्द्र सोमिनः सुतावन्तो हवामहे ॥ ९ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (सोमिनः) सोमवाले (सुतावन्तः) सोमरस निकालेहुए (वयम्) हम (ब्रह्मणः) ब्राह्मण (सोमपाम्) सोम पीनेवाले (त्वा) तुम्हे (युजा) योग्य स्तोत्र से (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥९॥

इन्द्राग्नी आ गतꣳ सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥ १० ॥

(इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि देवता (सुतम्) संस्कार कियेहुए (वरेण्यम्) श्रेष्ठसोमके लिये (गीर्भिः) हमारी स्तुतियोंसे आव्हान किये (नभः) स्वर्गसे (आगतम्) आओ और आकर (धिया) हमारी भक्तिसे (इषिता) प्रेरणाकिये हुये तुम (अस्य) सोमको (पातम्) पियो ॥ १० ॥

इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमꣳ सुतम् ॥ ११ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इन्द्रअग्नि देवताओ ! तुम (जरितुः) स्तुति करनेवाले के (सचा) स्वर्गादिकी प्राप्तिमें सहायक हो (यज्ञ) यज्ञका साधन (चेतनः) इन्द्रियोंको चेतनता देनेवाला सोम (जिगातिः) तुम्हे प्राप्त होता है (अया) हमारी इस स्तुतिरूप वाणीसे आव्हान कियेहुए तुम (सुतम्) संस्कार कियेहुए (इमम्) इस सोमको (पातम्) पियो ११

इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ १२ ॥

(यज्ञस्य) यज्ञके साधन सोमकी (जूत्या) प्रेरणासे प्रेरित हुआ मैं स्तोता (कविच्छदा) स्तुति करनेवालोंको योग्य फल देकर तृप्त करनेवाले इन्द्र और अग्निदेवताको (वृणे) भजताहूँ आकर (ता) वह दोनो (इह) मेरे इस कर्ममें (सोमस्य) सोमयागसे (तृम्पताम्) तृप्त हों ॥ १२ ॥

उत्तरार्चिके प्रथमाध्यायस्य द्वितीय खण्ड समाप्तः

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे ।
उग्रꣳशर्म महि श्रवः ॥ १ ॥

हे सोम (ते) तेरे (अन्धसः) रसका (उच्चा) श्रेष्ठ (जातम्) जन्म है और (दिवि) द्युलोकमें (सत्) वर्त्तमान तेरा (उग्रम्) बलवान् (शर्म) सुख रूप (महि) बहुत (श्रवः) अन्न (भूमि) भूतलवासी यजमानोंसे (आददे) ग्रहण कियाजाता है ॥ १ ॥

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
वरिवोवित् परि स्रव ॥ २ ॥

(वरिवोवित्) हे धन प्राप्त करानेवाले सोम ! (सः) वह तू (नः) हमारे (यज्यवे) यजन करने योग्य (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (वरुणाय) वरुणके अर्थ (मरुद्भ्यः) मरुतोंके अर्थ (परिस्रव) धारासे पात्रमें प्राप्तहो ॥

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।
सिषासन्तो वनामहे ॥ ३ ॥

हे सोम ! (मानुषाणाम्) मनुष्योंके प्राप्त होनेयोग्य (एना) इन (विश्वा) सकल (द्युम्नानि) यज्ञके साधन धनोंको आपके अनुग्रह से (आ अर्यः) अभिमुख जातेहुए हम (सिषासन्तः) सेवा करना चाहतेहुए (वनामहे) तुम्हारी उपासना करते हैं ॥ ३ ॥

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि । आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः

हे सोम ! (पुनानः) पवित्र कियाजाताहुआ तू (अपः) वसतीवरी जलोंको (वसानः) आच्छादन करताहुआ (धारया अर्षसि) धारा से पात्रमें पहुँचता है (रत्नधा) रमणीय धनोंका देनेवाला (उत्सः) प्रवाहरूप (देवः) दमकताहुआ (हिरण्ययः) सुवर्णका उत्पत्तिस्थान तू (ऋतस्य, योनिं, आसीदसि) सत्यस्वरूप यज्ञके स्थानमें विराजमान होता है ॥ ४ ॥

दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नꣳ सधस्थमासदत् । आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः ॥ ५ ॥

(मधु) मदकारी (प्रियम्) प्रसन्नता देनेवाला (दिव्यम्) स्वर्गीय (ऊधः) रसको (दुहानः) टपकाताहुआ सोम (प्रत्नम) पुरातन (सधस्थम्) अन्तरिक्ष स्थानको (आसदत्) प्राप्त होता है, तदनन्तर (वाजी) अन्नवान् (नृभिः धौत) ऋत्विजोंका धोयाहुआ (विचक्षणः) सबका विशेषरूप से द्रष्टा तू हे सोम! (आपृच्छयम्) कर्मके विषय में बूझने योग्य (धरुणम्) कर्मके धारण करनेवाले यजमानोंको (अर्षसि) अन्न देनेको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष। अश्वं न त्वा वाजिनं मार्जयन्तोऽच्छा बर्हीं रशनाभिर्नयन्ति ॥ ६ ॥

हे सोम (तु) शीघ्र (प्रद्रव) हमारे यज्ञमें सुन्दरता से आओ और आकर (कोशं, परिनिषीद) द्रोणकलश में स्थित हो (नृभिः,पुनानः) होताओं से शुद्ध किये जातेहुए (वाजम्) हविरूप अन्नको (अभ्यर्ष) प्राप्त हो (वाजिनं, अश्वं, न) जैसे बलवान् घोड़ेको न्हवाकर स्वच्छ करते हैं तैसे (त्वा,मार्जयन्तः) तुझ बलवान् को शुद्ध करतेहुए अध्वर्यु आदि ऋत्विज (बर्हिः, अच्छ) हमारे यज्ञमें (रशनाभिः) लंबी अगुलियों से (नयन्ति) प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः। पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥ ७ ॥

(स्वायुधः)श्रेष्ठ आयुधवाला (अशस्तिहा) राक्षसोंका नाशक(वृजना) उपद्रवोंको दूर करके (रक्षमाणः) रक्षा करताहुआ (पिता) पालक (देवानां जनिता) देवताओं का उत्पादक (सुदक्षः) श्रेष्ठ बलवाला (दिवः विष्टम्भः) द्युलोकका विशेषरूप से रोकनेवाला (पृथिव्याः, धरुणः) पृथिवीका धारण करनेवाला (इन्दुः देवः) सोम देवता(पवते) संस्कारयुक्त होता है ॥ ७ ॥

ऋषिर्विप्रः पुर एता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन। स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्याऽ३ गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ८ ॥

(विप्रः) मेधावी (पुरःएता) वैदिक अनुष्ठान में अग्रणी (जनानां ऋभुः) मनुष्यों में बड़े प्रकाशवाला (धीरः) परमबुद्धिमान् (उशनाः ऋषि) जो उशना नामवाला ऋषि है (सः चित्) वह ही (आसां, गोनाम्) इन गौओंका (यत्) जो (अपीच्यम) भीतर स्थित (गुह्यम्) गोपनीय (नाम) दुग्धरूप जल है उसको (काव्येन) स्तोत्रसे(विवेद) पाता है ॥ ८ ॥

उत्तरार्चिके प्रथमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः ।

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥

(शूर) हे पराक्रमी इन्द्र (अदुग्धाः, धेनवः, इव) जैसे विना दुही गौएं आदरके साथ बछड़ों की ओरको रँभाती हैं तैसे हम (अस्य) इस (जगतः) जंगम जगत् के(ईशानम्) स्वामी (तस्थुषः) स्थावरके (ईशानम्) स्वामी (स्वर्दृशम्) सर्वज्ञ(त्वा) तुम्हें (अभिनोनुमः) वार २ प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते । अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २ ॥

(मघवन्) हे इन्द्र !(त्वावान्) तुम्हारी समान (अन्यः) दूसरा (दिव्यः) स्वर्गवासी (न) नहीं है (पार्थिवः) कोई भूतलवासी (न) नहीं है (न जातः) न कभी हुआ (न जनिष्यते) न कभी होगा(इन्द्र) हे इन्द्र (अश्वायन्तः) घोड़ों की इच्छा करतेहुए (वाजिनः) धनकी इच्छा करते हुए (गव्यन्तः) गौओंकी इच्छा करते हुए हम (त्वा) तुम्हें (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ ३ ॥

(सदावृधः) सदा बढ़ता हुआ (चित्रः) विचित्र पराक्रमी (सखा) मित्ररूप इन्द्र (कया ऊती) किस तृप्तिकारक पदार्थसे (शचिष्ठया,

कया, वृता) प्रज्ञा सहित अनुष्ठान किये हुए किस कर्मसे (नः आ भुवत्) हमारे अभिमुख होय ॥ ३ ॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ ४ ॥

(मंहिष्ठः) पूजनीय (सत्यः) सत्य (मदानाम्) आनन्ददायक पदार्थोंमें (कः) कौन परम आनन्ददायक है (अन्धसः) सोमका रस (दृढाचित्) दृढ़ भी (वसु) शत्रुके धनको (आरुजे) सब ओरसे नष्ट करनेको (त्वा) तुम्हें (मत्सत्) मद देय ॥ ४ ॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
शतं भवास्यूतये ॥ ५ ॥

(सखीनाम्) मित्ररूप (जरितॄणाम्) स्तोताओंका (अविता) रक्षक तू (नः) हमें (शतं, ऊतये) सैकड़ो रक्षाओंके अर्थ (सु) श्रेष्ठ प्रकारसे (अभि भवासि) अभिमुख हूजिये ॥ ५ ॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ६ ॥

(स्वसरेषु, वत्सम् धेनवः, इव) जैसे गोठोंमें बछड़े की ओरको गौएं रँभाती हैं तैसे हे ऋत्विक् यजमानो तुम सूर्यके प्रेरक दिनोंमें (दस्मम्) दर्शनीय (ऋतीषहम्) शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले (वसोः) दुःखनिवारण करनेवाले (अन्धसः) सोमके पीनेसे (मन्दानम्) प्रसन्न होते हुए (वः) तुम्हारे (तम् इन्द्रम्) उस इन्द्रको (गीर्भिः) वाणियोंसे (नवामहे) स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

द्युक्षꣳ सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् । क्षुमन्तं वाजꣳ शतिनꣳ सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ७ ॥

(द्युक्षम्) द्युलोकमें निवास करनेवाले (सुदानुम्) श्रेष्ठदान देनेवाले (तविषीभिः) बलोंसे (आवृतम्) ढकेहुए (पुरुभोजसम्)

जिनको सोमादि हवि देकर अनेकों यजमान भोजन कराते हैं ऐसे अथवा अनेकोंका पालन करनेवाले इन्द्रसे (द्युमन्तम्) पुत्रपौत्रादिके कोलाहलयुक्त (शतिनं, सहस्रिणम्) सैकड़ों सहस्रों संख्याके धन से युक्त (गोमन्तम्) गौआदिसे युक्त (वाजम्) अन्नको (मक्षु) शीघ्र (ईमहे) याचना करते हैं ॥ ॥ ७ ॥

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये। बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम्

हे ऋत्विजो ! (वः) तुम (सुतसोमे,अध्वरे)सोमयागमें (तरोभिः) वेगवान् अश्वों सहित (विदद्वसुम्) धन देनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रको (सबाधः) बाधा सहित हुए (ऊतये) रक्षाके लिये (बृहत् गायन्तः) बृहत् सामका गान करते हुए आराधना करो (भरं, न,कारिणं,हुवे) जैसे पुत्रादि अपना पोषण करनेवालेको पुकारते हैं तैसे मैं स्तोताभी अपने हितकारी इन्द्रका आह्वान करता हूँ ॥ ८ ॥

न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः । य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥ ९ ॥

(सुशिप्रम्) सुंदर ठोडी और नासिकावाले (यम्) जिस इन्द्रको (दुध्राः) दुर्धर असुर (न वरन्ते) संग्राममें वारण नहीं करसकते (स्थिराः न) देवता धारण नहीं करसकते (मुरः) मरणशील मनुष्य वारण नहीं करसकते (यः) जो (अन्धसः) सोमरूप अन्नके (मदे) मदके लिये (आदृत्य) आदर करके (शशमानाय) प्रशंसा करनेवाले (सुन्वते) सोमका संस्कार करनेवाले (जरित्रे) स्तोताके अर्थ (उक्थ्यं, दाता) धनका देनेवाला होता है, उस इन्द्रकी हम याचना करते हैं ॥ ९ ॥

उत्तरार्चिके प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम (इन्द्राय, पातवे) इन्द्रके पीनेके निमित्त (सुतः) संस्कार कियाहुआ तू (स्वादिष्ठया) परम स्वादु (मदिष्ठया) परम आनन्द देनेवाली (धारया) धारासे (पवस्व) क्षरित हो ॥ १ ॥

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनि मयोहते । द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २ ॥

(रक्षोहा) राक्षसोंका नाश करनेवाला (विश्वचर्षणिः) विश्वका द्रष्टा सोम (अयोहते) सुवर्णमय (द्रोणे) द्रोणकलशमें (सधस्थम्) साथ स्थित होनेके (योनिम्) संस्कारस्थानमें (अभ्यसादत्) अभिमुख स्थित होता है ॥ २ ॥

वरिबोधा तमो भुवो मꣳहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षिराधो मघोनाम् ॥ ३ ॥

हे सोम ! तू (वरिवोधातमः) अधिक धनोंका दाता (मंहिष्ठः) अन्य पदार्थोंका भी परमदाता (वृत्रहन्तमः) शत्रुओंका परम नाशकर्त्ता (भुवः) हो (मघोनाम्) धनवान् शत्रुओंके (राधः) धनको (पर्षि) हमें दे ॥ ३ ॥

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥ ४ ॥

(सोम) हे सोम (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुरतायुक्त (क्रतुवित्तमः) बुद्धि वा कर्मफलका देनेवाला (महि) पूजनीय (द्युक्षतमः) अत्यन्त दीप्त (मदः) आनन्ददायक तू (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (मदः) मदकारी होताहुआ (पवस्व) पात्रमें प्राप्त हो ॥ ४ ॥

यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः । स सुप्रकेतो अभ्यक्रमी दिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥ ५ ॥

हे सोम ! (वृषभः) कामनाओं की वर्षा करनेवाला इन्द्र (तस्य, ते, पीत्वा) जिस तुझको पीकर (वृषायते) वृषकी समान होजाता है (स्वर्विदः, अस्य, पीत्वा) सबको जाननेवाले तुझको पीनेपर (सुप्रकेतः) श्रेष्ठ प्रज्ञावाला (सः) वह इन्द्र (इषः) शत्रुओंके अन्नों को (अभ्यक्रमीत्) वशमें करलेता है (न) जैसे (एतशः) घोड़ा (वाजम्, अभिगच्छति) संग्राम में आक्रमण करता है ॥ ५ ॥

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ ६ ॥

(श्रुष्टे) शीघ्र (जातासः) उत्पन्न हुए (इन्दवः) पात्रोंमें टपकते हुए (स्वर्विदः) सर्वज्ञ (हरयः) हरे वर्णके (सुताः) संस्कार किये हुए (इमे) यह सोम (वृषणम्) कामनाओंकी वर्षा करनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रको (अच्छ यन्तु) प्राप्त हों ॥ ६ ॥

अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ ७ ॥

(भराय) संग्रामके निमित्त (सानसि) सेवन करनेयोग्य (सुतः) संस्कार किया हुआ (अयम्) यह सोम (इन्द्रार्थम्) इन्द्रके निमित्त (क्षरति) पात्रोंमें पहुँचता है (जैत्रस्य) विजयी इन्द्रको (चेतति) जानता है (यथा विदे) जैसे कि वह लोकों करके जानाजाता है ॥७॥

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।
वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥ ८ ॥

(अस्येत्) इस सोमके ही (मदेषु) मदोंके होनेपर (सानसिम्) सबके सेवनयोग्य (ग्राभम्) ग्रहण करनेयोग्य धनुषको (गृभ्णाति) ग्रहण करता है (अप्सुजित्) जलके निमित्त वृत्रासुरका जेता (इंद्रः) इन्द्र (वृषणम्) कामनाओंको सिद्ध करनेवाले (वज्रम् च) अपने आयुध वज्रको भी (सम्भरत्) भलेप्रकार धारण करै ॥ ८ ॥

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ९

(सखायः) हे स्तोताओं ! (वः) तुम (पुरोजितीः) जिसके आगै जय स्थित है ऐसे (अन्धसः) खानेयोग्य सोमके (सुताय) संस्कार कियेहुए (मादयित्नवे) अत्यन्त मदकारी रसके निमित्त (दीर्घजिह्व्यम्) लंबीजीभवाले श्वानको (अप श्नथिष्टन) दूर करो अर्थात् जिसप्रकार कुत्ते और राक्षस सस्कार कियेहुए सोमको न चाटैं तैसा करो ॥ ९ ॥

यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः ।

इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥ १० ॥

(सुतः) संस्कार किया हुआ (कृत्व्यः) कर्मका श्रेष्ठ साधनरूप (यः) जो (इन्दुः) सोम (पावकया) पापोंको शुद्ध करनेवाली (धारया) धारासे (अश्वः न) जैसे कि—घोड़ा वेगके साथ चलता है तैसे (परि प्रस्यन्दते) चारों ओरको वहता है ॥ १० ॥

तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया । यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥११॥

(नरः) ऋत्विज (दुरोषम्) दाह न डालनेवाले अथवा पापोंको भस्म करनेवाले (तं, सोमं, अभि) उस सोमके प्रति (विश्वाच्या) सकल कामोंको पूरा करनेवाली (धिया) बुद्धिसे (यज्ञाय) यज्ञके अर्थ (अद्रयः सन्तु) आदरयुक्त हों ॥ ११ ॥

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्द्धते । आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विश्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१२॥

(चनोहितः) हितकारी अन्नरूप सोम (प्रियाणि) जगत्को तृप्त करनेवाले (नामानि) जलोंको (अभिपवते)सब ओरसे पवित्रकरता है (येषु) जिन अन्तरिक्षमें स्थित जलोंमें (यह्वः) यह महान् सोम (अधिवर्द्धते) अधिक बढ़ता है, तदनन्तर (बृहन्) यह महान् सोम (बृहतः) पूज्य (सूर्यस्य) सूर्यके (विष्वञ्चम्)सर्वत्र गमन करनेवाले (अधिरथम्) रथके ऊपर (विचक्षणः) सबका द्रष्टा होकर (आ अरुहत्)आरोहण करता है,क्योंकि—विधिपूर्वक अग्निमें दीहुई आहुति आदित्यको पहुँचती है ॥ १२ ॥

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः । दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं ३ नाम तृतीयमधिरोचनं दिवः ॥ १३ ॥

(ऋतस्य) सत्यस्वरूप यज्ञका (जिह्वा) मुख्य होनेसे मानो जिह्वारूप (वक्ता) शब्द करनेवाला (अस्य धियः) इस कर्मका (पतिः)

पालन करनेवाला (अदाभ्यः) राक्षस जिसकी हिंसा नहीं करसकते ऐसा (पुत्र.) यजमान (पित्रोः अपीच्यम्) नामकरणके समय माता पिताके न जानेहुए (दिवः रोचनम) द्युलोकको दीप्त करनेवाले (तृतीय नाम) सोमका संस्कार होजानेपर सोमयाजी इस तीसरे नामको (अधिदधाति) अत्यन्त धारण करता है ॥ १३ ॥

अव द्युतानः कलशाᳬं, अचिक्रदन्नृभिर्येमाणः कोश आ हिरण्यये। अभी ऋतस्य दोहना अनूषताऽधि त्रिपृष्ठ उषसो विराजसि॥१४॥

(द्युतानः) दीप्यमान (नृभि.) कर्मकर्त्ता ऋत्विजोंसे (हिरण्यये) सुवर्णमय (कोशे) संस्कार करनेके कोशमें (येमानः) नियत किया जाताहुआ (कलशान्, अवाचिक्रदत्) द्रोण कलशोंके प्रति शब्द करता है, तदनन्तर (ऋतस्य) सत्यस्वरूप यज्ञके (दोहनाः) सिद्ध करने वाले ऋत्विज (इमं, अभ्यनूषत) इस सोमकी स्तुति करतेहैं (त्रिपृष्ठः) तीन सवनवाला तू सोम (उषसः, अधि) यज्ञके दिनोंको (विराजसि) प्रकाशित करताहै ॥ १४ ॥

इति सामवेदान्तरार्चिके प्रथमाध्यायस्य पञ्चम खण्ड समाप्त ।

यज्ञा यज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे। प्र प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शᳬंसिषम् ॥ १ ॥

हे स्तोताओं ! (वः) तुम (यज्ञा यज्ञा) प्रत्येक यज्ञमें (दक्षसे) प्रज्वलित होकर वृद्धिको प्राप्त हुए अग्निके अर्थ (गिरा गिरा) अनेकों प्रकारकी वाणियोंसे स्तुति करो (च) और (वयम्) हमभी (अमृतम्) मरणरहित (जातवेदसम्) प्राणिमात्रके ज्ञाता (मित्रम्) मित्रस्वरूप (प्रियम्) अनुकूल तिस अग्निकी (प्रप्रशंसिषम्) प्रशंसा करतेहैं ॥१॥

ऊर्जो नपातᳬं, स हिना यमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये। भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ २ ॥

(ऊर्जः) अन्न और बलके (नपातम्) पुत्रसमान अग्निकी हम प्रशंसा करते हैं (हिना) निश्चय (सः) वह (अयम्) यह अग्नि (अस्मयुः) हमारी कामना किया करताहै, हम भी (हव्यदातये) देवताओंको हवि पहुँचानेवाले तिस अग्निके अथ (दाशेम) हवि देते हैं, वह अग्नि (वाजेषु) संग्रामोंमें (अविता)रक्षा करनेवाला (वृधः) हमारी वृद्धि करनेवाला (भुवत्) हो (उत) और (तनूनाम्) हमारे पुत्रोंका (त्राता) रक्षा करनेवाला (भुवत्) हो ॥ २ ॥

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः ।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (एहि) आओ (ते) तुम्हारे लिये (गिरः) स्तुतियें (इत्था) इसप्रकार (सु ब्रवाणि) भले प्रकार उच्चारण करूँ और तुम उनको सुनो (ऊ) और (इतराः) दूसरोंकी स्तुतियोंको भी सुनो (एभिः) इन (इन्दुभिः) सोमोंसे (वर्द्धासे) वढ़ो ॥ ३ ॥

यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ।
तत्र योनिं कृणवसे ॥ ४ ॥

(ते) तुम्हारा (मनः) अनुग्रहरूप अन्तःकरण (यत्र) जहां (क्व च) किसी यजमानमें है (तत्र) तिस यजमानके यहां (उत्तरम) श्रेष्ठ (दक्षम्) बलकारी अन्न (दधसे) स्थापन करते हो (योनिं कृणवसे) स्थानको भी करते हो ॥ ४ ॥

नहि ते पूर्त्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां पते ।
अथा दुवो वनवसे ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! (ते) तुम्हारा (पूर्त्तम्) तेज (अक्षिपत्) नेत्रोंकी ज्योतिको नष्ट करनेवाला (न हि भुवत्) न हो अर्थात् हम सदा तुम्हारे दर्शनकी शक्तिको धारण करें (नेमानां पते) हे अग्ने ! तुम मनुष्योंमें कुछ यजमानोंके रक्षक हो (अथ) इसकारणसे (दुवः) हम यजमानोंकी कीहुई सेवाको (वनवसे) स्वीकार करो ॥ ५ ॥

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।
वज्रिंश्चित्रꣳहवामहे ॥ ६ ॥

(अपूर्व्य) तीनों सवनोंमें प्रकट होनेसे नवीन (वज्रिन्) हे इन्द्र ! (भरन्तः, वयम्) सोमसे तुम्हारा पोषण करतेहुए हम (चित्रं, त्वामु अवस्यव) पूजनीय तुमको ही अपना रक्षक चाहतेहुए (हवामहे) आह्वान करते हैं (कच्चित्, स्थूरं न) जैसे कि अन्न आदिसे घरको भरनेवाले किसी अधिक गुणवान्का आह्वान किया करतेहैं ॥ ६ ॥

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् । त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (कर्मन्) अग्निष्टोम आदि कर्ममें (ऊतये) रक्षा के लिये (त्वा, उपगच्छाम.) तुम्हारी शरणमें प्राप्त होते हैं (यः) जो इन्द्र (धृषत्) शत्रुओंका तिरस्कार करताहै (युवा) तरुण (उग्रः) उग्र इन्द्र (नः) हमारे समीप (चक्राम) आवैं अथवा हमें उत्साह युक्त करैं (सखायः) बान्धवरूप हम (सानसिम्) सेवा करनेयोग्य (अवितारम्) सबकी रक्षा करनेवाले (त्वामित्, ववृमहे) तुम्हारा ही आराधन करते हैं (हि) यह बात प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे । उदेव ग्मन्त उदभिः ॥ ८ ॥

(गिर्वणः) स्तोत्रोंसे प्रार्थना करनेयोग्य (इन्द्र) हे इन्द्र ! (अधा हि) इस समय ही (त्वा) तुमको (कामे) अभिलषित पदार्थकी (ईमहे) याचना करते हैं (उपससृग्महे) आपको प्राप्त होते हैं (उदेव, ग्मन्तः) जैसे जल लेकर जातेहुए पुरुष (उदभिः) अञ्जलि से जल उछालकर समीपके पुरुषोंको क्रीडाके निमित्त प्राप्त होते हैं अर्थात् भिगोदेते हैं ॥ ८ ॥

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवे दिवे ॥ ९ ॥

(अद्रिवः) वज्रधारी (शूर) हे शूर इन्द्र ! (वार्णम्) जैसे महासमुद्रको (यव्याभिः) नदियें अपने जलसे (वर्द्धन्ति) बढ़ाती हैं तैसे ही स्तोता (वावृध्वांसं, चित्) बढेहुए ही (ब्रह्माणि) स्तोत्रोंसे (त्वा) तुम्हें (दिवे दिवे) प्रतिदीन बढ़ालेते हैं ॥ ९ ॥

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा । इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥ १० ॥

(इषिरस्य) गमनशील इन्द्रके (उरुयुगे) बड़े जुएवाले (उरौरथे) बड़े रथमें (इन्द्रवाहा) इन्द्रको ले चलनेवाले (वचोयुजा) वचनमात्रसेही जुड़ जानेवाले हैं (स्वर्विदा) स्वर्गनामक इन्द्रके स्थानको जानेवाले (हरी) हरि नामक घोडोंको (गाथया) स्तोत्रसे (युञ्जन्ति) स्तोता युक्त करते हैं ॥ १० ॥

सामवेदोत्तरार्चिके प्रथमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः, प्रथमाध्यायश्च समाप्तः

द्वितीय अध्याय

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्रगायत । विश्वासाहꣳ शतक्रतुं मꣳहिष्ठं चर्षणीनाम् १

हे ऋत्विजो ! (वः) तुम्हारे (अन्धस) सोमरूप अन्नको (आ पान्तम्) अभिमुख होकर पीतेहुए (इन्द्र, अभि, प्रगायत) इन्द्रकी अधिकतासे स्तुति करो । कैसा है वह इन्द्र (विश्वासाहम) सब शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाला (शतक्रतुम) सैकड़ों प्रकारके कर्म करनेवाला (चर्षणीनां, मंहिष्ठम्) मनुष्योंको धनका दाता होनेसे मान्य १

पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं ऽ३ ऽ सनश्रुतम् । इन्द्र इति ब्रवीतन ॥ २ ॥

हे ऋत्विक् यजमानो ! (पुरुहूतम) यज्ञोंमें अनेकोंके पुकारेहुए (पुरुष्टुतम्) अनेकों स्तोत्रशस्त्रादिसे स्तुति कियेहुए (गाथान्यम्) गाने-योग्य (सनश्रुतम्) सनातनसे प्रसिद्ध देवको (इंद्र, इति, ब्रवीतन) इंद्र इस नामसे कहो ॥ २ ॥

इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः । महाꣳ अभिज्ञ्वा यमत् ॥ ३ ॥

(नृतु) स्तुति करनेवालोंको गौएं आदि पहुँचानेवाला (इंद्र इत) वह इंद्रदेव ही (नः) हमें (महोनाम) पशुआदि धनयुक्त (वाजानाम)अन्नोंके (दाता) देनेवाले हो (महान्) सबके बड़े वह इंद्रदेव (अभिज्ञु) हमारे सन्मुख आकर (आ यमत) अन्न धनादि दें ॥ ३ ॥

प्र व इन्द्राय मादनꣳ, हर्यश्वाय गायत ।
सखायः सोमपाव्ने ॥ ४ ॥

(सखायः) हे स्तोताओं ! (वः) तुम (हर्यश्वाय) हरि नामक अश्ववाले (सोमपाव्ने) सोम पीनेवाले इन्द्रके अर्थ (मादनम्) हर्ष दायक स्तोत्रको (प्रगायत) गाओ ॥ ४ ॥

शꣳसेदुक्थꣳ, सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः ।
चकृमा सत्यराधसे ॥ ५ ॥

(उत) और हे स्तोतः (सुदानवे) श्रेष्ठ दानवाले (सत्यराधसे) सत्य धनवाले इन्द्रके अर्थ (उक्थम्) सोमको (यथा) जैसे (नरः) अन्यस्तोता (द्युक्षम) दीप्तिके साधनभूत स्तोत्रको उच्चारण करतेहैं तैसे ही तू भी (शंस) उच्चारण कर (इत्) हम भी (चकृम) स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो ।
त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वम्) तुम (नः) हमारे (वाजयुः) अन्न चाहने वाले हूजिये (शतक्रतो) हे अनेकों प्रकारके पराक्रम करनेवाले (त्वम) तुम (गव्युः) हमारी गौओंको चाहनेवाले हूजिये (वसो) हे व्यापक इन्द्र ! (त्वम) तुम (हिरण्ययुः) हमारे निमित्त सुवर्ण चाहनेवाले हूजिये ॥ ६ ॥

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वायन्तः) तुम्हें अपना बनानेकी इच्छावाले (सखायः) मित्ररूप (तदिदर्थाः) जिस विषयकी स्तुति करतेहैं वही है प्रयोजन जिनका ऐसे हम (त्वा) तुम्हारी स्तुति करतेहैं (उ) और (कण्वाः) कण्वगोत्रवाले हमारे पुत्रादिक भी (उक्थेभिः) स्तोत्रोंसे (जरन्ते) तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।

तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥ ८ ॥

(वज्रिन्) हे वज्रधारी इन्द्र ! (अपसः) कर्मके अधिष्ठाता (तव) तुम्हारे (नविष्ठौ) नवीन यज्ञके विषैं वर्त्तमान मैं (अन्यत्) उस विषय से अन्य स्तोत्रको (नवेम्) नहीं (आपपन) प्राप्त होता हूँ (तवेदु) तुम्हारे ही (स्तोमैः) स्तोत्रको (चिकेत) जानता हूँ ॥ ८ ॥

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ९ ॥

(सुन्वतम्) सोमका संस्कार करतेहुए यजमानको (देवाः) देवता (इच्छन्ति) रक्षा करना चाहते हैं (स्वप्नाय, न, स्पृहयन्ति) उसकी स्वप्नावस्थाको नहीं चाहते हैं, सदा जागृत रखते हैं इसीकारण (अतन्द्राः) आलस्यरहित हुए देवता (प्रमादम्) परमानन्ददायक उस के सोमको (यन्ति) शीघ्र प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

इन्द्राय मद्वने सुतं परिष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १० ॥

(मद्वने) सोमके मदको चाहनेवाले (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (सुतम्) संस्कार कियेहुए सोमको (नः) हमारी (गिरः) वाणियें (परिष्टोभन्तु) स्तुति करें तदनन्तर (कारवः) स्तुति करनेवाले स्तोता भी (अर्कम्) अर्चना करनेयोग्य (सोमम्) सोमको (अर्चन्तु) पूजें ॥ १० ॥

यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः इन्द्रं सुते हवामहे ॥ ११ ॥

(यस्मिन्) जिस इन्द्रमें (विश्वाः) सब (श्रियः) कान्तियें (अधि) अधिक होती हैं और (सप्त) सात (संसदः) होता (रणन्ति) हवि देने को अनेकों मंत्रोंका उच्चारण करते हैं (इन्द्रम्) उस इन्द्रको (सुते) सोमका संस्कार होजाने पर (हवामहे) हम आह्वान करते हैं ॥११॥

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥ १२ ॥

(देवाः) देवता (त्रिकद्रुकेषु) ज्योति, गौ और आयुके देनेवाले

दिनोंमें (चेतनम्) जिससे स्वर्ग आदि जानाजाता है ऐसे ज्ञानसाधन यज्ञको (अक्रत) अपने २ कर्म और रक्षाओंसे फैलातेहुए (तम्, इम्) उस ही यज्ञको (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियें (वृद्धन्तु) बढ़ावें ॥१२॥

द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः खण्ड समाप्तः

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधिबर्हिषि ।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते) तुम्हारे अर्थ (अयं सोमः) यह सोम (बर्हिषि अधि) वेदीमें बिछेहुए कुशों पर (निपूतः) दशापवित्रसे संस्कार कियागया (ईम्) इससमय (अस्य) इस सोमके प्रति (एहि) आओ और आकर जहां रसरूप सोमका हवन कियाजाता है तहां (द्रव) शीघ्र पहुँचो फिर (पिब) सोमको पियो ॥ १ ॥

शाचिगो शाचिपूजनायꣳ रणाय ते सुतः ।
आखण्डल प्रहूयसे ॥ २ ॥

(शाचिगो) समर्थ वा प्रसिद्ध किरणों वाले (शाचिपूजन) प्रसिद्ध है पूजन जिसका ऐसे हे इन्द्र ! (ते रणाय) तुम्हें सुख प्राप्त होनेके निमित्त (अयम) यह सोम (सुतः) संस्कार से शुद्ध किया है, इसकारण (आखण्डल) हे शत्रुओंका मानखण्डन करनेवाले इन्द्र ! (प्रहूयसे) श्रेष्ठ स्तुतियोंसे बुलायेजाते हो, तुम यहां आकर इस सोमको पियो॥२॥

यस्ते शृङ्गवृषोणपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः ।
न्यस्मिन्दध्र आ मनः ॥ ३ ॥

(शृङ्गवृषः) शृङ्गवृष ऋषिके वा ज्योतियोंकी वर्षा करनेवाले परब्रह्म के (नपात्) पुत्ररूप अथवा (शृङ्गवृषोणपात्) किरणोंकी वर्षा करने वाले आदित्यको अपनी धुरीपर स्थापन करनेवाले हे इन्द्र!(ते)तुम्हारा (प्रणपात्) पूर्णरूपसे रक्षा करनेवाला (कुण्डपाय्यः) जिसमें कुंडियों से सोमरस पियाजाता है ऐसा (यः) जो यज्ञ है (अस्मिन्) इसयज्ञ में (मनः) अपने अन्तःकरणको (आ नि दध्रे) ऋषियोंने लगाया॥३॥

आतू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं संगृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (महाहस्ती) बड़े २ हाथोंवाले तुम (नः) हमारे लिये (द्युमन्तम्) स्तुतियोग्य (चित्रम्) विचित्र (ग्राभम्) ग्रहण करने योग्य धनको (दक्षिणेन) दाहिने हाथसे (संगृभाय) अभिमुख होकर ग्रहण करो ॥ १ ॥

विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम्

तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (तुविकूर्मिम) अनेकों पराक्रमवाले (तुविदेष्णम्) बहुत है देनेयोग्य सम्पदा जिनके पास ऐसे (तुवीमघम) बहुत धनवान् (तुविमात्रम) बड़े आकार के (अवोभिः) रक्षाकी सामग्रियोंसे युक्त (त्वा) तुम्हें (विद्महि) जानते हैं ॥ २ ॥

न हि त्वा शूर देवा न मर्त्तासो दित्सन्तम् ।

भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥

(शूर) हे शूर ! (दित्सन्तम्) देनेकी इच्छा करनेवाले (त्वा) तुम्हें (देवाः) देवता (न) नहीं (मर्त्तासः) मनुष्य (न) नहीं (वारयन्ते) निवारण करसकते हैं (हि) यह बात निश्चित है (न) जैसे (भीमम्) भयदायक (गाम्) बैलको, घास खानेको प्रवृत्त होने पर (न वारयन्ते) कोई भी वारण नहीं करसकते ॥ ३ ॥

अभि त्वा वृषभा सुते सुतꣳ सृजामि पीतये ।

तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥

(वृषभ) हे मनोरथपूरक इन्द्र ! (त्वा) तुम्हें (सुते) सोमका संस्कार होने पर (सुतम्) सोमरसको (पीतये) पीनेके लिये (अभिसृजामि) आह्वान करता हूँ (तृम्प) तृप्त हो (मदम्) आनन्ददायक सोमको (व्यश्नुहि) व्याप्त हो ॥ १ ॥

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।

माकीं ब्रह्मद्विषं वनः ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (त्वा) तुम्हें (मूराः) मूर्ख मनुष्य (अविष्यवः) पालन की इच्छा करतेहुए (मा दभन्) दुःख न दें (उपहस्वानः, मा) उपहास करनेवाले भी न हों (ब्रह्मद्विषम्) ब्राह्मणोंका द्वेष करनेवालेको (माकीं वनः) सेवन मत करो ॥ २ ॥

इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे ।
सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥

हे इन्द्र (त्वा) तुम्हें (इह) इस यज्ञमें (गोपरीणसम्) गौके दूध से मिलेहुए सोमको (महे) बहुतसे (राधसे) धनके निमित्त (मन्दंतु) मनुष्य अर्पण करके आनन्दित करें तुम उस सोमको (यथा) जैसे (गौरः) मृग (सरः) सरोवरके जलको पीता है तैसे (पिब) पियो

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
अनाभयिन्ररिमा ते ॥ १ ॥

(वसो) हे व्यापक इन्द्र (इदम्) इस (सुतम्) संस्कार किये हुए (अन्धः) सोमरसको (पिब) पियो (उदरं, सुपर्णम्) जिससे कि तुम्हारा पेट पूर्णतया भरजाय (अनाभयिन्) किसीसे भय न करने वाले हे इन्द्र (ते) तुम्हें (ररिम) वह सोम अर्पण करते हैं ॥ १ ॥

नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः ।
अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥

(नृभिः) ऋत्विजों करकै (धौतः) तृण आदि दूर करके संस्कार कियाहुआ (अश्नैः) पाषाणोंसे (सुतः) निचोड़ाहुआ (अव्यावारैः) ऊनके दशापवित्रसे (परिपूतः) छानाहुआ (नदीषु) जलोंमें (अश्वः न) अश्वकी समान (निक्तः) निर्मल कियाहुआ ॥ २ ॥

तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः ।
इन्द्र त्वास्मिन्सधमादे ॥ ३ ॥

(तम्) उस संस्कारकिये हुए सोमको हे इन्द्र ! (ते) तुम्हारे लिये (यवं यथा) यवके पुरोड़ाशकी समान (गोभिः) गौके दुग्धादिसे (श्रीणन्तः) मिलातेहुए (स्वादु) स्वादलेनेयोग्य (अकर्म) किया है, इसकारण (इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वा) तुम्हें उस सोमके पीनेको (अस्मिन्) इस (सधमादे) यज्ञमें आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः ।

इदꣳ ह्यन्वोजसा सुतꣳ राधानां पते ।

पिबा त्वा ऽ३स्य गिर्वणः ॥ १ ॥

(राधानां, पते) धनोंके स्वामी (गिर्वणः) स्तुतियोंसे आराधन करनेयोग्य हे इन्द्र ! (ओजसा) बलसे युक्त तुम (इदम्, अनु) इस क्रमसे (सुतम्) संस्कारकियेहुए (अस्य) इस सोमको (नु) शीघ्र (पिब) पियो ॥ १ ॥

यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नियच्छ तन्वम् ।

स त्वा ममत्तु सोम्य ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (ते) तुम्हारे निमित्त (यः) जो सोम (स्वधाम् अनु) अन्नके अनुसार पाषाणोंसे संस्कारयुक्त (असत्) होता है (सुते) उस सोमके सुसिद्ध होने पर (तन्वम्) अपने शरीर को (नियच्छ) प्रेरणा करो (सोम्य) हे सोमके योग्य (सः) वह सोम (त्वा) तुम्हें (ममत्तु) आनन्द देय ॥ २ ॥

प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।

प्र बाहू शूर राधसा ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (सः) वह सोम (ते) तुम्हारी (कुक्ष्योः) दोनो कोखों में (प्राश्नोतु) पूर्णतया व्याप्त होय तथा (ब्रह्मणा) स्तोत्र सहित वह सोम (शिरः) तुम्हारे शिर आदि शरीर में प्राप्त होय (शूर) हे पराक्रमी ! (राधसा) धनके निमित्त (बाहू) तुम्हारी बाहुओं को भी प्राप्त होय ॥ ३ ॥

आ त्वे ता निषीदतेन्द्रमभिप्रगायत ।

सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥

(स्तोमवाहसः) इस कर्ममें त्रिवृत् पञ्चदश आदि स्तोमों को पहुँ-चानेवाले (सखायः) हे ऋत्विजो ! (नु) शीघ्र, (आ एत) इस कर्म में आओ (निषीदत) विराजो और (इन्द्रम्, अभिप्रगायत) इन्द्रके निमित्त सामगान करो ॥ १ ॥

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् ।

इन्द्रꣳ सोमे सचा सुते ॥ २ ॥

हे ऋत्विजो ! (सचा) इकट्ठे होकर (सुते) सोमका संस्कार होते समय (पुरूतमम्) अनेकों शत्रुओंका नाश करनेवाले (पुरूणाम्) बहुतसे (वार्याणाम्) धनों के (ईशानम्) स्वामी (इन्द्रम्) इन्द्रको स्तुति करो ॥ २ ॥

स घा नो योग आभुवत्स राये स पुरन्ध्या ।
गमद्वाजेभिरासनः ॥ ३ ॥

(स घ) वह इन्द्र ही (नः) हमारे (योगे) नवीन पुरुषार्थके विषय में (आ भवत्) अभिमुख हो अर्थात् हमारे पुरुषार्थको सिद्ध करैं (सः) वह (राये) हमारी धनप्राप्तिमें अभिमुख हो (सः) वह (पुरन्ध्या) स्त्रीकी प्राप्तिमें वा अनेकों प्रकारकी बुद्धि की प्राप्ति में अभिमुख हो (सः) वह (वाजेभिः) देनेयोग्य अन्नों के साथ (नः आगमत्) हमारे सन्मुख आवें ॥ ३ ॥

योग योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥

(सखायः) मित्रकी समान प्रिय हम (योगे योगे) प्रत्येक कर्मके आरंभकाल में (वाजे वाजे) विघ्नकर्त्ताओं के साथ प्रत्येक संग्राम में (तवस्तरम्) अत्यन्त बलवान् (इन्द्रम्) इन्द्रको (ऊतये) रक्षाके लिये (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥ १ ॥

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् ।
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ २ ॥

(प्रत्नस्य) पुरातन (ओकसः) स्वर्गरूप स्थान से (तुविप्रतिम्) अनेकों यजमानों के समीप आनेवाले (नरम्) इन्द्र पुरुषको (अनुहुवे) क्रमसे कर्मों मे आह्वान करता हूँ (यं, ते) जिन तुम इंद्रको (पिता) हमारे पिताने (पूर्वम्) पहिले अपने अनुष्ठान के समय (हुवे) आह्वान किया था ॥ २ ॥

आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः ।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ३ ॥

(यदि) जो यह इन्द्र (नः) हमारे (हवम्) आह्वानको (श्रवत्)

सुनै, तो स्वयं हा (सहस्त्रिणीभिः ऊतिभिः सह) सहस्त्रों रक्षाके साधनों सहित (वाजेभिः) अन्नों सहित (उप) समीप में (आ घ) अवश्य ही (आगमत्) आवें ॥ ३ ॥

इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र (सोमेषु सुतेषु) सोमोंका संस्कार होनेपर, तुम उनको पीकर (वृधस्य, दक्षस्य, विदे) वृद्धि करनेवाले बलकी प्राप्ति के लिये (क्रतुम्) कर्मकर्त्ताको (उक्थ्यम्) स्तोताको (पुनीषे) शुद्ध करते हो (सः) ऐसे तुम (महान् हि) अवश्य ही पूज्य हो ॥१॥

स प्रथमे व्योमनि देवानाँ सदने वृधः ।
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥

(सः) वह इन्द्र (प्रथमे) विस्तीर्ण वा मुख्य (व्योमनि) विशेष रूप से रक्षक (देवानां सदने) देवताओंके स्थान स्वर्गमें स्थित हो कर (वृधः) यजमानोंको बढ़ानेवाला (सुपारः) सुन्दरताके साथ प्रारब्धकर्मों की समाप्ति करनेवाला (सुश्रवस्तमः) परमोत्तम अन्नवाला (समप्सुजित्) जो प्राप्तव्य जलका विनाश करनेवाले वृत्रासुरको जीतने वाला है उसका ही आवाहन करते हैं ॥ २ ॥

तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥

(तमु) उस ही (शुष्मिणम्) बलवान् (इन्द्रम्) इन्द्रको (वाजसातये) जिसमें अन्न मिलता है ऐसे (भराय) यज्ञके लिये (हुवे) आह्वान करता हूँ । हे इन्द्र ! तुम (सुम्ने) सुख वा धनको पाने की इच्छा होने पर (अन्तमः) हमारे परमसमीप (भव) हो (वृधे) वृद्धिके निमित्त भी (सखा) मित्ररूप हो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः खंडः समाप्तः

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे । प्रियं चेतिष्ठमरतिंं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्

हे ऋत्विक् यजमानो ! (वः) तुम्हारे लिये (एना, नमसा) इस स्तोत्रसे (ऊर्जः) बलके (नपातम्) पुत्ररूप (प्रियम्) हमारे अनु-

कुल (चेतिष्ठम्) परम चेतना देनेवाले (अरतिम्) स्वामी (स्वध्वरम्) श्रेष्ठ यज्ञ वाले (विश्वस्य) सकल यजमानोंके (दूतम्) दूत (अमृतम्) नित्य (अग्निम्) अग्निको (आहुवे) आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥

स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः। सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवꣳ राधो जनानाम् ॥ २ ॥

(सः) वह अग्नि (अरुषा) दिपनेहुए (विश्वभोजसा) विश्वका पालन करनेवाले अश्वोंको (योजते) अपने रथमें जोड़े। तदनंतर (सुब्रह्मा) श्रेष्ठ अन्नवाला (यज्ञः) यजनयोग्य (सुशमी) श्रेष्ठ कर्मवाला जो अग्नि (स्वाहुतः) सम्यक् प्रकारसे होमाहुआ (दुद्रवत्) देवताओं को लानेको शीघ्रतासे जाय। तदनंतर (वसूनाम्) यजमानोंका (राधः) हविरूप धन (देवम्) अग्निदेवको प्राप्त हो ॥ २ ॥

प्रत्यु अदर्श्यायत्यू ऽ ३ ऽ इच्छन्ती दुहिता दिवः। अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥

(आयती) आती हुई (उच्छन्ती) अंधकारोंको दूर करती हुई (दिवः) द्युलोककी (दुहिता) पुत्री (उषाः) उषा (प्रति अदर्शि) सबने देखी (उ) और वह (मही) बड़े (तमः) रात्रिके अन्धकारको (चक्षुषा) दर्शनसे (उप-उ-वृणुते) निवारण करती है (सूनरी) प्राणियोंको श्रेष्ठ प्रेरणा करनेवाली उषा (ज्योति) प्रकाशको (कृणोति) करती ॥ १ ॥

उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्। तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च संभक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥

(सूर्यः) सबका प्रेरक आदित्य (उस्रियाः) किरणोंको (सचा) एक साथ (उन्सृजते) प्रकाशित करता है तथा (उद्यत्) उदय होता हुआ (नक्षत्रम्) आकाश में दीखनेवाले ग्रह नक्षत्रादिको (अर्चिवत्) प्रकाशयुक्त करता है अर्थात् सूर्यके तेजसे ही रातमें चन्द्रमा तारागण

आदि प्रकाश करते हैं, ऐसा होनेपर (उषः) हे उषा देवता ! (तव) तेरा (सूर्यस्य च) सूर्यका भी (व्युषि) प्रकाश होनेपर हम (भक्तेन) अन्नसे (सङ्गमेमहि, इत्) अवश्य ही संयुक्त हों ॥ २ ॥

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्त अश्विना। अयं वामह्वेऽवसेशचीवसू विशंविशꣳ हि गच्छथः ॥ १ ॥

(इमाः) यह (दिविष्टयः) स्वर्गकी इच्छा करनेवाली प्रजाएं (उ) और ऋत्विज भी (अश्विना) हे अश्विनी कुमारो ! (उस्रौ) व्यापक (वाम्) तुम दोनोको (हवन्ते) आह्वान करते हैं (सची-वसो) हे कर्मधन (अयम्) यह स्तोता भी (वाम्) तुम दोनो को (अवसे) हमारी रक्षाके लिये वा तुम्हें तृप्त करनेके निमित्त(अह्वे) आह्वान करता हूँ (विशं, विशं, हि, गच्छथः) तुम स्तुति करनेवाली सब प्रजाओंके समीप अवश्य ही जाते हो ॥ १ ॥

युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथाꣳ सूनृतावते । अर्वाग्रथꣳ समनसा नियच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ २ ॥

(नरा) हे प्रेरक अश्विनीकुमारो ! (युवम्) तुम दोनो (चित्रम्) विचित्र प्रकारके (भोजनम्) धनको (ददथुः) धारणकरते हो, वह धन (सूनृतावते) स्तुति करनेवालेको (चोदेथाम्) प्रेरितकरो, इस कार्य के लिये (समनसा) एकमन होतेहुए (रथम्) अपने रथको (अर्वाक्) हमारे सन्मुख (नियच्छतम्) थमाओ और (सोम्यम्) सामके (मधु) मधुर रसको (पिबतम्) पियो ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थ खण्ड समाप्त

अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥

(अस्य) सोमके (प्रत्नाम्) पुरातन (द्युतम्) दिपतेहुए शरीर को (अनु) लक्ष्य करके (शुक्रम्) दीप्त (सहस्रसाम्) सहस्रों अभिलाषाओंके फलको देनेवाले (ऋषिम्) अतींद्रिय कर्मफलके द्रष्टा (पयः) पीने योग्य रसको (अह्रयः) कवि (दुह्रे) दुहते हैं ।

अयꣳ सूर्य इवोपदृगयꣳ सराꣳसि धावति ।
सप्त प्रवत आदिवम् ॥ २ ॥

(अयम्) यह सोम (सूर्य इव) जैसे सूर्य सब लोकोंका द्रष्टा है तैसे (उपदृक्) कर्मोंका द्रष्टा है और (अयम्) यह सोम (त्रिंशत्, धावति) तीस पात्रोंको अथवा तीस अहोरात्रोंको प्राप्त होता है और यह सोम (आदिवम्) द्युलोक में (सप्त प्रवते) सात प्रवाहों में पहुँचता है ॥ २ ॥

अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनो परि ।
सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥

(पुनानः) पवित्र कियाजाता हुआ (अयं सोमः) यह सोम (विश्वानि भुवना) सकल भुवनों के (उपरि, तिष्ठति) ऊपर विराजमान होता है (देवो न सूर्यः) जैसे कि—सूर्यदेव सबलोकों के ऊपर विराजमान होते हैं ॥ ३ ॥

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।
हरिः पवित्रे अर्षति ॥ १ ॥

(हरिः) हरे वर्णका (देवः) दिपता हुआ (एषः) यह सोम (प्रत्नेन) पुरातन (जन्मना) उत्पत्तिसे (देवेभ्यः) देवताओंके अर्थ (सुतः) संस्कार कियाहुआ (पवित्रे) दशापवित्रमें (अर्षति) प्रकाशित होताहै १

एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि ।
कविर्विप्रेण वावृधे ॥ २ ॥

(प्रत्नेन) पुरातन (मन्मना) स्तोत्ररूप साधन करके (देवः) द्योतमान (एषः) यह सोम (देवेभ्यः) देवताओंके अर्थ (कविः) मेधावी होताहुआ (विप्रेण) विवेकी यजमान और ऋत्विजके द्वारा (परिवावृधे) बढ़ता है ॥ २ ॥

दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परिषिच्यसे ।
क्रन्दं देवाꣳ अजीजनः ॥ ३ ॥

(प्रत्नमित्) पुरातन ही (पयः) रसको (दुहानः) पात्रमें पूर्ण करताहुआ तू हे सोम ! (पवित्रे) दशापवित्रमें (परिषिच्यसे) टपकाया जाता है हे सोम ! तू (क्रन्दन्) शब्दकरताहुआ (देवान्) इंद्रादि देवताओंको (अजीजनः) अपने समीपमें प्रकट करता है अर्थात् जहां सोमका संस्कार होताहै तहाँ देवता अवश्य ही प्रकट होते हैं ॥ ३ ॥

उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे।
पवमान विदा रयिम् ॥ १ ॥

(पवमान) हे सोम (उपतस्थुषः) हमारे इच्छित पदार्थोंको (उपशिक्ष) हमारे समीप पहुँचाओ (शत्रवे) हमारे विरोधियोंमें (भियसम्) भयको (आधेहि) स्थापन करो अर्थात् हमारी विजय करो (रयिम्) शत्रुओंके धनको (विदाः) हमें दो ॥ १ ॥

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ २ ॥

(जातम्) भले प्रकारसे प्रकट हुए (अप्तुरम्) वसतीवरी जलोंके प्रेरणा करेहुए (भङ्गम्) शत्रुओंको नष्ट करनेवाले (गोभिः) गोदुग्धादिसे (परिष्कृतम्) संस्कार कियेहुए (इन्दुम्) सोमको (देवाः) इन्द्रादि देवता (उप-उ-अयासिषुः) प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
अभि देवाँ इयक्षते ॥ ३ ॥

(नरः) ऋत्विज (देवान्) इन्द्रादि देवताओंको (अभि इयक्षते) अभिमुख होकर यजन करना चाहते हैं (पवमानाय) यजमानके निमित्त संस्कार कियेजातेहुए (अस्मै) इस (इन्दवे) सोमके अर्थ (उपगायत) सामगान करो ॥ ३ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके द्वितीयाध्यायस्य पञ्चम खण्डः समाप्त ।

प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः ।
वनानि महिषा इव ॥ १ ॥

(विपश्चितः) मेधावी (ऊर्मयः) बढ़ेहुए (सोमासः) सोम (अपः) वसतीवरी जलोंको (प्रनयन्ते) प्राप्त होते हैं (वनानि, महिषा इव) जैसे कि—बढेहुए मृग वनको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया। वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ २ ॥

(बभ्रवः) बभ्रुवर्णके (शुक्राः) दिपतेहुए सोम (ऋतस्य) अमृत की (धारया) धारारूपसे (द्रोणान्) द्रोणकलशादि पात्रोंमें (गोमन्तम्) गौओं सहित (वाजम्) अन्नको देतेहुए (अभ्यक्षरन्) टपकते हैं ॥२॥

सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः। सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ ३ ॥

(सुताः) संस्कार कियेहुए (सोमाः) सोम (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (वायवे) वायुके अर्थ (वरुणाय) वरुणके अर्थ (मरुद्भ्यः) मरुतों के अर्थ (अर्षन्तु) प्राप्त हों ॥ ३ ॥

प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा। अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम ! तू (देववीतये) देवताओंके पीनेके लिये (अर्णसा) वसतीवरी जलसे (सिन्धुः, न) जैसे सिंधु जलसे पूर्ण होता है तैसे (प्रपिप्ये) पूर्ण होता है, वह (मदिरो न) मदकारी वस्तुकी समान (जागृविः) जागरणशील तू (अंशोः) लताके टुकड़ेके (पयसा) रससे (मधुश्चुतम्) मधुर रसको बहानेवाले (कोशं, अच्छ) द्रोण कलशमें प्राप्त हो ॥ १ ॥

आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः। तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥ २ ॥

(हर्यतः) चाहनेयोग्य (सूनुः न) पुत्रकी समान (मर्ज्य) संस्कार करनेयोग्य (अर्जुनः) श्वेतवर्णका सोम (अत्के) दर्शनीय होने पर (आ अव्यत) व्याप्त होता है (तम्) उस (ईम्) इस सोमको अंगुलियें (नदीषु) वसतीवरी जलोंमें (गभस्त्योः) बाहुओंके (आ हिन्वन्ति) अभिमुख प्रेरणा करती हैं (अपसः रथं, यथा) जैसे वेग वाले शूर पुरुष रथको संग्राममें प्रेरणा करते हैं ॥ २ ॥

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥

(मदच्युतः) आनन्दका प्रवाह बहानेवाले (सोमासः) सोम (सुताः) संस्कारयुक्त होतेहुए (विदथे) यज्ञमें (मघोनाम्) हविवाले (नः) हमारे (श्रवसे) अन्न और कीर्त्तिके लिये (प्र अक्रमुः) प्राप्त होतेहैं १

आदीꣳ हꣳसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् । अत्यो न गोभिरज्यते ॥ २ ॥

(आत्) और (ईम्) यह सोम (हसः, यथा) जैसे हंस (गणम्) जनसमूहमें अपनी गति वा स्वरके साथ प्रवेश करता है तैसे ही (विश्वस्य) सब स्तोताओंकी (मतिम्) स्तुति वा बुद्धिको (अवीवशत्) वशमें करता है, वह सोम (अत्यो न) अश्वकी समान (गोभिः) गो घृतादिसे (अज्यते) चिकना कियाजाता है ॥ २ ॥

आदीं त्रितस्य योषणो हरिꣳ हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ३ ॥

(आत्) और (ईम्) इस (हरिम्) हरे वर्णके (इन्दुम) सोमको (त्रितस्य) त्रित ऋषिकी (योषण.) अगुलियें (इन्द्राय, पीतये) इन्द्रके पीनेके लिये (अद्रिभि.) ग्रावाओंसे (हिन्वन्ति) प्रेरणा करती हैं ३

अया पवस्व देवयू रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वतः । मधोर्धारा असृक्षत ॥ १ ॥

हे सोम ! (देवयुः) देवताओंकी कामना करनेवाला तू (अया)इस धारासे (पवस्व) टपक, तदनंतर (रेभन्) शब्द करताहुआ (पवित्रं, विश्वतः, पर्येषि) दशापवित्रमेंसब ओरको जाते हो, तदनंतर (मधोः) मदकारी तुम्हारी (धाराः) धारायें (असृक्षत) बनती हैं ॥ १ ॥

पवते हर्यतो हरिरति ह्वराꣳसि रꣳह्या । अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ २ ॥

(हर्यतः) चाहनेयोग्य (हरिः) हरे वर्णका सोम (स्तोतृभ्य) स्तोताओंके अर्थ (वीरवत्) पुत्रयुक्त (यशः) यश (अभ्यर्षन्) प्राप्त कर

ताहुआ (रंह्या) मुंदरवेगसे (ह्वरांसि) तिरछे पवित्रोंमेंको (अतिपवते) निकलकर छनताहै ॥ २ ॥

प्र सुन्वानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तद्वचः ।

अप श्वानमराधसꣳहता मखन्न भृगवः ३

(सुन्वानाय) संस्कार कियेजाते हुए (अन्धसः) सोमके (तत्) प्रसिद्ध (वचः) शब्दको (मर्त्तः) कर्ममें विघ्न करनेवाला (न,प्र, वष्ट) न सुन, तथा हे स्तोताओं ! (अराधसम्) साधककर्म्म रहित (श्वानम्) श्वानको (अपहत) दूरकरो (भृगवः, मखं, न) जैसे पहिले दोषयुक्त मखको भृगुओंने दूर किया था ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वितीयध्यायस्य षष्ठ खण्डः समाप्त द्वितीयाध्यायश्च समाप्तः

तृतीय अध्याय

पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः ।

अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम (अग्रियः) मुख्य तू (चित्राभिः) पूजनीय (ऊतिभिः) रक्षाओं सहित (वचः) हमारी स्तुतियोंको (पवस्व) प्राप्तहो (विश्वानि) सब (काव्या) स्तुतिके वाक्योंको (अभि) प्राप्त हो ॥ १ ॥

त्वꣳ समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् ।

पवस्व विश्वचर्षणे ॥ २ ॥

(विश्वचर्षणे) हे सबके द्रष्टा सोम ! (अग्रियः) मुख्य तू (वाचः) वाणियोंको (ईरयन्) प्रेरणा करताहुआ (समुद्रियाः) अन्तरिक्ष के (अपः) जलोंको (पवस्व) धारासे प्राप्त हो ॥ २ ॥

तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे ।

तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ३ ॥

(कवे) हे क्रांतकर्मा सोम ! (तुभ्यम्) तुम्हारी (महिम्ने) महिमाके अर्थ (इमा) यह (भुवना) भुवन (तस्थिरे) स्थित हैं (धेनवः) हवि देकर देवताओंको तृप्त करनेवाली गौएं (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये ही (धावन्ति) आती हैं ॥ ३ ॥

पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ १ ॥

(इन्दो) हे सोम ! (सुतः) संस्कार कियाहुआ (वृषा) कामनाओं की वर्षा करनेवाला तू (पवस्व) धारासे पवित्र हो (जने) देशके पुरुषोंमें (नः) हमें (यशसः) कीर्त्तिमान् (कृधि) करो (विश्वा) सकल (द्विषः) शत्रुओंको (अपजहि) मारो ॥ १ ॥

यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः ।
तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥ २ ॥

(इन्दो) हे सोम (यस्य) इस यज्ञमें वर्त्तमान जिन (ते) तुम्हारे (सख्ये) मित्रभावके होनेपर, हम स्तोता (तव) तुम्हारे (उत्तमे) श्रेष्ठ (द्युम्ने) अन्नमें तृप्तिको प्राप्त, हुए हैं (पृतन्यतः, सासह्याम) युद्धकी इच्छा करनेवाले शत्रुओंका हम तिरस्कार करें ॥ २ ॥

या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे ।
रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम ! (ते) तुम्हारे (या) जो (भीमानि) शत्रुओंको भयदेनेवाले (तिग्मानि) तीक्ष्ण (आयुधा) आयुध (धूर्वणे) शत्रुओंका नाश करनेको हैं, उन आयुधोंके द्वारा (समस्य) सब शत्रुओंकी (निदः) निंदासे (नः) हमें (रक्ष) रक्षा करो ॥ ३ ॥

वृषा सोम द्युमां असि वृषा देव वृषव्रतः ।
वृषा धर्म्माणि दधिषे ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम (वृषा) कामनाओंकी वर्षा करनेवाला तू (द्युमान्) दीप्तिमान् (असि) है (देव) हे सोमके अधिष्ठात्रीदेव ! (वृषा) मनोरथपूरक तुम (वृषव्रतः) कामना पूर्ण करनेके व्रतधारी हो (वृषा) मनोरथपूरक तुम (धर्माणि) देवता और मनुष्योंके हितकारी कर्मों को (दधिषे) धारण करते हो ॥ १ ॥

वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुतः ।
स त्वं वृषन्वृषेदसि ॥ २ ॥

(वृषन्) हे कामनाओंकी वर्षा करनेवाले सोम ! (वृष्णः) वर्षा करने वाले (ते) तुम्हारा (शवः) बल (वृष्ण्यम्) वर्षा करनेवाला है (वनम्) तुम्हारा सेवन (वृषा) वर्षा करनेवाला है (सुतः) तुम्हारा संस्कार किया हुआ रस (वृषा) वर्षा करनेवाला है (सः, त्वम्)वह तुम (वृषेत्, असि) वर्षणशील ही हो ॥ २ ॥

अश्वो न चक्रदो वृषा सङ्गा इन्दो समर्वतः ।

विनोराये दुरो वृधि ॥ ३ ॥

(इन्दो) हे सोम ! (वृषा) कामनाओंकी वर्षा करनेवाला तू (अश्वो न) अश्वकी समान (सञ्चक्रदः) शब्द करते हो और (गाः) पशुओंको (अर्वतः) घोड़ोंको भी हमें देते हो और (नः) हमारे (राये) धनके अर्थ (दुरः) द्वारोंको (विवृधि) खोलो ॥ ३॥

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।

पवमान स्वर्दृशम् ॥ १ ॥

हे सोम ! तू (हि) निश्चय (वृषासि) अभिमत फलोंकी वर्षा करने वाला है, इसकारण (पवमान) हे सोम ! (स्वर्दृशम्) सब देवताओंसे देखनेयोग्य (भानुना) तेजसे (द्युमन्तम्) दीप्तिमान् (त्वा) तुम्हें (हवामहे) यज्ञोंमें आह्वान करते हैं ॥ १ ॥

यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः ।

द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥ २ ॥

हे सोम ! तू (आयुभिः) ऋत्विजों करके (मर्मृज्यमानः) अत्यन्त शुद्ध कियाजाताहुआ (अद्भिः) वसतीवरी जलोंसे (यद्) जब (परिषिच्यसे) चारों ओरसे सींचाजाताहै तब (द्रोणे) द्रोणकलशमें ग्रहण कियाजाताहुआ (सधस्थं, अश्नुषे) ग्रह चमस आदि स्थानमें व्याप्त होता है ॥ २ ॥

आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध ।

इहो ष्विन्दवा गहि ॥ ३ ॥

(स्वायुध) जिसके यज्ञमें के स्फ्य कपाल आदि श्रेष्ठ आयुध हैं ऐसे हे सोम ! तू (मन्दमान) देवताओंको आनन्द देताहुआ (सुवी-

र्यम्) श्रेष्ठ वीरतायुक्त पुत्रादि (आपवस्व) हमें प्राप्त करा और (इंदो) हे सोम ! (इह उ) हमारे इस यज्ञमे ही (सु आगहि) शोभन प्रकार से आओ ॥ ३ ॥

पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः ।
सखित्वमा वृणीमहे ॥ १ ॥

हे सोम ! हम स्तोता (पवित्रं, अभ्युन्दतः) पवित्रमें आर्द्र होनेवाले (पवमानस्य) टपकतेहुए (ते) तुम्हारे (सखित्वम्) मित्रभावको (आवृणीमहे) प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया ।
तेभिर्नः सोम मृडय ॥ २ ॥

हे सोम ! (ते) तेरी (ये) जो (ऊर्मयः) तरंगें (धारया) धारा से (पवित्रं, अभिक्षरन्ति) पवित्रमेंको वहकर जाती हैं (तेभिः) उन तरङ्गोंसे (नः) हमें (मृडय) सुख दो ॥ २ ॥

स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् ।
ईशानः सोम विश्वतः ॥ ३ ॥

हे सोम (विश्वतः) सब जगत्के (ईशानः) ईश्वर हो (सः) वह तुम (अभिपुतः) संस्कार कियेहुए (पुनानः) पवित्र तुम (नः) हमें (रयिम्) धन (वीरवतीम्) पुत्रयुक्त (इषम्) अन्न(आभर) दो ॥३॥

सामवेदोत्तरार्चिके तृतीयाध्यायस्य प्रथम खण्ड समाप्त.

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

(होतारम्) देवताओंका आह्वान करनेवाले (विश्ववेदसम्) सकल धनोंसे युक्त (अस्य) इस यज्ञके आदिकारण होनेसे (सुक्रतुम्) श्रेष्ठ कर्मवाले (दूतम्) हवि पहुँचानेवाले (अग्निम्) अग्निदेवको (वृणीमहे) इस कर्ममें आराधन करते हैं ॥ १ ॥

अग्निमग्निंᳫहवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् ।
हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

(विश्पतिम्) प्रजाओंके वा होता आदिके रक्षक (हव्यवाहम्) यजमानके अर्पण कियेहुए हविको देवताओंके समीप पहुँचानेवाले (पुरुप्रियम्) अनेकों देवताओंके प्यारे (अग्नि, अग्निम्) आहवनीय आदि अनेकों नामवाले अग्निको (हवीमभिः) आवाहनके मंत्रोंसे अनुष्ठान करनेवाले (सदा) सर्वदा (आहवन्त) आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

अग्ने देवाँ२ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे ।
असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (जज्ञानः) अरणियोंसे उत्पन्न हुए तुम (वृक्तबर्हिषे) आस्तरणके निमित्त तोड़ेहुए कुशोंसे युक्त यजमानके ऊपर अनुग्रह करनेको (इह) इस कर्ममें (देवान्) हविभोक्ता देवताओं को (आवह) बुलाओ (नः) हमारे लिये (होता) देवताओंका आह्वान करनेवाले तुम (ईडयः, असि) स्तुतिके योग्य हो ॥ ३ ॥

मित्रं वय ँ२ हवामहे वरुण ँ२ सोमपीतये ।
या जाता पूतदक्षसा ॥ १ ॥

(वयम्) हम अनुष्ठान करनेवाले (सोमपीतये) सोम पीनेके निमित्त (या) जो (जाता) यज्ञस्थानमें प्रकट होतेहुए (पूतदक्षसा) शुद्ध बलवाले हैं उन (मित्रम्) मित्र देवताको (वरुणम्) वरुण देवता को (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥ १ ॥

ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती ।
ता मित्रावरुणा हुवे ॥ २ ॥

(यौ) जो (ऋतेन) यजमान के ऊपर अनुग्रह करनेवाले सत्य वचनसे(ऋतावृधौ)अवश्य प्राप्त होनेवाले कर्मफलके वर्द्धक (ज्योतिषः) प्रकाशके (पती) पालक हैं (ता) उन (मित्रावरुणा) मित्रावरुणको (हुवे) आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
करतां नः सुराधसः ॥ ३ ॥

(वरुणः) वरुणदेव (विश्वाभिः) सकल (ऊतिभिः) रक्षाओं सहित (मित्रः) मित्र देवता (प्राविता, भुवत्) हमारा अधिकतर रक्षक हो, वह दोनो (नः) हमें (सुराधसः) बहुत से धनसे युक्त (करताम्) करें ॥ ३ ॥

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरार्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥

(गाथिनः) गाये जातेहुए सामसे युक्त उद्गाताओंने (इन्द्रमित्) इन्द्र कोही (बृहत्) बृहत्सामसे (अनूषत) स्तुति करी (अर्किणः) पूजनके मंत्र उच्चारण करनेवाले होताओंने (अर्केभिः) उक्थ मन्त्रोंसे (इंद्रम्) इंद्रकी स्तुतिकरी, शेष अध्वर्युओंने (वाणीः) यजूरूप वाणियों से (इन्द्रम्) इन्द्रकी स्तुति करी ॥ १ ॥

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥

(वज्री) वज्रवाला (हिरण्ययः) सुवर्ण के आभूषणों को धारण किये हुए (इन्द्र इत्) इन्द्र ही (वचोयुजा) इंद्र के वचन मात्र से रथमें जुड़नेवाले (हर्योः) हरिनामक घोड़ोंका (सचा) एक साथ (आ समिश्लः) सब ओर से भलेप्रकार जोड़नेवाला है ॥ २ ॥

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (उग्रः) शत्रुओंसे न दबनेवाला तू (उग्राभिः) प्रबल (ऊतिभिः) रक्षाओंसे (वाजेषु) युद्धोंमें (सहस्रप्रधनेषु च) सहस्रों हाथी घोड़ोंके लाभसे युक्त युद्धोंमें भी (नः) हमारी (अव) रक्षा करो ॥ ३ ॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ४ ॥

(इन्द्रः) यह इन्द्र (दीर्घाय) निरन्तर (चक्षसे) दर्शनके लिये (दिवि) द्युलोकमें (सूर्यम्) सूर्यको (आरोहयत्) स्थापन करता हुआ वह सूर्य (गोभि.) अपनी किरणोंसे (अद्रिम्) मेघको (व्यैरयत्) प्रेरणा करताहुआ ॥ ४ ॥

इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे ।
धिया धेना अवस्यवः ॥ १ ॥

(अवस्यवः) रक्षाकी इच्छा करनेवाले हम (इन्द्रे) इन्द्रदेवके विषयमें (अग्ना) अग्निके विषैं (बृहत्) बढ़ानेवाले (नमः) हविरूप अन्नको (सुवृक्तिम्) सुंदर स्तुतिको भी (आदीरयामहे) प्रेरणा करते हैं (धिया) कर्मसे युक्त (धेनाः) स्तुतिरूप वाणियोंको उच्चारण करते हैं ॥ १ ॥

ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्रास ऊतये ।
सबाधो वाजसातये ॥ २ ॥

(ता हि) उन इन्द्र अग्निकी ही (शश्वन्तः) बहुतसे (विप्रासः) मेधावी पुरुष (ऊतये) रक्षाके लिये (इत्थम्) इसप्रकार (ईडते) स्तुति करते हैं तथा (सबाधः) परस्पर बाधाको प्राप्त हुए पुरुष (वाजसातये) अन्नकी प्राप्तिके लिये उनकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

ता वां गीर्भिर्विपन्युवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।
मेधसाता सनिष्यवः ॥ ३ ॥

(विपन्यवः) स्तुति करना चाहतेहुए (प्रयस्वन्तः) हविरूप अन्न से युक्त (सनिष्यवः) अपने लिये धनकी इच्छा करनेवाले हम (मेधसाता) यज्ञानुष्ठानके निमित्त होने पर हे इन्द्र अग्निदेव (ता) उन (वाम्) तुम्हें (गीर्भिः) स्तुतियोंसे (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥३॥

सामवेदोत्तरार्चिके तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः खंड. समाप्त.

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
विश्वा दधान ओजसा ॥ १ ॥

हे सोम ! तुम (वृषा) स्तोताओंको अभिमत फल देतेहुए (धारया) अपनी धारासे (पवस्व) द्रोणकलशमें आओ, और आने पर तुम जब हम इन्द्रको अर्पण करें तब (विश्वा) सकल धन (ओजसा) अपने बलसे (दधानः) स्तोताओंको देतेहुए (मरुत्वते) जिसके मरुत् सहायक हैं ऐसे इन्द्रके अर्थ (मत्सरः) आनन्ददायक होओ ॥ १ ॥

तं त्वा धर्त्तारमोण्यो३ः पवमान स्वर्दृशम् ।
हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ २ ॥

(पवमान) हे शुद्ध सोम ! (ओण्योः) द्यावापृथिवीके (धर्त्तारम्)

धारण करनेवाले (स्वर्दृशम्) सबके देखने योग्य (वाजिनम्) बलवान् (तम्) तिन (त्वा) तुम्है (वाजेषु) संग्रामोंमें वा देशोंमें प्रेरणा करता हूँ, तुम अन्न आदि दो ॥ २ ॥

अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया । युजं वाजेषु चोदय ॥ ३ ॥

हे सोम ! (अया) इन (विपा) मेरी अंगुलियोंसे (चित्तः) संस्कार कियाहुआ (हरिः) हरे वर्णका तू (धारया) निरन्तर धारा करकै (पवस्व) द्रोणकलशमें प्राप्त हो और (युजम्) सखा इन्द्रको (वाजेषु) संग्रामोंमें (चोदय) प्रेरणा कर ॥ ३ ॥

वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत द्याम् । इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ॥ १ ॥

(शोणः) लालवर्णका (वृषा) कोई वृषभ (गाः) गौओंकी ओरको (अभि) लक्ष्य करकै (कनिक्रदत्) शब्द करता है इसीप्रकार स्तुतिरूप गौओंकी ओरको लक्ष्य करकै (नदयन्) शब्द उत्पन्न करता है हे सोम ! तू (पृथिवीम्) पृथिवीको (उत) और (द्याम्) द्युलोकको (एषि) प्राप्त होताहै (आजौ) संग्राममें (इन्द्रस्य) इन्द्रका (वग्नुः, इव) शब्दकी समान (आशृण्वे) सबों करकै सुनाजाता है तदनंतर (प्रचेतयन्) अपना स्वरूप सबको जताताहुआ (इमाम्) इस (वाचम्) वाणीको (अर्षसि) प्राप्त होताहै ॥ १ ॥

रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् । पवमान सन्तानिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥ २ ॥

(रसाय्यः) स्वाद लेनेयोग्य (पयसा) गोदुग्धादिसे (पिन्वमानः) मिलताहुआ (मधुमन्तम्) मधुरतायुक्त (अंशुम) रसभावको (ईरयन्) प्रेरणा करताहुआ (एषि) प्राप्त होताहै और (सोम) हे सोम (परिषिच्यमानः) जलोंसे सिञ्चित होताहुआ तू (पवमानः) पवित्रमें शुद्ध होताहुआ (सन्तनिम्) धाराको (कृण्वन्) करताहुआ (इंद्राय) इन्द्रके अर्थ (एषि) प्राप्त होताहै ॥ २ ॥

एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नुम्। परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥ ३ ॥

हे सोम ! (मदिरः) मदकारी तू (वधस्नुम्) वृत्रवधसे टपकते हुए (उदग्राभस्य) जल ग्रहण करनेवाले मेघको (नमयन्) वर्षाके निमित्त नमातेहुए (मदाय) मदके निमित्त (पवस्व) पात्रमें पहुँचो और (रुशन्तम्) स्वेत (वर्णम्) वर्णको (परि भरमाणः) सबओर से धारण करताहुआ (सिक्तः) पवित्रमें सींचाहुआ तू (गव्ययुः) हमारे निमित्त गौओंकी इच्छा करताहुआ (पर्यर्षि) प्राप्त हो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके तृतीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः। त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः १

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (कारवः) स्तुति करनेवाले हम (वाजस्य) अन्न के (सातौ) प्राप्तिके विषयमें (त्वाम्, इत्, हि) तुम्हें ही (हवामहे) स्तुतियोंसे बुलाते हैं और हे इंद्र (सत्पतिम्) श्रेष्ठ पुरुषोंकी रक्षा करनेवाले तुम्हें (नरः) अन्य मनुष्य भी (वृत्रेषु) शत्रुओंके होनेपर (हवन्ते) बुलाते हैं (और (अर्वतः) घोड़ेकी (काष्ठासु) दशाओंमें अर्थात् संग्रामोंमें युद्धके अभिलाषी पुरुष (त्वाम्) तुम्हें पुकारते हैं ॥१॥

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः। गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥

(चित्र) विचित्र पराक्रमी (वज्रहस्त) हाथमें वज्रधारी (अद्रिवन्) हे इन्द्र (धृष्णुया) शत्रुओंको तर्जना देनेवाला (महः) महान् तू (स्तवानः) हमसे स्तुति कियाजाताहुआ (गाम्) गौएं (रथ्यम्) घोड़े (सं किर) सम्यक् प्रकारसे दो (जिग्युषे) विजय पानेवाले पुरुषको भोगके निमित्त (सत्रा) बहुतसे (वाजं न) अश्वोंकी समान जैसे कि—शत्रुओंको जीतनेवालेको घोड़े आदि बहुतसे भोगने के पदार्थ देते हो ॥ २ ॥

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे। यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥

(पुरूवसुः) पशु आदि बहुतसे धनसे युक्त (मघवा) धनी (यः) जो इंद्र (जरितृभ्यः) स्तुति करनेवाले हमैं (सहस्रेणेव) पशु आदि सहस्रों संख्याका धन (शिक्षति) देताहै वह इन्द्र (यथाविदे) जैसे हमसे जानाजाता है तैसे हे ऋत्विजो (वः) तुम (सुराधसम्) सुंदर धन युक्त (इंद्रम्) ऐश्वर्यवान् देवताको (अभि, प्र, अर्च) अभिमुख हो कर अधिकतासे पूजो ॥ १ ॥

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे। गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥

(धृष्णुया) दबानेवाला पुरुष (शतानीकेव)जैसे सैंकड़ों शत्रुसेनाओं के ऊपर (प्रजिगाति) विजय करनेको चढ़कर जाता है, ऐसेही इंद्र (दाशुषे) यजमान के निमित्त (वृत्राणि) यज्ञविघातक शत्रुओं के ऊपर चढ़ाई करके जाता है और (हन्ति) उनको मारता है तथा (पुरुभोजसः) बहुत धनवाले (अस्य) इस इंद्रके (दत्राणि) देनेके धन (प्रपिन्विरे) यजमानों के निमित्त अधिकता से रहते हैं (गिरेः रसाः, इव) जैसे कि-पहाड़ोंपर जल रहते हैं और वह तहाँ से बह कर मनुष्योंको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः। स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥ १ ॥

(वज्रिन्) हे वज्रधारी इन्द्र (त्वाम्)तुम्है (भूर्णयः) हवि अर्पण करनेवाले (नरः) यजमान (इदा) आज (ह्यः) पहिले दिन (अपीप्यन्) सोम पिलाते हुए, हे इंद्र (सः) वह तुम (स्तोत्रवाहसः) मुझसे स्तोत्र धारण करनेवाले के स्तोत्रको (इह) इस यज्ञमें (श्रुधि) सुनो (सस्वरम्) घरको (उपागहि) प्राप्त होओ ॥ १ ॥

मत्स्वा सुशिप्रिन् हरिवस्तमीमहे त्वया भूष-न्ति वेधसः। तव श्रवाꣳस्युपमान्युक्थ्य सु-तेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ २ ॥

(सुशिप्रिन्) हे सुंदर ठोडीवाले (हरिवः) हे हरिनामक घोड़ेवाले (गिर्वणः) हे वाणियों से प्रार्थना करने योग्य इन्द्र ! (त्वया) तुम्हारे विषय में (वेधसः) सेवा करनेवाले (आभूषन्ति) प्रकट होते हैं (मत्स्व) अपनेको सोमसे तृप्त करो (उक्थ्य) हे प्रशंसा करनेयोग्य (सुतेषु) सोमोंका संस्कार होनेपर (तव) तुम्हारे (उपमानि) उपमानभूत (श्रवांसि) अन्न प्राप्त हों ॥ २ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्त. ।

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा ।
देवावीरघशꣳसहा ॥ १ ॥

हे सोम ! (ते) तुम्हारा (देवावीः) देवताओं की कामना करने वाला (अघशंसहा) राक्षसोंका नाशक (वरेण्यः) श्रेष्ठ (मदः) मद-कारी (यः) जो रस है (तेन) उस (अन्धसा) सेवन करने योग्य रससे (पवस्व) पात्रमें पहुँचो ॥ १ ॥

जघ्निर्वृत्रममित्रियꣳ सस्निर्वाजं दिवेदिवे ।
गोषातिरश्वसा असि ॥ २ ॥

हे सोम ! तुम (अमित्रियम्) शत्रु (वृत्रम्) वृत्रको (जघ्निः,असि) मारनेवाले हो और(दिवे दिवे) प्रतिदिन(वाजम्)संग्रामको(सस्निः) सेवन करते हो (गोषातिः) गौओंका दान करनेवाले हो (अश्वसा) घोड़ोंका दान करनेवाले हो ॥ २ ॥

सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।
सीदं छ्येनो न योनिमा ॥ ३ ॥

हे सोम ! तुम (सोपस्थाभिः) श्रेष्ठ आकृतिवाली (धेनुभिः) गौओं के दुग्धादिसे (संमिश्लः) मिलेहुए (श्येनः, न) जैसे बाज शीघ्रही आकर अपने स्थान पर बैठजाता है तैसे ही (योनिम्, आसीदन्)

अपनेस्थान पर स्थित होते हुए (न) इस समय (अरुषः भुवः) दीप्य मान हूजिये ॥ ३ ॥

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति । पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ १ ॥

(पूषा) सबका पोषक (भगः) आराधना करने योग्य (रयिः) धन का हेतु (अयम्) यह सोम (पुनानः) दशापवित्र में शुद्ध होता हुआ (अर्षति) कलश में प्राप्त होता है तथा (विश्वस्य) सब (भूमनः) प्राणिमात्र का (पतिः) पालन करनेवाला (सोमः) सोम (उभे रोदसी) द्यावा पृथिवी दोनोंको (व्यख्यत्) अपने तेजसे प्रकाशित करता है ॥

समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः । सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ २ ॥

(प्रियाः) परम प्यारी (घृष्वयः) अत्यन्त दीप्त अथवा पहिले मैं स्तुति करूँ, पहिले मैं स्तुति करूँ इसप्रकार स्पर्धा करनेवालीं(गावः) स्तुतिकी वाणियें (मदाय) सोमके मदके निमित्त (समनूषत)स्तुति करतीं ह (उ) यह बात प्रसिद्ध है (पवमानासः) शुद्ध किये जाते हुए (इंदवः) दीप्त (सोमासः) सोम (पथः) तरण के मार्गों को (कृण्वते) करते हैं ॥ २ ॥

य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् । यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥ ३ ॥

(पवमान) हे सोम (यः) जो तीसरा रस (ओजिष्ठः) शक्तिमान् है (श्रवाय्यम्) उस दुग्धादिसे मिलानेयोग्य रसको (आभर) हमें दो और (यः) जो रस (पञ्च चर्षणीः) चारों वर्ण सहित निषाद वर्ण के मनुष्योंको (अभितिष्ठति) प्राप्त होताहै (येन) जिस रससे हम (रयिम्) धनको (वनामहे) याचना करते हैं ॥ ३ ॥

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः । प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥ १ ॥

(मतीनां, वृषा) स्तुति करनेवालोंके मनोरथोंको पूरा करनेवाला

(विचक्षणः) विशेष द्रष्टा (अह्नाम्) दिनोंका (उषसाम्) उषःकालों का (दिव) द्युलोकका (प्रतरीता) बढ़ानेवाला (सिन्धूनाम्) बहने वाले जलोंका (प्राणा) बढ़ानेवाला वा उनको चेतना देनेवाला (मनीषिभिः) स्तुतियों से प्रशंसा किया हुआ (सोमः) सोम तुम (इन्द्रस्य) इन्द्रके (हार्दि) हृदय में (आविशन्) प्रवेश करना चाहते हुए (कलशान्, अचिक्रदत्)कलशोंकी ओरको शब्द करते हो ॥ १ ॥

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि-कोशा२ँ असिष्यदत् । त्रितस्य नाम जनय-न्मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायु२ँ सख्याय वर्धनम् २

(पूर्व्यः) पुरातन (कविः) मेधावी सोम(पवते) पवित्र किया जाताहै और (नृभिः) अध्वर्यु आदिकों से (यतः) नियमित किया हुआ सोम (कोशान्) कलशों में प्राप्त होनेको (पर्यसिष्यदत्) चारों ओर को बहता है (त्रितस्य) तीनों लोकों में फैलेहुए (इन्द्रस्य) इंद्रके(नाम) जलको (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (मधु) मधुर रसको(इंद्रस्य) इंद्रके (सख्याय) मित्रभावके लिये (वायुम) वायुको (वर्द्धयन्) बढ़ाता हुआ (क्षरन्) पात्र में टपकाता है ॥ २ ॥

अयं पुनान उषसो अरोचयदयꣳ सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् । अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरꣳ सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ३

(लोककृत्) वर्षा करनेवाला वा वीर्य स्थापन करनेवाला होने से लोकोंका कर्त्ता (अयम) यह सोम (पुनानः) संस्कार किया जाता हुआ (उषसः)उषाको (अरोचयत्) प्रकाशित करता हुआ(सिन्धुभ्यः) बहनेवाले वसतीवरी जलोंसे (अभवत्) समृद्ध होता है (अयम्) यह सोम (हृदे) हृदयमें जाने के लिये (त्रिः सप्त) इक्कीस गौओंको (दुदुहानः) दुहता हुआ (मत्सरः) मदकारी (चारु) रमणीय (पवते) बहता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके तृतीयाध्यायस्य पंचमः खंड: समाप्त ।

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥

हे इंद्र तू (वीरयुः) युद्धकर्ममें समर्थ शत्रुओंको मारनेकी कामना करताहुआ (एव) ही (असि) है (हि) क्योंकि तू (शूर एव) शूर ही है (उत) और (स्थिरः) धैर्यवान् है, इसीकारण (ते) तुम्हारा (मनः) मन (राध्यम्, एव) स्तुतियोंसे आराधना करने योग्य ही है ॥ १ ॥

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।
अधा चिदिन्द्र नः सचा ॥ २ ॥

(तुवीमघ) हे बहुत धनवाले (इंद्र) इंद्र ! (विश्वेभिः) सकल (धातृभिः) देवताओंको हवि देकर पोषण करनेवाले यजमानो करके (रातिः) तुम्हारा दियाहुआ गौ घोडा आदि धन (धायि चित्) धारण किया ही जाता है (अध) और हे इंद्र ! ऐसे तुम (नः) हम यजन करनेवालोंके (सचा) धन आदि देकर कर्ममें सहायक हूजिये ॥

मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥

(वाजानां पते) अन्नोंके वा बलोंके स्वामी हे इंद्र ! (तन्द्रयुः) निष्कारण कर्मानुष्ठान त्यागकर आलस्ययुक्त हुए (ब्रह्म इव) ब्राह्मणकी समान तुम (मा उ षु भुवः) न हूजिये अर्थात् सदा हमारे कर्ममें रत रहिये यह प्रार्थना है (सुतस्य) संस्कार कियेहुए (गोमतः) गोदुग्धादिसे मिलेहुए सोमके पात्रसे (मत्स्व) आनन्दित हूजिये ॥ ३ ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधंत्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥१

(विश्वाः) सकल (गिरः) हमारी स्तुतियोंने (समुद्रव्यचसम्) समुद्रकी समान व्याप्त (रथीनां, रथीतमम्) रथोंवाले योधाओंमें श्रेष्ठ रथी (वाजानाम्) अन्नोंके (पतिम्) स्वामी (सत्पतिम्) सन्मार्गमें चलनेवालोंकी रक्षा करनेवाले (इंद्रम्) इंद्रको (अवीवृधन्) बढ़ाया १

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥

(शवसस्पते) बलके रक्षक (इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे (सख्ये)

मित्रभावमें वर्त्तमान हम (वाजिनः) अन्नवाले होकर (मा भेम) शत्रुओं से न डरें (जेतारम्) युद्धोंमें विजय पानेवाले (अपराजितम्) कहीं भी पराजय न पाये हुए (त्वाम्) तुम्हें (अभि प्र णोनुमः) अभय पानेके लिये सब प्रकारसे प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥

(इन्द्रस्य) इन्द्रके (रातयः) धनके दान (पूर्वीः) अनादिकाल से होते आये हैं अर्थात् यज्ञ करनेवालोंको धन देनेका इन्द्रका स्वभाव ही है, इसकारण इस समयका यजमान भी (स्तोतृभ्यः) ऋत्विजों को (गोमतः) गौओं सहित (वाजस्य) अन्नका (मघम्) धन (यदा) जब (मंहते) दक्षिणारूपसे देता है तब (रातयः) बहुतसा धन दे कर इन्द्रकी कीहुई अपनी रक्षाएं (न वि दस्यन्ति) विशेष रूपसे नहीं घटती हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके तृतीयाध्यायस्य षष्ठ खण्डः समाप्तः

तृतीयोऽध्यायश्च समाप्तः ।

चतुर्थ अध्याय ।

एत असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।
विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥

(तिरः पवित्रम्) तिरछे दशापवित्रके प्रति (आशवः) शीघ्रगामी (एते) यह (इन्दवः) सोम (विश्वानि) सकल (सौभगाः) सौभाग्यदायक धनोंको (अभि) लक्ष्य करके (असृग्रम्) ऋत्विजों के द्वारा सुसिद्ध किये जाते हैं ॥ १ ॥

विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः ।
त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥ २ ॥

(वाजिनः) अन्न वा बल देनेवाले सोम (पुरु) बहुतसे (दुरिता) पापोंको (विघ्नन्तः) विशेष रूपसे नष्ट करते हुए (तोकाय) हमारे पुत्रके लिये (सुगा) अति सुखरूप धनोंको (अर्वतः) घोडोंको भी (त्मना) स्वयं ही (कृण्वन्तः) देते हैं ॥ २ ॥

कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
इडामस्मभ्य\ संयतम् ॥ ३ ॥

(सोमाः) सोम (गवे) हमारी गौओंके लिये (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (संयतम्) दृढ़ (वरिवः) धनको (इडाम्) अन्नको (कृण्वन्तः) करते हुए (सुष्टुतिम्) हमारी सुंदर स्तुतिको (अभ्यर्षन्ति) अभिमुख होकर प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि ।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १ ॥

(मनौ, अधि) मनुष्यके यज्ञ करने पर (पवमानः) पवमान(राजा) सोम (मेधाभि) स्तुतियों के साथ (अन्तरिक्षेण) आकाश मार्गसे द्रोणकलश में (यातवे) प्राप्त होनेको (ईयते) जाता है ॥ १ ॥

आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर ।
सुष्वाणो देववीतये ॥ २ ॥

(सोम) हे सोम (देवीतये) देवताओं के पीनेके लिये (सुष्वाणः) संस्कार किया हुआ तू (महः) शत्रुओंका तिरस्कार करने में समर्थ बलको (जुवः) सर्वत्र फैलने वाले बलको (न) और (वर्चसे)सर्वत्र दीप्तिके लिये रूपको (नः) हमें (आभर) दो ॥ २ ॥

आ न इन्दो शातग्विनं गवां पोष\ स्वश्व्यम् ।
वहा भगत्तिमूतये ॥ ३ ॥

(इन्दो) हे सोम ! (शातग्विनम्) सैंकड़ों गौओंसे युक्त (गवां पोषम्) गौओंको पुष्टि देनेवाले (स्वश्व्यम्) सुंदर घोड़ोंके समूह से युक्त (भगत्तिम्) ऐश्वर्यके दानको (नः) हमारे समीप (आवह) पहुँचाओ ॥ ३ ॥

तं त्वा नृम्णानि बिभ्रत\ सधस्थेषु महो दिवः ।
चारु\ सुकृत्ययेमहे ॥ १ ॥

(महोदिवः) महान् द्युलोकके (सधस्थेषु) स्थानोंमें स्थित (नृम्णा-

नि) धनोंको (त्रिसृतम्) हमारे निमित्त धारण करतेहुए (चारु) अ-नुष्ठानके द्वारा (ईमहे) मांगना करते हैं ॥ १ ॥

संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम्।

शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥ २ ॥

(संवृक्तधृष्णुम्) [illegible] शत्रु जिसने ऐसे (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (महामहिव्रतम्) अनन्तो महत्त्व के कार्य्य करनेवाले (मदम्) मदकारी (शतम्) सैकड़ों (पुरः) शत्रुओंके नगरोंको (रुरुक्षणिम्) नष्ट करने वाले [illegible] याचना करते हैं ॥ २ ॥

अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिवः।

सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥ ३ ॥

(सुक्रतो) हे श्रेष्ठ कर्मवाले सोम ! (रयिम् अभि, अयत) धनके समीप पहुँचानेवाले (राजानम्) दीपतेहुए (त्वा) तुझे (अतः दिवः) इस द्युलोकमें (अव्यथी) व्यथा रहित (सुपर्णः) सुपर्ण (आभरत्) लाता है ॥ ३ ॥

अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे।

अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥ ४ ॥

(अधा) और (विचर्षणिः) कर्मोंका विशेषरूपसे द्रष्टा (अभिष्टि-कृत्) यजमानोंको इच्छित फल देनेवाला सोम (इन्द्रियम्) अपने फल को (हिन्वानः) प्रेरणा करताहुआ (ज्यायः) परमश्रेष्ठ (महित्वम्) महिमाको (आनशे) फैलाता है ॥ ४ ॥

विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम्।

गोपामृतस्य विर्भरत् ॥ ५ ॥

(रजस्तुरम्) जलके प्रेरक (ऋतस्य) यज्ञके (गोपाम्) रक्षक (वि-श्वस्मै) सकल (स्वर्दृशे) देवताओंके अर्थ (साधारणम् इत्)समान भावसे पहुँचनेवाले सोमको (विः) सुपर्ण (भरत्) स्वर्गसे लाताहुआ

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः।

इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ १ ॥

(इंदो) हे सोम (मनीषिभिः) ऋत्विजोंसे (मृज्यमानः) शुद्ध किया जाता हुआ तू (इषे) हमारे अन्नके लिये (धारया) धारासे (पवस्व) पात्रमें पहुँच (रुचा) दिपते हुए अन्नरूपसे (गाः) पशुओंको (अभीहि) प्राप्त हो ॥ १ ॥

पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः ।
हरे सृजान आशिरम् ॥ २ ॥

(गिर्वणः) वाणियों से प्रार्थना करने योग्य (हरे) हे हरितवर्ण सोम (आशिरम्) दूधमें को (सृजानः) छोड़ा हुआ (पुनानः) पवित्र किया जाता हुआ तू (जनाय) यजमानको (वरिवः) धन (ऊर्जम्) अन्न (कृधि) दे ॥ २ ॥

पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।
द्युतानो वाजिभिर्हितः ॥ ३ ॥

हे सोम । (वाजिभिः) हवि धारण करनेवाले यजमानो के साथ (द्युतानः) दिपता हुआ (देववीतये) यज्ञके निमित्त (पुनानः) शुद्ध होताहुआ (हितः) हितकारी तू (इन्द्रस्य) इन्द्रके (निष्कृतम्) स्थान को (याहि) जा ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्थाध्यायस्य प्रथम खण्डः समाप्तः

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा ।
हव्यवाड्जुह्वास्यः ॥ १ ॥

(कविः) मेधावी (गृहपतिः) यजमानके घरका रक्षक (युवा) नित्य तरुण (हव्यवाट्) हवि पहुँचानेवाला (जुह्वास्यः) जुहूरूप मुख वाला (अग्निः) आहवनीय अग्नि (अग्निना) मथकर बनायेहुए अग्नि के साथ (समिध्यते) भलेप्रकारसे दीप्त होताहै ॥ १ ॥

यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्य्यति ।
तस्य स्म प्राविता भव ॥ २ ॥

(अग्ने देव) हे अग्निदेव ! (यः) जो (हविष्पतिः) यजमान (दूतम्) देवताओंको हवि पहुँचानेवाले (त्वाम्) तुम्है (सपर्यति) आराधन करता है (तस्य) उसका (प्राविता) पूर्णतया रक्षक (भवस्म) अवश्य हो २

यो अग्निं देववीतये हविष्माꣳ आविवासति।
तस्मै पावक मृडय ॥ ३ ॥

(पावक) हे अग्ने! (यः) जो (हविष्मान्) हवियुक्त यजमान (देववीतये) देवताओंके यजनके लिये (अग्निम्, आविवासति) अग्निके समीप आकर विशेष रूपसे परिचर्या करताहै (तस्मै) उस यजमानके अर्थ (मृडय) सुखदो ॥ ३ ॥

मित्रꣳ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।
धियं घृताचीꣳसाधन्ता ॥ १ ॥

मैं इस कर्ममें हवि देनेके निमित्त (पूतदक्षम्) पवित्र बलवाले (मित्रम्) मित्र देवताको (रिशादसम्) हिंसकोंके भक्षक (वरुणं, च) वरुणको भी (हुवे) पुकारताहूँ, वह मित्र और वरुण देवता (घृताचीम्) जिससे कि—भूमि पर जल पहुँचाते हैं ऐसे (धियम्) कर्मको (साधन्ता) सिद्ध करते हैं ॥ १ ॥

ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा ।
क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ २ ॥

(मित्रावरुणौ) हे मित्र और वरुण देवता तुम (ऋतावृधौ) सत्य और यज्ञके बढ़ानेवाले हो (ऋतस्पृशौ) सत्यका ही स्पर्श करते हो तुम (बृहन्तम्) अङ्ग उपाङ्गोंसे पूर्ण (क्रतुम्) इस सोमयागको (ऋतेन) सत्यफलसे (आनशाथे) युक्त करते हो ॥ २ ॥

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया ।
दक्षं दधाते अपसम् ॥ ३ ॥

(कवी) मेधावी (तुविजाता) अनेकोंके उपकारकरूपसे उत्पन्न हुए (उरुक्षया) अनेकों यजमानोंके यहाँ निवास करनेवाले (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण देवता (नः) हमारे (दक्षम्) बलको (अपसम्) कर्मको (दधाते) पुष्ट करते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रेण सꣳ हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा ।
मन्दू समानवर्चसा ॥ १ ॥

(मन्दू) नित्य प्रसन्न (समानवर्चसा) तुल्य तेजस्वी मरुत्गण (अविभ्युषा) निर्भय (इंद्रेण) इंद्रके (सं जग्मानः) साथ (संदृत्तसे हि) अवश्य ही भलेप्रकार से दर्शन दो ॥ १ ॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।

दधाना नाम यज्ञियम् ॥ २ ॥

(आत् अह) वर्षा ऋतुके अनन्तर ही (स्वधामनु) आगेको होने वाले अन्न और जलकी ओरको (यज्ञियं, नाम दधाना) यज्ञके योग्य नामको धारण करते हुए (मरुतः) मरुत् देवता (पुनः गर्भत्वम्) मेघोंके भीतर फिर जलको (ईरिरे) प्रेरणा करते हुए ॥ २ ॥

वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः ।

अविन्द उस्रिया अनु ॥ ३ ॥

एक उपाख्यान है, कि--पणियोंने देवलोकसे गौओंको हरलिया और अंधकार में डालदी. उनको इन्द्रने मरुतों के साथ जाकर जीता, उसी का आभास इस मंत्रमें मिलता है—(इन्द्र) हे इन्द्र (वीडुचित) दृढ़ दुर्गस्थानको भी (आरुजत्नुभिः) भारी ओरसे तोड़नेवाले (वह्निभिः) अन्यत्र लेजानेको समर्थ (मरुद्भिः) मरुतों सहित तुमने (गुहाचित्) गुहामें स्थापित भी (उस्रियाः) गौओंको (अन्वविन्द) पाया ॥ ३ ॥

ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् ।

इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ १ ॥

(ता) उन (इन्द्राग्नी) इन्द्र अग्निको (हुवे) आह्वान करता हूं (ययोः) जिन इन्द्र और अग्निका (पुरा) पहिले काल में (कृतम्) किया हुआ (विश्वम्) सब (इदम्) पहिली ऋचाओंमें वर्णन किया हुआ पराक्रम (पप्ने) ऋषियोंसे स्तुति कियाजाता है, वह इन्द्र और अग्नि स्तोताओंकी (न) नहीं (मर्धतः) हिंसा करते हैं, इसकारण हमारी आहुतियोंकी रक्षा करें ॥ १ ॥

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे ।

ता नो मृडात ईदृशे ॥ २ ॥

(उग्रा) परमबली (मृधः, विघनिता) शत्रुओंके नाशक (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्निको (हवामहे) आह्वान करते हैं, वह इन्द्र अग्नि (ईदृशे) इस संग्राममें (नः) हमें (मृड़यातः) सुख दें ॥ २ ॥

हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती ।
हथो विश्वा अप द्विषः ॥ ३ ॥

हे इन्द्राग्नी ! (आर्या) कर्मानुष्ठान करनेवालोंके कियेहुए (वृत्राणि) उपद्रवोंको (हथः) नष्ट करते हो (सत्पती) सत्पुरुषोंके रक्षक होतेहुए (दासानि) कर्महीन शत्रुओंके कियेहुए उपद्रवोंको नष्ट करते हो और (विश्वाः) सकल (द्विषः) द्वेष करनेवाले शत्रुओंको (अपहथः) विनष्ट करते हो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्ड समाप्त ।

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् । समुद्रस्याधिविष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥ १ ॥

(आयवः) गमनशील (मनीषिणः) मनके ईश (मत्सरासः) मदकारी (मदच्युतः) मदस्रावी (सोमासः) साम (समुद्रस्य) कलशके (अधि विष्टपे) ऊपर पवित्रस्थानमें (मद्यम्) मदकारी (मदम्) अपने रस को (अभिपवन्ते) सब ओरसे निकालते हैं ॥ १ ॥

तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् । अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्रहिन्वान ऋतं बृहत् ॥ २ ॥

(पवमानः) शुद्ध कियाजाता हुआ (देवः) दीप्यमान (बृहत्) अत्यन्त (ऋतम्) सत्यस्वरूप (राजा) सोम (समुद्रम्) कलशको (ऊर्मिणा) धारा करकै (तरत्) तैरताहै (हिन्वानः) प्रेरणा कियाहुआ (ऋतम्बृहत्) अत्यन्त सत्यस्वरूप वह सोम (मित्रस्य वरुणस्य) मित्रावरुणके (धर्मणा) धारणके लिये (प्रअर्षा) प्रकर्ष करकै आता है २

नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्र्यः ॥ ३ ॥

(नृभिः) ऋत्विजों करके (येमानः) नियमित कियाहुआ (हर्यतः) चाहनेयोग्य (विचक्षणः) विशेष द्रष्टा (देवः) दीप्यमान (समुद्रयः) अन्तरिक्षमें उत्पन्न हुआ (राजा) सोम, इन्द्रके निमित्त पवित्र होताहै ३

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् । गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ १ ॥

(वह्निः) यजमान (तिस्रः वाच) ऋक्—यजु—सामरूप तीन वाणियोंको (प्रेरयति) उच्चारण करता है (ऋतस्य) यज्ञकी (धीतिम्) धारण करनेवाली (ब्रह्मणः) सोमकी (मनीषाम्) कल्याणी वाणी को उच्चारण करता है (गावः) गौएं (गोपतिम्) जैसे वृषभको (यन्ति) प्राप्त होती हैं तैसेही (पृच्छन्त्यः) बूझती हुई अर्थात् रँभाती हुई (सोमम्) सोमको अपने दूधमें मिलानेके निमित्त (यन्ति) प्राप्त होती हैं (वावशानाः) कामना करते हुए (मतयः) स्तोता भी स्तुति करनेको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः । सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः संनवन्ते ॥ २ ॥

(धेनवः) तृप्त करनेवालीं (गावः) गौएं (सोमम्) सोमको (वावशानाः) चाहती रहती हैं (विप्राः) स्तुति करनेवाले (सोमम्) सोमको (मतिभिः) स्तुतियोंसे (पृच्छमानाः) बूझनेवाले होते हैं (सुतः) संस्कार किया हुआ (सोमः) सोम (पूयमानः) ऋत्विजोंसे शोधाजाता हुआ (ऋच्यते) पात्रमें टपकता है (त्रिष्टुभः) त्रिष्टुप्रूप (अर्काः) यह हमारे उच्चारण कियेहुए मंत्र (सोमे) सोममें (संनवन्ते) मिलते हैं ॥ २ ॥

एवा नः सोम परिषिच्यमान आपवस्व पूयमानः स्वस्ति । इन्द्रमाविश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरन्धिम् ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम ! (परिषिच्यमानः) सब ओरसे पात्रोंमें सींचा-जाताहुआ तू (नः, एव) हमारे ही (स्वस्ति) कल्याणको (पवस्व) पहुँचा और (बृहता) बहुतसे (मदेन) मदकारी रसरूपसे (इंद्रम्) इन्द्रके आत्मामें (आविश) प्रवेशकर तथा (वाचम्) स्तुतिरूपा वाणी को (वर्द्धया) प्रसिद्ध कर (पुरन्धिम्) अनेकों प्रकारके कर्मविषयक ज्ञानको (जनया) हमारे विषै उत्पन्न करो ॥ ३ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

यद्याव इन्द्र ते शतꣳशतं भूमीरुत स्युः । न त्वा वज्रिन्त्सहस्रꣳ सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारी समता करनेको (यत्) जो (द्याव) द्युलोक (शतम्) सौ (स्युः) हों, तो भी बराबर नहीं होसकते (उत) और (भूमीः) भूमियें (ते) तुम्हारी मूर्त्तिके प्रतिबिम्बके लिये (शतम्) सौ हों (न) तो भी बराबर नहीं होसकतीं (वज्रिन्) हे वज्रधारी (त्वा) तुम्हें (सहस्रम्) सहस्रों (सूर्याः) सूर्य (न, अनु) प्रकाशित नहीं करसकते, अधिक क्या कहैं पहिले उत्पन्न हुआ कोई पदार्थ भी (नाष्ट) तुम्हारी बराबरी नहीं करसकता (रोदसी) द्यावापृथिवी भी तुम्हें नहीं पहुँचसकते अर्थात् तुम सबसे बडे हो ॥ १ ॥

आपप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा । अस्माँ अव मघवन्गोमति व्रजे वज्रिं-श्चित्राभिरूतिभिः ॥ २ ॥

(वृषन्) हे अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले इन्द्र ! तुम (वृष्ण्या) इच्छित फल देनेवाले (महिना) बड़े (शवसा) अपने बल करकै (विश्वा) हमारे सकल बलोंको (आ पप्राथ) पूर्ण करते हो और ऐसा करकै (शविष्ठ) हे महाबली ! (मघवन्) हे धनवन् (वज्रिन्) हे वज्रधारी इन्द्र (गोमति) अनेकों गौओंसे पूर्ण (व्रजे) गोठमें (चित्राभिः) नानाप्रकारकी (ऊतिभिः) रक्षाओंसे (नः) हमारी (अव) पालना करो ॥ २ ॥

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।

पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥

(वृत्रहन्) हे इन्द्र ! (त्वाम्) तुम्है (वयं घ) हम ही (सुतावन्तः) अभिषव करतेहुए (आप , न) जलोंकी समान नम्र होकर प्राप्त होते हैं (पवित्रस्य) सोमका (प्रस्रवणेषु) त्तरण होनेपर (वृक्तबर्हिषः) कुशास्तरण करनेवाले (स्तोतारः) स्तोता (पर्युपासते) तुम्हारी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः । कदा सुतं तृषाण ओक आगमदिन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ २ ॥

(वसो) हे व्यापक इन्द्र ! (सुते) संस्कार कियेहुए सोमके (निरेके) निकलनेपर (उक्थिनः) स्तुति पढ़नेवाले (नरः) ऋत्विज (त्वा) तुम्हारे निमित्त (स्वरन्ति) ऊँचे स्वरसे मंत्र पढ़ते हैं और इन्द्र (सुतम्) सोमके प्रति (तृषाणः) तृष्णा युक्त होताहुआ (वंसगः) सुंदरगमनवाला (स्वब्दीव) अपना हर्षसूचक शब्द करता हुआ मानो (कदा) कब (ओकः) स्थानको (आगमत्) आवेगा ॥ २ ॥

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् । पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ३

(धृष्णो) हे तर्जना देनेवाले इन्द्र ! (कण्वेभिः) प्रवीण स्तोताओंको (सहस्रिणम्) सहस्रों संख्याका (वाजम्) अन्न बल और धन (आदर्षि) देते हो (मघवन्) धनवान् (विचर्षणे) हे विशेषद्रष्टा इन्द्र ! (धृषत्) धृष्ट (पिशङ्गरूपम्) सुवर्णकी समान दमकतेहुए (गोमन्तम्) गौओं सहित (वाजम्) धनको (मक्षू) शीघ्र (ईमहे) याचना करते हैं ॥ ३ ॥

तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा । आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥ १ ॥

(नरणिरित) युद्धादि कर्ममें शीघ्रतासे प्रवृत्त हुआ पुरुष (युजा) सहायता देनेवाली (पुरंध्या) बड़ी भारी बुद्धिसे वा सहायता करने वाले अधिक कर्मानुष्ठानसे (वाजम) अन्नको (सिषासति) प्राप्त होता है। हे यजमानो ! (वः) तुम्हारे निमित्त में (गिरा) स्तुतिके द्वारा (पुरुहूतम्) अनेकोंके पुकारेहुए (इन्द्रम्) इन्द्रको (आनमे) अभि-मुख करता हूँ (सुद्रवं, नेमिं, तष्टा, इव) जैसे कि—बढ़ई पहिये की गोलाईके श्रेष्ठ काठको नमाकर अपने अनुकूल करलेता है ॥ १ ॥

न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयि-र्नशत् । सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥ २ ॥

(द्रविणोदेषु) धन देनेवाले पुरुषोंके विषय में (दुष्टुतिः) अनुचित स्तुति (न शस्यते) नहीं उच्चारण की जाती है (स्रेधन्तम) धन देने वालेकी स्तुति आदि न करनेवाले को (रयिः) धन (न नशत्) नहीं प्राप्त होता है तथा (मघवन) हे धनवान् इन्द्र !(पार्ये दिवि) सोम संस्कारके दिन (मावते) मुझसमान स्तोताके अर्थ (देष्णम्) देने-योग्य (यत्) जो धन है (तुभ्यम) तुमसे (सुशक्तिरित्) सुन्दर स्तुति करनेवाला ही पाता है ॥ २ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थ खण्ड समाप्त ।

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥ १ ॥

(तिस्रोवाचः) ऋक, यजु, साम भेदसे तीन वाणियोंको (उदीरते) ऋत्विज उच्चारण करतेहैं (धेनवः) दुग्धसे तृप्त करनेवालीं (गावः) गौएं (मिमन्ति) रँभाती हैं (हरिः) हरे वर्णका सोम (कनिक्रदत्) शब्द करताहुआ (एति) द्रोणकलशको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः । मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम् ॥ २ ॥

(ब्रह्मीः) ब्राह्मणोंकी प्रेरणा करीहुई (यह्वीः) बड़ी (ऋतस्य) यज्ञकी (मातरः) निर्माण करनेवालीं स्तुतियें (दिवः) द्युलोकमें (शिशुम्) शिशु रूप सोमको (मर्जयन्ती) पवित्र करतीहुई (अभ्य-

नूपत) प्रशंसा करती है ॥ २ ॥

रायः समुद्राँश्चतुरोऽस्मभ्यꣳसोम विश्वतः । आपवस्व सहस्रिणः ॥ ३ ॥

(रायः) धनवाले (चतुरः समुद्रान्) चार समुद्रोंको (अस्मभ्यम्) हमारे अर्थ (सोम) हे सोम (विश्वतः) सब ओरसे (आपवस्व) दो तथा (सहस्रिणः) सहस्रों कामनाओंको दो ॥ ३ ॥

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः । पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः॥ १ ॥

(मधुमत्तमाः) अत्यन्त मधुरतायुक्त (मन्दिनः) मदकारी (सुतासः) संस्कार कियेहुए सोम (पवित्रवन्त) दशापवित्रमें पहुँचतेहुए (इंद्राय) इन्द्रके अर्थ (अक्षरन्) पात्रोंमें प्राप्त होतेहैं (सोमाः) हे सोमो (वः) तुम्हारे (मदाः) मदकारी रस (देवान्) इन्द्रादि देवताओंको (गच्छन्तु) प्राप्त हों ॥ १ ॥

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् । वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः २

(इन्दुः) सोम (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (पवते) कलशमें टपकता है (इति) ऐसा (देवासः) स्तुति करनेवाले (अब्रुवन) कहते हैं (वाचः) स्तुतिका (पतिः) रक्षक (ओजसः) बलवान् (विश्वस्य) विश्व का (ईशानः) प्रभु सोम (मखस्यते) स्तुतियोंसे पूजाको चाहताहै ॥२॥

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः । सोमस्पती रयीणाꣳ सखेन्द्रस्य दिवेदिवे॥ ३ ॥

(समुद्रः) रसरूप (वाचमीङ्खयः) स्तुतियोंका प्रेरक (रयीणाम्) धनोंका (पतिः) स्वामी (दिवे दिवे) प्रतिदिन (इन्द्रस्य) इन्द्रका (सखा) मित्ररूप (सहस्रधारः) सहस्रों धाराओंवाला (सोमः) सोम (पवते) कलशमें प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः । अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते

शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥ १ ॥

(ब्रह्मणस्पते) हे मंत्रोंके स्वामी सोम ! (ते) तेरा (पवित्रम्) शोधन करनेवाला अङ्ग (विततम्) सर्वत्र फैला हुआ है (प्रभुः) समर्थ तू (गात्राणि) पीनेवालेके अङ्गोंको (पर्येषि) प्राप्त होता है (विश्वतः) सब ओर तेरा वह पवित्र (अतप्ततनूः) पयोव्रत आदि से शरीरमें सन्ताप न पाताहुआ (आमः) परिपाक रहित (न अश्नुते) व्याप्त नहीं होता है (शृतासः, इत्) परिपक्व हुए ही (वहन्तः) यज्ञका निर्वाह करतेहुए (तत्) उस दशापवित्रको (समाशत) व्याप्त होते हैं ॥ १ ॥

तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् । अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवःपृष्ठमधि रोहन्ति तेजसा ॥ २ ॥

(तपोः) शत्रुओंके तापक सोमका (पवित्रम्) शोधक अङ्ग (दिवस्पदे) द्युलोकके ऊँचे स्थानमें (विततम्) फैलाहुआ है (अस्य) इसकी (तन्तवः) किरणें (अर्चन्तः) दिपतीहुई (व्यस्थिरन्) अनेकों प्रकारसे स्थित होती हैं (अस्य) इस सोमके (आशवः) शीघ्रगामी रस (पवितारम्) संस्कार करनेवाले यजमानको (अवन्ति) रक्षा करते हैं (दिवः) द्युलोकके (पृष्ठम्) स्थानको (तेजसा) अपने प्रकाशके साथ (अधिरोहन्ति) चढ़ते हैं ॥ २ ॥

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः । मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥ ३ ॥

(उषसः) उषावाला (पृश्निः) आदित्य (अग्रियः) मख्यरूपसे (अरूरुचत्) प्रकाश करता है (उक्षा) जलकी वर्षा करनेवाला वह (भुवनेषु) सकल लोकोंमें (मिमेति) जल डालाता है (वाजयुः) सब लोकोंके लिये अन्न चाहता है (मायाविनः) रचनाकी शक्तिवाले देवता (अस्य) इस सोमकी (मायया) शक्तिसे (ममिरे) अपने २ व्यापारसे जगत्को रचतेहुए तथा (अस्य) इस सोमकी शक्ति करके (नृचक्षसः) मनुष्योंके द्रष्टा (पितरः) पालन करनेवाले पितृ नामक

देवता ओषधियोंमें (गर्भम्) गर्भको (आदधुः) धारण करते हैं ॥३॥

सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्थाध्यायस्य पञ्च खण्डम समाप्तः

प्रमꣳहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे। उपस्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥

(उपस्तुतासः) उपस्थित होकर स्तुति करनेवाले हे स्तोताओ ! तुम (मंहिष्ठाय) परमदाता (ऋताव्ने) यज्ञवाले (बृहते) महान् (शुक्रशोचिषे) प्रदीप्त तेजवाले (अग्नये) अग्निके अर्थ (प्रगायत) स्तोत्र पढ़ो ॥ १ ॥

आवꣳसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः। कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छ वाजेभिरागमत् ॥ २ ॥

(मघवा) धनवान् (द्युम्नी) अन्नवान् वा यशस्वी (समिद्धः) प्रज्वलित हुआ (आहुतः) अभिमुख होकर होमा हुआ अग्नि (वीरवत्) पुत्रयुक्त (यशः) यश करनेवाले अन्नको (आवसते) यजमानों को देता है (अस्य) इस अग्निकी (भवीयसी) हमारे विषय में अत्यन्त होनेको योग्य (सुमतिः) अनुग्रहकी बुद्धि (नः, अच्छ) हमारे प्रति (वाजेभिः) अन्नों सहित (कुवित्) अनेको वार (आगमत्) आवै॥

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम्। उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥

(अद्रिवः)हे वज्रधारी इन्द्र ! (ते)तुम्हारे(वृषणम्) मनोरथपूरक (पृक्षु) संग्रामों में (सासहिम) शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले (लोककृत्नुम्) लोकके कर्त्ता (उ) और (हरिश्रियम) हरिनामक अश्वों करकै सेवन करने योग्य (मदम्) सोमपानजनित हर्षको (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ। मन्दानो अस्य बर्हिषो विराजसि ॥२॥

हे इन्द्र ! (येन) जिस अपने मदसे (आयवे) बड़ी आयुवाले(मनवे)

वैवस्वत मनुके अर्थ (ज्योतींषि) सूर्यादि ज्योतियों के तत्त्वको(विवेदिथ) प्रकाशित करते हुए (मन्दानः) उस मदसे प्रसन्न होते हुए तुम (अस्य बर्हिषः) इस बढ़े हुए मद करके हर्षको प्राप्त होकर(विराजसि) विशेष शोभा पाते हो ॥ २ ॥

तद्यथा चित्त उक्थिनोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीरपोजया दिवे दिवे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! (ते) तुम्हारे (तत्) उस प्रसिद्ध बल की (अद्याचित्) अब भी (पूर्वथा) पूर्वकाल की समान (उक्थिनः) मंत्रों के ज्ञाता(अनुष्टुवन्ति) क्रमसे प्रशंसा करते हैं, वह तुम (वृषपत्नीः) मेघ है पति जिनका ऐसे जलोंको (दिवेदिवे) प्रतिदिन (जय) अपने वशमें करो॥

श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतोरायस्पूर्धि महा ꣳ असि॥१॥

(यः) जो (त्वा) तुम्हे (सपर्यति) हवि समर्पण करके आराधना करता है ऐसे (तिरश्च्याः) मुझ तिरश्ची ऋषिके (हवम्) आह्वान को (इन्द्र) हे इन्द्र (श्रुधि) सुनो, और सुनकर तुम (सुवीर्यस्य) श्रेष्ठ पुत्रयुक्त (गोमतः) गौ आदि पशुयुक्त (रायः) धनके दानसे हमै (पूर्धि) पूर्ण करो, क्योंकि—तुम (महान्) सबसे बड़े (असि)हो॥

यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम्

(इन्द्र) हे इन्द्र (यः) जो यजमान (नवीयसीम्) वारंवार करनेसे परम नवीन (मन्द्राम्) आनन्ददायक (गिरम) स्तुतिरूप वाणीको (ते) तुम्हारे लिये (ते) तुम्हारे अर्थ (अजीजनत्) उत्पन्न करता हुआ, तिस स्तोताके निमित्त तुम (प्रयत्नाम) पुरातन (ऋतस्य पिप्युषीम्) सत्यसे बढ़ीहुई (चिकित्विन्मनसम्) अतीन्द्रिय विषयको दिखानेवाली (धियम्) बुद्धिको करो ॥ २ ॥

तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
पुरूण्यस्य पौꣳस्या सिषासन्तो वनामहे ॥३॥

हम (तम्) पूर्वोक्त लक्षणोंवाले (उ) ही (इंद्र स्तवामः) इंद्र की

स्तुति करते हैं (यम्) जिस इंद्रको (गिरः) हमारी स्तुतियें (उक्थ्यानि) शास्त्र भी (वावृधुः) बढ़ाते हुए, इसकारण हम (अस्य) इस इंद्रके (पुरूणि) बहुतसे (पौंस्यानि) पराक्रमोंको (सिषासन्तः) आराधना करनेकी इच्छा करते हुए (वनामहे) प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्थाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्त ॥

चतुर्थाध्यायश्च समाप्त

(पञ्चम अध्याय)

प्रतआश्विनीः पवमान धेनवोदिव्या असृग्रन् पयसा धरीमणि। प्रान्तरिक्षात्स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः १

(पवमान) हे सोम ! (ते) तेरी (आश्विनीः) व्याप्त (धेनवः) तृप्त करनेवाली (दिव्याः) अन्तरिक्षसे पड़नेवाली धारायें (पयसा) दूधसे युक्त हुई (धरीमणि) द्रोणकलशमें (प्रअसृग्रन्) पहुँचती है (ये) जो (वेधसः) ऋत्विज (ऋषिषाण) ऋषियोंके सेवन करे हुए हे सोम ! (त्वा) तुम्हें (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं (ते) वह ऋत्विज (स्थाविरीः) धाराओंको (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्षसे (प्रअसृक्षत) पात्रमें पहुँचाते हैं ॥ १ ॥

उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परियन्ति केतवः। यदी पवित्रे अधिमृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति ॥ २ ॥

(पवमानस्य) संस्कार कियेजानेहुए (ध्रुवस्य) स्वयं अविचल (सतः) विद्यमान सोमकी (केतवः) ज्ञापन करनेवाली किरणें (उभयतः) इधर उधरको (परियन्ति) जाती हैं (यदि) जब (पवित्रे) दशापवित्रमें (हरिः) हरे वर्णका सोम (अधिमृज्यते) शोधित कियाजाता है तब (सत्ता) स्थित होनेवाला यह सोम (योनौ) पात्ररूप स्थानोंमें (निषीदति) स्थित होता है ॥ २ ॥

विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परियन्ति केतवः। व्यानशी पवसे सोम

धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥ ३ ॥

(विश्वचक्षः) हे सबके द्रष्टा सोम ! (प्रभो) शक्तिमान् (सतः) विद्यमान (ते) तेरी (ऋभ्वसः) बडी (केतवः) किरणें (विश्वा) सकल (धामानि) तेजस्वी देवशरीरोंको (परियन्ति) सब ओरसे प्रकाशित करती हैं (सोम) हे सोम ! (व्यानशी) व्यापक स्वभाव-वाला तू (धर्मणा) रसके निकलनेसे (पवसे) शुद्ध होता है (विश्व-स्य, भुवनस्य) सकल भुवनोंका (पतिः) स्वामी तू (राजसि) विराजमान होता है ॥ ३ ॥

पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।

ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १ ॥

(पवमानः) पवित्र कियाजाताहुआ सोम (बृहत्) बड़े (वैश्वा-नरम्) वैश्वानर नामक (ज्योतिः) तेजको (दिवः) द्युलोकके (चि-त्रम्) विचित्र (तन्यतुं, न) वज्रकी समान (अजीजनत्) उत्पन्न करताहुआ ॥ १ ॥

पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः ।

वि वारमव्यमर्षति ॥ २ ॥

(राजन) दीप्तिमान् (पवमान) हे पवमान सोम ! (तव) तेरा (मदः) मदकारी (अदुच्छुनः) राक्षसोंसे वर्जित (रसः) रस (अव्यं वारम) ऊनके दशापवित्र से को होकर (विअर्षति) पात्रमें जाताहै॥

पवमानस्य ते रसो दक्षो विराजति द्युमान् ।

ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ ३ ॥

हे सोम ! (पवमानस्य) संस्कार कियेजाते हुए (ते) तेरा (दक्षः) बलकारी (द्युमान्) दीप्तमान् (रसः) रस (विराजति) प्रकाशित होता है और (विश्वम्) व्याप्त (स्वः) सब (ज्योतिः) तेजको (दृशे) देखने योग्य करता है ॥ ३ ॥

प्र यद् गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः

घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १ ॥

(गावः, न) जलोंकी समान (भूर्णयः) शीघ्रगामी (त्वेषाः) दिपते हुए (अयासः) गमनशील अर्थात् बहनेवाले (कृष्णाम्) कालेवर्णकी (अपत्वचम्) बुरी त्वचाको (अपघ्नन्तः) विनष्ट करते हुए (यत्) जो सोम (प्र अक्रमुः) पात्रमें प्राप्त हुए उनकी हम स्तुति करते हैं ॥

सुवितस्य वनामहेऽतिसेतुं दुराय्यम् ।
साह्याम दस्युमव्रतम् ॥ २ ॥

(सुवितस्य) सुंदरता से प्राप्त हुए सोमके (दुराय्यम्) कठिनता से प्राप्त होने योग्य (अतिसेतुम्) राक्षसों के बधनको (वनामहे) याचना करते हैं और (अव्रतम्) यज्ञादि कर्म रहित (दस्युम्) शत्रुका (साह्याम) तिरस्कार करें ॥ २ ॥

शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।
चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥

(वृष्टेः) वर्षाके (स्वनःइव) शब्दकी समान (पवमानस्य) संस्कार किये जातेहुए सोमका शब्द अधिक रस निकलनेके समय (श्रृयते) सुनाजाता है (शुष्मिणः) तिस बलवान् सोमकी (विद्युतः) दीप्तियें (दिवि) अन्तरिक्ष में (चरन्ति) विचरती है ॥ ३ ॥

आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
अश्ववत्सोम वीरवत् ॥ ४ ॥

(इन्दो सोम) हे पात्रमें टपकनेवाले सोम ! तुम (महीम्) बहुमसे (इषम्) अन्नको(गोमत्)गौओं सहित(हिरण्यवत्)सुवर्ण सहित (अश्ववत्) घोड़ों सहित (वीरवत्) पुत्र सहित (आपवस्व) दो॥

पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण ।
उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥

(विश्वचर्षणे) हे विश्वके द्रष्टा सोम ! (पवस्व) रसको टपका और उस रससे (मही रोदसी) द्यावा पृथिवीको (आ प्रण) पूर्ण करो (सूर्य , रश्मिभिः, उषाः, न) जैसे कि—सूर्य अपनी किरणोंसे दिनके समयको पूर्ण करता है ॥ ५ ॥

परि नः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
सरा रसेव विष्टपम् ॥ ६ ॥

(सोम) हे सोम ! (नः) हमें (शर्मयन्त्या) सुख देनेवाली (धारया) धारासे (विष्टपम्) भूलोकको (रसेव) जल करके जैसे (विश्वतः) सब ओरसे (परिसर) फैलो ॥ ६ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना।
यत्र देवा इति ब्रुवन् ॥ १ ॥

(बृहन्मते) हे महामते सोम ! (प्रियेण) देवताओंके प्यारे (धाम्ना) अपने शरीररूप धारासे (आशु) शीघ्र (पर्यर्ष) आओ (यत्र) जहां (देवाः) इन्द्रादि देवता हैं (इति) ऐसा (ब्रुवन्) कहतेहुए॥१॥

परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।
वृष्टिं दिवः परिस्रव ॥ २ ॥

(अनिष्कृतम्) संस्काररहित यजमान वा स्थानको (परिष्कृण्वन्) संस्कारयुक्त करताहुआ (जनाय) यजमान (इषः) अन्न (यातयन्) पहुंचाताहुआ (दिवः) अन्तरिक्षसे (वृष्टिम्) वर्षाको (परिस्रव) बरसा ॥ २ ॥

अयꣳस यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ ।
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥ ३ ॥

(यः) जो (दिवस्परि) द्युलोकसे ऊपर (रघुयामा) धीमी गतिवाला होताहै, क्यों द्युलोकमें देवता मिलजाते हैं (सः) वह (अयम्) यह सोम (पवित्रे) दशापवित्रमें (आ) सींचाजाताहुआ (सिंधोः) जलके (ऊर्मा) समूहमें (व्यक्षरम्) अनेकों धारोंसे टपकता है ॥३॥

सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा ।
विचक्षाणो विरोचयम् ॥ ४ ॥

(सुतः) संस्कार किया हुआ सोम (त्विषिम) दीप्तिको (दधानः) धारण करताहुआ (विचक्षाणः) सबको देखताहुआ (विरोचयन्)

देवताओंको दीप्त करताहुआ (पवित्रे) दशापवित्रमें (आओजसा) पूर्ण बलसे (शीघ्रम्) शीघ्र (एति) प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

आविवासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः ।

इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥

(सुतः) संस्कार किया हुआ सोम (परावतः) दूरके (अथो) और (अर्वावतः) समीपके देवताओंको (आविवासन्) रसके द्वारा सेवन करता हुआ (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (मधु) मधुकी समान सोम (सिच्यते) सींचाजाता है ॥ ५ ॥

समीचीना अनूषत हरिꣳ हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ६ ॥

(समीचीनाः) सुन्दर प्रकार से इकट्ठेहुए स्तोता (अनूषत) स्तुति करते हैं (इन्दुम्) सोमको (इन्द्राय, पीतये) इन्द्रके पीनेके निमित्त (हरिम्) हरवर्ण के सोमको (अद्रिभिः) पाषाणो से (हिन्वन्ति) प्रेरणा करते हैं ॥ ६ ॥

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् ।

महामिन्दुं महीयुवः ॥ १ ॥

(उस्रयः) कर्मके निमित्त सर्वत्र जानेवाली (जामयः) परस्पर बंधुभूत (स्वसारः) अंगुलियें (महीयुवः) सोमके संस्कार को चाहती हुई (सूरम्) श्रेष्ठ वीरतावाले (पतिम्) स्थावर जंगम सबके स्वामी (महाम्)पूजनीय (इन्दुम्) पात्रों में टपकते हुए सोमको (हिंवन्ति) प्रेरणा करती हैं ॥ १ ॥

पवमान रुचा रुचा देव देवेभ्यःसुतः ।

विश्वा वसून्याविश ॥ २ ॥

(रुचा रुचा) पूर्ण तेजसे (देव) दीप्यमान (पवमान) हे शुद्ध सोम ! (देवेभ्यः) देवताओं के अर्थ (सुतः) संस्कार किया हुआ तू (विश्वा) बहुत से (वसूनि) धनोंको (आविश) हमैं दो ॥ २ ॥

आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः ।

इषे पवस्व संयतम् ॥ ३ ॥

(पवमान) हे सोम ! (सुष्टुतिम्) सुन्दर स्तुतिवाली (वृष्टिम्) वर्षाको (देवेभ्यः) देवताओं के अर्थ (दुवः) परिचर्या के निमित्त (आपवस्व) पहुँचाओ (इषे) हमारे अन्नके अर्थ (संयतम्) भले प्रकार हमें प्राप्त होनेवाली वर्षा करो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चमाध्यायस्य द्वितीय खण्डः समाप्तः

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचि. ॥ १ ॥

(जनस्य) यजमानका (गोपा) रक्षक (जागृविः) सदा जागता रहने वाला (सुदक्षः) श्रेष्ठ बलवान् (अग्निः) अग्नि देवता (नव्यसे) अत्यन्त नवीन (सुविताय) लोकोंके कल्याण के निमित्त (अजनिष्ट) प्रकट हुआ, तदनन्तर (घृतप्रतीकः) घृतसे प्रज्वलित अङ्गोंवाला(बृहता) बड़े (दिविस्पृशा) द्युलोक में पहुँचनेवाले तेजसे युक्त (शुचिः) शुद्ध अग्नि (भरतेभ्यः) ऋत्विजोंके अर्थ (द्युमत्) दीप्तिमान् होकर (भाति) प्रकाशित होता है ॥ १ ॥

त्वामग्ने अंगिरसो गुहाहितमन्वविंदञ्छिश्रियाणां वने वने । स जायसे मथ्यमानः सहो-महत्त्वामाहुःसहसस्पुत्रमंगिरः ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (अङ्गिरसः) अङ्गिरा नामक ऋषि (गुहाहितम्) गुहामें स्थित (वनेवने) हरएक वृक्ष में (शिश्रियाणम्) आश्रित (त्वाम्) तुम्हें (अन्वविन्दन्) प्राप्त होतेहुए (महत्) बड़े (सहः) बलसे युक्त (सः) वह तू अग्नि (मथ्यमानः) मथा जाता हुआ (जायसे) प्रकट होता है (अङ्गिरः) हे अङ्गिराओं के प्रकृति-रूप ! (त्वाम्) तुझे (सहसः) बलका (पुत्रम्) पुत्र (आहुः) कहते हैं ॥ २ ॥

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते । इन्द्रेण देवैः सरथꣳ स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥ ३ ॥

(नरः) कर्म करनेवाले ऋत्विज् (यज्ञस्य) यज्ञके (केतुम्) ज्ञापक (पुरोहितम्) यजमानोंकरकै आगे कियेहुए (देवैः, सरथम्) देवताओंकी समान रथवाले (अग्निम्) अग्निको (त्रिषधस्थे) तीन स्थानों में (प्रथमम्) पहिले (समिन्धते) सम्यक् प्रकारसे प्रज्वलित करते हैं तदनंतर (सुक्रतुः) श्रेष्ठ कर्मवाला (होता) देवताओंका आह्वान करने वाला (सः) यह अग्नि (बर्हिषि) कुशाओंवाले स्थानमें (यजथाय) यज्ञके निमित्त (निषीदन्) प्रतिष्ठा किया गया ॥ ३ ॥

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा ।
ममेदिह श्रुतꣳहवम् ॥ १ ॥

(ऋतावृधा) सत्यको बढ़ानेवाले (मित्रावरुणा) हे मित्र और वरुण देवताओं (वाम्) तुम्हारे निमित्त (अयम्) यह (सोमः)सोम (सुतः) शुद्धकियाहै, इसकारण (इह) इस यज्ञमें (ममेत्) मेरे ही (हवम्) आह्वानको (श्रुतम्) सुनो ॥ १ ॥

राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे ।
सहस्रस्थूण आशाते ॥ २ ॥

(राजानौ) ईश्वर (अनभिद्रुहा) द्रोह न करनेवाले मित्रावरुण देवता (ध्रुवे) स्थिर (उत्तमे) श्रेष्ठ (सहस्रस्थूणे) सहस्रों खंभोवाले (सदसि) सभास्थानमें (आशाते) आवैं ॥ २ ॥

ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती ।
सचेते अनवह्वरम् ॥ ३ ॥

(सम्राजा) आज्ञासे ही सबका शासन करनेवाले (घृतासुती) घृत हा है अन्न जिनका ऐसे (आदित्या) अदितिके पुत्र (दानुनस्पती) धनके स्वामी (ता) वह मित्रावरुण (अनवह्वरम्) सरलप्रकृति यजमानको (सचेते) हवि भक्षण करनेको सेवन करते हैं ॥ ३ ॥

इंद्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।
जघान नवतीर्नव ॥ १ ॥

(अप्रतिष्कुतः) प्रतिकूल शब्द रहित (इंद्रः) इंद्र (दधीचः) दधीचि ऋषिकी (अस्थिभिः) हड्डियोंसे (नवतीः) नब्भै बार

(नव) नौ अर्थात् आठ सौ दश (वृत्राणि) असुरोंके मायावी रूपोंको (जघान) नष्ट करताहुआ ॥ १ ॥

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् ।

तद्विदच्छर्यणावति ॥ २ ॥

(पर्वतेषु) पर्वतोंमें (अपश्रितम्) लेजाकर धरेहुए (अश्वस्य) अश्वसंबंधी दधीचिका (यत्) जो (शिरः)शिर है उसको (इच्छन्) इंद्र चाहताहुआ (शर्यणावति) सरोवरमें (तत्) उसको (विदत्) जानताहुआ और उसको लाकर असुरोंका संहार करा ॥ २ ॥

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।

इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥

(अत्राह) इसमें ही (गोः) गमन करनेवाले (चन्द्रमसः) चन्द्रमा के (गृहे) मण्डलमें (त्वष्टुः) आदित्यकी (अपीच्यम्) रात्रिमें अन्तर्हित हुई अपनी जो (नाम) वह आदित्यकी किरणें हैं (इत्था) इसप्रकार (अमन्वत) इन्द्र जानताहुआ अर्थात् जलमय स्वच्छ चन्द्रबिम्बमें सूर्यकी किरणें प्रतिबिम्बित होकर तैसा ही प्रकाश करती हैं ऐसा तेजस्वी सूर्य चन्द्रमा ही है । बारह आदित्योंमें इंद्रको भी गिना है इसप्रकार दिनरातका प्रकाशक इन्द्र ही है, इसकारण यह इन्द्रकी ही स्तुति हुई ॥ ३ ॥

इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः ।

अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥ १ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि देवताओं (इयम्) यह (पूर्व्यस्तुतिः) मुख्य स्तुति (अस्य) इस (मन्मनः) स्तोतासे (वाम्) तुम्हारे निमित्त (अभ्रात्) मेघसे (वृष्टिः, इव) वर्षाकी समान (अजनि) उत्पन्न हुई ॥ १ ॥

शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः ।

ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र अग्नि देवताओ ! (जरितुः) स्तोताके(हवम्) आह्वानको (शृणुतम्) सुनो और (गिरः) उसकी स्तुतियोंको (वन-

तम्) सेवन करो (ईशाना) ईश्वररूप तुम (धियः) कर्मोंको (पिप्य तम्) फलोंसे पूर्ण करो ॥ २ ॥

मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये ।
मा नो रीरधतं निदे ॥ ३ ॥

(नरा) कर्मके प्रेरक (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र अग्नि देवताओ (नः) हमें (पापत्वाय) हीनभावके अर्थ (मा रीरधतम्) वशमें मतकरो (अभिशस्तये) शत्रुकी की हुई हिंसाके लिये (मा) वशमें न करो (नदे) निंदाके लिये (नः) हमें (मा) वशमें न करो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ १ ॥

(हरे) हे पाप दूर करनेवाले सोम ! (दक्षसाधनः) बलका साधन (मदः) मदकारी तू (देवेभ्यः) इन्द्रादि देवताओंके (मरुद्भ्यः) मरुतोंके (वायवे) वायुके (पीतये) पीनेके लिये (पवस्व) पात्रमें टपक १

सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः ।
पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥

(वृषा) कामवर्षक (कविः) क्रान्तदर्शी (योनौ अधि) अपने स्थानपर स्थित (प्रियः) सबको तृप्त करनेवाला (पवमानः) संस्कार कियाजाताहुआ (अदाभ्यः) किसीसे भी हिंसा न कियाहुआ सोम (देवैः) देवताओंके साथ (संशोभते) श्रेष्ठ शोभा पाताहै ॥ २ ॥

पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत् ।
धर्मणा वायुमारुहः ॥ ३ ॥

(पवमान) हे सोम ! (धिया) हमारे व्यापार वा अंगुलिसे (हितः) धारण कियाहुआ (कनिक्रदत्) शब्दसहित (योनिं, अभि आरुहः) द्रोणकलशमें अभिमुख होकर प्रवेश कर (धर्मणा) कर्मके द्वारा (वायुम् आरुहः) वायुदेवताके पात्रमें प्रवेश कर ॥ ३ ॥

तवाहꣳ सोम रारण सख्य इन्दो दिवे दिवे ।

पुरूणि बभ्रो निचरन्ति मामव परिधींरति ताँ इहि ॥ १ ॥

(इन्दो) हे टपकतेहुए सोम ! (तव सख्ये) तुम्हारे हितकारी कर्म में (अहम्) मैं (दिवे दिवे) प्रतिदिन (रारण) लगा रहता हूँ (बभ्रो) हे बभ्रुवर्ण सोम ! (पुरूणि) बहुतसे राक्षस (माम्) तुम्हारी मित्रतामें स्थित मुझे (नि अव चरन्ति) बाधा देते हैं (तान्) उन (परिधीन्) शत्रुओंको (अति इहि) नष्ट करो ॥ १ ॥

तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि । घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥ २ ॥

(बभ्रो) हे बभ्रुवर्ण सोम ! (उत) और (नक्तम्) रातमें (उत) और (दिवा) दिनमें मित्रभावके लिये (तव) तुम्हारे (उधनि) समीप (अहम्) मैं लगा रहता हूँ (ते) वह हम (घृणा) दीप्तिसे (तपन्तम्) प्रज्वलित हुए (परः) परस्थानमें स्थित (सूर्यम्) सूर्यरूप तुझे (शकुना इव) पक्षियोंकी समान (अतिपप्तिम) प्राप्त हों ॥२॥

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥

(पुनानः) संस्कार कियाजाताहुआ (विचर्षणिः) विशेष द्रष्टा सोम (विश्वा) सब (मृधः) हिंसक शत्रुओंको (अक्रमीत्) अतिक्रमण करताहुआ (विप्रम्) उस मेधावी सोमको (धीतिभिः) स्तुतियोंसे (शुम्भन्ति) दीप्त करते हैं ॥ १ ॥

आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम् । ध्रुवे सदसि सीदतु ॥ २ ॥

(अरुणः) लाल वर्णका सोम (योनिम् आरुहत्) द्रोणकलशमें प्रवेश करता है, तदनंतर (वृषा) कामोंकी वर्षा करनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (सुतम्) शुद्ध हुए सोमको (गमत्) प्राप्त होता है और (ध्रुवे, सदसि) द्युलोक नामक अचल स्थानमें (सीदति) निवास करताहै

नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यꣳ सोम विश्वतः। आपवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥

(इन्दो) पात्रमें जातेहुए (सोम) हे सोम तू (नः) हमें (नु) शीघ्र (महाम्) बहुत (सहस्रिणम्) सहस्रों संख्याका (रयिम्) धन (विश्वतः) सब ओरसे (आपवस्व) दो ॥ ३ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वायं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः। सोतुर्बाहुभ्याꣳ सुयतो नार्वा ॥१॥

(इंद्र) हे इंद्र (सोमं, पिब) सोमको पियो, वह सोम (त्वा, मन्दतु) तुम्हें आनन्द देय (हर्यश्व) हे हरि नामक घोड़ोंवाले इन्द्र (ते) तुम्हारे निमित्त (सोतुः) अभिषव करनेवालेकी (बाहुभ्याम्) भुजाओंसे (अर्वा न) लगामोंसे खिंचेहुए घोड़ेकी समान (सुयतः) भलेप्रकार ग्रहण कियाहुआ (अद्रिः) पाषाण (यम) जिस सोमको (सुषाव) अभिषव करताहुआ वह सोम तुम्हें आनन्द देय ॥ १ ॥

यस्त मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हꣳसि। स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु॥२॥

(हर्यश्व, इन्द्र) हे हरिनामक घोड़ोंवाले इंद्र (ते) तेरा (युज्यः) योग्य (चारु) सुन्दर (मदः) मदकारी (यः) जो सोम (अस्ति) है (येन) जिस सोमको पीनेसे (वृत्राणि) राक्षसादिकोंको (हंसि) नष्ट करते हो (प्रभूवसो) बहुत धनवाले हे इन्द्र ! (सः) वह सोम (त्वा) तुम्हें (मदतु) आनन्द देय ॥ २ ॥

बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्। इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व॥

(मघवन्) हे इन्द्र ! (ते) तेरी (प्रशस्तिम्) स्तुतिरूप (याम्) जिस (वाचम्) वाणीको (वशिष्ठः) श्रेष्ठ जितेन्द्रिय (अर्चति) धारण करता है (इमाम्) इस वशिष्ठकी वाणीको (सु आ बोध) भलेप्रकार स्वीकार करो (इमा) इन (ब्रह्म) हविरूप अन्नोंको (सधमादे) यज्ञशालामें (जुषस्व) सेवन करो ॥ ३ ॥

विश्वाः पृतना अभिभूतरन्नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रञ्जजनुश्च राजसे। क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥ १ ॥

(विश्वाः) सकल (पृतनाः) संग्रामोंको (अभिभूततरम्) तिरस्कार करनेवाले (इंद्रम्) इंद्रको (नरः) स्तोता (सजूः) इकट्ठे होकर (ततक्षुः) स्तुतियोंसे तीक्ष्ण करतेहुए (राजसे) अपना प्रकाश होनेके निमित्त (जजनुः) सूर्यरूप इंद्रको अपने स्तोत्रोंसे प्रकट करते हुए (क्रत्वे) अपने विघ्नकर्त्ताओंका नाश आदि कर्मके लिये (वरे) श्रेष्ठ (स्थेमनि) स्थानमें स्थित (आमुरिम्) शत्रुओंको मारनेवाले (उग्रम्) परमबली (ओजस्विनम्) परमतेजस्वी (तरसम्) बढे हुए (तरस्विनम्) बलवान् इंद्रको धनके निमित्त स्तुति करते हैं १

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे। सुदीतयो वो अद्रुहोपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ २ ॥

(विप्राः) ऋत्विज (अभिस्वरे) ऊँचे स्वरसे इन्द्रका स्तोत्र पढ़नेको (मेषम्) मेषरूप (नेमिम्) सर्वव्यापक इन्द्रको (नमन्ति) नमस्कार करते हैं। यजमान कहता है, कि—हे स्तोताओ ! (सुदीतयः) सुंदर कान्तिवाले (अद्रुहः) किसीसे भी द्रोह न करनेवाले (वः) तुम (अपि) भी (तरस्विनः) कर्म करने और स्तुति पढ़नेमें त्वरा युक्त होतेहुए (कर्णे) इन्द्रके कानके समीप (ऋक्वभिः) पूजनके मंत्रोंसे (सम) भले प्रकार स्तुति करो ॥ २ ॥

समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रꣳ सोमस्य पीतये। स्वः पतिर्यदीवृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ३

(रेभासः) शब्द करनेवाले स्तोता (सोमस्य, पीतये) सोमको पीनेके लिये (इन्द्रम्, उ) इन्द्रको ही (समस्वरन्) भलेप्रकार स्तुति करतेहुए (यद्) जब (स्वष्पतिः) स्वर्गका पालक इन्द्र (वृधे) यजमान आदिकी वृद्धि करनेवाला होता है तब (धृतव्रतः) कर्मको धारण करनेवाला इन्द्र (ओजसा) बल करकै (ऊतिभिः) रक्षाओं करकै (सम्) युक्त होताहै ॥ ३ ॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः । विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे॥१

(यः) जो (इंद्र (चर्षणीनाम्) मनुष्योंका (राजा) स्वामी है (रथेभिः) रथोंके द्वारा (याता) आगमन करनेवाला है (अध्रिगुः) जिसकी गतिको कोई नहीं रोकसकता (विश्वासां,पृतनानाम) सकल सेनाओंका (तरुता)तारक है(यः) जो (वृत्रहा)वृत्रासुरका नाशक है (ज्येष्ठम) उस बड़े इंद्रको (गृणे) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्त्तरि। हस्तेन वज्रः प्रतिधायि दर्शतो महान्देवो न सूर्यः ॥ २ ॥

(पुरुहन्मन्) हे अनेकों शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्रके उपासक यजमान ! (अवसे) रक्षाके निमित्त (तं इन्द्रम्) उस इन्द्रको (शुम्भ) हवि आदि देकर सुशोभित कर (यस्य) जिस तेरे (विधर्त्तरि) विशेष रक्षक इंद्रमें (द्विता) तेरे शत्रुओंके ऊपर उग्रता और तेरे ऊपर अनुग्रह यह दो भाव हैं (दर्शतः) दर्शनीय (महान्) बड़ा (वज्रः) वज्र (देवः सूर्यः न) द्योतमान सूर्यकी समान (हस्तेन) हाथ करके (प्रतिधायि) धारण किया है ॥ २ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चमाध्यायस्य पञ्चम खण्डः समाप्त

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः। स्वानैर्याति कविक्रतुः॥ १ ॥

(कविः) मेधावी (कविक्रतुः) कर्मसाधक बुद्धियुक्त (नप्त्योः) अधिषवणके फलकों पर (हितः) स्थापनकिया हुआ सोम (दिवः) द्युलोकके (परि प्रिया) अतिप्यारे (वयांसि) पाषाणोंसे सिद्ध हुआ (स्वानैः) अध्वर्युओंके द्वारा (परियाति) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् । महान्मही ऋतावृधा ॥ २ ॥

(जातः) प्रकट हुआ (शुचिः) विशुद्ध (महान्) सब हवियों में श्रेष्ठ (स) वह सोम नामक (सूनुः) पुत्र (मही) महान्

(ऋतावृधः) यज्ञके बढ़ानेवाले (जाते) विश्वके उत्पादक (मातरा) अपने मातापिता द्यावा पृथिवीको (अरोचयत्) प्रकाशित करताहै २

प्र प्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः । वीत्यर्ष पनिष्टये ॥ ३ ॥

हे सोम ! (प्र प्र क्षयाय) तेरे अत्यन्त निवासभूत (अद्रुहः) द्रोह न करनेवाले (पन्यसे) स्तोता (जनाय) मनुष्यके अर्थ (वीति) भक्षण करनेको (जुष्टः) पर्याप्त तू (पनिष्टये) स्तुतिके लिये (अर्ष) प्राप्त हो ॥ ३ ॥

त्वं ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः। अमृतत्वाय घोषयन् ॥ १ ॥

(दैव्य) देवसम्बन्धी (पवमान) हे सोम ! (द्युमत्तमः) अत्यन्त दीप्तिमान् (त्वं हि) तू ही (अङ्ग) शीघ्र (घोषयन्) शब्द करताहुआ (जनिमानि) देवसम्बन्धी जन्मोंकी ओरको ध्यान रखकर (अमृतत्वाय) अमरपनेको प्राप्त हो ॥ १ ॥

येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे । देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत ॥ २ ॥

(नवग्वा) श्रेष्ठ वर्त्तावबाला (दध्यङ्) दध्यङ् ऋषि (येन) जिस सोमके द्वारा (द्वारम्) यज्ञद्वारको (अपोर्णुते) खोलता है (विप्रासः) उसको आदि लेकर अन्य ऋत्विज (येन) जिस सोमके द्वारा (आपिरे) पणियोंकी हरीहुई गौओंको प्राप्तहुए (देवानाम्) इन्द्रादि देवताओंको (सुम्ने) यज्ञके द्वारा सुख प्राप्त होनेपर (चारुणः) श्रेष्ठ (अमृतस्य) जलके (श्रवांसि) अन्नोंको (येन) जिस सोमके द्वारा यजमान (आशत) प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं विधावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १ ॥

(पुनानः) सिद्ध कियाजाताहुआ (सोमः) सोम (ऊर्मिणा)

अपनी धारसे (अव्यं वालम्) ऊनके पवित्रमेंको (विधावति) अनेकों मार्गसे जाता है (पवमानः) पवित्र हुआ (वाचः) स्तोत्रके (अग्रे) आगे (कनिक्रदत्) वार २ शब्द करताहुआ जाता है ॥ १ ॥

धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम्।

अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ २ ॥

(वाजिनम्) बलवान् (वने) वसतीवरी नामक जलमें (क्रीडन्तम्) क्रीड़ा करतेहुए (अत्यविम्) दशापवित्रमेंको निकलेहुए सोम को (धीभिः) स्तुतियोंसे वा उंगलियोंसे(मृजन्ति) ऋत्विज शुद्ध करते हैं (त्रिपृष्ठम्) द्रोणकलश आधवनीय और पूतभृत् नामक तीन पात्रोंको स्पर्श करनेवाले सोमको (मतयः) स्तुतियें (अभि समस्वरन्) चारों ओरसे प्रशंसा करती हैं ॥ २ ॥

असर्जि कलशां अभि मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः।

पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ ३ ॥

(वाजयुः) यजमानोंके अन्नको चाहनेवाला (मीढ्वान्) सींचने वाला वह सोम (कलशान्, अभि) कलशोंमें (असर्जि) छोड़ागया (सप्तिः, न) जैसे कि—चलनेवाला घोड़ा संग्राममें छोड़ाजाता है, तदनंतर (पुनानः) सोम (वाचम्) शब्दको (जनयन्) उत्पन्न करताहुआ (असिष्यदत्) पात्रोंमें पहुँचता है ॥ ३॥

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः। जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ १ ॥

(मतीनाम्) बुद्धियोंका (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (दिवः) द्युलोकका (जनिता) प्रकट करनेवाला (पृथिव्याः) पृथिवीका (जनिता) बढ़ानेवाला (अग्नेः) अग्निका (जनिता) प्रकाशक (सूर्यस्य) सूर्यका (जनिता) प्रकाशक (इन्द्रस्य) इन्द्रका (उत) और (विष्णोः) विष्णुका (जनिता) प्रकटकर्त्ता (सोमः) सोम (पवते) पात्रोंमें पहुँचता है ॥ १ ॥

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महि-

षो मृगाणाम् । श्येनोगृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ २ ॥

(देवानाम्) स्तुति करनेवाले ऋत्विजोंमें (ब्रह्मा) ब्रह्मा नामक ऋत्विजरूप (कवीनाम्) परमबुद्धिमानोंमें (पदवीः) सुंदर प्रकार से पदोंकी योजना करनेवाला (विप्राणाम्) विप्रोंमें (ऋषिः) परोक्षविषयको देखनेवाला (मृगाणाम्) पशुओंमें (महिषः) महिष नामक बलवान् राजा (गृध्राणाम्) पक्षियोंमें(श्येनः)प्रशंसायोग्य श्येन पक्षिराजा (वनानाम्) हिंसकोंमें (स्वधितिः) स्वधिति नामक (सोमः) सोम (रेभन्) शब्द करताहुआ (पवित्रं अत्येति) दशापवित्रमेंको निकलता है ॥ २ ॥

प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिरस्स्तोमान्पवमानो मनीषाः । अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥ ३ ॥

(सिन्धुः, वाचः, ऊर्मिम्, न) जैसे बहती हुई नदी शब्दके समूह को प्रेरणा करती है तैसे ही (पवमानः) सोम (मनीषाः) मनको प्रिय लगनेवाले (गिरस्तोमान्) शब्दसमूहोंको (प्रावीविपत्) अधिकतासे प्रेरणा करता है (वृषभ) मनोरथपूरक सोम (अन्तः) भीतर के बलोंको (पश्यन्) देखताहुआ (गोषु जानत) गौओंकी विजयका ज्ञान रखताहुआ (अवराणि) दुबलोंसे निवारण न होनेवाले (इमा-वृजना) इन बलोंको (आतिष्ठति) प्राप्त होता है ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चमाध्यायस्य षष्ठ खण्ड समाप्तः

अग्निं वोवृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥

हे ऋत्विजो ! (वः) तुम (अध्वराणाम्) बलवानोंके (नप्त्रे) बान्धव (सहस्वते) बलवान् (वृधन्तम्) ज्वालाओंसे बढ़तेहुए (पुरूतमम्) अत्यन्त अधिक (अग्निम्) अग्निके प्रति (अच्छ) प्राप्त होओ ॥ १ ॥

अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ २ ॥

(अयम्) यह अग्नि (नः) हमै, (त्वष्टा) बढ़ई (तक्ष्या, रूपा इव) ठीक करनेयोग्यका काष्ठोंको जैसे (आभुवत्) प्राप्त होताहै तैसे, प्राप्त हो तथा हम (अस्य) इस अग्निके (क्रत्वा) ज्ञानसे युक्त होकर (यशस्वतः) कीर्त्तिमान् हों ॥ २॥

अयं विश्वा अभि श्रियोग्निर्देवेषु पत्यते । आवाजैरुप नो गमत् ॥ ३ ॥

(देवेषु) सब देवताओंमें (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि, मनुष्यों की (विश्वाः) सब (श्रियः) सम्पदाओंको (अभिपत्यते) प्राप्त होता है, वह अग्नि (नः) हमैं (वाजैः) अन्नोंके साथ (उपागमत्) प्राप्त हो ॥ ३॥

इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् । शुक्रस्य त्वाऽभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने १

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (ज्येष्ठम्) अत्यन्त प्रशंसनीय (मदम्) हर्ष दायक (मर्त्यम्) अन्य मादक पदार्थोंकी समान रोग न करनेवाले (सुतम्) संस्कार कियेहुए (इमम्) इस सोमको (पिब) पियो (ऋतस्य) यज्ञकी (सादने) शालामें वर्त्तमान (शुक्रस्य) दीप्तिमान् सोमकी (धाराः) धारायें (त्वाम्) तुम्हैं (अक्षरन्) प्राप्त होनेको अभिमुख जाती हैं ॥ १ ॥

नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे । नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे॥ २॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत्) जिसकारण तुम (हरी) अपने हरि नामक घोड़ोंको (यच्छसे) रथमें युक्त करते हो, इसकारण (त्वत्) तुमसे अन्य (रथीतरः) श्रेष्ठ रथी (नकिः) नहीं है (त्वा, अनु) तुम्हारी समान कोई (मज्मना) बल करके भी (नकिः) नहींहै (स्वश्वः) श्रेष्ठ अश्ववाला भी (नकिः, आनशे) तुम्हारी समता को नहीं पाता है ॥ २ ॥

इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन । सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ३ ॥

हे ऋत्विजो ! (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (नूनम्) शीघ्र (अर्चत) पूजन करो (उक्थानि) श्रेष्ठ मन्त्रसाध्य स्तोत्रोंको (ब्रवीतन) उच्चारण करो (सुताः) संस्कार कियेहुए (इन्दवः) सोम (अमत्सु) आये हुए इन्द्रको आनन्ददायक हों, तदनंतर (ज्येष्ठम्) अत्यन्त प्रशंसनीय (सहः) बलवान् इंद्रको (नमस्यत) नमस्कार करो ॥३॥

इन्द्र जुषस्व प्रवहायाहि शूर हरिह । पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥ १ ॥

(हरिह) हरे वर्णके अश्वोंवाले (शूर) वीर्यवान् (इन्द्र) हे इंद्र ! (आयाहि) आओ (प्रवह) मेरे दियेहुए हवियोंको स्वीकार करो (चारुः) सुन्दर तुम (मदाय) आनन्द प्राप्तिके लिये (न) इस समय (चकान.) चाहना करतेहुए (सुतस्य) संस्कार कियेहुए सोमके (मतिः) चेतनता देनेवाले (मधोः) मधुरसको (पिब) पियो ॥१॥

इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न । अस्य सुतस्य स्वा३ऽर्नोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! (सुतस्य) संस्कार कियेहुए (अस्य) इस (मधोः) मधुर सामके (दिवः, न) द्युलोकके से (सुवाचः) सुंदर स्तुतियों से युक्त (मदाः) हर्ष (त्वा, उपास्थुः) तुम्हारे समीप प्राप्त हुए हैं (स्वर्न) स्वर्गकी समान (जठरम्) अपने उदरको (नव्यं न) अपूर्वसा (पृणस्व) पूर्ण करो ॥ २ ॥

इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न । बिभेद वलं भृगुर्न ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य ३

(तुराषाट्) युद्धमें धैर्यधारी (इन्द्रः) इन्द्र (मित्रोन) मित्र देवता की समान (वृत्रम्) शत्रुको (जघान) मारताहुआ (यतिर्न, वलम्) बलदानवको (विभेद) छिन्न भिन्न करता हुआ (सोमस्य) सोमका (मदे) मद होनेपर (भृगुर्न, शत्रून) शत्रुओंको (ससाहे) सहता हुआ ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चमाध्यायस्य सप्तमः खण्ड समाप्तः

पञ्चमाध्यायश्च समाप्तः

(षष्ठ अध्याय ।)

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः । त्वꣳ सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उपगिरेम आसते ॥ १ ॥

(इन्दो) हे सोम ! (गोवित्) गौएं प्राप्त करानेवाला (वसुवित्) धन प्राप्त करानेवाला (हिरण्यवित्) सुवर्ण प्राप्त करानेवाला (रेतोधाः) उत्पादक शक्तिको धारण करानेवाला (भुवनेषु) जलोंमें (अर्पितः) अनेकों बीजरूपसे स्थित तू (पवस्व) पात्रमें पहुँच (सोम) हे सोम तू (सुवीरः) श्रेष्ठ वीर (विश्ववित्) विश्वको जाननेवाला (असि) है (तम्) तिस (त्वा) तुझे (इमे) यह ऋत्विज (गिरा) स्तुति से (उपासते) उपासना करते हैं ॥ १ ॥

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता विधावसि । स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयꣳ स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ २ ॥

(पवमान) संस्कार कियेजातेहुए (वृषभ) कामनापूरक (सोम) हे सोम ! (विश्वतः) सब भुवनोंमें (नृचक्षाः, असि) मनुष्योंका साक्षी है (ताः) उनमें (वि धावसि) अनेकों रूपोंसे पहुँचता है (सः) वह तू (नः) हमारे लिये (पवस्व) क्षरित हो और हम (वसुमत्) गौ आदि धनयुक्त (हिरण्यवत्) बहुतसे सुवर्ण धनसे युक्त (भुवनेषु) लोकोंमें (जीवसे) जीवित रहनेको (स्याम) समर्थ हों ॥ २ ॥

ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः । तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥ ३ ॥

(इन्दो) हे सोम ! (ईशानः) सबका स्वामी तू (हरितः) हरे वर्णके (सुपर्ण्यः) सुंदर चलनेवाले इन्द्रके घोडोंको (युजानः) रथ में युक्त करताहुआ (इमाः) इन (भुवनानि) सकल लोकोंको (ईयसे) प्राप्त होताहै (ताः) वह (ते) तेरे (मधुमत्) मधुरतायुक्त (घृतम्)

दीप्यमान(पयः) जलको (क्षरन्तु)वर्षावैं (सोम)हे सोम!(कृष्टयः) मनुष्य (ते) तेरे (व्रते) कर्ममें (तिष्ठन्तु) स्थित हों ॥ ३ ॥

पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत ।
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ १ ॥

(विश्ववित्) हे विश्वके द्रष्टा सोम ! (पवमानस्य) संस्कार किये जातेहुए (ते) तेरी (सर्गाः) धारें (सूर्यस्य, रश्मयः, इव) सूर्यकी किरणोंकी समान (न)इस समय (प्रासृक्षत)प्रकाशमान होती हैं ॥१॥

केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाऽभ्यर्षसि ।
समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ २ ॥

(सोम) हे सोम ! (समुद्रः) रसोंको बहानेवाला तू (केतुम) चेतनताको (कृण्वन्) करताहुआ (विश्वा, रूपा) हमारे सकल रूपों को (दिवः परि) अन्तरिक्षसे (अभ्यर्षसि) पवित्र करता है (पिन्वसे) हमें नानाप्रकारके धन देता है ॥ २ ॥

जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि ।
क्रन्दन्देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥

(पवमान) हे सोम ! (देवः, सूर्यः, न) दीप्तिमान् सूर्यकी समान (जज्ञानः) प्रकट हुआ तू (विधर्मणि) दशापवित्रमें (क्रन्दन्) ध्वनि करताहुआ (वाचम्) शब्दको (इष्यसि) प्रेरणा करता है ॥ ३ ॥

प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः ।
श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥ १ ॥

(पवमानसः) पूयमान (इन्दवः) दीप्तियुक्त (सोमासः) सोम (प्राधन्विषुः) प्राप्त होते हैं (श्रीणानाः) गोदुग्धादिसे मिलतेहुए (अप्सु) वसतीवरी जलोंमें (वृञ्जते) पहुँचते हैं ॥ १ ॥

अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः ।
पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥

(गावः) गमन करनेवाले (इन्दवः) सोम (प्रवता) नीचे स्थान मेंको (यतीः) जातेहुए (आपः, न) जलोंकी समान (अभि, अध-

न्विषुः) दशापवित्रमें पहुँचते हैं, फिर (पुनानाः) संस्कारयुक्त हुए (इन्द्रम्) तृप्त करनेके अर्थ इन्द्रको (आसत) प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः ।
नृभिर्यतो विनीयसे ॥ ३ ॥

(पवमान, सोम) हे संस्कार कियेजातेहुए सोम ! (इन्द्राय, मादनः) इन्द्रको हर्षदायक तू (प्रधन्वसि) दशापवित्रमें पहुँचता है (नृभिः, यतः) ऋत्विजोंके द्वारा ग्रहण करके (विनीयसे) हविर्धानसे ले जाया जाता है ॥ ३ ॥

इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे ।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥

(इन्दो) हे सोम ! तू (यद्) जब (अद्रिभिः) पाषाणोंसे (सुतः) अभिषव कियाहुआ (पवित्रम्) दशापवित्रको (परिदीयसे) प्राप्त होता है तब (इन्द्रस्य) इन्द्रके (धाम्ने) उदरस्थानके लिये (अरम्) पर्याप्त होता है ॥ ४ ॥

त्वꣳ, सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः ।
सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥ ५ ॥

(सोम) हे सोम ! (नृमादनः) मनुष्योंको आनन्द देनेवाला (चर्षणीधृतिः) ऋत्विजोंसे वा प्रजाओंसे धारण कियाहुआ (त्वम्) तू (पवस्व) सुसिद्ध हो (यः) जो तू (सस्निः) शुद्ध (अनुमाद्यः) स्तुतिके योग्य है ॥ ५ ॥

पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः ।
शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥

हे सोम ! (उक्थेभिः) वैदिक मंत्रोंसे (अनुमाद्यः) स्तुतिकरने योग्य (शुचिः) शुद्ध (पावकः) औरोंको पवित्र करनेवाला (अद्भुतः) महान् (वृत्रहन्तमः) शत्रुओंका नाशक तू (पवस्व) सुसिद्ध हो ॥६॥

शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् ।
देवावीरघशꣳसहा ॥ ७ ॥

(सुतः) संस्कार किया हुआ (मधुमान्) मधुरतायुक्त (सः) वह सोम (शुचिः) स्वयं पवित्र (पावकः) दूसरोंको शुद्ध करनेवाला (देवावीः) देवताओंको तृप्त करनेवाला (अघशंसहा) पापको अच्छा माननेवाले असुरोंका नाशक (उच्यते) कहाजाताहै ॥ ७॥

सामवेदोत्तरार्चिके षष्ठाध्यायस्य प्रथम खण्ड समाप्तः

प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत ।
साह्वान्विश्वा अभिस्पृधः ॥ १ ॥

(कविः) सोम (देववीतये) देवताओंके पीनेके लिये (अव्या, वारेभिः) ऊनके दशापवित्रके द्वारा (अव्यत) पाया जाताहै (साह्वान्) शत्रुओंको सहनेवाला सोम (विश्वाः स्पृधः) सकल संग्रामोंका व-हिंसकोंका तिरस्कार करताहै ॥ १ ॥

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति
पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥

(पवमानः) सुसिद्ध किया जाता हुआ (स हि स्म) वह सोम ही निश्चय (जरितृभ्यः) स्तुति करनेवालोंको (गोमन्तम्) बहुतसी गौओंसे युक्त (सहस्रिणम्) बहुतसे (वाजम्) अन्नको (आइन्वति) अभिमुख होकर देता है ॥ २ ॥

परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती ।
स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम ! तू (मती) हमारी स्तुतिसे (मृज्यसे) दशा पवित्रके द्वारा शोधाजाता है (सः) वह तू (नः) हमें (चेतसा) चित्तसे (विश्वानि) सकल धन (श्रवः) अन्न (विदः) दे ॥ ३ ॥

अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवꣳ रयिम् ।
इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ ४ ॥

हे सोम (मघवद्भ्यः) हवि अर्पण करनेवाले (स्तोतृभ्यः) हम स्तोताओंको (बृहत्) बड़ा (यशः) यश (ध्रुवम्) ठहरनेवाला (रयिम्) धन (अभ्यर्ष) दो (इषम्) अन्न (आभर) दो ॥ ४ ॥

त्व ँ राजेव सुव्रतो गिरः सोमाविवेशिथ ।
पुनानो वह्ने अद्भुत ॥ ५ ॥

(वह्ने) यज्ञादिका निर्वाह करनेवाले (अद्भुत) महान् (सोम) हे सोम ! (सुव्रतः) सुंदर कर्मवाला (पुनानः) संस्कार कियाजाता हुआ तू (राजा इव) राजाकी समान (गिरः) हमारी स्तुतियोंको (आविवेशिथ) स्वीकार करता है ॥ ५ ॥

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।
सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥

(वह्निः) यज्ञका निर्वाह करनेवाला (सः) वह (सोमः) सोम (अप्सु) वसतीवरी जलोंमें (दुष्टरः) दुस्तर (गभस्त्योः) हाथोंमें (मृज्यमानः) संस्कार कियाजाताहुआ (चमूषु) पात्रोंमें (सीदति) स्थित होता है ॥ ६ ॥

क्रीडुर्मखो न मंहयुः पवित्र ँ सोम गच्छसि ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥

(सोम) हे सोम (क्रीडुः) क्रीड़ा करनेवाला (मखो न) यज्ञकी तुल्य (मंहयुः) दानकी इच्छावाला तू (स्तोत्रे) स्तुति करनेवालेको (सुवीर्यम्) सुन्दर वीरता (दधत्) देताहुआ (पवित्रम्) दशापवित्र पर (गच्छसि) जाता है ॥ ७ ॥

यवं यवं नो अन्धसा पुष्टं पुष्टं परिस्रव ।
विश्वा च सोम सौभगा ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम (नः) हमैं (पुष्टं पुष्टम्) बहुत अधिक (यवं यवम्) वार २ युक्तहुए रसको (अन्धसा) धारासे (परिस्रवः) वहा (च) और (विश्वा) सकल (सौभगा) सौभाग्योंको हमैं दे ॥ १ ॥

इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः ।
निबर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥

(इन्दो) हे सोम (अन्धसः) अन्नरूप (ते) तेरा (स्तवः) स्तोत्र

तथा (तव) तेरे निमित्त (यथा) जैसे (जातम्) प्रकट हुआहै तैसे (प्रिये) तृप्त करनेवाले (बर्हिषि) हमारे यज्ञमें (निषदः) स्थित हो ॥ २ ॥

उत नो गोविदश्वावित्पवस्व सोमान्धसा ।
मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥

(उत) और (सोम) हे सोम (नः) हमैं (गोवित्) गौएं देने वाला (अश्ववित्) घोड़े देनेवाला तू (मक्षूतमेभिः, अहभिः) अति शीघ्र दिनों करकै (अन्धसा) अन्नरूप धारासे (पवस्व) वरस ॥३॥

यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य ।
स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥

(सहस्रजित्) हे सहस्रों शत्रुओंको जीतनेवाले सोम ! (यः) जो तू (जिनाति) शत्रुओंको जीतता है (न जीयते) और स्वयं शत्रुओं से नहा जीताजाता है (शत्रुम्, अभीत्य, हन्ति) शत्रुको तिरस्कृत करकै मारता है (सः) वह तू (पवस्व) धारासे वरस ॥ ४ ॥

यास्ते धारा मधुश्च्युतोसृग्रन्निन्द ऊतये ।
ताभिः पवित्रमासदः ॥ १ ॥

(इन्दो) हे सोम ! (ते) तेरी (मधुश्च्युतः) मधुर रस टपकानेवाली (याः धाराः) जो धारें (ऊतये) रक्षाके लिये (असृग्रन्) रचीजाती हैं (ताभिः) उन धारोंसे (पवित्रं, आसदः) दशापवित्र में स्थित हो ॥ १ ॥

सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥

हे सोम ! (सः) वह तू (अव्यया वाराणि) ऊनके वालोंको (तिरः) तिरस्कार करता हुआ (ऋतस्य, योनिम्) यज्ञके कारणभूत दशापवित्र को (आसीदन्) अभिमुख होकर प्रवेश करता हुआ (इन्द्राय, पीतये) इंद्रके पीनेके अर्थ (अर्ष) प्राप्त हो ॥ २ ॥

त्वꣳ सोम परिस्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः ।
वरिवोविद्घृतं पयः ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम ! (स्वादिष्ठः) परमस्वादवाला (वरिवोवित्) हमारे इच्छित धनको प्राप्त करानेवाला तू (अङ्गिरोभ्यः) अङ्गिराओं के निमित्त (घृतम्) दिपतेहुए (पयः) दूधकी समानसारको (परिस्रव) वरसा ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके षष्ठाध्यायस्य द्वितीय खण्डः समाप्त

तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः । यदोषधीरभि सृष्टो वनानि च परिस्वयं चिनुषे अन्नमासनि ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (यद्) जब तुम (ओषधीः) धान जौ आदि अन्नोंको (च) और (वनानि) वनोंको (अभिसृष्टः) भस्म करनेको छुटेहुए (स्वयं,आसन्) अपने मुखमें (अन्नम्) स्थावर जङ्गम जगत् को (परि चिनुषे) डालते हो, तब (तव) तुम्हारी (श्रियः) किरणरूप विभूतियें (वर्षस्य, विद्युतः, इव) वर्षा करनेवाले मेघकी विजलियोंकी समान (उषसां, ऊतयः, इव) उषाकालके फैलनेवाले प्रकाशोंकीसमान (चिकित्रे) जानीजाती हैं ॥ १ ॥

वातोपजूत इषितो वशाँ॥ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे । आ ते यतन्ते रथ्योऽ३ऽयथा पृथक् शर्धाꣳस्यग्ने अजरस्य धक्षतः ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्ने (यद्) जब तू (वातोपजूतः) वायुसे कंपित हुआ (वशान्, अनु) वनस्पतियोंमें (तृषु) शीघ्र (इषितः) भेजाहुआ (अन्ना) खानेयोग्य वनस्पति आदि स्थावरोंमें (वेविषत्) व्यापता हुआ (वितिष्ठसे) इधर उधरको जाता है, तब (अजरस्य, धक्षतः, ते) जरारहित, भस्म करना चाहते हुए तेरे (शर्धांसि) तेज (रथ्यः यथा) रथियोंकी समान (पृथक्) अद्भुत प्रकारके (आयतन्ते) प्रतीत होते हैं ॥ २ ॥

मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निꣳहोतारं परिभूतरं मतिम् । त्वामर्भस्य हविषः समानमित्त्वा महो वृणते नान्यन्त्वत् ॥ ३ ॥

(मेधाकारम्) बुद्धिके कर्त्ता (विदथस्य, प्रसाधनम्) यज्ञके परम साधन (होतारम्) देवताओंका आह्वान करनेवाले (परिभूतरम्) शत्रुओंका परम निरस्कार करनेवाले (मतिम्) मनके प्रेरक (अग्निम्) अग्निको हम ऋत्विज प्रार्थना करते हैं। हे अग्ने (त्वामित्) तुम्हें ही (अर्भस्य, हविषः) थोड़े हविके भक्षण करनेको (त्वामित्) तुम्हें ही (महः) बहुतसे हविके भक्षण करनेको हम ऋत्विज् (समानम्) इकट्ठे होकर (वृणते) प्रार्थना करते हैं (त्वत्) तुमसे (अन्यम्) दूसरे देवताको (न) नहीं प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण ।
मित्र वꣳसि वाꣳ सुमतिम् ॥ १ ॥

हे मित्रावरुण ! (वाम्) तुम दोनोंकी (पुरूरुणा) अधिक से अधिक (अवः) रक्षा (नूनम्) निश्चय (अस्ति) है (हि) यह प्रसिद्ध है (चित्) और (वरुण) हे वरुण (मित्र) हे मित्र (वाम्) तुम्हारी (सुमतिम्) अनुग्रहबुद्धिको (वंसि) सेवन करूँ ॥ १ ॥

ता वाꣳ सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च ।
वयं वां मित्रा स्याम ॥ २ ॥

हम स्तोता (अद्रुह्वाणा) द्रोह न करनेवाले (ता) प्रसिद्ध (वाम्) तुम दोनोंकी (सम्यक्) भलेप्रकार स्तुति करते हैं (वयम्) हम (वाम्) तुम्हारे (मित्रा) मित्र (स्याम) हों (इषम्) अन्नको (च) और (धाम) स्थानको (अश्यामः) पावें ॥ २ ॥

पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथाꣳसुत्रात्रा ।
साह्याम दस्यून्तनूभिः ॥ ३ ॥

(मित्रा) हे मित्रावरुण देवताओं ! तुम (नः) हमें (पायुभिः) रक्षाके साधनोंसे (पातम्) रक्षा करो (उत) और (सुत्रात्रा) श्रेष्ठ रक्षक पदार्थ देकर (त्रायेथाम्) पालन करो, हम भी (तनूभिः) पुत्रादि सहित (दस्यून्) शत्रुओंको (साह्याम) दबावें ॥ ३ ॥

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः ।
सोममिन्द्र चमूसुतम् ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! तू (चमू) पात्रोंमें (सुतम्) अभिषुत (सोमम्) सोमको (पीत्वा) पीकर (ओजसा, सह) बलके साथ (उत्तिष्ठन्) उठताहुआ (शिप्रे) ठोड़ीको (अवेपयः) कम्पायमान कर॥ १ ॥

अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमान मदेताम् ।
इन्द्र यद्दस्युहा भवः ॥ २ ॥

(स्पर्धमान, इंद्र) शत्रुओंके साथ स्पर्धा करनेवाले इन्द्र ! (त्वा, अनु) तुम्हारे प्रति (उभे, रोदसी) दोनो द्युलोक और पृथिवी (मदेताम्) प्रसन्न हों (यद्) जब तुम (दस्युहा) शत्रुओंका नाश करनेवाले (भवः) होते हो ॥ २ ॥

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम् ।
इन्द्रात्परि तन्वं ममे ॥ ३ ॥

(अष्टापदीम्) चार दिशा और चार कोण इन आठ चरणवाली (नवस्रक्तिम्) ऊपर आदित्य सहित नौ स्थानमें व्याप्त (ऋता-वृधम्) यज्ञकी वृद्धि करनेवाली (वाचम्) स्तुतिका (तन्वम्) परि-पूर्ण होनेसे न्यूनरहीको (अहम्) मैं (परिममे) परिमाण करता हूँ, क्योंकि पूर्णरूप स्तुतिका विषय नहीं होसकता ॥ ३ ॥

इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभिस्तोमा अनूषत ।
पिबतꣳ शंभुवा सुतम् ॥ १ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र अग्नि (युवाम्) तुम्हे (इमे) यह (स्तोमाः) स्तोता (अभ्यनूषत) प्रशंसा करते है (शम्भुवा) हे सुख देनेवाले इन्द्राग्नी (सुतम्) संस्कार कियेहुए हमारे सोमको (पिबतम्) पियो १

या वाꣳ सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
इन्द्राग्नी ताभिरागतम् ॥ २ ॥

(नरा) प्रेरणा करनेवाले (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र अग्नि देवता (वाम्) तुम्हारे (पुरुस्पृहा) अनेकोंके चाहने योग्य (दाशुषे) हवि अर्पण करनेवाले यजमानके निमित्त उत्पन्नहुए (याः) जो (नियुतः) घोड़े (सन्ति) हैं (ताभिः) उनके द्वारा (आगतम्) आओ ॥ २ ॥

ताभिरागच्छतं नरोपेदᳪ सवनᳪ सुतम् ।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ३ ॥

(नरा, इन्द्राग्नी) हे प्रेरक इन्द्र अग्नि देवताओ ! (इदं, सुतं, सवनम्, उप) इस संस्कार कियेहुए सामके समीप (सोमपीतये) सोम पानेको (ताभिः) उन अश्वोंके द्वारा (आगच्छतम्) आओ ॥ ३ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चाध्यायस्य तृतीय खण्डः समाप्त

अर्षा सोम द्युमत्तमोभि द्रोणानि रोरुवत् ।
सीदन् योनौ वनेष्वा ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम ! (द्युमत्तमः) अत्यंत दीप्तिमान् तू (वनेषु) वनोंमें (योनौ) अपने कारण पर्वतादिके विषैं (आसीदन्) स्थित होताहुआ (द्रोणानि, अभि) द्रोण कलशोंकी ओरको (रोरुवत्) वार २ शब्द करताहुआ (अर्षा) प्राप्त हो ॥ १ ॥

अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ २ ॥

(अप्सा) जलोंमें मिलनेवाले (सोमाः) सोम (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (वायवे) वायुके अर्थ (वरुणाय) वरुणके अर्थ (मरुद्भ्यः) मरुत् देवताओंके अर्थ (विष्णवे) जगत्व्यापी विष्णुदेवताके अर्थ (अर्षन्तु) द्रोणकलशमें आवें ॥ २ ॥

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यᳪ सोम विश्वतः ।
आपवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥

(सोम) हे साम ! (अस्माकम्) हमारे (तोकाय) पुत्रके अर्थ (इषम्) अन्न (दधत्) देताहुआ (सहस्रिणम्) सहस्रों संख्याका धन (विश्वतः) सब ओरसे (अस्मभ्यम्) हमैं (आपवस्व) पहुँचा ३

सोम उ ष्वाणः सोतृभिराधिष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥ १ ॥

(सोतृभिः) संस्कार करनेवाले ऋत्विजों करके (स्वानः) अभिषव कियाजाताहुआ (सोमः) सोम (अवीनां, स्नुभिः) भेड़ोंकी ऊनके पवित्रोंमेंको (अभियाति) अधिक वेगसे जाता है (उ) यह प्रसिद्ध है (अश्वया इव) घोड़ीके द्वारा जैसे (हरिता, धारया) हरी धारा से (मन्द्रया, धारया) मदकारिणी धारासे (याति) द्रोणकलशमें जाताहै १

अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमोदुग्धाभिरक्षाः समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते२

(गोमान्) गौओंवाला (सोमः) सोम (अनूपे) द्रोणकलशमें (गोभिः) गोघृतादिके साथ (अक्षाः) टपकता है (सोमः, दुग्धाभिः अक्षाः) सोम अपने मिश्रणके निमित्त गौओंके साथ प्राप्त होता है (समुद्रं, न. संवरणानि, अग्मन्) जैसे समुद्रमें जल जाते हैं तैसे रस रूप अन्न द्रोणकलशमें जाते हैं (मन्दी, मदाय, तोशते) मदकारी सोम मदके निमित्त कूटाजाता है ॥ २ ॥

यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु ।
तन्नः पुनान आभर ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम ! (यत्, चित्रं, उक्थ्यम्, दिव्यं, पार्थिवम्, वसु) जो विविधप्रकारका प्रशंसा करनेयोग्य स्वर्गीय और पार्थिव धन है (तत् पुनानः, नः, आभर) वह सब शुद्ध कियाजाताहुआ तू हमें दे ॥ १ ॥

वृषा पुनान आयूꣳषि स्तनयन्नाधिबर्हिषि ।
हरिः सन् योनिमासदः ॥ २ ॥

(आयूंषि, पुनानः) यजमान आदिकी आयुको पवित्र करताहुआ (वृषा, स्तनयन्) कामनाओंकी वर्षा करनेवाला और शब्द करता हुआ (अधि, बर्हिषि, हरिः सन्) बिछेहुए कुशोंपर हरेवर्णका होताहुआ (योनिं, आसदः) अपने स्थान पर स्थित हो ॥ २ ॥

युवꣳहि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ ३ ॥

(सोम, च, इन्द्रः) हे सोम ! तू और इन्द्र (युवं, हि, स्वःपती, स्थः) तुम दोनो निःसन्देह सबके स्वामी हो (गोपती, ईशाना, धियं

पिप्यतं) गौओंके पालक और सकल ऐश्वर्यों के अधिपति होतेहुए हमारे कर्मोंको पुष्ट करो ॥ ३ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके षष्ठाध्यायस्य चतुर्थ खंड समाप्तः

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः। तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे सवाजेषु प्रनोऽविषत् ॥ १ ॥

(वृत्रहा, इन्द्रः) शत्रुओंका नाशक इन्द्र (मदाय, शवसे) मदके अर्थ और बलके अर्थ (नृभिः) ऋत्विजोंके द्वारा स्तुतियोंसे अधिक बली कियागया (तम्, इत, महत्सु, आजिषु) तिस ही इन्द्रको बड़े संग्रामोंमें (अर्भे) छोटे संग्राममें (ऊतिं, हवामहे) अपनी रक्षाके लिये पुकारते हैं (सः, वाजेषु, नः, प्राविषत्) वह संग्रामोंमें हमारी पूर्ण रक्षा करें ॥ १ ॥

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादादिः। असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥

(वीर, हि, सेन्यः, असि) हे शत्रुनाश करनेमें कुशल इन्द्र ! क्यों कि तू सेनाके योग्य है अर्थात् तू अकेला ही सेनाकी समान है, इस कारण (भूरि, परादादिः असि) शत्रुओंके बहुतसे धनको उनसे प्रतिकूल होकर छीनलेनेवाला है (दभ्रस्य चित्, वृधः) छोटेसेभी अपने स्तोताको धनादिसे बढ़ानेवाला है (सुन्वते, यजमानाय, शिक्षसि) सोमका अभिषव करनेवालेको और याग करनेवालेको धन देता है (ते, भूरि, वसु) तेरे पास बहुतसा धन है ॥ २ ॥

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम्। युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कꣳ हनः कं वसौ दधोऽस्माꣳ इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥

(यत्, आजय, उदीरते) जब संग्राम उत्पन्न होते हैं, तब (धृष्णवे धना, धीयते) शत्रुओंको जीतनेवालेके अर्थ धन स्थापन कियेजाते हैं

हे इन्द्र उन संग्रामोंके समय तुम (मदच्युता, हरी, युङ्क्ष्व) मद टपकानेवाले अपने घोड़ोंको रथमें जोड़ो (कम्, हनः) अपनी आराधना न करनेवाले किसी राजाको मारो (कम्, वसौ, दधः) किसी अपने उपासक राजाको धनमें स्थापित करो (इन्द्र, अस्मान्, वसौ, दधः) हे इन्द्र ! हमें धनमें स्थापित करो ॥ ३ ॥

स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः । या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णामदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥

(स्वादोः, इत्था-विषूवतः, मधोः, गौर्यः, पिबन्ति) स्वादु रसयुक्त इसप्रकार सकल यज्ञोंमें व्यापक मधुररसवाले सोमको गौर वर्णकी गौएं पीती हैं (या, इन्द्रेण, शोभथाः) जो गौएं इन्द्रके साथ शोभा पाती हैं (वृष्णा, सयावरीः, मदन्ति) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले इंद्र के साथ जातीहुई प्रसन्न होतीहैं, क्योंकि इन्द्रके पियेहुए सोमके शेष-भागको पीती हैं (वस्वीः, स्वराज्यम्, अनु) दूध देकर निवास करने वालीं वह इंद्रके अपने राज्यमें स्थित हैं ॥ १ ॥

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः । प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ २ ॥

(ताः, अस्य, पृशनायुवः, पृश्नयः, सोमं, श्रीणन्ति) वह इस इंद्र के स्पर्शको चाहनेवालीं अनेकों वर्णकी गौएं इन्द्रके पीने योग्यसोमको अपने दूधसे मिलाती हैं (इन्द्रस्य, प्रियाः धेनवः) इन्द्रकी प्रीतिकी कारण वह गौएं (सायकं, वज्रम्, हिन्वन्ति) शत्रुओंके अन्तकारी वज्ररूपी शस्त्रको शत्रुओंमें प्रेरणा करती हैं अर्थात् इन्द्रको ऐसा मद देती हैं, कि—वह शत्रुओंके ऊपर वज्र छोड़ता है (वस्वीः, स्वराज्यम्, अनु) दूध देकर निवास करनेवालीं वह इन्द्रके अपने राज्यमें स्थित हैं ॥ २ ॥

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः । व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥

(प्रचेतसः, ताः) श्रेष्ठ ज्ञानवालीं वह गौएं (अस्य, सहः, नयसा, सपर्यन्ति) इस इन्द्रके बलको अपने दुधरूप अन्नसे आराधन करती हैं (पूर्वचित्तये) युद्ध करनेवाले शत्रुओंको पहिले ही ज्ञापन करनेके लिये अर्थात् इसके साथ युद्ध करकै पहिले कितने ही शत्रु मरणको प्राप्त होगए तुम अपने प्राण क्यों खोते हो, यह जतानेके लिये (अस्य, पुरूणि, व्रतानि, सश्चिरे) इसके अनेकों वीरताके कर्मोंको जाननेयोग्य समझकर सेवन करती हुई ॥ ३ ॥

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः।
श्येनो न योनिमासदत् ॥ १ ॥

(गिरिष्ठाः, अंशुः) पर्वतमें उत्पन्न हुआ सोम (मदाय, असावि) मदके लिये सुसिद्ध कियागया (अप्सु, दक्षः) वसतीवरी जलोंमें बढ़ता है (श्येनो, न, योनिम्, आसदत्) जैसे श्येन पक्षी वेगसे आकर बैठजाता है, तैसे ही यह सोम अपने स्थान पर स्थित होता है ॥ १ ॥

शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम्।
स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ २ ॥

(देववातं, शुभ्रं, अन्धः) देवताओंके प्रार्थना कियेहुए सुन्दर और अन्नरूप (नृभिः, सुतम) ऋत्विजों करकै संस्कार कियेहुए (अप्सु, धौतम्) वसतीवरी जलोंमें धोये हुए सोमको (गावः, पयोभिः, स्वदन्ति) गौएं अपने दुग्धसे स्वादयुक्त करती हैं ॥ २ ॥

आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय।
मधो रसं सधमादे ॥ ३ ॥

(आत्) अनन्तर (होतारं, ईम्, मधो, रसम्) प्रेरक इस सोमके रसको (सधमादे, अमृताय, अशूशुभन्) यज्ञमें अमरभाव पानेको ऋत्विज शोभायमान करते हैं (अश्वं, न) जैसे सवार संग्राममें घोड़े को शोभायमान करते हैं ॥ ३ ॥

अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम्। वि कोशं मध्यमं युव ॥ १ ॥

(इषस्पते, देव) हे अन्नके स्वामी स्तुतियोग्य सोम ! (द्युम्नं, बृहत्

यशः, देवयुं, अभिदिदीहि)द्योतमान बहुतसे अन्नरूप देवताओं चाहने योग्य हविरूप अपने रसको हमारे अभिमुख होकर प्रकाशित कर (मध्यमं, कोशं, वियुव) और अन्तरिक्षमें स्थित मेघको वर्षाके लिये छोड़ ॥ १ ॥

आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वन्हिर्न विश्पतिः । वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्टये धियः ॥ २ ॥

(सुदक्ष) हे सुन्दरबलवाले (चम्वोः, सुतः) अधिषवणके पात्रोंमें अभिषव कियाहुआ तू (वह्निः, न, विश्पतिः) प्रजाओंके धारक राजा की समान (विशाम्) प्रजाओंका धारण करनेवाला होताहुआ (आवचयस्व) कलशमें प्राप्त हो (गविष्टये, धियः, जिन्वन्) यजमानके अर्थ कर्मोंको प्रेरणा करताहुआ (अपः, रीतिं, दिवः, पवस्व) जलोंकी वर्षाको द्युलोकसे कर ॥ २ ॥

प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् । विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥

(प्राणा, महीनां, शिशुः) चेष्टा देनेवाला वा यज्ञकी पूर्त्तिका साधन जलोंका पुत्ररूप सोम (ऋतस्य, दीधितिं, हिन्वन्) यज्ञके प्रकाशक वा धारक अपने रसको प्रेरणा करताहुआ (विश्वा, प्रिया, परिभुवत्) सकल प्रिय हवियोंमें व्याप्त होता है (अध, द्विता) और द्युलोक तथा पृथिवी दोनो स्थानोंमें रहता है ॥ १ ॥

उप त्रितस्य पाष्योऽ३ऽरभक्त यद्गुहा पदम् यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥

(त्रितस्य, गुहा) त्रित नामक ऋषिकी गुहारूप हविर्धानमें वर्त्तमान (पाष्योः, पदम) पाषाणकी समान दृढ़ अधिषवण फलकोंमें स्थानको सोम (यत्, उप, अभक्त) जब प्राप्त किया (अध) तब (यज्ञस्य, धामभिः, सप्त) यज्ञको धारण करनेवाले गायत्री आदि सात छन्दोंके द्वारा (प्रियं, अभि) तृप्त करनेवाले सोमकी ऋत्विज स्तुति करते हैं ॥२॥

त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरयद्रयिम् । मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥

सोम ! (धारया) अपनी धारासे (त्रितस्य, त्रीणि) मुझ त्रित के तीन सवनोंको (पृष्ठेषु, रयिम,, पेरयन्) सामगानोंमें धन देनेवाले इन्द्रको प्रेरणा करे, क्योंकि (सुक्रतुः, अस्य, योजना, विमिमीते) श्रेष्ठ यज्ञवाला स्तोता इस इंद्रके स्तोत्रोंको उच्चारण करता है ॥ ३ ॥

पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः ।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम (सुतः) संस्कार कियाहुआ तू (इन्द्राय, विष्णवे देवेभ्यः मधुमत्तरः) इन्द्रके अर्थ विष्णुके अर्थ तथा अन्य देवताओंके अर्थ अत्यन्त मधुरतायुक्त होताहुआ (वाजसातये) अन्नकी प्राप्तिके लिये (पवित्रे, धारया, पवस्व) दशापवित्रमको धारसे टपक ॥ १ ॥

त्वाꣳरिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
वत्सं जातं न मातरः पवमाना विधर्मणि ॥ २ ॥

(पवमान) हे पूयमान सोम ! (विधर्मणि) अनेकों हवियोंके धारक यज्ञमें (अद्रुहः, धीतयः) द्रोहरहित अंगुलियें (हरिं, पवित्रे, त्वां, रिहन्ति) हरे वर्णके पवित्रमें स्थित तुझे निचोड़नेके लिये स्पर्श करतीहैं (जातं, वत्सं, गावः, न) उत्पन्नहुए बछड़ेको जैसे गौएं चाटती हैं ॥ २ ॥

त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे। प्रति-
द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥ ३ ॥

(महिव्रत) हे कर्मके महान् साधक सोम ! (त्वम्) तू (द्यां, च पृथिवीं, च, अतिजभ्रिषे) द्युलोक और पृथिवीलोकको अत्यन्त धारण करते हो (पवमान) संस्कारयुक्त होताहुआ (महित्वना, द्रापिं, प्रति अमुञ्चथाः) महत्त्वसे युक्त होकर कवचको ढकते हो ॥ ३ ॥

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सहइ-
न्वन्मदाय । हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरि-
वस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥ १ ॥

(वाजी) बलवान् (गोन्योघा) गमनशील रसका समूहरूप (इन्दुः सोमः) टपकनेवाला सोम (इन्द्रे, सहः, इन्वन्) इन्द्रके विषै बल-

दायक रसको प्रेरणा करताहुआ (मदाय, पवते) इन्द्रके मदके लिये बरसता है (वृजनस्य, राजा) बलका स्वामी सोम (वरिवः, कृण्वन्) स्तोताओंको धनदान करताहुआ (रक्षः, हन्ति) राक्षसोंका नाश करता है (अरातिं, परिबाधते) शत्रुओंको चारों ओरसे पीड़ा देता है ॥ १ ॥

अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः । इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥ २ ॥

(अध) अनन्तर (अद्रिदुग्धः) पाषाणोंसे कुचलकर निचोड़ाहुआ सोम (मध्वा, धारया) मदकारी धारासे (पृचानः) देवताओंको तृप्त करताहुआ (रोम, तिरः, पवते) ऊर्णा पवित्रमेंको छनकर निकलता है (इन्द्रस्य, सख्यम्, जुषाणः) इन्द्रके सखाभावको सेवन करताहुआ (देवः मत्सरः, इन्दुः) द्योतमान, मदकारी सोम (देवस्य, मदाय, पवते) इन्द्रके मदके निमित्त बरसता है ॥ २ ॥

अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् । इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥ ३ ॥

(धर्माणि, व्रतानि, ऋतुथा, वसानः) यजमानके धारणकर्त्ता कर्मोंको ऋतुके समय व्याप्त करताहुआ (पुनानः) पूयमान (इन्दुः, अभिपवते) सोम कलशमें बरसता है (देवः) दीप्तिमान् सोम (स्वेन, रसेन, देवान्, पृञ्चन्) अपने रससे इन्द्रादि देवताओंको संयुक्त करताहुआ (दश, क्षियः, सानो, अव्ये, अव्यत) उस सोमको दश अंगुलियें ऊँचे दशापवित्रमें पहुचाती हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके षष्ठाध्यायस्य षष्ठ खण्डः समाप्तः

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् । यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! द्युमन्तं, अजरं, ते, आ, इधीमहि) दीप्ति-

मान् जरारहित तुम्हें सब ओरसे दीप्त करते हैं (यत्, ह, ते, स्या, पर्नायर्सा, समित्) जब निश्चय तुम्हारी वह प्रशंसायोग्य दीप्ति (द्यवि, दीदयति) द्युलोकमें दिपती है तब हे अग्ने ! (स्तोतृभ्यः, इष, आ भर) हम स्तोताओंको अन्न दो ॥ १ ॥

आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यᳪ हूयत इषᳪ स्तोतृभ्य आभर ॥ २ ॥

(सुश्चन्द्र) श्रेष्ठ आनन्ददायक (दस्म) शत्रुनाशक (विश्पते) प्रजापालक (हव्यवाट्) हवि पहुँचानेवाले (ज्योतिषस्पते, अग्ने) हे प्रकाशके स्वामी अग्निदेव ! (शुक्रस्यते) दीप्तिमान तेरे अर्थ (ऋचा, हविः, आ, हूयते) मंत्रके साथ हवि अभिमुख होकर होमाजाता है (स्तोतृभ्यः, इषं, आभर) हम स्तोताओंको अन्न दो ॥ २ ॥

ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि । उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषᳪ-स्तोतृभ्य आभर ॥ ३ ॥

(शवसस्पते, विश्पते, सुश्चन्द्र) बलके स्वामी, प्रजाओंके पालक हे इन्द्र (उभे, दर्वी, आसनि, श्रीणीषे) हविसे भरे जुहू आदि दोनो पात्रोंको अपने मुखमें लेकर पचाजाते हो (उतो) और (उक्थेषुः, नः, उत्पुपूर्याः) और यागोंमें हमें फलोंसे पूर्ण करते हो (स्तोतृभ्यः, इषं, आभर) हम स्तोओंको अन्न दो ॥ ३ ॥

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥

हे उद्गाताओं ! (विप्राय, बृहते, ब्रह्मकृते, विपश्चिते, पनस्यते, इंद्राय) मेधावी, महान्, वर्षाके द्वारा हविरूप अन्नके कर्त्ता विद्वान् और स्तुति चाहनेवाले इन्द्रके अर्थ (बृहत्, साम, गायत) बृहत् नाम सामका गान करो ॥ १ ॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वᳪ, सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ २ ॥

(इन्द्र, त्वं, अभिभूः, असि) हे इन्द्र ! तू शत्रुओंका तिरस्कार करने वाला है (त्वं, सूर्यं, अरोचयः) तुम सूर्यको तेजोंसे दीप्त करते हो (विश्वकर्मा, विश्वदेवः, महान्, असि) विश्वका कर्त्ता, सकल देव-रूप और सबसे बड़े हो ॥ २ ॥

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वा३ऽरगच्छोरोचनं दिवः देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (ज्योतिषाः, रोचनम्) तेजसे आदित्यके प्रकाशक (स्वः, विभ्राजन्) स्वर्गको प्रकाशित करताहुआ (अगच्छः) प्राप्त हो (देवाः, ते सख्याय येमिरे) सब देवता तेरे मित्रभावको पानेके लिये अपने आत्माको वशमें करतेहुए ॥ ३ ॥

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवागहि । आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियꣳरजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥

(इन्द्र, ते, सोमः, असावि) हे इन्द्र ! तेरे निमित्त सोमका संस्कार कियाजाचुका है (शविष्ठ, धृष्णो, आगहि) हे अत्यन्त बलवान् ! शत्रुको दबानेवाले इन्द्र यहां यज्ञशालामें आओ (सूर्यः, रश्मिभिः, रजः, न) जैसे सूर्य किरणोंसे अन्तरिक्षको पूर्ण करता है तैसे (त्वा, इन्द्रियं आपृणक्तु) तुझे सोमपानसे उत्पन्न हुई बड़ीभारी सामर्थ्यसे पूर्ण करे ॥ १ ॥

आतिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी । अर्वाचीनꣳ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ २

(वृत्रहन् रथं आतिष्ठ) हे इन्द्र ! रथ पर चढ़ो (ते हरी ब्रह्मणा युक्ता) तेरे हरिनामक घोड़े हमने मंत्रसे जोड़दिये हैं (ग्रावा) अभिषवका पाषाण (वग्नुना) मनको खेंचनेवाले शब्दसे (ते मनः) तेरे मनको (अर्वाचीनं सुकृणोतु) श्रेष्ठतासे हमारे सन्मुख करै ॥ २ ॥

इन्द्रमिद्धरी वहतोप्रतिधृष्टशवसम् । ऋषीणाꣳ सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ ३ ॥

(अप्रति धृष्टशवसं इन्द्रं इत्) किसीके भी तिरस्कार न करनेयोग्य बलवाले (ऋषीणां मानुषाणाम्) ऋषि और मनुष्योंकी (सुष्टुतीः) सुन्दर स्तुतियें (यज्ञञ्च) यज्ञको भी (हरी उप वहतः) अश्व पहुँ-

चाते हैं अर्थात् जहां यज्ञ और स्तुति होती हैं तहां २ अश्व इन्द्रको पहुँचाते हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके षष्ठाध्यायस्य सप्तमः खण्ड समाप्तः

षष्ठाध्यायश्च समाप्त

सप्तमोऽध्यायः

ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं, पिता देवानां जनिता विभूवसुः । दधाति रत्नᳬ स्वधयोर-पीच्यं, मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥ १ ॥

(यज्ञस्य ज्योतिः) यज्ञका प्रकाशक सोम (प्रियं मधु पवते) इन्द्रादि देवताओंके प्यारे मधुररसको वरसाता है (पिता) पालन करनेवाला (जनिता) फल उत्पन्न करनेवाला (विभूवसुः) बहुत धनी (मदिन्तमः) अति मदकारी (मत्सरः) आनन्ददायक (इन्द्रियः) इन्द्रका सेवन कियाहुआ (रसः) सोमका रस (स्वधयोः अपीच्यं रत्नं दधाति) द्यावापृथिवीमें अन्तर्हित धन यजमानोंके विषैं स्थापन करता है ॥ १ ॥

अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्षति, पतिर्दिवः शत-धारो विचक्षणः । हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥ २ ॥

(दिवः पतिः) द्युलोकका स्वामी (शतधारः) सैंकड़ों धारोंवाला (विचक्षणः) बुद्धिवर्द्धक (वाजी) बलवान् (हरिः) हरे वर्णका सोम रस (अभिक्रन्दन् कलशं अर्षति) शब्द करताहुआ कलशमें पहुँचता है (सिन्धुभिः अविभि मर्मृजानः वृषा) टपकानेके साधन ऊन के दशापवित्रोंसे शुद्ध कियाजाताहुआ मनोरथोंका पूरक सोम (मित्रस्य सदनेषु सीदति)मित्रकी समान हितकारी यज्ञके पात्रोंमें स्थित होताहै२

अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अ-ग्रियो गोषु गच्छसि । अग्रे वाजस्य भजसे महद्धनᳬ स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ३

हे सोम ! तू (सिधूनां, अग्रे, पवमानः, अर्षसि) जलोंसे पहिले प-वित्र होताहुआ जाता है अर्थात् वर्षाका जल उत्पन्न करनेको पहिले

ही आहुतिके द्वारा अन्तरिक्षमें पहुँचजाताहै (वाचः, अग्रियः, गच्छसि) मध्यमा वाणीका पूज्य होकर जाता है (गोषु, अग्रे, गच्छसि) किरणों से आगे जाता है (वाजस्य) शत्रुओंका अन्न पानेके लिये (स्वायुधः महत्, धनं, भजसे) श्रेष्ठ आयुधवाला होकर संग्रामका सेवन करता है (सोमः, स्तोतृभिः, सूयसे) तैसा तू हे सोम ! अध्वर्युआदिके द्वारा निचोड़ाजाता है ॥ ३ ॥

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया शुक्रासो वीरयाशवः ॥ १ ॥

(वाजिनः, शुक्रासः आशवः सोमासः) बलवान् दीप्तिमान् योगवान् सोम (गव्यया, अश्वया, वीरया) यजमानके लिये गौओंकी इच्छा से घोड़ोंकी इच्छा से और पुत्र सेवक आदिकी इच्छासे (प्र असृक्षत) रसोंको छोड़ते हैं ॥ १ ॥

शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः । पवन्ते वारे अव्यये ॥ २ ॥

(ऋतायुभिः शुम्भमानाः) यज्ञकी चाहनावाले अध्वर्यु आदि करके सुशोभित कियेहुए (गभस्त्योः, मृज्यमानाः) हाथोंसे शुद्ध कियेहुए सोम (अव्ये वारे) ऊनके पवित्र में (पवन्ते) सुसिद्ध होते हैं ॥ २ ॥

ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ३ ॥

(ते) वह (सोमाः) सोम (दाशुषे) हवि अर्पण करनेवाले यजमानके अर्थ (दिव्यानि पार्थिवा, आन्तरिक्ष्या), स्वर्गीय, भूलोकके और अन्तरिक्षके (विश्वा, वसु) गौ आदि सकल धन (आपवन्ताम्) वरसावै ॥ ३ ॥

पवस्व देववीरति पवित्रꣳ सोम रꣳह्या । इन्द्रमिन्दो वृषाविश ॥ १ ॥

(सोम ! देववीः) हे सोम ! देवताओंकी कामनावाला तू (रंह्या, पवित्रं अतिपवस्व) वेगके साथ पवित्र भावसे वरस (इंदो वृषा इन्द्रम् विश) हे सोम ! कामनाओंकी वर्षा करनेवाला तू इन्द्रको प्राप्त हो ॥ १ ॥

आवच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः।
आ योनिं धर्णसिः सदः ॥ २ ॥

(इन्दो) हे सोम (वृषा द्युम्नवत्तमः धर्णसिः) सेवकको अभीष्ट फल देनेवाला परमकीर्त्तिमान् तथा धारण करनेवाला तू (महि प्सरः आवच्यस्व) बहुतसा अन्न जल हमारे पास पहुँचा (योनिं आसदः) अपने स्थान पर स्थित हो ॥ २ ॥

अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः।
अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥ ३ ॥

(सुतस्य वेधसः धारा) अभिषव कियेहुए इच्छित पदार्थको देनेवाला सोमकी धारा (प्रियं मधु अधुक्षत) प्रसन्न करनेवाले अमृतको पात्रमें पूर्ण करती है (सुक्रतुः अपः वसिष्ट) श्रेष्ठकर्मका साधक सोम वसतीवरी जलोंको आच्छादन करता है ॥ ३ ॥

महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः।
यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥

हे सोम ! (यत् गोभिः वासयिष्यते) जब तू गौके दुग्धादिसे मिलायाजाता है, तब (महान्तं त्वा अनु सिन्धवः महीः आपः अर्षन्ति) गुणोंसे बड़े तेरे प्रति वहतेहुए बहुतसे जल प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः।
सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥

(समुद्रः) रसोंको बहानेवाला (दिवः विष्टम्भः धरुणः) स्वर्गका थामनेवाला और धारण करनेवाला (अस्मयुः सोमः) हमारी कामनावाला सोम (पवित्रे अप्सु मामृजे) पवित्रमें को वसतीवरी जलोंमें बार बार शोधाजाता है ॥ ५ ॥

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः।
सꣳ सूर्येण दिद्युते ॥ ६ ॥

(वृषा हरिः महान्) मनोरथ पूरे करनेवाला हरेवर्णका और सर्वोत्तम (मित्रः न दर्शतः) मित्रकी समान दर्शनीय जो सोम (अचिक्रदत्) शब्द करता है वह सोम (सूर्येण संदिद्युते) सूर्यके साथ दिपताहै

गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥

(इन्दो ते ओजसा) हे सोम! तेरे बलसे (अपस्युवः गिरः मर्मृज्यन्ते) कर्मकी इच्छाके संबन्धवाली स्तुतियें शोधीजाती हैं (याभिः मदाय शुम्भसे) जिन स्तुतिकी वाणियोंसे तुम मदके अर्थ सुन्दर बनाये जाते हो ॥ ७ ॥

तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे ।
तव प्रशस्तये महे ॥ ८ ॥

हे सोम! (तव महे प्रशस्तये) तेरी बड़ी प्रशंसा होनेके लिये (लोककृत्नुं तं त्वा) लोकके कर्त्ता तिस तुझको (घृष्वये मदाय) शत्रुओंको रगड़नेवाले मदके अर्थ (ईमहे) पीनेको प्रार्थना करते हैं ८

गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत ।
आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ ९ ॥

(इन्दो) हे सोम! (यज्ञस्य पूर्व्यः आत्मा) ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ का पुरातन आत्मारूप तू (गोषा नृषा अश्वसा उत वाजसा असि) हमें गौएं देनेवाला पुत्र सेवक आदि मनुष्य देनेवाला घोड़े देनेवाला और अन्नोंका दाता है ॥ ९ ॥

अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया ।
पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥ १० ॥

(इन्दो) हे सोम! (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) वर्षा करनेवाले मेघ की समान (अस्मभ्यम्) हमारे अर्थ (इन्द्रियम्) इन्द्रके सेवन किये हुए वा वीरताके वर्द्धक रसको (मधोः धारया पवस्व) अमृतकी धारारूपसे बरसा ॥ १० ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तमाध्यायस्य प्रथम खंड समाप्त

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥

(महिश्रवः पवमान सोम) हे बहुत अन्नवाले संस्कारयुक्त सोम ! (सन) हमारे यज्ञमें पूजनीय देवताओंका सेवन कर (च जेषि च) और यज्ञमें विघ्न करनेवाले राक्षसोंको जीत भी (अथ) देवताओंको पाने और राक्षसोंको जीतनेके अनंतर (नः वस्यसः कृधि) हमें कल्याण युक्त करो ॥ १ ॥

सना ज्योतिः सना स्वा३ऽर्विश्वा च सोम सौभगा । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥

(सोम) हे सोम (ज्योतिः सन) हमें तेज दे (स्वः च विश्वा सौभगा सन) स्वर्ग और सकल सौभाग्य हमें दे (अथ नः वस्यसः कृधि) इसके अनन्तर हमें कल्याणयुक्त कर ॥ २ ॥

सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथानो० ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम ! (दक्षं क्रतुं सन) बल और यज्ञका फल हमें दे (मृधः अपजहि) शत्रुओंको मार (अथ नः वस्यसः कृधि) इस के अनन्तर हमें कल्याणका भागी कर ॥ ३ ॥

पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथानो० ॥ ४ ॥

(पवीतारः) हे सोमका संस्कार करनेवाले ऋत्विजो ! (इन्द्राय पातवे) इन्द्रके पीनेके लिये (सोमं पुनीतन) सोमको दशापवित्रसे शुद्ध करो (अथ नः वस्यसः कृधि) इसके अनंतर हमें कल्याणका भागी करो ॥ ४ ॥

त्वꣳ सूर्ये न आभज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथानो० ॥ ५ ॥

हे सोम ! (त्वम्) तू (तव क्रत्वा तव ऊतिभिः) अपनी कीहुई रक्षाओंसे (न सूर्ये आभज) हमें सूर्यके विषें उपासनामें लगा (अथ नः वस्यसः कृधि) इसके अनन्तर हमें कल्याणका भागी कर ॥ ५ ॥

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम् । अथानो० ॥ ६ ॥

हे सोम ! (तव क्रत्वा) तेरे दियेहुए ज्ञानके द्वारा (तव ऊतिभिः) तुम्हारी रक्षाओंमें रहकर (ज्योक् सूर्यं पश्येम) चिरकालपर्यन्त सूर्य को देखें (अथः नः वस्यसः कृधि) इसके अनन्तर हमें कल्याणका भागी करो ॥ ६ ॥

अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
अथानो० ॥ ७ ॥

(स्वायुध सोम) हे श्रेष्ठ आयुधोंवाले सोम (द्विबर्हसं रयिं अभ्यर्ष) द्यावापृथिवी दोनो स्थानके अत्यन्त दृढ़ धनको हम स्तोताओंके अर्थ दो (अथ नः वस्यसः कृधि) अनंतर हमें कल्याणका भागी करो ॥७॥

अभ्य३र्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः
अथानो० ॥ ८ ॥

(वाजिन्) हे बलवान् सोम ! (समत्सु अनपच्युतः) संग्रामोंमें शत्रुओंसे न दबनेवाला (सासहिः) शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाला तू (अभ्यर्ष) द्रोणकलशमें प्राप्त हो (अथ नः वस्यसः कृधि) इसके अनन्तर हमें कल्याणका भागी कर ॥ ८ ॥

त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि ।
अथानो० ॥ ९ ॥

(पवमान) हे शोधेजानेहुए सोम ! (त्वां विधर्मणि यज्ञैः अवीवृधन्) तुम्हें अनेकों फलोंवाले यज्ञमें यज्ञके साधन स्तोत्रोंसे यजमान बढ़ाते हैं (अथ नः वस्यसः कृधि) ऐसे होकर तुम हमें कल्याणका भागी करो ॥ ९ ॥

रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमाभर ।
अथानो वस्यसस्कृधि ॥ १० ॥

(इन्दो) हे सोम ! तू (नः) हमारे अर्थ (चित्रं अश्विनं विश्वायुं रयिं नः आभर) नानाप्रकारके अश्वोंवाले सर्वगामी धनको हमें दें (अथ नः वस्यसः कृधि) इसके अनतर हमें कल्याणका भागी कर ॥१०॥

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
तरत्स मन्दी धावति ॥ १ ॥

(मन्दी सः) देवताओंको हर्षदायक वह सोम (तरत् धावति) स्तोताओंको पापसे तारताहुआ दशापवित्रसे नीचे गिरता है (सुतस्य अन्धसः धारा) अभिषव कियेहुए देवताओंके अन्नरूप सोमकी धारा (धावति) दशापवित्रसे नीचे गिरती है (मन्दी सः) देवताओंको हर्षदायक वह सोम (तरत् धावति) स्तोताओंको पापसे तारताहुआ दशापवित्रसे नीचे टपकता है ॥ १ ॥

उस्रा वेद वसूनां मर्त्तस्य देव्यवसः ।
तरत्स मन्दी धावति ॥ २ ॥

(वसूनां उस्रा) सब प्रकारके धन देनेवाली (देवी) दिपतीहुई जिस सोमकी धारा (मर्त्तस्य अवसः वेद) यजमानकी रक्षा करनेको जानती है (सः मन्दी) वह देवताओंको आनन्द देनेवाला सोम (तरत् धावति) स्तोताओंको पापसे तारताहुआ दशापवित्रसे नीचे गिरताहै २

ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरासहस्राणि दद्महे ।
तरत्स मन्दी धावति ॥ ३ ॥

(ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योः) ध्वस्र और पुरुषन्तिके (सहस्राणि) सहस्रों संख्याके धनको (आदद्महे) हम ग्रहण करते हैं। वह धन हमारे लिये शुभ हो (मन्दी सः) देवताओंको आनन्द पहुँचानेवाला वह (तरत् धावति) यजमानोंको तारताहुआ चलाजाता है ॥ ३ ॥

आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे ।
तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥

(ययोः) जिन ध्वस्र और पुरुषन्तिके (त्रिंशतं सहस्राणि च) तीन सौ और सहस्र भी (तना) वस्त्रोंको (आदद्महे) हम स्वीकार करते हैं हे सोम ! वह सब हमें शुभ हों (मन्दी सः) देवताओंको आनन्द-दायक वह सोम (तरत् धावति) स्तोताओंको पापसे तारताहुआ दशापवित्रसे नीचे गिरता है ॥ ४ ॥

एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे ।
मदिन्तमस्य धारया ॥ १ ॥

(मदिन्तमस्य) देवताओंको परमानन्ददायक रसवाले (एते सो[illegible])

यह सोम (गृणानाः) स्तुति कियेजातेहुए (महे श्रवसे) हमारे बड़े-भारी यशके लिये (धारया, असृक्षत) धारसे पात्रमें जाते हैं ॥ १ ॥

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाजः परि स्रव ॥ २ ॥

हे सोम ! (वीतये) देवताओंके भक्षण करनेके लिये (नृम्णा गव्यानि) परमप्रिय गौके दूध घी आदिको (पुनानः अभ्यर्षसि) पवित्र करता हुआ पात्रमे जाताहै (सनद्वाजः परिस्रव) अन्न देनेवाला तू दशापवित्रमेंको बरस ॥ २ ॥

उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना ॥ ३ ॥

(उत) और हे सोम ! (जमदग्निना गृणानः) जमदग्निसे स्तुति कियाजाताहुआ तू (नः) हमारे अर्थ (गोमतीः) गौओंसेयुक्त (परिष्टुभः) सब ओरसे स्तुति करनेयोग्य (विश्वाः इषः) सकल अन्नों को (अर्ष) दे ॥ ३ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

इमꣳ स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया । भद्रा हि नः प्रमतिरस्य सꣳसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १ ॥

(अर्हते जातवेदसे) पूजनीय अग्निके अर्थ (मनीषया) तीक्ष्ण बुद्धि से (इमं स्तोमम्) इस सूक्तरूप स्तोत्रको (रथं इव) जैसे बढ़ई रथ को संस्कारयुक्त करता है तैसे (संमहेम) सम्यक् प्रकारसे पूजित करते हैं (अस्य सं सदि) इस अग्निकी सम्यक् प्रकार आराधना करने में (नः प्रमतिः) हमारी श्रेष्ठ बुद्धि (भद्रा हि) कल्याणरूप है इसमें कुछ सन्देह नही है (अग्ने) हे अग्निदेव (तव सख्ये) हमारी तुम्हारे साथ मित्रता होने पर (वयं मा रिषामः) हम किसीसे हिंसा न पावें अर्थात् हमारी रक्षा करो ॥ १ ॥

भरामेध्मं कृणवामा हवीꣳषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् । जीवातवे प्रतराꣳ सा-

धया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २

(अग्ने) हे अग्ने ! (इध्मं भराम) तेरे यागके लिये इक्कीस पदार्थों की समिधाओंके समूहको सम्पादन करते हैं (वयम्) हम (पर्वणापर्वणा चिन्तयन्तः) पूर्णिमा और अमावस्याको दर्शपौर्णमास यागोंके द्वारा (चितयन्तः) तुम्हे ज्ञापन करतेहुए (ते) तुम्हारे अर्थ (हवींषि कृणवाम) चरु पुरोडाश आदि हवियोंको करते हैं वह तू (जीवातवे) हमारे चिरकाल जीवनके लिये (धियः प्रतरां साधय) अग्निहोत्र आदि कर्मोंको उत्तमताके साथ सिद्ध करो (अग्ने तव सख्ये वयं मा रिषाम) हे अग्निदेव ! हमारी तुम्हारे साथ मित्रता होनेपर हम किसी से हिंसित न हों ॥ २ ॥

शकेम त्वा समिधꣳ साधय धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्। त्वमादित्याꣳ आ वह तान् ह्यु३ श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३॥

हे अग्ने ! (त्वा समिधं शकेम) हम तुम्हें सम्यक् प्रकार प्रज्वलित करसकें । तुम भी (धियः साधय) हमारे दर्शपूर्णमास आदि कर्मोंको सिद्ध करो (त्वे आहुतं हविः) तुझ अग्निमें ऋत्विजोंके द्वारा होमेहुए चरु पुरोडाश आदि हविको (देवाः अदन्ति) देवता भक्षण करते हैं (त्वं आदित्यान् आवह) तुम अदितिके पुत्र सब देवताओंको हमारे यज्ञमें लाओ (तान् हि उश्मसि) उनको इस समय हम चाहते हैं (अग्ने तव सख्ये वयं मा रिषामः) हे अग्निदेव ! हमारी तुम्हारे साथ मित्रता होने पर हम किसीसे हिंसित न हों ॥ ३ ॥

प्रति वाꣳ सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्। अर्य्यमणꣳ रिशादसम् ॥ १ ॥

हे मित्रावरुण देवताओ (सूरे उदिते) सूर्य देवका उदय होनेपर अर्थात् प्रातःकालके समय (मित्रम्) तुझ मित्र देवता को (वरुणम्) वरुणको (वाम्) तुम दोनोंको (रिशादसम्) शत्रुओंको खानेवाले (अर्यमणम्) अर्यमा देवताको (प्रति गृणीषे) प्रत्येक की स्तुति करता हूँ

राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ॥ २ ॥

(इयं मतिः) इस समय की हुई यह हमारी स्तुति (हिरण्यया) हितकारी और रमणीय (राया) धनसहित (अधृकाय शवसे) किसीसे खण्डित न होनेवाले बलकी प्राप्तिके लिये हो (विप्राः) हे विप्रो! (इयम्) यह स्तुति (मेधसातये) हमारी यज्ञप्राप्तिके लिये हो ॥ २ ॥

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह ।
इषꣳ स्वश्च धीमहि ॥ ३ ॥

(देव वरुण) हे वरुणदेव ! (सूरिभिः सह) ऋत्विजों सहित (ते) तेरे स्तोता हम (स्याम) सम्पत्तिमान् हो (मित्र) हे मित्र (ते) तेरे स्तोता हम ऋत्विजों सहित सम्पत्तिमान् हों (इषं च स्वः धीमहि) अन्न और स्वर्ग को वा सुवर्णको धारण करें ॥ ३ ॥

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥

हे इंद्र ! तुम (विश्वाः द्विषः अपभिन्धि) सकल शत्रुसेनाओंको विदीर्ण करो (बाधः मृधः परिजहि) हिंसक संग्रामोंका तुम तिरस्कार करो (स्पार्ह वसु) शत्रुओंका जो ललचानेवाला धन है (तत् आभर) वह हमें दो ॥ १ ॥

यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥

हे इंद्र (ते दत्तस्य भूरेः यस्य) तुम्हें दियेहुए बहुतसे जिस (विश्वम्) सकल धनको (आनुषक् वेदति) मनुष्य आनुपूर्वीसे निरंतर जानता है (तत् स्पार्हं वसु) उस चाहनेयोग्य धनको (नः आभर) हमें दो ॥२॥

यद्वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ३ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र ! तुमने (यत् वीडौ) जो धन दूसरोंसे विचलित न होनेवाले मनुष्योंमें (यत् स्थिरे) जो धन स्वयं अचल मनुष्यमें (यत् विपर्शाने) जो धन विचारशील मनुष्यमें (पराभृतम्) स्थापन किया है (तत् स्पार्हं वसु नः आभर) वह इच्छा करनेयोग्य धन हमें दो ।३।

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्म्मसु

इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इंद्र अग्नि देवताओं ! तुम (हि) निश्चय (यज्ञस्य ऋत्विजाः स्थः) ज्योतिष्टोम आदि यज्ञके समय समय पर यजन करनेयोग्य हो (वाजेषु कर्मसु) संग्रामोमें और यज्ञरूप कर्मोंमें (सस्नी) शुद्ध होतेहुए (तस्य बोधतम्) तिस मेरी स्तुतिको जानो १

तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता ।

इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ २ ॥

(तोशासा रथयावाना वृत्रहणा अपराजिता इन्द्राग्नी) शत्रुओं को मारनेवाले रथमें यात्रा करनेवाले वृत्रासुरके नाशक किसीसे भी पराजय न पायेहुए हे इन्द्र और अग्नि देवताओ (तस्य बोधतम्) तिस मेरी स्तुतिको जान ॥ २॥

इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः ।

इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ ३ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र अग्नि देवताओं! (वाम्) तुम्हारे अर्थ (अद्रिभिः मदिरं मधु अधुक्षन्) ऋत्विजोंने पाषाणोंसे मदकारी सोमरूप अमृत को निचोड़कर पात्रोंमें भराहै (तस्य बोधतम्) तिस मेरी स्तुतिको तुम जानो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।

अर्कस्य योनिमासदम् ॥ १ ॥

(इन्दो) हे सोम (मधुमत्तमः) अति मधुरतायुक्त (अर्कस्ययोनिं आसदम्) पूजनीय यज्ञके स्थानमें बैठनेको (मरुत्वते इन्द्राय पवस्व) मरुतों सहित इन्द्रके अर्थ वरस ॥ १ ॥

तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् । सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २ ॥

हे सोम ! (तं धर्णसिं त्वाम्) तिस धारण करनेवाले तुझको (विप्राः वचोविदः) बुद्धिमान् स्तोता (परिष्कृण्वन्ति) सुशोभित करते हैं (आयवः त्वा संमृजन्ति) मनुष्य तुझको भलेप्रकार शोधन करते हैं २

रसं ते मित्रो अर्य्यमा पिबन्तु वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥

(कवे) हे कर्मसाधक सोम ! (पवमानस्य ते रसम्) संस्कार कियेहुए तेरे रसको (मित्रः) मित्र देवता (अर्यमा) अर्यमा देवता (वरुणः) वरुण देवता (मरुतः) (मरुतः) मरुत् देवता (पिबन्तु) पियें ॥ ३ ॥

मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि । रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि

(सुहस्त्या) हे सुन्दर अंगुलियोंसे सुधारेहुए सोम (मृज्यमानः, समुद्रे वाचम् इन्वसि) शोधन कियाजाताहुआ तू कलशमें शब्दको प्रेरणा करताहै (पवमान) हे पूयमान सोम ! (पिशङ्गं पुरुस्पृहं बहुलं रयिं अभ्यर्षसि) तुम स्तोताओंको सुवर्णके कारण पीतवर्ण अनेकोंके चाहनेयोग्य बहुतसा धन देते हो ॥ १ ॥

पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने । देवानाᳬ सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥ २ ॥

(वृषः पुनानः) मनोरथ पूर्ण करनेवाला सोम संस्कार कियाजाता हुआ सबको शुद्ध करै (अव्यये वारे पवमानः) ऊनके दशापवित्रमें छानाजाताहुआ (वने अचिक्रदत्) जलमें शब्द करताहुआ (सोम) हे सोम (पवमान) पूयमान तू (गोभिः अञ्जानः) गौके दुग्ध घृतादि से मिलायाजाताहुआ (निष्कृतम् अर्षसि) देवताओंके संस्कार किये हुए स्थानको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । समादित्येभिरख्यत ॥ १ ॥

(सिन्धुमातरम्) नौ समुद्र हैं माता जिसकी ऐसे (त्यं एतम्) तिस इस सोमको (दश क्षिपः मृजन्ति) दश अंगुलियें शोधती हैं और यह (आदित्येभिः समख्यत) आदित्योंके साथ मिलता है ॥१॥

सम्मिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ।

सᳬ सूर्य्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥

(सुतः) अभिषव कियाहुआ सोम (पवित्रे) कलशमें (इंद्रेण समं एति) इन्द्रके साथ युक्त होता है (उत वायुना आ) और वायुके साथ युक्त होता है (सूर्यस्य रश्मिभिः सम्) सूर्यकी किरणोंके साथ मिलता है ॥ २ ॥

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान्।

चारुर्मित्रे वरुणे च ॥ ३ ॥

हे सोम ! (मधुरः चारुः सः) मधुर रसवाला कल्याणरूप वह तू (नः) हमारे यज्ञमें (भगाय वायवे पूष्णे मित्रे वरुणे च पवस्व) भग वायु पूषा मित्र और वरुण देवताके अर्थ बरस ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः खंडः समाप्तः

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः।

क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥

(क्षुमन्तः) अन्नवान् हम (याभिः) जिन गौओंके साथ (मदेम) आनन्द भोगते हैं (इन्द्रे सधमादे) इन्द्रके हमारे साथ हर्षयुक्त होने पर (नः) हमारी वह गौएं (रेवतीः तुविवाजाः) घी दूध आदिवालीं और बलवालीं हों ॥ १ ॥

आ घ त्वावां त्मना युक्त स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः। ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २ ॥

(धृष्णो) हे धृष्टतायुक्त इन्द्र ! (त्वावान्) तुझसा देवता (त्मना युक्तः) हमारे ऊपर अनुग्रह बुद्धिसे युक्त होकर (ईयानः) हमारा याचना कियाहुआ (स्तोतृभ्यः) स्तोताओंके ऊपर अनुग्रह करनेको उनके इच्छित पदार्थको (घ आ ऋणोः) अवश्य ही लाकर डालै (चक्र्योः अक्षं न) जैसे कि रथके पहियोंमें धुरी डालते हैं ॥ २॥

आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम्।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥

(शतक्रतो) हे इन्द्र ! (यत् दुवः कामम्) जो इच्छित धनकी प्राप्ति रूप स्तोताओंकी कामना है उसको (जरितॄणाम्) स्तोताओंके ऊपर अनुग्रह करनेको (आऋणोः) लाकर डालो (शचीभिः अक्षं न) जैसे कि गाड़ीके योग्य व्यापारोंसे धुरीको लाकर डालते हैं ॥ ३ ॥

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

(सुरूपकृत्नुम्) सुन्दररूपयुक्त कर्मके कर्त्ता इन्द्रको (ऊतये) अरक्षाके लिये (द्यवि द्यवि) प्रतिदिन (जुहूमसि) आह्वान करते हैं (गोदुहे सुदुघां इव) जैसे गौएं दुहनेवालेके लिये सुंदर दूध देनेवाली गौओंको पुकारते हैं ॥ १ ॥

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब ।
गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥

(सोमपाः) हे सोम पीनेवाले इन्द्र ! सोम पीनेको (नः सवना उप आगहि) हमारे तीनों सवनोंके समीप आओ (सोमस्य पिब) सोमको पियो (रेवतः मदः) धनवान् तुम्हारा प्रसन्न होना (गोदा इत्) गौओंकी प्राप्ति करानेवाला ही है ॥ २॥

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आगहि ॥ ३ ॥

(अथ) सोमपानके अनन्तर हे इन्द्र (ते अन्तमानां सुमतीनां विद्याम) तेरे अत्यन्त समीप वर्त्तमान सुंदर बुद्धिवाले पुरुषोंमें स्थित होकर हम तुम्हे जानै । तुम भी (आगहि) आओ । और (नः अती) हमै छोडकर (माख्यः) हमसे अन्य पुरुषसे अपना स्वरूप मतकहो ३

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
महान्तं त्वा महीनाꣳ सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ १ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र ! (उभे रोदसी) द्यावा पृथिवी दोनोंको (यत् आप प्राथ) जो तू पूर्ण करताहै (उपा इव) जैसे कि उषा अपने प्रकाशसे सब जगत्का भरदेती है (महीनां महांतम्) बड़ोंके बड़े (चर्षणीनां सम्राजं त्वा) मनुष्योंके ईश्वर तुमको (देवी जनित्री) अदिति देवीरूपा माता (अजीजनत्) उत्पन्न करती हुई । इस कारण वह (भद्रा, जनित्री अजीजनत्) श्रेष्ठ माता हुई ॥ १ ॥

दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः ।
पूर्वेण मघवन्पदा वयामजो यथा यमः ।
देवीजनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥२॥

(मन्तुम) हे ज्ञानवान इंद्र ! (दीर्घं अंकुशं यथा) बड़े अकुशकी समान (शक्तिं बिभर्षि) शक्ति नामक शस्त्रको धारण करते हो (मघवन्) हे धनवान् इंद्र (यथा अजः पूर्वेण पदा) जैसे बकरा अगले चरणमें (वयां, यमः) शाखाको खेंचता है तैसे तुम शत्रुओंको खेंचते हो (देवी जनित्री अजीजनत्) अदिति देवीने तुमको प्रकट किया है (भद्रा जनित्री अजीजनत्) इस कारण वह श्रेष्ठ माता हुई ॥ २ ॥

अव स्म दुर्हृणायतो मर्त्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्मांॅ अभिदासति । देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ ३ ॥

(दुर्हृणायतः मर्त्तस्य) दुःखदायक हरण करनेवाले मनुष्य शत्रुके (स्थिर अवतनुहि) दृढ़ बलको क्षीण करो (यः अस्मान् अभिदासति) जो हमें मारना चाहता है (तम् ईम्) उस इस शत्रुको (अधस्पदं कृधि) अपने चरणके नीचे दबाहुआ करो (देवी जनित्री अजीजनत्) तुम्हें अदिति देवीरूपा माताने प्रकट किया है (भद्रा जनित्री अजीजनत्) इसकारण वह श्रेष्ठ माता हुई ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ १ ॥

(गिरिष्ठाः स्वानः सोमः) पाषाणोंके मध्यमें स्थित शब्द करताहुआ सोम (पवित्रे पर्यक्षरत्) दशापवित्रमेंको चारों ओरको टपकता है हे सोम ! तू (मदेषु सर्वधा असि) मदकारी सवन करनेवालोंमें सबका पोषण करनेवाला है ॥ १ ॥

त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः । मदेषु सर्वधा असि ॥ २ ॥

हे सोम ! (त्वं विप्रः) तू विशेष तृप्त करनेवाला है (त्वं कविः) तू बुद्धिवर्धक है इसकारण तू (अन्धसः जातं मधु प्र) अन्नसे उत्पन्न हुए मधुररसको देताहै (मदेषु सर्वधा असि) मादकोंमें सबका धारकहै२

त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत । मदेषु सर्वधा असि ॥ ३ ॥

हे साम (विश्वे देवासः) सकल देवता (सजोषसः) समान प्रीतिवाले होकर (त्वे पीतिम्) तेरे पानको (आशत) प्राप्तहुए (मदेषु सर्वधा असि) तू मादकोंमें सबका धारण वा सकल मनोरथोंका दाताहै३

स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १ ॥

(यः सोमः) जो सोम (वसूनां आनेता) धनोंका लानेवाला है (यः रायाम्) जो दूधवाली गौओं को लानेवाला है (यः इडानाम्) जो अन्नोंका लानेवाला है (यः सुक्षितीनाम्) जो सुन्दर पुत्र भृत्यादि युक्त स्थानोंको देनेवालाहै (सः सुन्वे) वह सोम ऋत्विजोंके द्वारा सुसिद्ध कियागया ॥ १ ॥

यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्य्यमणा भगः । आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥ २ ॥

हे सोम ! (यस्य ते इन्द्रः पिबात्) जिस तेरे रसको इन्द्र पीता है (यस्य मरुतः) जिसको मरुत् पीते हैं (वा) और (अर्यमणा भगः यस्य) अर्यमाके साथ भग देवता जिसको पीता है (येन महे अवसे मित्रावरुणा आ, इन्द्रं आ) जिस सोमके द्वारा बड़ीभारी रक्षाके लिये

मित्रावरुण देवताको अभिमुख करते है और इन्द्र देवताको अभिमुख करते हैं ॥ २ ॥

तं व. सखायो मदाय पुनानमभि गायत।
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्त्तिभिः ॥ १ ॥

(सखायः) हे मित्र ऋत्विजो ! (व मदाय पुनानं तं अभि गायत) तुम देवताओंके मदके लिये पूयमान सोमकी स्तुति करो (शिशुं न) जैसे बालकको आभूषणोंसे और दुग्ध आदि पिलानेसे सुंदर करते हैं तैसे ही सोमको (हव्यैः गूर्त्तिभिः स्वदयन्त) हवि और स्तुतियोंसे स्वादयुक्तकरो ॥ १ ॥

सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते।
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥

(देवावीः मदः मतिभिः परिष्कृतः हिन्वानः इन्दुः समज्यते) देवताओंका रक्षक आनन्ददायक और स्तुतियोंसे शोभायमान प्रेरणा कियाजाता हुआ सोम वसतीवरी जलोंसे भलेप्रकार सींचाजाता है (मातृभिः वत्सः इव) जैसे कि—बछडा माता गौओंके द्वारा प्रेमसे सींचा जाता है ॥ २ ॥

अयं दक्षाय साधनोऽयꣳ शर्धाय वीतये।
अयं देवेभ्यो मधुमत्तर सुतः ॥ ३ ॥

(अयं दक्षाय साधनः) यह सोम बल बढ़ानेके लिये साधन है (अयं शर्धाय वीतये) यह सोम बल प्राप्ति और देवताओंके भक्षण के लिये है (अयं सुतः देवेभ्यः मधुमत्तरः) यह सोम अभिषव किया हुआ इन्द्रादि देवताओंके लिये परममधुरतायुक्त होता है ॥ ३ ॥

सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः।
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः १

(मित्राः) देवताओंके मित्ररूप (स्वानाः) संस्कार कियेजाते हुए (अरेपसः स्वाध्यः) पापरहित और ध्यान करनेमें सुन्दर (स्वर्विदः गातुवित्तमाः इन्दवः सोमाः) सर्वज्ञ वा स्वर्गदायक मार्गके प्राप्त करानेवाले और दीप्तियुक्त सोम (अस्मभ्यम् पवन्ते) हमारे अर्थ कलशमें प्राप्त होतेहैं ॥ १ ॥

ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः।
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥२॥

(पूतासः विपश्चितः) पवित्र और बुद्धिको बढ़ानेवाले (दध्याशिरः घृते जिगत्नवः) दधिसे मिले और वसतीवरी जलमें जानेवाले (ध्रुवाः ते सोमासः) निस पात्रमें स्थिर रहनेवाले वह सोम (सूरासः न) सूर्योंकी समान (दर्शतासः) पात्रोंमें सबके दर्शन योग्य हैं॥ २ ॥

सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि।
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥३॥

(गोः अधि त्वचि) गौकी कांतिरूप दूधमें (चिताना:) दीखनेवाले (विअद्रिभिः सुष्वाणासः) अनेक प्रकारके पाषाणोंसे कूटेजाते हुए (वसुविदः) धनदेनेवाले यह सोम (अस्मभ्यं अभितः इष समस्वरन्) हमें चारों ओरसे अन्न देते हैं ॥ ३ ॥

अया पवा पवस्वैना वसूनि माꣳश्चत्व इन्दो सरसि प्रधन्व। ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥ १ ॥

हे सोम ! (अया पवा) इस पवित्र करनेवाली धारासे (एना वसूनि) इन धनोंको (पवस्व) वरसा (इन्दो मांश्चत्वे सरसि प्रधन्व) हे सोम ! प्रतिष्ठा करनेवालोंको प्राप्त होनेवाला वसतीवरी जलमें पहुँच (यस्य) जिस सोमका शोधन होने पर (ब्रध्नश्चित्) सबका मूलभूत आदित्य भी (वातः न) वायुकी समान (जूतिम्) वेगको प्राप्तहुआ (पुरुमेधश्चित्) अधिक बुद्धिवाला इन्द्र भी (तकवे मह्यम्) सोमको प्राप्त होनेवाले मुझे (नरं धात्) यज्ञादि कर्म करनेवाला पुत्र देय॥१॥

उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे। षष्टिꣳ सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥ २ ॥

हे सोम (उत) और (श्रवाय्यस्य तीर्थे) सबके सुननेयोग्य तेरे स्थान (नः श्रुते) हमारे प्रसिद्ध यज्ञमें (एना पवया) इस पवित्र

धारासे (पवस्व) बरस (नैगुतः) सोम (षष्टिं सहस्रा वसूनि) साठ सहस्र धनोंको (रणाय) शत्रुओंके जीतनेके लिये (धनवत) हमें देता-हुआ (वृक्षं न पक्वम्) जैसे पक्के फलों वाला वृक्ष फलार्थी को फल देता है ॥ २॥

महीमे अस्य वृषनाम शूषे, माछंश्वत्वे वा पृशने वा वधत्रे । अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥ ३ ॥

(मही) बहुत (वृषनाम) बाणोंका बरसाना और शत्रुओंको नमाना (इमे अस्य शूषे) यह दोनो कर्म इस सोमके सुखदायक होते हैं। जो कर्म (मांश्चत्वे) घोड़ोंके द्वारा होनेवाले युद्धमें (वा पृशने) या बाहु-युद्धमें (वा वधत्रे) अथवा शत्रुनाशन युद्धमें (निगुतः अस्वापयन्) शत्रुओंको मारताहुआ (स्नेहयत्) युद्धसे शत्रुओंको भगाताहुआ । हे सोम (अमित्रान् अपाचेत) शत्रुओंको दूर कर (अपाचितः इतः) अग्नि होत्र न करनेवालोंको हमारे पाससे अलग कर ॥ ३ ॥

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो । भुवो वरूथ्यः ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (वरूथ्यः) भजनेयोग्य (त्वम्) तू (नः अन्तमः) हमारे अत्यन्त समीप (उत) और (त्राता) रक्षक (शिवः) सुखकारी (भवः) हो ॥ १ ॥

वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो । रयिं दाः ॥ २ ॥

(वसुः) व्यापक (वसुश्रवा) व्यापक अन्नवाला (अग्निः) सब का अग्रणी अग्नि तू (अच्छ नक्षि) हमारे अभिमुख होकर व्याप्त हो (द्युमत्तमः रयिं दाः) अत्यन्त दीप्तिमान् तू हमें धन दे॥ २॥

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ३ ॥

(शोचिष्ठ दीदिवः) हे अत्यन्त कान्तिमान् अपने तेजोंसे दीप्त अग्नि

देव ! (तं त्वा सुम्नाय सखिभ्यः) ऐसे तुम्हें सुखके लिये और पुत्रादि हितकारियोंके लिये (नूनं ईमहे) अवश्य ही प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः

(इमा भुवनानि) यह सब भुवन (नु कं सीषधेम) शीघ्र ही हमारे सुखका साधन करैं (इन्द्रः च विश्वे देवाः च) इन्द्र और विश्वेदेवा भी मेरे इस मनोरथको सिद्ध करैं ॥ १ ॥

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु ॥ २ ॥

(आदित्यैः सह इन्द्रः) अदितिके पुत्र अन्य देवताओं सहित इन्द्र (नः यज्ञं च तन्वं च प्रजाश्च सीषधातु) हमारे यज्ञको भी शरीरको भी और सन्तानको भी सफलमनोरथ करै ॥ २ ॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ॥ ३ ॥

(आदित्यैः मरुद्भिः सगणः इन्द्रः) अदितिके पुत्र मित्रादि देवता, मरुत् और गणों सहित इन्द्र (अस्मभ्यं भेषजा करत्) हमारे लिये कार्यसाधक औषधोंका सम्पादन करैं ॥ ३ ॥

प्रवोर्चोप ॥ १ ॥

हे ऋत्विक् यजमानो ! (वः उप प्रार्च) तुम समीप होकर इन्द्रका भले प्रकार पूजन करो ॥ १ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्ड. सप्तमाध्यायश्च समाप्त.

अष्टम अध्याय ।

प्रकाव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति । महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥ १ ॥

(उशना इव) उशना ऋषिकी समान (काव्यं ब्रुवाणः देवः) स्तोत्रका उच्चारण करताहुआ स्तोता (देवानां जनिमा प्र विवक्ति) इन्द्रादि देवताओंके प्रकट होनेको उत्तमतासे कहता है (महिव्रतः)

अनेकों पराक्रमवाला (शुचिबन्धुः पावकः वराहः) दीप्त तेजवाला पापों का शोधक श्रेष्ठ दिनमें संस्कार कियाहुआ सोम (रेभन् पदा अभ्येति) शब्द करताहुआ पात्रोंमें जाता है ॥ १ ॥

प्रहꣳसासस्तृपला वग्नुमच्छाऽमादस्तं वृषगणा अयासुः । अङ्गोषिणं पवमानꣳ सखायो, दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम् ॥ २ ॥

(हंसासः वृषगणाः) शत्रुओंके सतायेहुए वृषगण नामक ऋषि (अमात्) शत्रुओंके बलसे त्रासित हो (तृपला, वग्नुं, अच्छ, अस्तं, प्र अयासुः) शीघ्र ही अभिषवके शब्दकी ओरको लक्ष्य करके यज्ञशाला में पहुँचे (सखायः) मित्ररूप स्तोता (अङ्गोषिणं, दुर्मर्षं, पवमानं, वाणं साकं प्रवदन्ति) स्तोत्रकेयोग्य शत्रुओंको असह्य सोमके निमित्त वाणनामक बाजेको एकसाथ बजातेहुए ॥ २ ॥

स योजत उरुगायस्य जूतिं, वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः । परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥ ३ ॥

(सः उरुगायस्य जूतिं योजते) वह, अनेकोंसे स्तुति कियेहुए अपनी, गतिको अन्तरिक्षमें प्रेरणा करता है (वृथा क्रीडन्तं गावः न मिमते) अनायास गमन करतेहुए सोमकी गतिका अन्य गमन करनेवाले माप नहीं करसकते (तिग्मशृङ्गः परीणसं कृणुते) तीक्ष्णतेजवाला अन्तरिक्ष चारी सोम अनेकों प्रकारके तेजको फैलाता है (दिवा हरिः ददृशे) दिनमें हरे वर्णका दीखता है (नक्तं ऋज्रः) रात्रिमें स्पष्ट प्रकाशयुक्त दीखता है ॥ ३ ॥

प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः ॥ ४ ॥

(स्वानासः सोमासः) अभिषवके समय पात्रोंमें शब्द करतेहुए सोम (रथाः इव) शब्दायमान रथोंकी समान (अर्वन्तो न) हींसते हुए घोड़ोंकी समान (श्रवस्यवः) शत्रुओंसे अन्न लेना चाहतेहुए (राये प्राक्रमुः) यजमानोंके धनके लिये पराक्रम करते हैं ॥ ४ ॥

हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः ।
भरासः कारिणामिव ॥ ५ ॥

युद्धमें जातेहुए (रथा इव) रथोंकी समान (हिन्वानासः) यज्ञमें जातेहुए सोम (गभस्त्योः दधन्विरे) ऋत्विजोंकी भुजाओंमें स्थापन कियेजाते हैं (भरासः कारिणां इव) भारवाहियोंके हाथोंमें जैसे ॥५॥

राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते
यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ६ ॥

(सोमासः) सोम (प्रशस्तिभिः राजानः न) स्तुतिरूप वाणियोंसे राजे जैसे (सप्त धातृभिः यज्ञः न) सात होत्राओंसे यज्ञ जैसे (गोभिः अञ्जते) गोघृतादिसे संस्कार कियेजाते हैं ॥ ६ ॥

परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।
मधो अर्षन्ति धारया ॥ ७ ॥

(स्वानासः इन्दवः) अभिषव कियेजातेहुए सोम (बर्हणा गिरा) बड़ीभारी स्तुतिरूप वाणीसे युक्त होकर (मदाय मधोः धारया परि अर्षन्ति) मदके लिये मधुररसकी धारासे चारों ओरसे बरसते हैं ७

अपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम् ।
सूरा अण्वं वितन्वते ॥ ८ ॥

(विवस्वतः आपानासः) इन्द्रके पीनेकी वस्तुरूप (उषसः भगं जिन्वन्तः) उषाकी शोभाको फैलातेहुए (सूराः) सोम (अण्वं वितन्वते) अभिषवके समय शब्दको करते हैं ॥ ८ ॥

अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः ।
वृष्णो हरस आयवः ॥ ९ ॥

(मतीनां कारवः) स्तुतियोंके कर्त्ता (प्रत्नाः) पुरातन (वृष्णः हरसः) सोमको लानेवाले (आयवः) मनुष्य ऋत्विज (द्वारा) अप ऋण्वन्ति) यज्ञके द्वारोंको खोलते हैं ॥ ९ ॥

समीचीनास आशत होतारः सप्त जानयः ।
पदमेकस्य पिप्रतः ॥ १० ॥

(समीचीनासः) श्रेष्ठ (जानयः) जातिमें सदृश (एकस्य पदं पिप्रतः) सोमके स्थानको पूर्ण करतेहुए (सम आशत) सात होता व्यापते हैं अर्थात् कर्मानुष्ठानमें लगते हैं ॥ १० ॥

नाभा नाभिं न आददे चक्षुषा सूर्यं दृशे ।
कवेरपत्यमादुहे ॥ ११ ॥

(चक्षुषा सूर्यं दृशे) चक्षुसे सूर्यके देखनेको (नाभिं नः नाभा आददे) यज्ञकी नाभिरूप सोमको मैं अपनी नाभिमें ग्रहण करता हूँ अर्थात् सोमको पीकर नाभिस्थानमें पहुँचाता हूँ (कवेः अपत्यं आदुहे) सोमकी किरणको पूर्ण करता हूँ ॥ ११ ॥

अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् ।
सूरः पश्यति चक्षसा ॥ १२ ॥

(सूरः) श्रेष्ठ पराक्रमवाला इन्द्र (चक्षसा) चक्षुसे (दिवः प्रियं, पदम) अपने प्रीतिपात्र (गुहा हितम) अध्वर्युओं करके हृदयमें स्थापन कियेहुए अर्थात् पियेहुए सोमको (अभिपश्यति) देखता है ॥१२॥

सामवेदोत्तरार्चिके अष्टमाध्यायस्य प्रथम खण्ड समाप्त

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः ।
विदाना अस्य योजना ॥ १ ॥

(अस्य योजना विदानः) इस यजमानके कियेहुए तिन देवताओं के योग्य संबन्धोंको जानतेहुए (सुश्रियः इन्दवः) शोभायमान सोम (धर्मन् ऋतस्य पथा असृग्रम) कर्ममें यज्ञके मार्गसे रचेजाते हैं ॥१॥

प्र धारामधो अग्रियो महीरपो विगाहते ।
हविर्हविःषु वन्द्यः ॥ २ ॥

(हविःषु वन्द्यः हविः) हवियोंमें प्रशंसाके योग्य हविरूप सोम (महीः अपः विगाहते) बहुतसे जलोंका विलोड़न करताहै (मधोः अग्रियः धाराः प्र) सोमकी मुख्य धारें पड़ती हैं ॥ २ ॥

प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने ।
सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥ ३ ॥

(अग्रियः युजाः वाचः प्र) हवियोंमें मुख्य सोम युक्त वाणियोंको प्रकट करता है (वृषः सत्यः अध्वरः) मनोरथपूरक सत्यस्वरूप हिंसा से रहित सोम (सद्म, अभि, वने, अचिक्रदत्) यज्ञशालाके प्रति जल में शब्द करता है ॥ ३ ॥

परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति ।
स्वर्वाजी सिषासति ॥ ४ ॥

(कविः नृम्णा पुनानः) सोम बलोंका शोधन करताहुआ (काव्या यद् परिअर्षति) स्तोत्रोंको जब प्राप्त होता है तब (स्वः वाजी सिषासति) स्वर्गमें बलवान् अन्नवान् इन्द्र यज्ञमें आनेको अपने बलका सेवन करना चाहता है ॥ ४ ॥

पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति ।
यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥ ५ ॥

(यद् ईम् वेधसः ऋण्वन्ति) जब इस सोमको कर्मोंके कर्त्ता ऋत्विज प्रेरणा करते हैं तब (पवमानः स्पृधः अभिसीदति) बरसता हुआ यह सोम स्पर्धा करनेवाले यज्ञमें विघ्नकारी राक्षसादिको नष्ट करनेको पहुँचता है (विशः राजा इव) जैसे कि—राजा स्पर्धा करने वाले मनुष्योंको नाश करनेको जाता है ॥ ५ ॥

अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति ।
रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥

(हरि प्रियः) हरे वर्णका और देवताओंका प्यारा सोम (वनेषु) जलोंमें मिलाहुआ (अव्याः वारे परिसीदति) ऊनके पवित्रमें छनता है (रेभः मती वनुष्यते) अभिषवके समय शब्द करताहुआ स्तुतिसे सेवन कियाजाता है ॥ ६ ॥

स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति ।
रणा यो अस्य धर्मणा ॥ ७ ॥

(यः, अस्य, धर्मणा, रण) जो यजमान सोमके कर्मण अभिषव आदि कर्मोंसे क्रीड़ा करता है (सः वायु इन्द्रं अश्विना मदेन साकं गच्छति) वह यजमान वायु इन्द्र और अश्विनीकुमारको मदके सहित पाता है ॥ ७ ॥

आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ॥ ८ ॥

जिन यजमानोंकी (मधोः ऊर्मयः) सोमकी तरङ्गे (मित्रावरुणा भगं पवन्ते) मित्रावरुण देवता और भग देवताके अर्थ बरसती हैं वह यजमान (अस्य सोमस्य विदानः) इस सोमको जानतेहुए (शक्मभिः) सुखोंसे युक्त होते हैं ॥ ८ ॥

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसूनि संजितम् ॥ ९ ॥

(रोदसी) हे द्यावापृथिवी के अधिष्ठात्री देवताओ ! तुम (मध्वः वाजस्य सातये) देवताओंको हर्ष देनेवाले सोमरूप अन्नके लाभ के लिये (अस्मभ्यं रयिं श्रवः वसूनि संजितम्) हमें धन अन्न और पशु आदि सम्पत्तियें दो ॥ ९ ॥

आ ते दक्षं मयो भुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ १० ॥

हे सोम ! हम यजन करनेवाले (ते दक्षं अद्य आवृणीमहे) तेरे बल कीआज अभिमुख होकर आराधना करते हैं।वह तेरा बल(मयोभुवम्) सुखको उत्पन्न करनेवाला (वह्निम्) धनादिकी प्राप्ति करानेवाला (पान्तम्) शत्रुओं से रक्षा करनेवाला और (पुरुस्पृहम्) कामना सिद्धिके निमित्त अनेकों के चाहने योग्य है ॥ १० ॥

आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ ११ ॥

हे सोम ! (मन्द्रम् आ) मदकारी तेरी आराधना करते हैं (वरेण्यं आ) सबके सेवनीय तेरी सेवा करते हैं (विप्रम् आ) तुझ बुद्धिमान् की आराधना करते हैं (मनीषिणम् आ) तुझ स्तुतिवाले की आराधना करते हैं (पान्तं पुरुस्पृहं आ) सबकी रक्षा करनेवाले और अनेकों के चाहनेयोग्य तेरी आराधना करते हैं ॥ ११ ॥

आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥

(सुक्रतो) हे श्रेष्ठ बुद्धिवाले सोम ! (रयिं आ) धनकी प्रार्थना करते हैं (सुचेतुनं आ) श्रेष्ठ ज्ञानकी प्रार्थना करते हैं ((तनूषु आ) अपने पुत्रोंमें धन और श्रेष्ठ ज्ञानकी प्रार्थना करते हैं (पान्तं पुरुस्पृहं आ) सबकी रक्षा करनेवाले और अनेकोंके चाहने योग्य तेरी हम आराधना करते हैं ॥ १२ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके अष्टमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या, वैश्वानरमृत आजातमग्निम् । कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥

(दिवः मूर्धानम्) द्युलोकके मस्तकरूप (पृथिव्याः अरतिम्) पृथिवीके स्वामी (वैश्वानरम् (सकल मनुष्योंसे संबन्ध रखनेवाले (ऋते आ जातम्) यज्ञके निमित्त सृष्टिकी आदि में उत्पन्न हुए (कविं सम्राजम्) क्रान्तकर्मा और भलेप्रकार विराजमान (जनानां अतिथिम्) यजमानोंके अतिथिकी समान पूजनीय (आसन्) देवताओंके मुखरूप (नः) हमारे (पात्रम) रक्षक वैश्वानर अग्निको (देवाः) देवता वा ऋत्विज (आजनयन्त) यज्ञमें अरणियोंसे प्रकट करतेहुए ॥ १ ॥

त्वां विश्वे अमृत जायमानꣳ, शिशुं न देवा अभि संनवन्ते । तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्, वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥ २ ॥

(अमृत) हे अमर अग्ने (विश्वे देवाः) सकल स्तुति करनेवाले (जायमानं त्वाम) अरणियोंसे प्रकट होतेहुए तुझको (शिशुं न अभिसनवन्ते) बालककी समान सराहते हैं (वैश्वानर) हे अग्ने ! (यद्, पित्रोः अदीदे) जब पालन करनेवाले द्यावापृथिवीके मध्यमें दीप्त होता है, तब यजमान (तव क्रतुभिः अमृतत्वं आयन्) तेरे ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंके द्वारा देवभावको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

नाभिं यज्ञानाꣳ, सदनꣳ रयीणां, महामाहावमभि संनवन्त । वैश्वानरꣳ, रथ्यमध्वराणां, यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ३ ॥

(यज्ञानां नाभिम) यज्ञोंके नाभिरूप (रयीणां सदनम्) धनोंके अद्वितीय भण्डार (महाम्) बड़े (आहावम्) जिसमें आहुति दीजाती हैं ऐसे अग्निको (अभिसंनवन्ते) ऋत्विज् भलेप्रकार स्तुति करते हैं तथा (वैश्वानरं अध्वराणां रथ्यं) सकल मनुष्योंके संबन्धी यज्ञोंके निर्वाहकर्त्ता (यज्ञस्य केतुम्) यज्ञके ज्ञापक अग्निको (देवाः जनयन्त) देवता वा ऋत्विज मन्थनसे उत्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा ।
महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥

हे मेरे ऋत्विजो ! (वः मित्राय वरुणाय) तुम मित्रावरुणके अर्थ (विपा गिरा गायत) व्यापक वाणीसे स्तुति करो (महिक्षत्रौ) हे अधिकबलवाले मित्रावरुण देवताओ ! (ऋतम्) यज्ञमें (बृहत्) बहुतसी स्तुतिके लिये आओ ॥ १ ॥

सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च ।
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥

(या मित्रश्च वरुणश्च) जो मित्र और वरुण (उभा) दोनो (सम्राजा) सबके स्वामी (घृतयोनी) जलके उत्पादक (देवा) प्रकाशवान् (देवेषु प्रशस्ता) सब देवताओंमें श्रेष्ठ हैं उनकी स्तुति करो २

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥

(ता) वह मित्रावरुण देवता (नः) हमें (पार्थिवस्य) भूलोकके (दिव्यस्य) द्युलोकके (महः रायः) बहुतसे धनके देनेको (शक्तम) समर्थ हो। हे देवताओ ! (वाम) तुम दोनोंके (देवेषु महि) देवताओंमें पूजनीय (क्षत्रम्) बलकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥

(चित्रभानो इन्द्र !) हे विचित्र प्रकाशवाले इन्द्र ! (आ याहि) इस कर्ममें आइये (अण्वीभिः सुताः) ऋत्विजोंकी अङ्गुलियोंसे सिद्ध कियेहुए (तना पूतासः) नित्य शुद्ध (इमे) यह सोम (त्वायवः) तुम्हारे हैं ॥ १ ॥

इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (धिया इषित) हम यजमानोंकी भक्तिसे प्रेरणा कियेहुए (विप्रजूतः) ऋत्विजों करकै प्रेरणा कियेहुए तुम (सुतावतः वाघतः) अभिषव किये सोमवाले ऋत्विजके (ब्रह्माणि) वेदरूप स्तोत्रोंको (उप) स्वीकार करनेके लिये (आयाहि) इस कर्ममें आओ २

इन्द्रायाहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥

(हरिवः) हे इन्द्र ! तुम (तूतुजानः) शीघ्रताकरते हुए (ब्रह्माणि उप) वेदरूप स्तोत्रोंके स्वीकार करनेको (आयाहि) इस कर्ममें आओ (सुते नः चनः दधिष्व)सोमके अभिषववाले इस कर्ममें हमारे हविरूप अन्नको धारण करो ॥ ३ ॥

तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत्
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १ ॥

(यः अर्चिषा विश्वा वना परिष्वजत्) जो अग्नि ज्वालारूप तेजसे सकल वनोंको घेर लेता है । और (जिह्वया कृष्णा कृणोति) ज्वालासे जलाकर कृष्ण वर्णके करदेताहै हे स्तोतः ! (त ईडिष्व) उस अग्नि की स्तुति करो ॥ १ ॥

य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः ।
द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ २ ॥

(यः मर्त्यः) जो मनुष्य (इद्धे) प्रज्वलित अग्निमें (इन्द्रस्य सुम्न आविवासति) इन्द्रके अर्थ सुखदायक हविको अर्पण करता है । उस मनुष्यके (सुम्नाय सुतराः अपः) अन्नके लिये सुखसे पार पाने योग्य वर्षाके जलोंको इन्द्र करै ॥ २ ॥

ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः ।
एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र अग्नि देवताओ ! (ता) वह तुम (इन्द्रं च अग्नि आ वोढवे)

इन्द्र और अग्निको सब ओरसे हवि पहुँचानेकेलिये (नः) हमैं (वाजवतीः इषः) बलयुक्त अन्न (आशन् अर्वतः) शीघ्रगामी घोड़े (पिपृतम्) दो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके अष्टमाध्यायस्य तृतीय खंड समाप्तः

प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतꣳ सखा सख्युर्न प्रमिनाति संगिरम् । मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा १

(इन्दुः) सोम (इन्द्रस्य निष्कृत प्रो अयासीत्) इन्द्रके उदररूप स्थानको प्राप्त होता है और प्राप्त होकर (सखा सख्युः न सङ्गिरं प्रमिनाति) मित्ररूप हुआ मित्र इन्द्रके उदरमें नहीं समाता है (मर्यः युवतिभिः इव) मनुष्य जैसे तरुणी स्त्रियोंके साथ मिलता है तैसे (सोमः समर्षति) सोम वसतीवरी जलोंके साथ मिलता है । अभिषव कालके पीछे सोम (शतयामना पथा कलशे) अनेकों साधनसामग्रीवाले दशापवित्रके मार्गसे द्रोणकलशमें जाता है ॥ १ ॥

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः । हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः ॥ २ ॥

हे सोमो ! (वः धियः) तुम्हारा ध्यान धरनेवाले (मन्द्रयुवः पनस्युवः विपन्युवः) मदकारी शब्दको चाहनेवाले और स्तुतिके अभिलाषी स्तोता (संवरणेषु प्राक्रमुः) यज्ञमण्डपोंमें कर्मानुष्ठानोंमें लगते हैं (स्तुभः हरिं क्रीडन्तं अभ्यनूषत) स्तोता हरे वर्णके क्रीडनशील सोमकी स्तुति करते हैं (धेनवः पयसा इत् अभिशिश्रयुः) गौएं अपने दूधसे इस सोमकी ओरको लक्ष्य करके अधिक दुग्ध देती हैं ॥ २ ॥

आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान ऊर्मिणा । या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

(इन्दो सोम पवमानः) हे दीप्त सोम ! पवित्र तू (नः संयतं पिप्युषीं इषम्) हमारे संग्रह करेहुए बहुतसे अन्नको (ऊर्मिणा पवस्व) प्रवाहरूप अपने रससे पवित्र करो (या इट्) जो अन्न (नः अहन्

त्रिः असश्चुषी) हमारे दिनमेंके तीन सवनोमें निर्बाधरूपसे (द्युमत् वाजवत् मधुमत् सुवीर्यं दोहते) सर्वत्रप्रसिद्ध बलवान् मधुरताभरे सुन्दरशक्तिमान् पुत्रको देता है ॥ ३ ॥

नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् । इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्त्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥ १ ॥

(यः) जो पुरुष (सदावृधं विश्वगूर्त्तं ऋभ्वसं ओजसा अधृष्टं इन्द्र) सदा वृद्धि देनेवाले सबके प्रशंसनीय महान और अपने बलसे शत्रुओंका निरस्कार न पानेवाले तथा शत्रुओंका निरस्कार करनेवाले इन्द्र को (न) इस समय (यज्ञैः चकार) यज्ञोंके द्वारा अनुकूल करलेता है (तम्) उस पुरुषको । दूसरा द्रोह करनेवाला पुरुष (कर्मणा नकिः नशत्) हनन आदि व्यापारसे नहीं दबा सकता ॥ १ ॥

अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः । सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः ॥ २ ॥

(अषाढं उग्रं पृतनासु सासहिं) असहनशील परमबली शत्रुसेनाओंमें निरस्कार करनेवाले । इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूं (यस्मिन् जायमाने) जिस इन्द्रके प्रकट होनेपर (महीः उरुज्रयः धेनवः) महिषियें और बड़े वेगवाली एवं हविसे तृप्त करनेवाली गौएं और बकरियें (समनोनवुः) प्रणाम करती हैं (द्यावः क्षामीः समनोनवुः) द्युलोक और पृथिवी लोकके सकल प्राणी भी प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके अष्टमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्त

सखाय आनिषीदत पुनानाय प्रगायत । शिशुं न यज्ञैः परिभूषत श्रिये ॥ १ ॥

(सखायः) हे मित्र स्तोता और ऋत्विजो ! (आ निषीदत) स्तुति करनेको बैठो (पुनानाय प्रगायत) सोमके अर्थ अधिकतर स्तुतिगान करो फिर स्तुति कियेहुए सोमको (शिशुं न) जैसे बालक पुत्रको पिता आभूषणोंसे सुशोभित करते हैं । तैसे (यज्ञैः श्रिये परिभूषत) यजनके हवि आदि पदार्थोंसे शोभाके निमित्त भूषित करो ॥ १ ॥

समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् ।
देवाव्यं ऽऽ३ मदमभि द्विशवसम् ॥ २ ॥

हे ऋत्विजो ! (गयसाधनम् देवाव्यं मदं द्विशवसम् ईम्) घरके साधन देवताओंके रक्षक मदकारी द्युलोक और भूलोकके बलको बढ़ाने वाले इस सोमको (मातृभिः वत्सं न) जैसे माताके साथ बछड़ेको युक्त करते हैं तैसे (अभिसं सृजत) वसतीवरी जलोंसे मिलाओ ॥ २ ॥

पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये ।
यथा मित्राय वरुणाय शंतमम् ॥ ३ ॥

(शर्द्धाय) वेगके अर्थ (वीतये) देवताओंके पीनेके लिये (मित्राय वरुणाय) मित्र और वरुण देवताके अर्थ (यथा शन्तमम्) जैसे सुख दायक हो तैसे (दक्षसाधनं पुनाता) बलके साधन सोमको पवित्र करो ३

प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं विवार-
मव्यम् ॥ १ ॥

(वाजी सहस्रधारः) बलवान् और अनेकों धाराओंवाला सोम (अव्यं वार तिरः प्राक्षाः) ऊनके पवित्रमेंको छनकर अनेकों धारोंसे बरसता है ॥ १ ॥

स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः
श्रीणानः ॥ २ ॥

(सहस्ररेताः) बहुतसे वीर्य वा अधिक जलवाला (अद्भिः मृजानः) वसतीवरी जलोंसे धोयाजाताहुआ (गोभिः श्रीणानः सः) गोघृतादि से मिलायाजाताहुआ वह सोम (अक्षाः) बरसता है ॥ २ ॥

प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमाणो अ-
द्रिभिः सुतः ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम ! (नृभिः येमानः) ऋत्विजों करके नियममें कियाहुआ (अद्रिभिः सुतः) पाषाणोंसे कूटाहुआ (इन्द्रस्य कुक्षा) इन्द्रके उदररूप कलशमें (प्रयाहि) पहुँच ॥ ३ ॥

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
ये वाऽदः शर्यणावति ॥ १ ॥

(ये सोमासः परावति) जो सोम अतिदूर देशमें (ये अर्वावति सुन्विरे) और जो समीपस्थानमें शोधेजाते हैं (वा ये अदः शर्यणावति) और जो कुरुक्षेत्रके जघनरूप अधवरमें शर्यणावन् नामक मधुररसयुक्त सोमवाला सरोवर है इस सरोवरमें जो सोम इन्द्रके निमित्त शुद्ध कियेजाते हैं । वह हमको इच्छित फल दें ॥ १ ॥

ये आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।
ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २ ॥

(ये आर्जीकेषु) जो सोम दूरके ऋर्जीक देशोंमें (ये कृत्वसु) जो सोम कृत्वान नामक कर्मप्रधान देशोंमें जो सोम (पस्त्यानां मध्ये) सरस्वती आदि नदियोंके समीप (वा ये पञ्चसु जनेषु) और जो सोम जिनमें निषाद पांचवाँ है ऐसे चारों वर्णोंमें । सुसिद्ध कियेजाते हैं वह सोम हमें इच्छित फल दें ॥ २ ॥

ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् ।
स्वाना देवास इन्दवः ॥ ३ ॥

(स्वानाः देवासः) अभिषव कियेजाते और दिपतेहुए (इन्दवः ते) पात्रोंमें बरसतेहुए वह सोम (नः) हमारे अर्थ (दिवस्परि) द्युलोकसे (वृष्टिं सुवीर्यम् आपवन्ताम्) वर्षाको और श्रेष्ठ वीरतायुक्त पुत्रको दें ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके अष्टमाध्यायस्य पञ्चमः खण्ड समाप्तः

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।
अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ १ ॥

(अग्ने वत्सः) हे अग्ने वत्स ऋषि (त्वां कामये गिरा) तुझे चाहनेवाली स्तुतिसे (ते मनः) तेरे मनको (परमात्चित् सधस्थात्) परमोत्तम द्युलोकरूप स्थानसे (आयमत्) यहां बुलालेता है ॥ १ ॥

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु

प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥ २ ॥

हे अग्ने ! (पुरुत्रा हि सदृङ् असि) सकल देशोंमें तू समान दृष्टि रखनेवाला है । इसीकारण (विश्वाः दिशः, अनु, प्रभुः) सकल दिशाओंका ईश्वर है (त्वा समत्सु हवामहे ऐसे तुम्हें संग्रामोंमें रक्षाके लिये पुकारते हैं ॥ २ ॥

समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे ।

वाजेषु चित्रराधसम् ॥ ३ ॥

(समत्सु वाजयन्तः) मदयुक्त संग्रामोंमें बल चाहनेवाले हम (अवसे) रक्षाके लिये (वाजेषु चित्रराधसम्) संग्रामोंमें याचना करनेयोग्य धनवाले (अग्निं हवामहे) अग्निकी प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

त्वं न इन्द्राभर ओजो नृम्णं शतक्रतो विच-

र्षणे । आ वीरं पृतनासहम् ॥ १ ॥

(शतक्रतो विचर्षणे इन्द्र) हे अनेकों कर्मवाले विशेष ज्ञाता इन्द्र तुम (नः नृम्णं ओजः आभर) हमें अन्न और बल दो (पृतनासहं वीरं आ) सेनाओंका तिरस्कार करनेवाले वीरपुत्रको भी दो ॥ १ ॥

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो ब-

भूविथ । अथा ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥

(वसो शतक्रतो) ये व्यापक इन्द्र ! (त्वं नः पिता बभूविथ) तुम हमारे पिताकी समान पालनकर्त्ता होओ (त्वं माता) तुम माताकी समान धारणकर्त्ता होओ (अथते सुम्नं ईमहे) और हम तुमसे सुखको याचना करते हैं ॥ २ ॥

त्वा ँ शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुपब्रुवे सहस्कृत

स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

(सहस्कृत शुष्मिन् पुरुहूत) स्तोताओंके द्वारा बलयुक्त किये हुए बलवान् और अनेकों यजमानोंके पुकारेहुए हे इन्द्र (वाजयन्तं त्वा उपब्रुवे) बल चाहतेहुए तुम्हारी स्तुति करते हैं (सः नः सुवीर्यं रास्व) वह तुम हमें श्रेष्ठ धन दो ॥ ३ ॥

यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभया हस्त्याभर ॥१॥

(अद्रिवः चित्र इन्द्र) हे वज्रधारी चित्ररूप इन्द्र ! (त्वादातं यत् मे इह नास्ति) तुम्हारे देनेयोग्य जो धन है वह मेरे पास इस लोकमें नहीं है (विदद्वसो) प्राप्त है धन जिसको ऐसे हे इन्द्र (तत् उभया हस्ती) वह दोनो हाथोंसे (नः आभर) हमें दो ॥ १ ॥

यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदाभर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥२॥

(इन्द्र यत् द्युक्षं वरेण्यं मन्यसे) हे इन्द्र ! जिस अन्नको तुम परमोत्तम मानते हो (तत् आभर) वह हमें दो (ते वयम्) तेरे कहलानेवाले हम (तस्य अकूपारस्य) तिस सुंदर पारवाले अन्नके (दावनः विद्याम) दानको पानेवाले हों ॥ २ ॥

तत्ते दिक्षु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ३

(अद्रिवः) हे इन्द्र ! (ते दिक्षु प्रराध्यं श्रुतं बृहत् यत् मनः अस्ति) तेरा दिशाओंमे स्तुतिके योग्य प्रसिद्ध महान् जो मन है (तेन दृढा-चित् वाजं सातये आदर्षि) उस मनसे दृढ़ भी अन्नको हमारे सेवन के लिये देते हो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके अष्टमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः
अष्टमाध्यायश्च समाप्तः

नवम अध्याय

शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति, शुम्भन्ति विप्रं
मरुतो गणेन । कविर्गीर्भिः काव्येन कविःसन्
सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ १ ॥

(जज्ञानं शिशुम) प्रकट हुए अतएव बालक की समान स्थित (हर्यतं मरुतः मृजन्ति) सबके चाहेहुए सोमको मरुत् शुद्ध करते हैं (गणेन विप्रं शुम्भन्ति) बुद्धिवर्धक सोमको अपने सात संख्याके गणसे सुशोभित

करते हैं, तदनन्तर (कविः काव्येन कविः गीर्भिः पवित्रं अत्येति) सोम स्तुतिके कर्मसे शब्द करता हुआ स्तुतियोंके साथ कलशमें जाता है १

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीष्कवीनाम् । तृतीयं धाम महिषः सिषासन् सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥ २ ॥

(ऋषिमनाः ऋषिकृत्) सबको देखनेके स्वभाववाला है मन जिस का, इसीकारण सबको देखनेवाला अर्थात् प्रकाशकर्त्ता (स्वर्षाः सहस्रनीथः) सबका वा सूर्यका सेवनकर्त्ता और बहुतसी स्तुतिवाला (कवीनां पदवीः) स्तोताओंके स्खलित पदोंका सम्यक् प्रकार संयोजन करनेवाला (यः) जो सोम है वह (महिषः) महान् पूजनीय सोम (तृतीयं धाम सिषासन्) तीसरे धाम द्युलोकको सेवन करना चाहता हुआ (स्तुप् विराजं अनुराजति) स्तुति कियाजाताहुआ विशेष दीप्यमान इन्द्रको प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् । अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥ ३ ॥

(चमूषत् श्येनः) चमसपात्रों में स्थित और प्रशंसनीय (शकुनः विभृत्वा) सामर्थ्य देनेवाला और पात्रोंमें विहार करनेवाला (गोविन्दुः द्रप्सः)यजमानोंको गौएं प्राप्त करानेवाला और धारण करनेवाला(अपां, ऊर्मिं समुद्रं सचमानः) जलोंके प्रेरक अन्तरिक्षको सेवन करताहुआ (महिषः तुरीयं धाम विवक्ति) महान् सोम चौथे धाम चन्द्रलोक को सेवन करता है ॥ ३ ॥

एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥ १ ॥

(एते सोमाः) यह अभिषुत सोम (अस्य वीर्यं वर्धन्तः) इस इन्द्र की शक्तिको बढ़ाते हुए (इन्द्रस्य कामं प्रियं समभ्यक्षरन्) इन्द्र के इच्छित और प्रसन्नता देनेवाले रसको बरसाते हैं ॥ १ ॥

पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना ।
ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥ २ ॥

(पुनानासः चमूषदः) अभिषव किये जातेहुए और पात्रों में स्थित हे सोमो ! तुम (वायुं अश्विना गच्छन्तः) वायु और अश्विनीकुमारों को प्राप्त होतेहुए (ते) तुम (नः सुवीर्यं धत्त) हमें श्रेष्ठ वीरता दो ॥

इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।
देवानां योनिमासदम् ॥ ३ ॥

(सोम पुनानः) हे सोम ! पूयमान तू (इंद्रस्य राधसे) इन्द्रके आराधन के लिये (हार्दि चोदय) हृदयके स्थानको प्रेरणा कर(देवानां योनिं आसदम्) देवयजन के साधन यज्ञस्थानको मैं प्राप्त हुआ हूँ ३

मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्तधीतयः
अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ४ ॥

हे सोम ! (त्वा दश क्षिपः मृजन्ति) तुझे दश अंगुलियें शुद्ध करती हैं (सप्त धीतयः हिन्वन्ति) सात होत्रक तुझे अपने २ व्यापारों से तृप्त करते हैं (विप्राः अनु अमादिषुः) स्तोता फिर तुझे मद में करते हैं ॥ ४ ॥

देवेभ्यस्त्वा मदाय कꣳ सृजानमति मेष्यः ।
संगोभिर्वासयामसि ॥ ५ ॥

हे सोम ! (मेष्यः अतिमृजानम्) दशापवित्र स्वरूप ऊनके रोमों में वर्त्तमान (कं त्वा) सुखरूप तुझे (देवेभ्यः मदाय) देवताओंके मद के लिये (गोभिः संवासयामः) गो घृतादि सहित स्थापित करते हैं ५

पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः ।
परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥

(पुनानः कलशेषु आ) पूयमान और कलशों में निचोड़ा जाता हुआ (अरुषः हरिः) दमकता हुआ हरे वर्णका सोम (गव्यानि वस्त्राणि परि अव्यत) गोदुग्धादि के वस्त्रों को आच्छादित करता है ॥ ६ ॥

मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अपद्विषः ।
इन्दो सखायमाविश ॥ ७ ॥

(इन्दो मघोनः नः आ पवस्व) हे सोम! हम धनवानोंके अभिमुख होकर बरस (विश्वा द्विषः अपजहि) सकल द्वेष करनेवालों को नष्ट कर (सखायं आविश) हमारे मित्र इन्द्र को प्राप्त हो ॥ ७ ॥

नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतꣳ स्वर्विदम् ।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ८ ॥

हे सोम ! (नृचक्षसं स्वर्विदं त्वाम्) मनुष्यों के द्रष्टा सर्वज्ञ और इन्द्रके पियेहुए तुझे सेवन करते हुए (वयं प्रजां इषं भक्षीमहि) हम पुत्रादि सन्तान और अन्नको भोगें ॥ ८ ॥

वृष्टिं दिवः परिस्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि ।
सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥ ९ ॥

(सोम) हे सोम तू (दिवः वृष्टिं परिस्रव) द्युलोकसे वर्षाको टपका (पृथिव्या अधिद्युम्नम्) पृथिवी पर अन्नको उत्पन्न कर (नः सह पृत्सु धाः) हमारे बलको सग्रामोंमें स्थित कर ॥ ९ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य प्रथमः खंडः समाप्तः

सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः ।
वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

(सहस्रधारः अत्यविः) अनेकों धारोंवाला और दशापवित्रमें को छनाहुआ (पुनानः सोमः) पवित्र करनेवाला सोम (वायोः इन्द्रस्य) वायु और इन्द्रके पीनेके लिये (निष्कृतं अर्षति) संस्कार करेहुए पात्र में पहुँचता है ॥ १ ॥

पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्रगायत ।
सुष्वाणं देववीतये ॥ २ ॥

(अवस्यवः) हे रक्षा चाहनेवाले उद्गाता आदि ! तुम (पवमान विप्रम) शुद्ध करनेवाले और विशेष कर देवताओंको तृप्त करनेवाले

(देववीतये सुष्वाणं अभि प्रगायत) देवताओंके पीनेके लिये सुसिद्ध कियेहुए सोमके अभिमुख होकर वेदगान करो ॥ २ ॥

पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः ।
गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥

(वाजसातये देववीतये गृणानाः) अन्नकी प्राप्ति और देवयज्ञकी सिद्धिके लिये स्तुति कियेजातेहुए (सहस्रपाजसः सोमा) मनुष्यों को बहुतसा बल देनेवाले सोम (पवन्ते) बरसते हैं ॥ ३ ॥

उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः ।
द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

(इन्दो) हे सोम (द्युमत् सुवीर्यं पवस्व) दीप्तिमान् श्रेष्ठ सामर्थ्य को बरसाओ (उत नः वाजसातये बृहतीः इषः) और हमारे संग्राम के लिये बहुतसे अन्न बरसाओ ॥ ४ ॥

अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये ।
विवारमव्यमाशवः ॥ ५ ॥

(वाजसातये हियानाः) संग्रामके लिये प्रेरणा कियेहुए सोम (आशवः न) शीघ्रगामियों की समान (हेतृभिः) ऋत्विजों से (अव्यं वारं व्यत्यसृग्रम) ऊनके पवित्रेमें को टपकाये जातेहैं ॥ ५ ॥

ते नः सहस्रिणꣳ रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् ।
स्वाना देवास इन्दवः ॥ ६ ॥

(ते स्वानाः देवासः इन्दवः) वह स्तूयमान दिपते हुए सोम (नः सहस्रिणं रयिं सुवीर्यं आपवन्ताम्) हमें सहस्रों संख्या का धन और श्रेष्ठ वीरता दें ॥ ६ ॥

वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः ।
दधन्विरे गभस्त्योः ॥ ७ ॥

(वाश्राः इन्दवः) शब्दायमान सोम (मातरः वत्सं न) जैसे माता गौएं बछड़ोंकी ओरकोजाती हैं, तैसे (अभ्यर्षन्ति) पात्र में को जाते हैं (गभस्त्योः दधन्विरे) बाहुओंमें धारण कियेजाते हैं. ॥ ७ ॥

जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्रदत्।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥

सोम (इन्द्राय जुष्टः) इन्द्रके लिये पर्याप्त होताहै(मत्सरः पवमानः) तृप्तिकारी सोम (कनिक्रदत् विश्वा द्विषः अपजहि) शब्द करता हुआ हमारे सकल द्वेषियों को नष्ट करै ॥ ८ ॥

अप घ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः।
योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥

(पवमानाः) हे सोमो ! (अराव्णः अपघ्नन्तः) दान न देनेवाले यजमानोंको नष्ट करतेहुए (स्वर्दृशः) सबके द्रष्टा तुम (ऋतस्य योनौ सीदत) यज्ञके मण्डपमें विराजो ॥ ९ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया।
इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥

(ऋतस्य सुताः) यज्ञके लिये सुसिद्ध कियेहुए (मधुमत्तमाः इन्दवः) अतिमधुररसवाले टपकतेहुए(सोमाः इन्द्राय धारया असृग्रम्)सोम इन्द्रके अर्थ धारासे रचेजाते हैं ॥ १ ॥

अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः।
इन्द्रꣳ सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

(विप्राः) हे ऋत्विजो ! (सोमस्य पीतये) सोमको पीने के लिये (इन्द्रं अभ्यनूषत) इन्द्रकी स्तुतिकरते हैं (धेनवः गाव वत्सं न)जैसे तृप्त करनेवाली गौएं बछड़ेकी ओरको शब्द करती हैं ॥ २ ॥

मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित्।
सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥

(मदच्युत् सोमः) मदकारी रसको वरसने वाला सोम (सादने क्षेति) यज्ञशालामें निवास करता है (सिंधोः ऊर्मा विपश्चित्) नदी की तरङ्गोंमें प्रवीण सोम (गौरी अधिश्रितः) माध्यमिक गान्धर्वी वाणीमें रहता है ॥ ३ ॥

दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते ।
सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥

(यः) जो (सुक्रतुः कविः विचक्षणः) श्रेष्ठ ज्ञानमय अनुभवी और विशेष द्रष्टा है । वह (सोमः) सोम (दिवः नाभा) अन्तरिक्ष के नाभिरूप (अव्याः वारे महीयते) ऊनके पवित्रे में सत्कार पाताहै ४

यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः ।
तमिन्दुः परिषस्वजे ॥ ५ ॥

(यः सोमः कलशेषु आ) जो सोम कलशों में है (पवित्रे अन्तः आहितः) पवित्र के मध्य में स्थापित किया गया है (तं इन्दुः परिषस्वजे) उस अंशभूत सोममे चन्द्रमाका अभिमानी देवता प्रवेश करता है ॥ ५ ॥

प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।
जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥ ६ ॥

(इन्दुः) सोम (मधुश्च्युतं कोशं जिन्वन्) मधु टपकानेवाले कलशको पूर्ण करता हुआ (समुद्रस्य अधिविष्टपि) अन्तरिक्ष के आधाररूप स्थान में (वाचं प्रेष्यति) शब्दको करता है ॥ ६ ॥

नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दुघाम् ।
हिन्वानो मानुषा युजा ॥ ७ ॥

(नित्यस्तोत्रः वनस्पतिः) नित्य प्रशंसा किया जानेवाला वनोंका स्वामी सोम (मानुषा युजा हिन्वानः) ऋत्विजोंको युग्मरूपसे प्रेरणा करता हुआ (सबर्दुघां) अमृतकी समान प्रियवचनों को प्रकाशित करनेवाली (अन्तः) स्तोताओं के मध्यमें स्थित (धेनाम्) स्तुतिको स्वीकार करै ॥ ७ ॥

आ पवमान धारय रयिꣳ, सहस्रवर्चसम् ।
अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ८ ॥

(पवमान इन्दो) हे संस्कार किये जातेहुए सोम ! (सहस्रवर्चसं

स्वाभुवं) अनेकों दीप्तिवाले सुंदर भवनको (रयिं अस्मे धारय) और धनको हमारे विषैं स्थापन कर ॥ ८ ॥

अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः । सोमो हिन्वे परावति ॥ ९ ॥

(कविः सुतः) क्रान्तकर्मा अभिषव कियाहुआ (परावति) श्रेष्ठ स्थानमें स्थित हुआ (विप्रः सः) विशेष तृप्त करनेवाला वह सोम (धारया) अपनी धारासे (दिवः प्रिया अभि हिन्वे) द्युलोक के प्यारे स्थानोंकी ओरकी प्रेरणा करता है ॥ ९ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य तृतीय खण्डः समाप्त

उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः । वाणस्य चोदया पविम् ॥ १ ॥

हे साम ! (सिन्धोः ऊर्मे स्वनः इव) समुद्रकी तरङ्गसे उठे हुए शब्दकी समान (ते शुष्मासः उत् ईरते) तेरे वेग उठते हैं । वह तू (वाणस्य पविं चोदय) वाण नामक वाजे के शब्दको प्रेरणा कर॥१॥

प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः । यदव्य एषि सानवि ॥ २ ॥

(ते प्रसवे) तेरा प्रादुर्भाव होनेपर (मखस्युवः तिस्रः वाचः उदीरते) यज्ञकी इच्छावाले यजमान के ऋक्-यजु-सामरूप तीन वाक्य प्रकट होते हैं (यद् सानवि अव्ये एषि) जबकि तू श्रेष्ठ पवित्रे मे पहुँचता है ॥ २ ॥

अव्या वारैः परि प्रियꣳ हरिꣳ हिन्वन्त्यद्रि-भिः । पवमानं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥

(प्रियं हरिम्) देवताओं के प्यारे और हरेवर्णके (अद्रिभिः) पाषाणों से कुचले हुए (मधुश्च्युतम् पवमानम्) मीठे रसके टपकानेवाले सामको ऋत्विज (अव्याः वारैः परिहिन्वन्ति) भेड़ों की ऊनके पवित्र में को छोड़ते हैं ॥ ३ ॥

आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥

(मदिन्तम कवे) हे परमहर्षदायक सोम ! (अर्कस्य योनिं आसदम्) पूजनीय इन्द्रके उदररूप स्थानमें पहुँचनेके लिये (पवित्रं धारया आपवस्व) पवित्रेमेंको छनकर धारसे अभिमुख होकर वरस ॥ ४ ॥

स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः ।
एन्द्रस्य जठरं विश ॥ ५ ॥

(मदिन्तम) हे परमहर्षदायक सोम ! (अक्तुभिः गोभिः अञ्जानः) मिलानेके साधन गोदुग्धादिसे प्रशंसनीय होताहुआ (पवस्व) वरस तदनंतर (इन्द्रस्य जठरं आविश) इन्द्रके उदरमें प्रवेश कर ॥ ५ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य चतुर्थ खंड समाप्तः

अया वीती परिस्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
अवाहन्नवतीर्नव ॥ १ ॥

(इन्दो अया वीती परिस्रव) हे सोम ! इस रसके द्वारा इन्द्रके भक्षणके लिये चारों ओर वरस (ते यः मदेषु) तेरा जो रस संग्रामों में (नव नवतीः अवाहन्) निन्यानवे शत्रुपुरियोंको नष्ट करताहुआ १

पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शंबरम् ।
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥

(सद्यः पुरः) शीघ्र ही शत्रुओंके नगरको। इन्द्रका पियाहुआ सोमरस नष्ट करताहुआ (इत्थाधिये दिवोदासाय) सत्यकर्मा दिवोदास राजा के अर्थ (शम्बरम्) शत्रुनगरोंके स्वामीको (अध त्यं तुर्वशम्) फिर उस तुर्वस नामक दिवोदासके वैरीको (यदुं) यदु नामक राजाको (अवाहन्) सोमरस पीकर इन्द्र मारता हुआ ॥ २ ॥

परि नो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥

(इन्दो) हे सोम ! (अश्ववित्) घोड़े प्राप्त करानेवाला तू (नः) हमें (गोमत् हिरण्यवत् अश्वम्) गौएं और सुवर्ण सहित अश्व (सहस्रिणीः इषः) बहुतसे अन्न (परिक्षर) दो ॥ ३ ॥

अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमोऽअराव्णः ।

गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

(सोमः) सोम (मृधः अपघ्नन्) हिंसक शत्रुओंको मारताहुआ (अराव्णः अप) अदाताओंको नष्ट करताहुआ (इन्द्रस्य निष्कृतम् गच्छन् पवते) इन्द्रके स्थानको प्राप्त होताहुआ धारासे बरसता है १

महो नो राय आभर पवमान जही मृधः ।
रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥ २ ॥

(पवमान इन्दो) हे पूयमान सोम ! (नः महः रायः आभर) हमें बहुतसे धन दो (मृधः जहि) शत्रुओंको मारो (वीरवत् यश रास्व) पुत्रादि सहित कीर्त्ति दो ॥ २ ॥

न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमामिनन् ।
यत्पुनानो मखस्यसे ॥ ३ ॥

हे सोम ! (यत् पुनानः मखस्यते) जब पूयमान तू धन देना चाहता है । तब (राधः दित्सन्तं त्वा) धन देना चाहतेहुए तुझे (शतञ्चन ह्रुतः) बहुतसे भी हिंसक शत्रु (न आमिनन्) नहीं रोकसकते ॥३॥

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः ।
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ १ ॥

हे सोम ! (मानुषीः अपः हिन्वानः) मनुष्योंके हितकारी जलोंको प्रेरणा करताहुआ (यया धारया सूर्यम् अरोचयः) जिस धारासे सूर्य को प्रकाशित करता है (अया पवस्व) तिस धारासे बरस ॥ १ ॥

अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि ।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ २ ॥

(पवमानः) सोम (मनावधि अन्तरिक्षेण यातवे) मनुष्यके अन्तरिक्ष मार्गसे जानेको (सूरः एतशं अयुक्त) प्रेरक आदित्यके एतश नामक अश्वको जोड़ता है ॥ २ ॥

उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे ।
इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ३ ॥

(उत इन्दुः) और सोम (इन्द्र इति ब्रुवन्) इन्द्र ऐसा कहताहुआ (त्याः हरित) उन हरे वर्णके घोड़ोंको (सूरः रथे) सूर्यके रथमें (यातवे अयुक्त) गमन करनेको जोड़ता है ॥ ३॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्त

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा, यजिष्ठं दूत मध्वरे कृणुध्वम्। यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा, तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ १ ॥

हे देवताओ ! (वः) तुम (अग्निभिः सजोषा) अन्य अग्नियों सहित (यजिष्ठम्) परमपूज्य (अग्निं देवम्) अग्निदेवको (अध्वरे दूतं कृणुध्वम्) यज्ञमें दूत बनाओ (यः मर्त्येषु निध्रुविः) जो देवता होकर भी मनुष्योंमें अधिकतासे रहताहै (ऋतावा तपुर्मूर्धा) यज्ञका संबन्धी और तापप्रद तेजवाला है (घृतान्नः पावकः) घृतको भक्षण करनेवाला और सबका शोधक है ॥ १ ॥

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्, यदा महः संवरणाद्व्यस्थात्। आदस्य वातो अनुवाति शोचि, रध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥

(यवसे अविष्यन्) घासमें चुगनेहुए (प्रोथन् अश्वः नः) हींसते हुए घोड़ेकी समान (महः संवरणात्) बड़े निरोधसे दावरूप अग्नि (यदा व्यस्थात्) जब फैलेहुए वृक्षोंमें स्थित होता है (आत् अस्य शोचिः अनुवातः याति) तब इस अग्निकी लपट वायुके पीछे २ चलती है। (अध) अनंतर। हे अग्ने ! (ते व्रजनं कृष्णं अस्ति) तेरा मार्ग कृष्णवर्ण है ॥ २॥

उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः। अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सन्दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे अग्ने (नवजातस्य वृष्णः) नवीन प्रकटहुए और वर्षा करनेवाले (यस्य ते) जिस तेरी (अजरा इधानाः उच्चरन्ति) जरा

रहित ज्वालाएं प्रज्वलित होतीहुई निकलती हैं (अग्ने अरुपः धूमः वृतः) हे अग्निदेव ! प्रकाश करताहुआ धूमयुक्त दतरूप तू (द्यां अच्छ समेषि) द्युलोकमेंको जाता है। फिर तहांके (देवान् हि ईयसे इन्द्रादि देवताओंको अवश्य प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १ ॥

(महे वृत्राय हन्तवे) बडे भारी वृत्रासुरको मारनेके लिये (त इन्द्रं वाजयामसि) उस इन्द्रको सोम और स्तुतियोंसे बलवान् करते हैं (वृषा सः वृषभः भुवत्) धनोंकी वर्षा करनेवाला वह इन्द्र हम स्तोताओंको और सोम अर्पण करनेवालोंको धनका दाता है ॥ १ ॥

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः ।
द्युम्नो श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥

(सः इन्द्रः दामने कृतः) उस इन्द्रको स्तुति करनेवालोंको धन देने के लिये ही प्रजापतिने रचा है (ओजिष्ठः सः बले हि नः) प्रभावशाली वह इन्द्र बलदायक सोमके पीनेको सृष्टिकालमें ब्रह्माने स्थापित किया है (द्युम्नः श्लोकी सः सोम्यः) अन्नवान् और प्रशंसावाला वह इन्द्र सोमके योग्य है ॥ २ ॥

गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः ।
ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥ ३ ॥

(गिरा संभृतः) स्तुतिरूप वाणीसे स्तोताओं करके तीक्ष्ण किया हुआ (वज्रो न) जैसे कि—घमानेवालोंसे वज्रनामक आयुध तीक्ष्ण कियाजाता है तैसे तीक्ष्ण कियाहुआ, इसीकारण (सबलः अनपच्युतः) बलवान् और दूसरों से न दबनेवाला (उग्रः अस्तृतः) महान् और किसी शत्रुसे चोट न खानेवाला इन्द्र (ववक्षे) स्तुति करनेवालोंको धन देना चाहता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्त

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र आनय
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥

(अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमम्) हे अध्वर्यु पाषाणोंसे अभिषव कियेहुए सोमको (पवित्रे आनय) दशापवित्रमें पहुँचा (इन्द्राय पातवे पुनाहि) इन्द्रके पीनेके लिये पवित्र कर ॥ १ ॥

तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्याशत ।
पवमानस्य मरुतः ॥ २ ॥

(त्ये देवाः मरुतः) वह इन्द्रादि देवता और मरुत देवता (इन्दो) हे सोम ! (तव मधोः पवमानस्य अन्धसः) तेरे मदकारी पवित्र अन्न रूप रसको (व्याशत) भक्षण करते हैं ॥ २ ॥

दिवः पीयूषमुत्तमꣳ सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
सुनोता मधुमत्तमम् ॥ ३ ॥

हे ऋत्विजो ! (मधुमत्तमं दिवः पीयूषम्) परम मधुरतायुक्त और द्युलोकके अमृतरूप (उत्तमं सोमम्) श्रेष्ठ सोमको (वज्रिणे इन्द्राय सुनोत) वज्रधारी इन्द्रके अर्थ अभिषुत करो ॥ ३ ॥

धर्त्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो, दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः हरिः । सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजाꣳसि कृणुषे नदीष्वा ॥ १ ॥

(कृत्व्यः रसः) शोधन करनेयोग्य और रसरूप (देवानां दक्षः) देवताओंको बलदायक (नृभिः अनुमाद्यः) ऋत्विजोंके स्तुति करने योग्य (धर्त्ता) सबका धारक सोम (दिवः पवते) अन्तरिक्षमेंके दशापवित्रमेंको वरसता है (हरिः सत्वभिः सृजानः) हरे वर्णका सोम हम प्राणियोंसे रचाजाताहुआ (अत्यो न) जैसे शिक्षित घोड़ा अनायासमें ही चलाजाता है तैसे (नदीषु वृथा पाजांसि कृणुषे) वसतीवरी जलोंमें अपने बलोंको करता है ॥ १ ॥

शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वाः ऽ३ सिषासन्रथिरो गविष्टिषु । इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥ २ ॥

यह सोम (शूरः न) शूरकी समान (गभस्त्योः आयुधा धत्ते) हाथोंमें आयुधोंको धारण करता है (स्वः सिषासन्) सुखके साधन वा यज्ञको सेवन करना चाहताहुआ (रथिनः गविष्टिषु) रथवान् यजमानकी गौओंकी इच्छाओंमें (इन्द्रस्य शुष्मं ईरयन्) इन्द्रके बलको प्रेरणा करताहुआ (इन्दुः) सोम देवता (अपस्युभिः मनीषिभिः हिन्वानः सृज्यते) कर्मानुष्ठानके अभिलाषी ऋत्विजों करके प्रेरणा कियाहुआ गोदुग्धादिसे मिलायाजाता है ॥ २ ॥

इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा, तविष्यमाणो जठरेष्वाविश । प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी, धिया नो वाजाँ उपमाहि शश्वतः ॥ ३ ॥

(सोम पवमान) हे सोम ! संस्कार कियाजाताहुआ तू (तविष्यमाणः इन्द्रस्य जठरेषु ऊर्मिणा आविश) बढ़ायाजाताहुआ इन्द्रके उदरोंमें बड़ी धारासे प्रवेश कर (विद्युत् अभ्रेव) जैसे विजली मेघोंको दुहती है तैसे (नः रोदसी प्रपिन्व) हमारे लिये द्युलोक और भूलोक को दुह (धिया नः शश्वतः वाजान् उपमाहि) कर्मके द्वारा हमारे अर्थ बहुतसे अन्नोंको हमारे समीपमें रच ॥ ३ ॥

यदिन्द्र प्रागपागुदग्न्यग्वा हूयसे नृभिः । सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१

(इन्द्र) हे इन्द्र (यत्) यद्यपि तुम (प्राक् अपाक् उदक् वा न्यक् नृभिः हूयसे) पूर्वदिशामें वर्त्तमान पश्चिम दिशामें वर्त्तमान उत्तर दिशा में वर्त्तमान वा नीचेकी दिशामें वर्त्तमान स्तोताओं करके तुम उनके अपने २ कार्यके समय पुकारेजाते हो तथापि (सिम) हे श्रेष्ठ इन्द्र ! (अनवे) अनु राजाके राजर्षि पुत्रके विषयमें (पुरु नृषूतः असि) अधिकतर उनके मनुष्योंसे प्रेरणा कियेजाते हो अर्थात् उस राजाके हितके लिये तुम्हें स्तोता प्रसन्न करलेते हैं (प्रशर्ध) हे अधिकतासे शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले इन्द्र ! (तुर्वशे) तुर्वश राजाके विषय में भी उसके ऋत्विजोंसे प्रेरणा कियेजाते हो ॥ १ ॥

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा । कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा-

यच्छन्त्यागहि ॥ २ ॥

(यद्वा इन्द्र) यद्यपि हे इन्द्र ! (रुमे रुशमे श्यावके कृपे) रुम रुश श्यावक और कृपके विषयमें (सचा मादयसे) एक साथ प्रसन्न किये जाते हो ; तथापि (ब्रह्मवाहसः कण्वासः स्तोमेभिः) स्तुति पहुँचाने वाले कण्वगोत्री ऋषि बहुतसे स्तोत्रोंके साथ तुम्हें वशमें करलेते हैं (इन्द्र आगहि) हे इन्द्र तुम हमारे कर्ममें आओ ॥ २ ॥

उभयꣳ शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः । सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आगमत् ॥ १ ॥

(उभयं इदं वचः) स्तोत्ररूप और शास्त्ररूप दोनों प्रकारके इस वचनको (नः अर्वाक् इन्द्रः शृणवत्) हमारे अभिमुख होकर इन्द्र सुने (मघवान्) धनवान् इन्द्र (सत्राच्या धिया) हमारे साथ प्रतिष्ठा पानेवाली बुद्धिसे युक्त, इसीसे (शविष्ठः) अतिबलवान् हुआ (सोमपीतये आगमत्) सोमपान करनेको आवै ॥ ३ ॥

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः । उतोपमानां प्रथमो निषीदसि सोमकामꣳ हि ते मनः ॥ २ ॥

(धिषणे) द्युलोक और पृथिवी लोकके निवासी (स्वराजं वृषभं तं हि) स्वयं विराजमान जगत्का उपकार करनेवाले तिस इन्द्रको ही (ओजसा निष्टतक्षतुः) अपने बलसे प्राप्त होते हैं (उत) और हे इंद्र (उपमानां प्रथमः निषीदसि) उपमानभूत अन्य देवताओंमें मुख्य होकर वेदीमें विराजमान होताहै (हि ते मनः सोमकामम्) निश्चय तेरा मन सोमकी कामनावाला है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य सप्तम खण्ड. समाप्त.

पवस्व देवआयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमारोह धर्मणा ॥ १ ॥

हे सोम (देवः पवस्व) दिपताहुआ तू धारासे बरस (ते मदः

आयुषक् इन्द्रं गच्छतु) तेरा मदकारी रस उस इन्द्रको पहुँचे (धर्मणा वायुं आरोह) धारण करनेवाले रसके द्वारा वायुको प्राप्त हो ॥ १ ॥

पवमान नि तोशसे रयिꣳ सोम श्रवाय्यम् । इन्दो समुद्रमाविश ॥ २ ॥

(पवमान इन्दो) हे पवमान सोम ! तू (श्रवाय्यं रयिं नितोशसे) श्रवण करनेयोग्य शत्रुओंके धनको अत्यन्त पीड़ा देताहै वह तू (समुद्रं आविश) द्रोणकलशमें प्रवेश कर ॥ २॥

अपघ्नन् पवसे मृधः० ॥ ३ ॥

इसकी व्याख्या प्रथम भाग ६ । १ । १ । ६ मे होचुकी ॥ ३ ॥

अभी नो वाजसातमम्० ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या प्रथम भाग ६ । २ । १ । ५ में होचुकी ॥ १ ॥

वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः । निनेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥ २ ॥

(वसो) हे व्यापक सोम ! (पुरुस्पृहः वसोः) अनेकोंके चाहने योग्य और तेरे दियेहुए (अस्य ते राधसः) इस तेरे धनके (नेदिष्ठतमाः स्याम) अत्यन्त समीप हों (अध्रिगो ते इषः सुम्ने) हे सोम ! तेरे दियेहुए अन्नके सुखमें समीप हों ॥ २॥

परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः । धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः

(गव्ययुः ऊर्ध्वः यः) गोदुग्धादिकी इच्छावाला सबोंमें मुख्य जो सोम (भ्राजा न) जैसेकि दीप्तिसे अन्तरिक्षमें जाता है तैसे (अध्वरे धारा याति) यज्ञमें अपनी धारा से जाता है (स्वानः स्यः इन्दुः) अभिषव कियाजाता हुआ वह सोम (मदच्युतः अव्ये पर्यक्षरत्) मदके अर्थ वेदोंसे प्रेरणा कियाहुआ ऊनके पवित्रमें को टपकता है ॥ ३ ॥

पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभिधाम ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम ! (महान् समुद्रः) देवताओंको अर्पण कियाजाता है इसकारण महत्त्वयुक्त और जिसमेंसे रस बहते हैं ऐसा (पिता) सबका पालन करनेवाला तू (देवानां विश्वा धाम अभि पवस्व) देवताओंके सकल शरीरोंकी ओरको लक्ष्य करके बरस ॥ १ ॥

शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः ॥ २ ॥

(सोम शुक्रः) हे सोम ! दीप्तिमान् तू (देवेभ्यः पवस्व) देवताओंके अर्थ द्रोणकलशमें बरस (दिवे पृथिव्यै प्रजाभ्यः च शम्) द्युलोक पृथ्वीलोक और प्रजाओंको सुखरूप हो ॥ २ ॥

दिवो धर्त्ताऽसि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन् । वाजी पवस्व ॥ ३ ॥

हे सोम ! (शुक्रः पीयूषः दिवः धर्त्ता असि) दीप्त और पीनेयोग्य तथा द्युलोकका धारणकर्त्ता है (वाजी सत्ये विधर्मन् पवस्व) बलवान् तू सत्यस्वरूप यज्ञमें बरस ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य अष्टमः खण्डः समाप्तः

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्ने (प्रेष्ठम) हम स्तोताओंको धन देनेके कारण परम प्रिय (अतिथिम्) अतिथिकी समान पूजनीय वा देवताओंको हवि पहुँचानेके लिये निरन्तर जानेवाले (मित्रमिव प्रियम्) मित्रकी समान प्रसन्नता देनेवाले (रथं न वेद्यम्) रथकी समान धनकी प्राप्तिके हेतु (वः स्तुषे) तेरी स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

कविमिव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता । नि मर्त्येष्वादधुः ॥ १ ॥

(देवासः) इन्द्रादि देवता (कविमिव प्रशंस्यम्) अनुभवी विद्वान् की समान प्रशंसनीय (यं मर्त्येषु इति) जिस अग्निको मनुष्योंमें आगे कहीहुई रीतिसे (द्विता) गार्हपत्य और आहवनीय इन दो रूपों करके (न्यादधुः) स्थापन करतेहुए ॥ २ ॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुही गिरः ।
रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ३ ॥

(यविष्ठ) हे सदा तरुण इन्द्र ! (त्वं दाशुषः नॄन् पाहि) तू हवि देनेवाले यजमानोंकी रक्षा कर (गिरः शृणुहि) स्तुतियोंको सुन (उत त्मना तोकं रक्ष) और अपने पुरुषार्थसे हमारे पुत्रकी रक्षा कर ॥३॥

ऐन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥ १ ॥

(प्रिय) स्तोताओं को तृप्त करनेवाले (सत्राजित्) शत्रुओंको जीतने वाले (अगोह्य) किसीसे भी न दबनेवाले (इन्द्र) हे इन्द्र ! (गिरिः न विश्वतः पृथु) पर्वतकी समान सब ओरसे महान (दिवःपतिः) स्वर्गका स्वामी तू (नः आ गधि) हमारे समीप आओ ॥ १ ॥

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥

(सत्य सोमपाः इन्द्र) सत्यस्वरूप सोमके पीनेवाले हेइन्द्र ! जो तू (उभे रोदसी अभिबभूथ) दोनों लोक द्यावा पृथिवीको अपने प्रभाव से छा देता है । वह तू (सुन्वतः वृधः) सोमाभिषव करनेवाले यजमानकी वृद्धि करनेवाला (दिवः पतिः असि) स्वर्गलोकका स्वामीहै॥

त्वꣳहि शश्वतीनामिन्द्र दर्त्ता पुरामसि ।
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥

(इन्द्र त्वं हि) हे इन्द्र ! तू ही (शश्वतीनां पुरां दर्त्ता) बहुत से शत्रुनगरोंका नष्ट करनेवाला (दस्योः हन्ता) वृथा समय खोनेवाले असुरका नाशक (मनोः वृधः) यज्ञकर्त्ता मनुष्यका वृद्धिकर्त्ता (दिवः पतिः असि) और स्वर्गका स्वामी है ॥ ३ ॥

पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः १

(पुरां भिन्दुः) असुरों के नगरोंको तोड़नेवाला (युवा) सदा तरुण

(कविः अमितौजाः) अनुभवी और अमितपराक्रमी (विश्वस्य कर्मणः धर्त्ता) सकल ज्योतिष्टोम आदि कर्मोंका पोषक (वज्री पुरुष्टुतः) यजमानोंकी रक्षा करनेको वज्रधारी और अनेकों कर्मोंमें स्तुति किया हुआ (इन्द्रः अजायत) इन्द्र प्रकट हुआ ॥ १ ॥

त्वं बलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम्। त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः २

(अद्रिवः) हे वज्रधारी इन्द्र! (त्वम्) तू जब (गोमतः बलस्य बिलम अपावः) देवताओंकी गौएं हरनेवाले बलदैत्य के, गौएं छिपाने के बिलको खोलता हुआ। तब (तुज्यमानासः देवाः अबिभ्युषः त्वां आविषुः) बल दैत्यके दबाये हुए देवता तुम्हारी रक्षाके कारण बल दैत्य से भय न पातेहुए तुम्हें प्राप्त हुए ॥ २ ॥

इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत। सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ३ ॥

स्तोता (ओजसा ईशानं इन्द्रम्) बलसे जगत् को वशमें रखनेवाले इन्द्रको (स्तोमैः अभ्यनूषत) स्तोमों से स्तुति करते हैं (यस्य रातयः सहस्रम्) जिस इन्द्रके धनके दान सहस्रों (उत वा) और (भूयसीः सन्ति) सहस्रों से भी अधिक हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य नवमः खण्डः नवमाध्यायश्च समाप्तः

दशम अध्याय

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन्प्रजा भुवनस्य गोपाः। वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥ १ ॥

(समुद्रः गोपाः) जलों की वर्षा करनेवाला और सबका रक्षक सोम (प्रथमे भुवनस्य विधर्मन्) विस्तारवाले जलके धारणकर्त्ता अन्तरिक्ष में (प्रजाः जनयन् अक्रान्) प्रजाओंको उत्पन्न करता हुआ सब से बड़ा होता है (वृषा स्वानः) कामनाओंका पूरक और संस्कार किया जाता हुआ (अद्रिः सः) आदर पानेवाला वह सोम (अधि सानो अव्ये पवित्रे) अधिक ऊँचे ऊनके पवित्रे में (बृहन् ववृधे) अधिक बढ़ता है ॥ १ ॥

मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो, मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः । मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्, मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥ २ ॥

(देव सोम) हे स्तुतियोग्य सोम ! (न. इष्टये राधसे) हमें अन्न और धन प्राप्त होनेके लिये (वायुं मत्सि) वायुको प्रसन्न करो (पूयमानः मित्रावरुणा मत्सि) संस्कार किया जाता हुआ मित्रावरुण देवताओंको प्रसन्न कर (मारुतं शर्द्धः मत्सि) मरुत् देवता के बलको प्रसन्न कर (देवान् मत्सि) इन्द्रादि देवताओंको प्रसन्नकर (द्यावापृथिवी मत्सि) द्यावापृथिवी को प्रसन्न कर ॥ २ ॥

महत्तत्सोमो महिषश्चकाराऽपां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् । अदधादिन्द्रे पवमानओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ ३ ॥

(महिषः सोमः महत् तत् चकार) पूजनीय सोमने बहुतसा कर्म किया (यत्) जो कि (अपां गर्भः देवान् अवृणीत) जलों के गर्भरूप सोमने देवताओंका सेवन किया (पवमानः इन्द्रे ओजः अदधात्) पूयमान सोमने इन्द्रमें बल स्थापन किया (इन्दुः सूर्ये ज्योतिः अजनयत्) दीप्त सोमने सूर्यमें तेजको उत्पन्न किया ॥ ३ ॥

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते । अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥

(देवः अमर्त्यः एषः)द्योतमान और मरणधर्मरहित यह सोम (द्रोणानि अभि आसदम)द्रोणकलशोंकी ओर स्थित होनेको (पर्णवीरिव दीयते) पक्षीकी समान वेगसे जाताहै ॥ १ ॥

एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो विगाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ २ ॥

(विप्रैः अभिष्टुतः देवः एषः) स्तोताओंसे प्रशंसा कियाहुआ द्योतमान यह सोम (दाशुषे रत्नानि दधत्) हवि देनेवाले यजमानको अनेकों प्रकारके धन देताहुआ (अपः विगाहते) वसतीवरी जलोंमें प्रवेश करताहै ॥ २ ॥

एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्त्वभिः ।
पवमानः सिषासति ॥ ३ ॥

(पवमानः शूरः एषः) पवमान वीर यह सोम (विश्वानि वार्या सत्त्वभिः यन्निव) सकल वरणीय धनोंको बलोंसे वशमें करताहुआ (सिषासति) हमें देना चाहताहै ॥ ३ ॥

एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति ।
आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ४ ॥

(एषः देवः पवमानः) यह दिव्य सोम (रथर्यति) हमारे यज्ञमें आनेका रथ चाहताहै (दिशस्यति) आकर हमें इच्छित पदार्थ देना चाहता है (वग्वनुं आविष्कृणोति) शब्दको प्रकट करताहै ॥ ४ ॥

एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।
हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ५ ॥

(एषः देवः पवमानः) यह दिव्य सोम (ऋतायुभिः विपन्युभिः) सत्यकाम स्तोताओं करके (हरिः) अश्वकी समान (वाजाय मृज्यते) संग्रामके लिये स्तुतियोंसे सुशोभित कियाजाता है ॥ ५ ॥

एष देवो विपाकृतोऽति ह्वरांसि धावति ।
पवमानो अदाभ्यः ॥ ६ ॥

(विपा कृतः) अंगुलियोंसे अभिषुत (एषः देवः पवमानः) यह दिव्य सोम (अदाभ्यः ह्वरांसि अतिधावति) किसीसे हिंसित न होताहुआ शत्रुओंके मारनेको जाताहै ॥ ६ ॥

एष दिवं विधावति तिरो रजांसि धारया ।
पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

(धारया पवमानः एषः) धारासे बरसताहुआ यह सोम (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (रजांसि तिरः) लोकोंका तिरस्कार करताहुआ यज्ञस्थानसे (दिवः विधावति) स्वर्गलोकको जाताहै ॥७॥

एष दिवं व्यासरत्तिरो रजाᳬस्यस्तृतः।

पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥

(स्वध्वरः एषः पवमानः) श्रेष्ठ यज्ञवाला यह सोम (अस्तृतः) किसीसे हिंसित न होताहुआ (रजांसि तिरः) लोकोंका तिरस्कार करताहुआ, यज्ञसे (दिवं व्यासरत्) स्वर्गको जाताहै ॥ ८ ॥

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः।

हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥

(हरिः देवः एषः) हरे वर्णका दीप्तिमान् यह सोम (प्रत्नेन जन्मना) पुरानी उत्पत्ति से (देवेभ्यः सुतः) देवताओं के लिये सिद्ध किया हुआ (पवित्रे अर्षति) दशापवित्र में जाता है ॥९॥

एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः ।

धारया पवते सुतः ॥ १० ॥

(एषः उ स्यः) यह ही वह सोम (पुरुव्रतः जज्ञानः) बहुत कर्म वाला प्रकट होकर(इषः जनयन्)अन्नोंको उत्पन्न करता हुआ (सुतः धारया पवते) अभिषुत हुआ धारासे बरसता है ॥ १० ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य प्रथम खंड समाप्त

एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः।

गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

(शूरः) पराक्रमी (अण्व्या) अंगुलिसे निचोड़ा हुआ (एषः) यह सोम (इन्द्रस्य निष्कृतम्) इन्द्रके स्वर्ग नामक स्थानको (आशुभिः रथेभिः गच्छन्) शीघ्रगामी रथोंके द्वारा जाताहुआ (धिया याति) कर्म करके पहुँचता है ॥ १ ॥

एष पुरु धियायते बृहते देवतातये ।

यत्राऽमृतास आशत ॥ २ ॥

(एषः) यह सोम (बृहते देववीतये) महान् यज्ञके लिये (पुरू धियायति) बहुतसे कर्मकी इच्छा करता है (यत्र अमृतासः आशत) जिस यज्ञमें देवता व्याप्त होते हैं ॥ २ ॥

एतं मृजन्ति मर्ज्यमुपद्रोणेष्वायवः ।
प्र चक्राणं महीरिषः ॥ ३ ॥

(आयवः) ऋत्विज (महीः इषः प्रचक्राणम्) बहुतसे रसरूप अन्नोंकी वर्षा करनेवाले (एतं मर्ज्यम्) इस शोधन करनेयोग्य सोमको (द्रोणेषु उपमृजन्ति) द्रोणकलशोंमें शुद्धतापूर्वक निचोड़ते हैं ॥ ३ ॥

एष हितो विनीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा ।
यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ४ ॥

(एषः हितः) यह सोम हविर्धानमें स्थापन कियाहुआ (विनीयते) तहाँसे आहवनीयके समीप लेजायाजाताहै (अन्तः) हविर्धान और आहवनीयके मध्यदेशमें (शुन्ध्यावता पथा) शुद्धियुक्त मार्गसे (यदि भूर्णयः) जब अध्वर्यु आदि (तुञ्जन्ति) देवताओंको अर्पण करतेहैं ४

एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः ।
पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ५ ॥

(वाजी) वेगवान् (शुभ्रेभिः अंशुभिः) श्वेत किरणोंसे युक्त (एषः) यह सोम (सिन्धूनां पतिः भवन्) बहतेहुए रसोंका स्वामी होताहुआ (रुक्मिभिः ईयते) अध्वर्यु आदिकोंके साथ जाता है ॥ ५ ॥

एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३वृषा ।
नृम्णा दधान ओजसा ॥ ६ ॥

(ओजसा नृम्णा दधानः) बलके द्वारा धनोंको हमारे अर्थ धारण करताहुआ (एषः) यह सोम (शृङ्गाणि दोधुवत्) सींगोंकी समान ऊँची किरणोंको अभिषवके समय कँपाता है (यूथ्यः वृषा शिशीते) जैसे यूथपति वृषभ अपने तीखे सींगोंको कँपाता है ॥ ६ ॥

एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाँ अति ।
अव शादेषु गच्छति ॥ ७ ॥

(वसूनि पिब्दनः एषः) कर्मको रोकनेवाले राक्षसोंको पीड़ा देता हुआ यह सोम (परुषा अति यथिवान्) पर्वके द्वारा लाँघकर जाता-हुआ (शादेषु अवगच्छति) मारने योग्य राक्षसोंमें पहुँचता है ॥ ७ ॥

एतमु त्यं दश क्षिपो हरिꣳ हिन्वन्ति यातवे ।
स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥

(स्वायुधं मदिन्तमम्) श्रेष्ठ आयुधवाले परमहर्षदायक (हरिं त्यं एतम् उ) हरे वर्णके तिस इस ही सोमको (यातवे दश क्षिपः हिन्वन्ति) गमन करनेके लिये दश अंगुलियें प्रेरणा करती हैं ॥ ८ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत ।
गच्छन्वाजꣳ सहस्रिणम् ॥ १ ॥

(वृषा) मनोरथों की वर्षा करनेवाला (रथः) वेगवान (स्यः एषः) वह यह अभिषव किया हुआ सोम (सहस्रिणं वाजम्) सहस्रों का अन्न यजमानको देनेके लिये (गच्छन्) द्रोणकलश में प्रवेश करना चाहता हुआ (अव्या वारेभिः अव्यत) ऊनके पवित्र में को छनकर द्रोणकलश में जाता है ॥ १ ॥

एतं त्रितस्य योषणो हरिꣳ हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

(त्रितस्य योषणः) त्रितकी अंगुलियें (इन्द्राय पीतये) इन्द्र के पीनेके लिये (एतं हरिं इन्दुम) इस हरेवर्ण के सोमको (अद्रिभिः हिन्वन्ति) अभिषवके पाषाणों से प्रेरणा करती हैं ॥ २ ॥

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति ।
गच्छञ्जारो न योषितम् ॥ ३ ॥

(स्यः एषः) वह यह सोम (मानुषीषु विक्षु) यजमानरूप मनुष्य प्रजाओं में । (श्येनः न) जैसे बाज पक्षी शीघ्र आता है तैसे (आ सीदति) अनुग्रहपूर्वक आकर स्थित होताहै (योषितं गच्छन् जारः न) जैसे कि—व्यभिचारिणी स्त्रीके पास जानेवाला जार संकेत के अनुसार उसकी इच्छा पूरी करनेको गुप्तरूप से जाता है ॥ ३ ॥

एष स्य मद्यो रसोऽवचष्टे दिवः शिशुः ।
य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ४ ॥

(दिवः शिशुः) द्युलोक में उत्पन्न होनेके कारण उस के पुत्र की समान (यः इन्दुःवारं आविशत्) जो सोम दशा पवित्रमें प्रवेश करता है (स्यः एषः) वह सोम (मद्यः रसः अवचष्टे) मदकारी रसरूप है और सब को ही देखता है ॥ ४ ॥

एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।
क्रन्दन्योनिमभिप्रियम् ॥ ५ ॥

(पीतये सुतः) देवताओंके पीनेके लिये अभिषव किया हुआ (हरिः धर्णसिः) हरे वर्णका और सबका धारक (स्यः एषः) वह यह सोम (प्रियं योनिम्) अपने प्यारे द्रोणकलश रूप स्थानमें (क्रन्दन् अभ्यर्षति) शब्द करता हुआ जाता है ॥ ५ ॥

एतं त्यꣳ हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ६ ॥

(त्यं एतम्) ऐसे इस सोमको (दश हरित.) अध्वर्युकी दशअंगुलियें (अपस्युवः मर्मृज्यन्ते) कर्मकी इच्छा करती हुइ शोधती है (याभिः मदाय शुम्भते) जिन अंगुलियों से इन्द्रकी प्रसन्नताके लिये शोधा जाता है ॥ ६ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः ।
अव्यं वारं विधावति ॥ १ ॥

(वाजी नृभिः हितः) वेगवान् और अध्वर्यु करके पात्रमें स्थापन किया हुआ (विश्ववित् मनसः पतिः) सर्वज्ञ और मन का स्वामी (एषः अव्यं वारं विधावति) यह सोम ऊनके दशापवित्रमें को अनेकों धारों से निकलता है ॥ १ ॥

एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः
विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥

(एषः देवेभ्यः सुतः) यह सोम देवताओंके निमित्त अभिषव किया हुआ (पवित्रे अक्षरन्) पवित्रमें छनकर (विश्वा धामानि आविशन्) सकल देवशरीरों में प्रवेश करता है ॥ २ ॥

एष देवः शुभायते ऽधि योनावऽमर्त्यः ।
वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥

(अमर्त्यः वृत्रहा) मरणधर्म रहित और शत्रुओं का नाशक (देववीतमः देवः) देवताओं की परम कामना करनेवाला और दिव्यरूप (एषः अधियोनौ शुभायते) यह सोम अपने कलशरूप स्थान में शोभा पाता है ॥ ३ ॥

एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः ।
अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥

(वृषा एषः) मनोरथों की वर्षा करनेवाला यह सोम (कनिक्रदत् दशभिः यामिभिः यतः) शब्द करता हुआ और दश अंगुलियोंसे धारण किया हुआ (द्रोणानि अभि धावति) द्रोण कलशोंमें को जाता है ॥४॥

एष सूर्यमरोचयत्पवमानो अधि द्यवि ।
पवित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥

(पवित्रे) स्वयं दशापवित्र मे स्थित (मत्सरः मदः) प्रसन्नता देनेवाला और प्रसन्न रूप (एषः पवमानः) यह संस्कार कियाजाता हुआ सोम (अधिद्यवि सूर्यं अरोचयत्) द्युलोक में स्थित सूर्य को दीप्त करता है ॥ ५ ॥

एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता ।
पतिर्वाचो अदाभ्यः ॥ ६ ॥

(वाचः पतिः) स्तुतिरूपा वाणीका स्वामी (अदाभ्यः एषः) किसी से भी हिंसित न होनेवाला यह सोम (संवसानः) सबको आच्छादित करता हुआ (विवस्वता सूर्येण हासते) दीप्तिमान् सूर्य करके दशापवित्र में छोड़ाजाता है ॥ ६ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।

पुनानो घ्नन्नप द्विषः ॥ १ ॥

(कविः अभिष्टुतः एषः) अनुभवी और स्तुति कियाहुआ यह सोम (पुनानः) पवित्र किया जाता हुआ (द्विषः अपघ्नन्) शत्रुओंको दूर करता हुआ (पवित्रे अधितोशते) कृष्ण मृगचर्म पर कूटाजाता है १

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परिषिच्यते ।

पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥

(दक्षसाधनः स्वर्जित् एषः) बलका साधन और सबको जीतने वाला यह सोम (इन्द्राय वायवे) इन्द्र और वायु के अर्थ (पवित्रे परिषिच्यते) दशापवित्र में टपकाया जाता है ॥ २ ॥

एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।

सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥

(दिवः मूर्धा,) द्युलोकका शिरकी समान प्रधान (वृषा सुतः) कामनाओं की वर्षा करनेवाला और अभिषव किया हुआ (विश्ववित् एषः) सर्वज्ञ यह सोम (वनेषु नृभिः विनीयते) काठके पात्रों में ऋत्विजों करकै अनेकों धारोंसे पहुँचाया जाता है ॥ ३ ॥

एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः ।

इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ ४ ॥

(गव्युः हिरण्ययुः) हमारे लिये गौएं और सुवर्ण चाहनेवाला (इन्दुः सत्राजित्) दीप्त और बहुतसे शत्रुओं को एकसाथ जीतने वाला (अस्तृतः एषः पवमानः) किसीसे हिंसित न होनेवाला यह सोम (अचिक्रदत्) शब्द करता है ॥ ४ ॥

एष शुष्म्यऽसिष्यदद्ऽन्तरिक्षे वृषा हरिः ।

पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ५ ॥

(वृषा हरिः) मनोरथपूरक और हरे वर्ण का (पुनानः इन्दुः) पवित्र करनेवाला दीप्तिमान् (शुष्मी एषः) बलवान् यह सोम(अन्तरिक्षे असिष्यदत्) दशापवित्र में टपकता है (इन्द्रं आ) इन्द्रको भी आदर के साथ पहुँचता है ॥ ५ ॥

एष शुष्म्यऽदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।
देवावीरघशꣳसहा ॥ ६ ॥

(देवावीः अघशंसहा) देवताओंका रक्षक और पापकी सराहना करनेवालोंका नाशक (अदाभ्यः पुनानः) अहिंसनीय और शोधन किया जाता हुआ (शुष्मी एषः अर्षति) बलवान् यह सोम द्रोणकलश में पहुँचता है ॥ ६ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य पञ्चमः खंडः समाप्तः

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति ।
विघ्नन् रक्षाꣳसि देवयुः ॥ १ ॥

(देवयुः सः) देवताओं की कामना वाला वह सोम (पीतये सुतः) इन्द्रादि के पीनेके लिये अभिषव कियाहुआ (वृषा), इच्छित पदार्थों की वर्षा करता हुआ (रक्षांसि विघ्नन्) राक्षसो का नाश करताहुआ (पवित्रे अर्षति) दशापवित्र में पहुँचता है ॥ १ ॥

स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः ।
अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ २ ॥

(विचक्षणः हरिः) सबका द्रष्टा और पापहारी (धर्णसिः सः) सबका धारणकर्त्ता वह सोम (पवित्रे अर्षति) दशापवित्र में जाता है । फिर (कनिक्रदन् योनिं अभि) शब्द करता हुआ द्रोणकलशमें जाता है॥२॥

स वाजी रोचनं दिवः पवमानो विधावति ।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥

(वाजी दिवः रोचनम्) वेगवान् और द्युलोकका दीपक (रक्षोहा पवमानः सः)राक्षसोंका नाशक शुद्ध कियाजाता हुआ वह सोम(अव्यय वारं विधावति) ऊनके पवित्रमें छनकर अनेकों धाराओंसे जाता है ३

स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।
जामिभिः सूर्यꣳ सह ॥ ४ ॥

(सः) वह सोम (त्रितस्य अधि सानवि) त्रितके बडेभारी यज्ञमें (पवमानः) संस्कार किया जाताहुआ (जामिभिः सह सूर्यं अरोचयत्) बढेहुए बंधुरूप श्रेष्ठ तेजोंके साथ सूर्यको प्रकाशित करता हुआ ॥४॥

स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः ।
सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥

(वृत्रहा वृषा) शत्रुओंका नाशक और वर्षाकर्त्ता (सुतः वरिवोवित्) अभिषव कियाहुआ और यजमानको धन देनेवाला (अदाभ्यः सः सोमः) औरोंसे हिंसित न होनेवाला वह सोम (वाज इव असरत्) संग्रामके घोड़ेकी समान वेगसे कलशमें जाताहै ॥ ५ ॥

स देवः कविनेषितोऽभिद्रोणानि धावति ।
इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥ ६ ॥

(देवः इन्दुः स) दिव्य और पतला कियाहुआ वह सोम (कविना इषितः) अनुभवी अध्वर्युसे प्रेरणा कियाहुआ (इन्द्राय मंहयन्) इन्द्रको अपने रससे पूजताहुआ (द्रोणानि अभिधावति) कलशोंकी ओरको जाताहै ॥ ६ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य पञ्चः खण्डः समाप्त

यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतꣳ रसम् ।
सर्वꣳ स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना १

(यः ऋषिभिः संभृतं रसं पावनीः अध्येति) जो ऋषियोंके सम्पादन कियेहुए वेदके साररूप पवमानदेवतावाले मन्त्रोंको पढ़ता है (सः सर्वं मातरिश्वना स्वदितम्) वह पुरुष भोजनकी सामग्रीमात्रको स्वयं पवित्र पवनने स्वाद लेकर (पूतं अश्नाति) पवित्रकी हुईको खाता है १

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ २ ॥

(यः ऋषिभिः संभृतं रसम्) जो पुरुष ऋषियोंकी सम्पादनकी हुई वेदकी साररूप (पावमानीः अध्येति) पवमान देवतावाली ऋचाओं को पढ़ता है (तस्मै सरस्वती) उसके लिये सरस्वती देवी (क्षीरं सर्पिः मधु उदकं दुहे) यज्ञका साधन वेदरूप दूध घी और मदकारी जल स्वयं दुह देती है अर्थात् उसको यज्ञादिविषयक वेदशास्त्र का ज्ञान करदेती है ॥ २ ॥

पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्च्युतः
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतꣳहितम्ः ३

(पावमानीः) पवमान देवतावाली ऋचाएं (स्वस्त्ययनीः सुदुघाः) कल्याण प्राप्त करानेवाली और श्रेष्ठ फल देनेवाली (घृतश्चुतः) हमारे ऊपर अनुग्रहरूप घृतको टपकानेवाली है (हि ऋषिभिः रसः संभृतः) नि देह मंत्रद्रष्टाओंने हमारे लिये फलोंका सार सम्पादन करदिया है (ब्राह्मणेषु अमृतं हितम्) हम वेदपाठियोंमें अविनाशी बल स्थापन करदिया है ॥ ३ ॥

पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः॥४॥

(देवैः समाहृताः पावमानीः देवीः) इन्द्रादि देवताओंकी संपादन की हुई पवमान मंत्रोंकी अभिमानिनी देवियें (नः इमं अथो अमुं लोकं दधन्तु) हमें यह लोक और स्वर्गलोक दें । और उन दोनो लोकोंके (नः कामान् समर्धयन्तु) हमारे मनोरथोंको सफल करें ॥ ४ ॥

येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥ ५ ॥

(देवाः येन पवित्रेण) इन्द्रादि देवता जिस शुद्धिके साधनसे (सदा आत्मानं पुनते) सदा अपने शरीरको पवित्र करते हैं (तेन सहस्रधा-रेण) उस सहस्रों भेदोंवाले साधनसे (पावमानीः नः पुनन्तु) पवमान देवतावाली ऋचाएं हमें पवित्र करें ॥ ५ ॥

पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्द-
नम् । पुण्यांश्च भक्षान्भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति

(पावनीः स्वस्त्ययनीः) अग्निदेवतावाली या पवमान सोम सोमसंबंधी देवतावाली ऋचाएं अविनाशी फल देनेवाली है (ताभिः नान्दनं गच्छति) उन ऋचाओंके पाठसे स्वर्गको प्राप्त होताहै । इस लोकमें (पुण्यान् भक्षान् च भक्षयति) पुण्यप्राप्त खानपानके पदार्थोंको भोगताहै (अमृतत्वं च गच्छति) और अमरभावको भी प्राप्त होता है॥

साम प्रातराचिके दशमाध्यायस्य सप्तम खण्ड समाप्त

अगन्म महा नमसा यविष्ठं, यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे। चित्रभानुꣳ रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुत विश्वतः प्रत्यञ्चम्॥ १॥

(यः स्वे दुरोणे समिद्धः दीदाय) जो अग्नि अपने आहवनीय स्थान में काष्ठोंसे भले प्रकार दीप्त होताहै। तिस (यविष्ठम्) परमतरुण (ऊर्वी रोदसी अन्तः चित्रभानुम्) विस्तारवाले द्यावापृथिवीके मध्य में विचित्र कान्ति वाले (स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम्) श्रेष्ठ आहुतियों से होमेहुए और सर्वत्र गमन करनेवाले अग्निको (महा नमसा अगन्म) महान् प्रणाम करतेहुए शरणमें प्राप्त होतेहैं॥ १॥

स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निष्टवे दम आ जातवेदाः। स नो रक्षिषद्दुरितादवद्याद-स्मान्गृणत उत नो मघोनः॥ २॥

(मह्ना नः विश्वा दुरितानि साह्वान्) अपने प्रभावसे हमारे सकल पापोंका तिरस्कार करनेवाला (जातवेदाः सः अग्निः) धनकाभंडारी वह अग्निदेव (दमे आ स्तवे) यज्ञशालामें हमारे द्वारा स्तुति किया जाता है (सः गृणतः नः) वह अग्नि स्तुति करनेवाले हमारी (दुरितात् अवद्यात् रक्षिषत्) पापसे और निंदित कर्मसे रक्षा करे (उत मघोनः अस्मान्) और हविवाले हमारी रक्षा करे॥ २॥

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने, त्वां वर्धन्ति मति भिर्वसिष्ठाः। त्वे वसु सुषणनानि सन्तु, यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ३॥

(अग्ने त्वं वरुणः उत मित्रः) हे अग्ने! तुम पापोंको दूर करनेवाले वरुण और पुण्य प्राप्त करानेमें मित्र हो (वशिष्ठाः त्वां मतिभिः वर्धन्ति) जितेंद्रियोंमें श्रेष्ठ ऋषि तुम्हें स्तुतियोंसे बढ़ाते हैं (त्वे वसु सुषणना-नि सन्तु) तेरे विषे विद्यमान धन हमारे सेवन योग्य हों (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम सब देवता स्वस्तियोंसे सदा हमारी रक्षा करो॥ ३॥

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव।

स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥

(यः इन्द्रः) जो इन्द्र (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) वरसनेवाले मेघकी समान (तेजसा महान्) अपने तेज करके ही सबसे बड़ा है। वह इन्द्र (वत्सस्य स्तोमैः वावृधे) पुत्ररूप स्तोताके स्तोत्रोंसे बढ़ताहै १

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्।
जामि ब्रुवत आयुधा ॥ २ ॥

(यद्) जब (कण्वाः इंद्रं स्तोमैः यज्ञस्य साधनं अक्रत) स्तोताओं ने इन्द्रको स्तोत्रोंके द्वारा यज्ञका साधक किया। तब (आयुधा जामि ब्रुवत) शस्त्र निरर्थक कहलाते हैं ॥ २ ॥

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः ।
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ ३ ॥

(यद्) जब (पिप्रतः वह्नय) आकाशके प्रदेशोंको पूर्ण करतेहुए अश्व (ऋतस्य प्रजाम्) यज्ञके निमित्त प्रकटहुए इन्द्रको (प्र भरन्त) वेगके साथ लेजाते हैं। तब (विप्राः) ऋत्विज (ऋतस्य वाहसा) यज्ञको प्राप्त करानेवाले स्तोत्रसे तिस इन्द्रकी स्तुति करते हैं॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य अष्टमः खण्डः समाप्तः

पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत ।
जीरा अजिरशोचिषः ॥ १ ॥

(जिघ्नतः) बार २ अंधकारका विनाश करनेवाले (हरेः अजिरशोचिषः) हरे वर्णके और सर्वत्र जानेवाला है तेज जिसका ऐसे (पवमानस्य चन्द्राः जीराः असृक्षत) सोमकी, देवताओंको आनन्द देनेवाली धारें पवित्रमेंको निकलती हैं ॥ १ ॥

पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २ ॥

(रथीतमः) श्रेष्ठ रथवाला (शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः) दमकते हुए तेजोंसे भी अधिक दमकनेवाला (हरिश्चन्द्रः) हरे वर्णकी धारोंवाला (मरुद्गणः पवमानः) मरुत् हैं सहायक जिसके ऐसा सोम। सबोंको अपनी किरणोंसे व्याप्त करे ॥ २ ॥

पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

(पवमान) हे सोम ! (वाजसातमः) बहुत से अन्न और बलका देनेवाला तू (स्तोत्रे सुवीर्यम् दधत्) स्तुति करनेवाले को सुंदर वीर पुत्र वा धन देता हुआ (रश्मिभिः व्यश्नुहि) अपनी किरणों से सब जगत् को भरदे ॥ ३ ॥

परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः । दधन्वान्यो नर्यो अप्स्वा३ऽन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ १ ॥

(यः सोमः उत्तमं हविः) जो सोम देवताओं का श्रेष्ठ हवि है (आ यः नर्यः) और जो मनुष्योंका हितकारी सोम (अप्सु अन्तः दधन्वान्) वसतीवरी जलों के भीतर जाताहै । और अध्वर्यु जिस (सोमं अद्रिभिः सुषाव) सोमको पाषाणों से अभिषुत करते हैं । उस (सुतं इतः परिषिञ्चत) सोमको इस स्थान में ऊपर सींचो ॥ १ ॥

नूनं पुनानोऽविभिः परिस्रवाऽदब्धः सुरभिन्तरः । सुते चित्त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥ २ ॥

हे सोम ! (अदब्धः) किसी से भी हिंसा न किया हुआ (सुरभिन्तरः) अत्यन्त सुगन्धिवाला तू (नूनम्) इस समय (पुनान) शोधाजाता हुआ (अविभिः पवित्रैः परिस्रव) ऊनके पवित्र में को बरस (सुते चित्) अभिषुत होने पर (अन्धसा गोभिः श्रीणन्तः) भातरूप अन्नसे और गोघृतादिसे मिलाते हुए हम (उत्तरं अप्सु त्वा मदामः) अत्यन्त प्रकट हुए वसतीवरी जलों में स्थित तुझको प्रसन्न करते हैं ॥ २ ॥

परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥ ३ ॥

(देवमादनः क्रतुः) देवताओंको तृप्त करनेवाला और यज्ञका साधक (इन्दुः विचक्षणः) दीप्त और सबका विशेषरूपसे द्रष्टा (स्यानः दशसे परि) अभिषव कियाहुआ सोम सबके दर्शनके लिये द्रोणकलशमें बरसता है ॥ ३ ॥

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् । पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥१॥

(अरुष वृषा) प्रकाशवान् और वर्षा करनेवाला (हरिः सोमः असावि) हरे वर्णका सोम सुसिद्ध हुआ (राजेव दस्मः) राजाकी समान दर्शनीय होकर (गाः अभि अचिक्रदत्) जलोंकी ओरको शब्द करता है । फिर पवित्र होता हुआ (अव्यं वारं अत्येषि) ऊनके पवित्रे में को छनता है (श्येनः न घृतवन्तं योनिं आसदन) पक्षीकी समान वेगसे जलभरे अपने कलशरूप स्थान में पहुँचता है ॥ १ ॥

पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे । स्वसार आपो अभि गा उदासरन् सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे ॥२॥

(महिषः पर्णिनः पर्जन्यः पिता) महान् पत्तोंवाले सोमका उत्पादक पर्जन्य की समान सोम (पृथिव्या नाभा गिरिषु क्षयं दधे) पृथिवीके नाभिस्थान पर्वतोंमें स्थानको करता है, (स्वसारः आपः गाः) अंगुलियें वसतीवरीजल और स्तुतियें (अभि उदासन्) अभिमुख प्राप्त हों (वीते अध्वरे ग्रावभिः सं वसते) श्रेष्ठ यज्ञमें पाषाणों के साथ जाता है ॥ २ ॥

कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि । अपसेधन्दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः परियासि निर्णिजम् ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम ! (कविः वेधस्या माहिनं पर्येषि) अनुभवी तू यज्ञविधानकी इच्छासे पवित्रमें पहुँचता है । फिर (मृष्टः अत्यः न वाजं

अभ्यर्षसि) धोया हुआ घोडेकी समान वेगसे संग्रामको प्राप्त होता है हे सोम ! (दुरिता अपसेधन्) हमारे पापोंको दूर करताहुआ (न मृड) हमें सुख दे (घृतावसानः निर्णिजं परियासि) जलोंको आच्छादन करताहुआ पवित्रभावको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य नवमः खण्ड समाप्तः

आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत । वसूनि जाते जनिमान्योजसा प्रतिभागं न दीधिमः १

हे हमारे पुरुषों ! (आयन्तः सूर्य इव) जैसे सूर्यका आश्रय करने वालीं किरणें सूर्यका सेवन करती हैं तैसे (विश्वेत् इन्द्रस्य भक्षत) सकल धन इन्द्रका सेवन करो (जातः वसूनि ओजसा जनिमा) प्रकटहुआ इन्द्र जिन धनोंको अपने बलसे उत्पन्न होनेवाला करता है अर्थात् जो धन इन्द्रके प्रभावसे अवश्य ही प्रकट होतेहैं और होंगे उन को हम (भागं न प्रतिदीधिम) पितरोंके भागकी समान धारण करें १

अलर्षिरातिं वसुदामुपस्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः । यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ २ ॥

हे स्तोता ! (अलर्षिरातिं वसुदां उपस्तुहि) निष्पाप पुरुषोंके लिये दाता और भक्तोंको धन देनेवाले इन्द्रकी स्तुति करो । क्योंकि (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके दान कल्याणरूप हैं अर्थात् उससे बडा ऐश्वर्य बढ़ता है (यः मनः चोदयन्) जो इन्द्र अपने मनको इच्छित दान देने के लिये प्रेरणा करताहुआ (विधतः अस्य कामं न रोषति) आराधना करनेवाले इस यजमानकी इच्छाको नष्ट नहीं करता है ॥ २ ॥

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । मघवन् शग्धि तव तन्न ऊतये विद्विषो विमृधो जहि १

(इन्द्र यतः भयामहे) हे इन्द्र ! जिन हिंसकोंसे हम भयभीत होते हैं (ततः नः अभयं कृधि) उनसे हमें निर्भय करो (मघवन् नः तन् तव ऊतये शग्धि) हे इन्द्र ! हमें अपनी उस रक्षाके द्वारा रक्षित करने को समर्थ कीजिये (द्विषः विजहि) हमारे द्वेषियोंको नष्ट करो (मृधः वि) हमारे हिंसकों को नष्टकरो ॥ ३ ॥

त्वꣳ हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्त्ता। तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ २ ॥

(राधसस्पते त्वं हि) हे धनके स्वामी इन्द्र ! तुम निःसन्देह (महः राधसः क्षयस्य) बहुतसे धन और स्थानके (विधर्त्ता असि) हमें देनेके लिये विशेषरूप से धारण करनेवाले हो (गिर्वणः मघवन् इंद्र) हे मंत्रोंसे प्रार्थना करने योग्य धनवान् इन्द्र (तं त्वा वयं सुतावन्तः हवामहे) ऐसे तुमको हम सोमका अभिषव करके आह्वान करते हैं २

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य दशम खण्ड समाप्तः

त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे। पवस्व मꣳहयद्रयिः ॥ १ ॥

(सोम मन्द्रः ओजिष्ठः) हे सोम ! परम आनन्द देनेवाला और बड़ा भारी ओजस्वी तू (अध्वरे धारयुः असि) हमारे हिंसा रहित यज्ञ में अभिषवकी धाराओंको चाहनेवाला हो (मंहयद्रयिः त्वं पवस्व) अपने उपासकोंको धन देनेवाला होकर द्रोणकलश में पवित्र हो ॥१॥

त्वꣳ सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः। इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ २ ॥

हे सोम ! (त्वं मदिन्तमः दधन्वान्) तू अत्यन्त मदयुक्त यज्ञका धारक (मत्सरिन्तमः इन्दुः) परम मदकारी और दीप्त (सत्राजित् अस्तृतः)अनेकोंको जीतनेवाला और किसीसेभी हिंसित न होनेवाला है॥

त्वꣳ सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत्। द्युमन्तꣳ शुष्ममाभर ॥ ३ ॥

हे सोम (अद्रिभिः सुष्वाणः त्वं अचिक्रदत् अभ्यर्ष) पाषाणो से अभिषव किया जाता हुआ तू शब्द करता हुआ द्रोणकलश में प्राप्तहो (द्युमन्तं शुष्मं आभर) दीप्तियुक्त शत्रुओंका शोषक बल हमें दे ॥३॥

पवस्व देववीतय इन्द्रो धाराभिरोजसा। आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ १ ॥

(इन्दो देववीतये ओजसा धाराभिः पवस्व) हे सोम ! देवताओं के भक्षण के लिये बलसे धाराओं करकै कलशमें बरस (सोम मधुमान् नः कलश आसदः) हे सोम ! मदकारी रसवाला तू हमारे द्रोणकलशमें स्थित हो ॥ १ ॥

तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः ।
त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ २ ॥

(उदप्रुतः तव द्रप्साः) वसतीवरी जलों में को जानेवाले तेरे शीघ्रगामी रस (मदाय इन्द्रं वावृधुः) मदके लिये इन्द्रको बढ़ाते हैं । तदनन्तर (देवासः कं त्वां अमृताय पपुः) इन्द्रादि देवता सुखदायक तुझको अमर होनेके लिये पीते हैं ॥ २ ॥

आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।
वृष्टिद्यावो रीत्यापःस्वर्विदः ॥ ३ ॥

(वृष्टिद्यावः स्वर्विदः) द्युलोकको वृष्टिके अभिमुख करनेवाले और यजमानोंको स्वर्गप्राप्ति करानवाले (रीत्यापः सुतासः) जो जलोंको पृथिवी पर बरसनेवाला करदेते हैं और जो संस्कार कियेहुए हैं ऐसे (पुनानाः इन्दवः) पवित्र होतेहुए हे सोमो ! तुम (नः रयिं आधावत) हमें धन प्राप्त कराओ ॥ ३ ॥

परित्यꣳ हर्यतꣳ हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान् विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति १

(हर्यतं हरिम्) सबके चाहने योग्य और पापोंको हरनेवाले (बभ्रुं त्यम्) बभ्रुवर्ण तिस सोमको (वारेण परिपुनन्ति) दशापवित्रसे शोधन करते हैं (यः विश्वान् देवान्) जो सकल इन्द्रादि देवताओंको (मदेन सह इत् परिगच्छति) मादक रसके साथ ही प्राप्त होता है ॥ १ ॥

द्विर्यं पञ्च स्वयशसꣳ सखायो अद्रिसꣳहितम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयंत ऊर्मयः ॥ २ ॥

(द्विः पञ्च) द्विगुण पांच अर्थात् दश (सखायः) समान भावसे कार्यमें लगनेवाली अङ्गुलियें (स्वयशं अद्रिसंहितम्) अपना यश करने वाले और पाषाणोंसे कूटेहुए (इन्द्रस्य प्रियं काम्यम) इन्द्रके प्रिय और

सबके चाहेहुए (ऊर्मयः) तरङ्गोंवाले अर्थात् बहुतसे (यं प्रस्नापयन्ते) जिस सोमको वसतीवरी जलोंसे सम्यक् प्रकार धोती हैं ॥ २ ॥

इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परिषिच्यते । नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम (वृत्रघ्ने इन्द्राय पातवे) वृत्रासुरके नाशक इन्द्र के पीनेके लिये और (दक्षिणावते वीराय) जिसके निमित्त कियेहुए यज्ञमें ऋत्विजोंको दक्षिणा दीजाती है उस वीर इन्द्रके लिये (च) और (सदनासदे नरे) बहुतसे यज्ञोंके अनुष्ठानमें बैठनेवाले यजमानके लिये (परिषिच्यसे) पात्रोंमें टपकाये जाते हो ॥ ३ ॥

पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥ १ ॥

(सोम अश्वा न) हे सोम ! अश्वकी समान (निक्तः) धोकर शुद्ध कियाहुआ (वाजी) वेगवान् तू (महे दक्षाय धनाय पवस्व) बड़ेभारी धन और बलके लिये पात्रमें बरस ॥ १ ॥

प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥ २ ॥

हे सोम ! (सोतारः) ऋत्विज (ते रसं मदाय पुनन्ति) तेरे रस को मदके लिये पवित्र करते हैं (महे द्युम्नाय सोमम्) बड़ेभारी अन्न और यशके लिये सोम रसको पवित्र करते हैं ॥ २ ॥

शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥ ३ ॥

ऋत्विज (देवेभ्यः) देवताओंके लिये (शिशुम् जज्ञानम्) देवताओं के पुत्रसमान सोमपात्र और शुद्ध होतेहुए (हरिं इन्दुं सोमं) हरेवर्ण के दीप्त सोमको (पवित्रे मृजन्ति) पवित्रसे शोधन करते हैं ॥ ३ ॥

उपोषु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥

(जातं अन्तरम) प्रकटहुए और वसतीवरी जलोंके प्रेरणा कियेहुए (भङ्गं गोभिः सु परिष्कृतम्) शत्रुओंके नाशक और गोघृतादिसे सुसिद्ध कियेहुए (इन्दुं देवाः उपायासिषुः) सोमको इन्द्रादि देवता प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सꣳ सꣳ शिश्वरीरिव य इन्द्रस्य हृद꣡ꣳसनिः ॥ २ ॥

(यः इन्द्रस्य हृत्सनिः) जो सोम इन्द्रके हृदयका परम सेवक है (तमित् नः गिरः संवर्द्धन्तु) उस सोमको ही हमारी स्तुतिरूपा वाणियें बढावें (वत्सं शिश्वरीः इव) जैसे कि बालकको दूधवाली मातायें बढाती हैं ॥ २ ॥

अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् । वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥ ३ ॥

(सोम नः गवे शं अर्ष) हे सोम! हमारी गोओंके लिये सुख बरसा (पिप्युषीं इषं धुक्षस्व) बहुतसे अन्नको हमारे घरमें भरदे (उक्थ्य समुद्रं वर्द्ध) हे स्तुतियोग्य ! द्रोणकलशके जलको बढा ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य एकादशः खण्डः समाप्तः

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥

(ये आ घा अग्नि इन्धते) जो ऋषि अभिमुख होकर अवश्य ही अग्निको प्रज्वलित करते हैं (येषां युवा इन्द्रः सखा) जिनका नित्य तरुण इन्द्र मित्र बनारहताहै। वह (आनुषक् बर्हिः स्तृणन्ति) क्रमसे कुशायें बिछाते हैं ॥ १ ॥

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥

(एषां इध्मः बृहन् इत्) इन ऋषियोंका समिधाओंका समूह बहुत ही बड़ा है (शस्त्रं भूरि) स्तोत्र बहुत है (स्वरुः पृथुः) शस्त्र बड़ा है (येषां युवा इन्द्रः सखा) जिनका नित्यतरुण इन्द्र सखा है ॥ २ ॥

अयुद्ध इद्युधावृतꣳ शूर आजति सत्वभिः ।

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥

(येषां युवा इन्द्रः सखा) जिनका नित्यतरुण इन्द्र मित्र है, उनमें का कोई (अयुद्ध इत्) पहिले योधा होनाहुआ ही (युधावृतम्) योधाओंकी सेनासे घिरेहुए शत्रुको (सत्वभिः शूरः) अपने बलोंसे शूर होताहुआ (आजति) नमाता है ॥ ३ ॥

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ १ ॥

(यः एक इत्) जो इन्द्र एक ही (दाशुषे मर्त्ताय वसु विदयते) हवि देनेवाले यजमानको धन देता है (अप्रतिष्कुतः इन्द्रः) जिससे कोई प्रतिकूलता नहीं करता ऐसा वह इन्द्र (अङ्ग ईशानः) शीघ्र ही सब जगत्का स्वामी होजाता है ॥ १ ॥

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवा-
सति । उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥२॥

(बहुभ्य यः चित् हि) बहुतसे मनुष्योंमेंसे जो यजमान अवश्य ही (सुतावान) सोमका संस्कार करनेवाला होकर । हे इन्द्र (त्वा आविवासति) तुम्हारी आराधना करता है (तत्) उसको (उग्रम्) तीव्र (शवः) बल (इन्द्रः अङ्ग आपत्यते) इन्द्र शीघ्र ही प्राप्त कराता है ॥ २ ॥

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ३ ॥

(इन्द्रः) इन्द्र (कदा) कब (अराधसं मर्त्तम्) देवताओंको हवि न देनेवाले मनुष्यको (पदा क्षुम्पमिव) जैसे चरणसे काठ गलकर उगे हुए छत्राकार फलको कुचलदेते हैं तैसे (स्फुरत्) नष्ट करेगा? (कदा) कब (अङ्ग) शीघ्र ही (नः गिरः शुश्रवत्) हमारी स्तुतियोंको सुनेगा ॥३॥

गायन्ति त्वा गायत्रिणोर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे॥१॥

(शतक्रतो) हे इन्द्र ! (गायत्रिणः त्वा गायन्ति) उद्गाता तेरी स्तुतियोंका गान करते हैं (अर्किणः अर्कं अर्चन्ति) अर्चनके साधनका पढ़नेवाले होता यजमान इन्द्रकी मंत्रोच्चारणके साथ पूजा करते हैं (ब्रह्म

त्वा उद्येमिरे) ब्रह्मा आदि अन्य ऋत्विज तुम्हें उन्नतिके पद पर पहुँचाते हैं (वंशं इव) जैसे कि—नट बांसको ऊँचा करते हैं अथवा जैसे सन्मार्गमें चलनेवाले पुरुष अपने कुलको ऊँचा करते हैं ॥ १ ॥

यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति॥२॥

(यद्) जब (सानोः सानु आरुहः) यजमान सोमवल्ली समिधा आदि लानेको पर्वतके शिखरपर चढ़ता है (भूरि कर्त्वं अस्पष्ट)अनेकों कर्मवाले यज्ञका अनुष्ठान करता है (तद् इन्द्रः) उस समय इन्द्र(अर्थं चेतति) यजमान के प्रयोजन को जानजाता है और जानकर (वृष्णिः यूथेन एजति) मनोरथों की वर्षा करनेवाला होकर देवगणोंके साथ यज्ञभूमि में आनेकी चेष्टा करता है ॥ २ ॥

युङ्क्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥३॥

(सोमपाः) हे सोमपान करनेवाले इन्द्र ! (केशिना वृषणा) ग्रीवा पर केशोंवाले और तरुण (कक्ष्यप्राः हरी) पुष्ट अङ्गोंवाले अपने घोड़ों को (युङ्क्ष्व हि) अवश्य ही रथ में जोतो (अथ) इसके अनन्तर (इन्द्र) हे इन्द्र ! (नः गिरां उपश्रुतिं चर) हमारी स्तुतियें सुननेको समीप में आइये ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः दशमाध्यायश्च समाप्तः

एकादश अध्याय

सुषमिद्धो न आवह देवाँ अग्ने हविष्मते ।
होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥

(अग्ने सुसमिद्धः) हे अग्ने ! सम्यक् प्रकार प्रज्वलित हुए तुम (नः हविष्मते देवान् आवह) हमारे यजमान के निमित्त देवताओं को आवाहन करो (होतः पावक) हे पवित्र करनेवाले और होमके सफलकर्त्ता अग्ने ! (यक्षि च) उन देवताओंका यजन भी करो ॥१॥

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे ।
अद्या कृणुह्यूतये ॥ २ ॥

(कवे अग्ने) हे मेधावी अग्निदेव ! (तनूनपात्) तनूनपात नाम वाला तू (अद्य) आज (ऊतये) हमारी रक्षाके लिये (नः मधुमन्तं यज्ञं देवेषु कृणुहि) हमारे रसयुक्त यजनके योग्य हविको देवताओं में पहुँचाओ ॥ २ ॥

नराशꣳसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उपह्वये ।
मधुजिह्वꣳ हविष्कृतम् ॥ ३ ॥

(इह अस्मिन् यज्ञे) इस देवयजनस्थानमें इस वर्त्तमान यज्ञके विषे (प्रियं मधुजिह्वम) देवताओंको प्रसन्न करनेवाले और मीठा बोलने वाली जिह्वावाले (हविष्कृत नराशंसम् उपह्वये) हवियोंको देवताओं के समीप पहुँचाकर सफल करनेवाले नराशंस नामक अग्निका मैं आवाहन करता हूँ ॥ ३ ॥

अग्ने सुखतमे रथे देवाँ२ईडित आवह ।
असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (ईडितः) हमसे स्तुति कियेहुए तुम (सुख-तमे रथे देवान् आवह) अत्यन्त सुखदायक किसी रथमें देवताओंको बैठाकर कर्मभूमिमें लाओ (मनुर्हितः होता असि) तुम मन्त्ररूपसे वा मनुष्य यजमानादि रूपसे यहाँ स्थापित और देवताओंका आह्वान करनेवाले हो ॥ ४ ॥

यद्द्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा ।
सुवाति सविता भगः ॥ १ ॥

(यत्) जो धन हमें अपेक्षित है उसको (अद्य सूरे उदिते) आज सूर्यका उदय होने पर प्रातःकालके समय (अनागाः) पापनाशक (मित्रः अर्यमा) मित्र और अर्यमा देवता तथा (भगः सविता सुवाति) सेवनीय सविता देवता प्रेरणा करता है ॥ १ ॥

सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः ।
ये नो अꣳहोतिपिप्रति ॥ २ ॥

(सुदानवः) हे श्रेष्ठ दान करनेवाले मित्रादि देवताओं ! (प्र नु यामन्) उत्तमताके साथ शीघ्र ही तुम्हारा आगमन होनेपर (सक्षयः)

सुप्रावीः" अस्तु) अपने निवासस्थान यज्ञ सहित अग्नि देवता हमारा भलेप्रकार अधिकतासे रक्षक हो (ये नः अंहः अतिपिप्रति) जो तुम मित्रादि देवता हमें पापके पार करते हो ॥ २ ॥

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये ।
महो राजान ईशते ॥ ३ ॥

(उत ये) और जो मित्रादि देवता तथा (अदितिः) देवमाता (अदब्धस्य व्रतस्य स्वराजः) सुरक्षित हमारे कर्मके स्वामी हैं वह (महः राजानः) बहुतसे हमारे इच्छित धनके स्वामी होतेहुए (ईशते) वह इच्छित पदार्थ हमें देनेकी शक्ति रखते हैं ॥ ३ ॥

उत्त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! (सोमाः त्वा उत् मदन्तु) सोम तुम्हें उत्तम आनन्द दें (अद्रिवः राधः कृणुष्व) हे वज्रधारी ! हमें अन्न दो (ब्रह्मद्विषः अव-जहि) ब्राह्मणोंके द्वेषियोंका नाश करो ॥ १ ॥

पदा पणीनराधसो निबाधस्व महाँ असि ।
नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (महान् असि) तुम सबसे बड़े हो (त्वा प्रति कश्चन न हि) तुम्हारी समता करनेवाला कोई भी नहीं है (अराधसः पणीन् पदा निबाधस्व) यज्ञादिमें धनका दान न करनेवाले लोभियोंको चरण से दबाकर कष्ट दो ॥ २ ॥

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।
त्वँ राजा जनानाम् ॥ ३ ॥

(इन्द्र त्वं सुतानां त्वं असुतानां ईशिषे) हे इन्द्र ! तुम संस्कार किये हुए सोमोंके और तुम संस्कार न कियेहुए सोमोंके स्वामी हो (त्वं जनानां राजा) तुम सकल प्राणियोंके राजा हो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके एकादशाध्यायस्य प्रथम खंड समाप्त

आजागृविर्विप्र ऋतं मतीनाँ सोमः पुना

असदृचमृषु समपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ १ ॥

(जागृविः) जागरणशील (ऋतं मनीनां विप्रः) सत्यस्वरूप स्तुतियोंका ज्ञाता (सोमः पुनानः चमृषु आसदत्) सोम शोधाजाताहुआ पात्रोंमें स्थित होता है (मिथुनासः निकामा) परस्पर इकट्ठे हुए अपना कामनावाले (रथिरासः सुहस्ताः) यज्ञोंके परिचालक कल्याणरूप हाथवाले (अध्वर्यवः यं सपन्ति) अध्वर्यु जिसको स्पर्श करते हैं १

स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष आवः । प्रिया चिद्यस्य प्रियासास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥ २ ॥

(पुनानः दधानः सः) संस्कारयुक्त होताहुआ और यज्ञादि कर्मका साधक वह सोम (सूरे उपगच्छति) प्रेरक इन्द्रके समीप पहुँचता है (उभे रोदसी) द्यावा पृथिवी दोनोंको (आ अप्राः) अपनी महिमा से पूर्ण करताहै (सोमः आवः) सोम अपने तेजसे मुझे आच्छादित करता है (प्रिया) प्रिय पदार्थ देनेवाले (यस्य सतः) जिस विद्यमान सोमको (प्रियासासः) अत्यन्त प्यारी धारें (ऊती) हमारी रक्षा करती है वह (कारिणे न धनं प्रयंसत्) भृत्यसमान मुझे धन देवें २

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् । यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥ ३ ॥

(वर्द्धिता वर्द्धनः) देवताओंको अपनी कला देकर बढानेवाला और स्वयं बढताहुआ (पूयमानः मीढ्वान्) दशापवित्रके द्वारा शुद्ध होताहुआ और कामनाओंकी वर्षा करनेवाला (सः सोमः) वह सोम (नः ज्योतिषा अभ्यावीत्) हमें अपने तेजसे रक्षा करे (यत्र) जिस सोमके प्रसन्न होने पर (पदज्ञाः स्वर्विदः) पदोंके जाननेवाले और सर्वज्ञ (नः पूर्वे पितरः) हमारे पुरातन पितर (गाः) गौएं पानेको (अद्रिं अभि इष्णन्) पर्वतकी ओरको जाना चाहते हैं ॥ ३ ॥

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।

इन्द्रमित्स्तोता वृषणꣳ सचा सुते मुहुरुक्था च शꣳसत ॥ १ ॥

(सखायः) हे हितकारी स्तोताओ ! (अन्यत् मा चित् विशंसत) इन्द्रके स्तोत्रसे अन्य स्तोत्रको कभी भी उच्चारण मत करो (मा रिषण्यत) अन्य स्तोत्रके उच्चारणसे वृथा क्षीण मत होओ (सुते वृषणं इन्द्रम् इत्) सोमका संस्कार होने पर मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले इन्द्रकी ही (सचा स्तोत) इकट्ठे होकर स्तुति करो (उक्था च मुहुः शंसत) इन्द्रविषयक मंत्रोंको ही बार बार पढ़ो ॥ १ ॥

अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम्। विद्वेषणꣳ संवननमुभयङ्करं मꣳहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥

(वृषभं यथा अवक्रक्षिणम्) वृषभकी समान शत्रुओंको मारनेवाले (गां न जुवम्) वृषकी समान शीघ्रता करनेवाले (चर्षणीसहम्) शत्रुओंके पुत्रोंका तिरस्कार करनेवाले (विद्वेषणं संवननम्) शत्रुओं से द्वेष करनेवाले और उपासकोंके आराधना करने योग्य (उभयङ्करं मंहिष्ठम्) निग्रह अनुग्रह दोनोंके कर्त्ता और परमदाता (उभयाविनम्) दिव्य पार्थिव दोनो प्रकारका ऐश्वर्यवाले इन्द्रकी ही स्तुति करो

उद्रु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते। सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव

(त्ये मधुमत्तमाः) वह अत्यन्त मधुर (गिरः स्तोमासः) वेद वाणीरूप स्तोत्र (उदीरते) उच्चारण कियेजाते हैं अर्थात तुम्हारे निमित्त उच्चारण कियेहुए ऊपर फैलते हैं (सत्राजितः धनसा) साथ ही शत्रुओंको जीततेहुए और धनको पानेवाले (अक्षितोतयः) अटल रक्षावाले (वाजयन्तः रथा इव) अन्न चाहनेवाले रथ जैसे अनेकों प्रकारसे भूतलपर प्रचलित होते हैं ॥ १ ॥

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत। इन्द्रꣳ स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २ ॥

(कण्वाः इव स्तुवन्तः) कण्वगोत्रवाले ऋषियोंकी समान स्तुति करतेहुए (धीतं विश्वमित् इन्द्रं आशत) ध्यान करतेहुए उस व्यापक इंद्रको ही व्याप्त करते हैं (सूर्या इव) जैसे कि—सूर्यकी किरणें सब जगत्को व्यापलेती हैं और (प्रियमेधासः आयवः) यज्ञसे प्रेम करने वाले ऋत्विज (महयन्त.) उस इन्द्रकी ही पूजा करतेहुए (स्तोमेभिः अस्वरन) स्तोत्रोंसे प्रशंसाका वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

पर्यूषु प्रधन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥ १ ॥

(सु वाजसातये प्रधन्व) हे सोम ! भलेप्रकार हमें अन्न देनेके लिये सब ओरसे पहुँच (सक्षणिः वृत्राणि परि) सहनशील तुम शत्रुओंको प्रतिकूल रूपमें प्राप्त होओ (नः ऋणया) हमारे ऋणको दूर करनेवाले तुम (द्विषः तरध्यै ईरसे) शत्रुओंको मारनेके लिये पहुँचते हो ॥ १ ॥

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः । गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥ २ ॥

(पवमान) हे सोम ! (पयः विधारे हि) जलको धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें ही (शक्मना सूर्यं अजीजनः) अपनी शक्तिसे सूर्यको निःसन्देह उत्पन्न किया है (गोजीरया) स्तोताओंको गौ आदि पशु देने वाले (पुरन्ध्या) अनेकों प्रकारके ज्ञानसे युक्त (रंहमाणः) वेग करते हुए तूने सूर्यको उत्पन्न किया है ॥ २ ॥

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्य राज्ये । वाजां अभि पवमान प्रगाहसे ॥ ३ ॥

इसकी व्याख्या ५ वें अध्यायके प्रथम खंडमें होचुकी है ॥ ३ ॥

परि प्रधन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या ५ वें अध्यायके प्रथम खंडमें होचुकी ! ॥ १ ॥

एवाऽमृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥ २ ॥

हे सोम (शुक्रः दिव्यः) दीप्त और द्युलोकमें उत्पन्न हुआ (पीयूषः सः) देवताओंके पीने योग्य तुम (अमृताय महे क्षयाय एव अर्ष) अमर होनेके लिये और बडे स्थानके लिये ही बरसो ॥ २ ॥

इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात् क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥ ३ ॥

(क्रत्वे दक्षाय) श्रेष्ठ ज्ञान और बलकी प्राप्तिके लिये (सोम) हे सोम! (सुतस्य ते) अभिषुत तेरे रसको (इन्द्रः पेयात्) इन्द्र पियें (विश्वे देवाः च) सकल देवता भी तेरे रसको पियें ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके एकादशाध्यायस्य द्वितीय खण्ड समाप्तः

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो, मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते। तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो, नेन्द्रादृते पवते धाम किंचन ॥१॥

(सूर्यस्य रश्मयः इव) सूर्यकी सर्वत्र व्यापक किरणोंकी समान (द्रावयित्नवः मत्सरासः) बहनेवाले और मदकारी (प्रसुतः आशवः सर्गासः) अधिकतर सत्कार कियेहुए पात्रोंमें फैलेहुए सुसिद्ध सोम (ततं तन्तुं साकं परिईरते) फैलेहुए दशापवित्रमें एकसाथ जाते हैं और वह सोम (इन्द्रात् ऋते किंचन धाम न पवते) इन्द्रके विना किसी भी अन्य देवताओंकी ओरको नहीं जाते हैं ॥ १ ॥

उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु, मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि। पवमानः संतनिः सुन्वतामिव, मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षसि ॥ २ ॥

(मतिः पृच्यते) स्तुति इन्द्रमें संयुक्त कीजाती है (मधु सिच्यते) मधुर रसवाला सोम इन्द्रके लिये वसतीवरीजलोंमें मिलायाजाताहै (मन्द्राजनी आसनि अन्तः उपचोदते) मदकारी रसको बरसानेवाली सोमकी धारा इन्द्रके मुखके भीतर प्रेरणा कीजाती है (सन्तनिः सुन्वतां पवमानः मधुमान् द्रप्सः वारं परिअर्षति) पात्रोंमें फैलाहुआ यजमानों का पवमान सोम शीघ्रताकेसाथ जाताहुआ ऊनके पवित्रमेंको छनकर निकलता है ॥ २ ॥

उक्षा मिमेति प्रतियन्ति धेनवो, देवस्य देवी-रुपयन्ति निष्कृतम् । अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥३॥

(उक्षा मिमेति) वृषभसमान सोम शब्द करताहै (धेनवः प्रतियन्ति) गौरूप स्तुतियें उस वृषभरूप सोमका अनुगमन करती हैं (देवस्य निष्कृतम्) दिपतेहुए सोमके संस्कार कियेहुए स्थानको स्तुतियें प्राप्त होती हैं और वह सोम (अर्जुन अव्यय वारं अत्यक्रमीत) स्वेत वर्णके ऊर्णा पवित्रमेंको छनकर निकलता है और वह सोम (अत्कं न निक्तं परि अव्यत) अपने कवचकी समान मिलानेके उज्ज्वल पदार्थोंको आच्छादन करलेता है ॥ ३ ॥

अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् । दूरेदृशं गृहपतिमथर्व्युम् ॥१॥

(नरः) हे ऋत्विजो ! तुम (प्रशस्त दूरे दृशम्) अधिक स्तुतिकियेहुए और दूर दीखतेहुए (गृहपति अथर्व्युम्) गृहोंके रक्षक और अगम्य (अग्निम) अग्निको (अरण्योः हस्तच्युतम्) अरणियोंमेंसे अस्त होनेपर (दीधितिभिः जनयन्त) अङ्गुलियोंसे उत्पन्न करो ॥१॥

तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्, सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् । दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥२॥

(यः दमे दक्षाय्य. नित्यः आस) जो अग्नि घर घर पूजनीय वा हवियोंसे प्रज्वलित करनेयोग्य और नित्य हुआ (त सुप्रतिचक्ष अग्निम्) उस सुन्दर दर्शनीय अग्निको (कुतश्चित् अवसे) सब प्रकारके भयसे रक्षा पानेके लिये (वसवः अस्ते न्यृण्वन्) स्तोताओंने अग्निशालामें स्थापन किया ॥ २ ॥

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । त्वां शश्वन्त उपयान्ति वाजाः ॥३॥

(यविष्ठ अग्ने) हे परमतरुण अग्निदेव ! (प्रेद्धः) पूर्णतया प्रज्वलित हुए तुम (अजस्रया सूर्म्या नः पुरः दीदिहि) निरन्तर ज्वालासे हमारे निमित्त इस आगेके आहवनीय स्थानमें दीप्त होओ ॥ ३ ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १ ॥

(गौः पृश्निः अयं आक्रमीत्) गमनशील और व्याप्त है तेज जिस का ऐसा यह सूर्य उदयाचलको प्राप्त हुआ और फिर घूमकर (पुरः मातरं असदन्) पूर्वदिशामें सकल प्राणियोंकी मातासमान भूमिको प्राप्त होताहै (च पितरं स्वः प्रयन्) और फिर पालक द्युलोकको शीघ्र प्राप्त होताहै ॥ १ ॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती।
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ २ ॥

(अन्तः) द्यावापृथिवीके मध्यमें (अस्य रोचना) इस सूर्यकी दीप्ति (प्राणात् अपानती) उदयकालके अनन्तर अस्तको प्राप्त होती हुई (चरति) जाती है (महिषः दिवं व्यख्यन्) महान् सूर्य अन्तरिक्ष को प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

त्रिꣳशद्धाम विराजति वाक्पतङ्गाय धीयते।
प्रतिवस्तोरह द्युभिः ॥ ३ ॥

(वस्तोः त्रिंशद्धाम) दिनकी तीसों घड़ी (द्युभिः विराजति) दीप्तियोंसे यह सूर्य विशेष शोभायमान होता है। उस समय (वाक् पतङ्गाय अह प्रतिधीयते) त्रयीरूपा वाणी सूर्यके निमित्त ही उच्चारण कीजाती है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके एकादशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः
एकादशाध्यायश्च समाप्त

द्वादश अध्याय।

उप प्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये।
आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥

(अध्वरं उपप्रयन्तः) हिंसारूप प्रत्यवायरहित अग्निष्टोम आदि यज्ञोंको अनुष्ठान करतेहुए हम (आरे च अस्मे शृण्वते) दूर होकर भी हमारी स्तुतिको सुननेवाले (अग्नये मन्त्रं वोचेम) अग्नि देवता के अर्थ इस सूक्तके मंत्रोंका स्तोत्र पढ़नेवाले हों ॥ १ ॥

यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु ।
अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥ २ ॥

(पूर्व्यः यः) चिरकालीन जो अग्नि (स्नीहितीषु कृष्टिषु जग्मनासु) वध करनेवाली शत्रुरूप प्रजाओंके इकट्ठी होनेपर (दाशुषे गयं अरक्षत्) हवि देनेवाले यजमानके निमित्त धनकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शंतमः ।
उतास्मान्पात्वंहसः ॥ ३ ॥

(शन्तमः सः अग्निः) परम कल्याणरूप वह अग्नि (नः वेदः अमात्यं रक्षतु) हमारे धनकी शत्रुओंसे रक्षा करे (उत अस्मान् अंहसः पातु) और हमारी पापसे रक्षा करै ॥ ३ ॥

उत ब्रुवन्तु जन्तवः उदग्निर्वृत्रहाऽजनि ।
धनंजयो रणे रणे ॥ ४ ॥

(वृत्रहा) शत्रुनाशक (रणे रणे धनञ्जयः) प्रत्येक संग्राममें शत्रुओंके धनको जीतनेवाला (अग्निः उदजनि) अग्नि अरणियोंमेंसे प्रकट हुआ (उत जन्तवः ब्रुवन्तु) तदनन्तर सकल ऋत्विज उस अग्निकी स्तुति करैं ॥ ४ ॥

अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।
अरं वहन्त्याशवः ॥ १ ॥

(अग्ने देव) हे अग्निदेव ! (ये तव साधवः अश्वासः) जो तुम्हारे सुशील घोड़े (आशवः अरं वहन्ति) शीघ्रगामी होकर पूर्णरूपसे तुम्हारे रथको पहुँचाते हैं (हि युङ्क्ष्व) उनको ही अपने रथमें जोड़ो ॥ १ ॥

अच्छानो याह्यावहाऽभिप्रयांसि वीतये ।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥ २ ॥

हे अग्ने ! (नः अच्छ याहि) हमारे अभिमुख आओ (वीतये सोमपीतये) हविभक्षण करनेको और सोमपान करनेको (प्रयांसि अभि देवान् आवह) हविरूप अन्नोंकी ओरको देवताओंका आवाहन करो २

उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् ।
शोचा विभा ह्यजर ॥ ३ ॥

(भारत अग्ने उत् शोच) हे यजमानों का भरण करनेवाले अग्नि-देव ! ऊँचे होकर प्रज्वलित हूजिये (अजर दविद्युतत्) हे जरारहित अग्ने अत्यन्त द्योतमान तुम (द्युमत् अजस्रेण विभाहि) दीप्तिमान् अविच्छिन्न तेजसे विशेषरूपसे सकल जगत् को प्रकाशित करो ॥३॥

प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसꣳ हता मखं न भृगवः॥१॥

(सुन्वानाय अन्धसः) अभिषव किये जातेहुए भोजन योग्य सोम के (तत् वचः मर्त्तः न वष्ट) उस प्रसिद्ध शब्दको कर्म में विघ्न करनेवाला श्वान न सुनै । हे स्तोताओ ! (अराधसं श्वानं अपहत) साधकता रहित उस श्वानको मारो (भृगवः मखं न) जैसे भृगुओंने अपराधी मखको मारा था ॥ १ ॥

आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम्॥२॥

(जामिः अत्के आ अव्यत) देवताओंका बन्धुरूप सोम दशापवित्र में सम्बद्ध होता है (ओण्योः भुजे पुत्रः न) जैसे रक्षक माता पिताके भुजाओं में पुत्र आबद्ध होता है । तदनन्तर यह सोम (योनिं आसदम्) अपने स्थान कलश में प्राप्त होनेको (सरत्) जाता है (जारः योषणां न) जैसे जार पुरुष व्यभिचारिणी स्त्रीको पानेके लिये जाता है (वरः न) जैसे वर कन्याको प्राप्त करनेके लिये जाता है ॥ २ ॥

स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम्॥३॥

(दक्षसाधनः सः वीरः) बलका साधन वह सोम शक्तिमान् है (यः रोदसी वितस्तम्भ) जिस सोमने द्यावापृथिवीको अपने तेजसे आच्छादित किया (वेधाः न) जैसे यजमान अपने घरको प्राप्त होता है तैसे ही (हरिः योनिं आसदम्) हरे वर्णका सोम अपने स्थान कलशमें प्राप्त होनेको (पवित्रे अव्यत) दशा पवित्र में संबद्ध होता है ३

सामवेदोत्तरार्चिके द्वादशाध्यायस्य प्रथमः खंडः समाप्तः

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

(इन्द्र त्वं जनुषा अभ्रातृव्यः) हे इन्द्र ! तू जन्मसे ही शत्रुरहित (सनात् अना अनापिः असि) सदाकालसे नियन्तारहित और बन्धु रहित है और जब तू (आपित्वं इच्छसे) बान्धवको चाहता है तब (युधेत्) युद्ध करताहुआ ही स्तोताओंका सखा होता है ॥ १ ॥

नकीरेवन्तꣳसख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः । यदा कृणोषि नदनुꣳसमूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥ २ ॥

(रेवन्तं सख्याय न किः विन्दसे) हे इन्द्र ! केवल धनवान् अर्थात् यज्ञादि न करनेवाले मनुष्यको तू सखाभावके लिये आश्रय नहीं करता है (सुराश्वः ते पीयन्ति) सुरा पीकर मतवाले हुए नास्तिकोंकी समान वह यज्ञादि न करनेवाले पुरुष तुम्हें अप्रसन्न करते हैं । इस कारण तुम उनका आश्रय नहीं करते हो (यदा नदनुं कृणोषि) जब तुम स्तुति करनेवालेको अपना करलेते हो । तब (समूहसि) उसको धन आदि देते हो (आदित् पिता इव हूयसे) तदनन्तर उस धन पानेवाले स्तोताके द्वारा पिताकी समान स्तुतियोंके द्वारा आह्वान कियेजाते हो ॥ २ ॥

आ त्वा सहस्रमाशतं युक्ता रथे हिरण्यये । ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये

(इन्द्र) हे इन्द्र (ब्रह्मयुजः केशिनः) हमारे दियेहुए हविसे युक्त और ग्रीवापर केशोंवाले (हिरण्यये रथे युक्ताः) सुवर्णके रथमें जुड़े हुए (सहस्रं शतं हरयः) सहस्रों और सैकड़ों विभूतियोंसे युक्त तुम्हारे अश्व (सोमपीतये त्वा वहन्तु) सोमको पीनेके लिये तुम्हें हमारे यज्ञमें लावें ॥ १ ॥

आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या । शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य

पीतये ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (मध्वः विचक्षणस्य अन्धसः पीतये) मधुर रसवाले स्तुतियोग्य सोमको पीनेके लिये (हिरण्यये रथे) सुवर्ण के रथमें जुड़े हुए (मयूरशेप्या शितिपृष्ठा हरी) मोरकी समान चित्रवर्ण की पूँछ और स्वेत पीठवाले घोड़े (त्वा आवहताम्) तुम्हे यज्ञमें पहुँचावें २

पिबात्वाऽ३ऽस्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव । परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥ ३ ॥

(गिर्वणः) हे वेदमन्त्रों से स्तुति करने योग्य इन्द्र ! (परिष्कृतस्य रसिना सुतस्य अस्य नु पिब) अभिषवादि से संस्कार किये हुए रसयुक्त सिद्ध किये हुए इस सोमको शीघ्र पियो (पूर्वपाः इव) जैसे कि—वायु सब देवताओं से पहिले पीता है (चारुः इयमासुतिः) सुन्दर यह सोमरस (मदाय पत्यते) हर्ष उत्पन्न करनेको समर्थ है॥

आ सोता परिषिञ्चताऽश्वं न स्तोममप्तुरꣳ-रजस्तुरम् । वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ १ ॥

हे ऋत्विजो ! (अश्वं न) घोड़की समान वेगवान् (स्तोमं अप्तुरम्) स्तुति योग्य और जलोके प्रेरक (रजस्तुरं वनप्रक्षम्) तेजों के प्रेरक और जलकी समान वहने वाले (उदप्रुतं आसोत) जलमें तैरते हुए सोमको शुद्ध करो (परिषिञ्चित) और चारों ओरसे वसतीवरी आदि के द्वारा सींचो ॥ १ ॥

सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने । ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥ २ ॥

(सहस्रधारं वृषभम्) अनेकों धाराओं वाले और मनोरथोंके पूरक (पयोदुहं प्रियम्) दूधकी समान साररूप रसको सींचनेवाले और तृप्त करने वाले सोमको (देवाय जन्मने) देव शरीरोंके अर्थ संस्कृत करो (देवः ऋतम्) दिव्य और सत्यस्वरूप (बृहत् ऋतजातः) महान् और जलसे उत्पन्न हुआ (यः राजा ऋतेन विवावृधे) जो सोम वस-

तीवरी नामक जलसे विशेष बढ़ता है॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वादशाध्यायस्य द्वितीय खण्डः समाप्त

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ १ ॥

(समिद्धः शुक्रः) सम्यक् प्रकार प्रज्वलित और श्वेतवर्णका (आहुतः विपन्यया) हवियोंसे होमाहुआ और स्तुति कियाजाता हुआ (द्रविणस्युः अग्निः) स्तोताओंको धन देना चाहताहुआ अग्नि (वृत्राणि जङ्घनत्) राक्षसादि शत्रुओंका वा अन्धकार और अज्ञानका सम्यक् प्रकार नाश करै ॥ १ ॥

गर्भे मातुः पितुः पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥

(मातुः गर्भे) भूमिरूपा माताके गर्भरूप मध्यभागमें (अक्षरे) न खसनेवाले वेदीरूप स्थानमें (विदिद्युतानः) विशेषरूपसे प्रज्वलित होताहुआ (पितुः पिता) हवि पहुँचाकर सबके पितारूप द्युलोकका पालन करनेवाला अग्नि (ऋतस्य योनिं आसीदन्)यज्ञकी उत्तरवेदी में स्थित होताहुआ शत्रुओंका नाश करै ॥ २ ॥

ब्रह्म प्रजावदाभर जातवेदो विचर्षणे ।
अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥ ३ ॥

(जातवेदः विचर्षणे अग्ने) हे प्राणिमात्रके ज्ञाता विशेष द्रष्टा अग्ने (प्रजावत् ब्रह्म आभर) पुत्र पौत्रादि सहित अन्न हमें दो (यत् दिवि दीदयत्) जो अन्न द्युलोकमें देवताओं के विषे शोभा पाता है ॥ ३ ॥

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो, देवो देवेभिः समपृक्त रसम् । सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्, मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥ १ ॥

(अस्य प्रेषा हेमना) इस सोमके प्रेरक हिरण्य करके (पूयमानः देवः) पवित्र होता हुआ दीप्यमान सोम (रसं देवेभिः समपृक्त) अपने रसको देवताओं में संयुक्त करता है । तदनन्तर (सुतः रेभन्

पवित्रं पर्येति) अभिषुत सोम शब्द करताहुआ ऊनके पवित्रमेंको छन कर निकलता है (होता मिता पशुमन्ति सद्म इव) जैसे देवताओंका आह्वान करनेवाला ऋत्विज, जिनमें गौ घोड़े बँधे हैं ऐसे यज्ञशालामें बनाये हुए घरों में जाता है ॥ १ ॥

भद्रा वस्त्रा समन्याऽ३ऽवसानो, महान्कविर्नि-वचनानि शꣳसन् । आवच्यस्व चम्वोः पूय-मानो, विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ २ ॥

(भद्रा समन्या वस्त्रा वसानः) कल्याणरूप संग्रामके योग्य तेजोंको धारण कियेहुए (महान् कविः निवचनानि शंसन्) महान् अनुभवी और ऋत्विजोंके स्तोत्रोंकी प्रशंसा करताहुआ (विचक्षणः जागृविः) विशेष द्रष्टा और जागरणशील हे सोम ! तू (पूयमानः) संस्कार किया जाताहुआ (देववीतौ चम्वोः आवच्यस्व) यज्ञमें पात्रोंमें प्रवेश कर २

समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये, यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे । अभिस्वर धन्वा पूय-मानो, यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

(यशसां यशस्तरः) यशवालोंमें परमयशस्वी (क्षैतः प्रियः) भूमि पर उत्पन्न हुआ और तृप्त करनेवाला सोम (सानौ अव्ये अस्मे संमृज्यते) ऊनके श्रेष्ठ पवित्रेमें हमारे लिये ऋत्विजोंने पवित्र कियाजाता है (पूयमानः त्वं उ)पवित्र कियाजाताहुआ तू ही (धन्वा अभिस्वर) अन्तरिक्षमें चारों ओर शब्द कर (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) हे सोम ! तू हमें कल्याणकारी रक्षाके साधनोंसे सदा रक्षा कर ॥ ३ ॥

एतो न्विन्द्रꣳस्तवाम शुद्धꣳशुद्धेन साम्ना । शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वाꣳसꣳशुद्धैराशीर्वान्ममत्तु १

एक समय इन्द्रने वृत्रादि असुरोंको मारकर अपनेको ब्रह्महत्याके दोषसे लिप्त समझा और उससमय इन्द्रने उस दोषसे छूटनेके लिये ऋषियोंसे कहा. कि-तुम मुझे शुद्ध करो तहां इस मन्त्रमें कहाहै कि-(नु एत उ) तुम शीघ्रही आओ और आकर (शुद्धेन साम्ना) शुद्धि उत्पन्न करनेवाले सामके द्वारा (शुद्धैः उक्थैः) शुद्ध मंत्रोंसे (शुद्ध

इन्द्रं स्तवामः) शुद्धहुए इन्द्रको स्तुति करते हैं (वावृध्वांसं) उन साम और शस्त्ररूप मंत्रोंसे पापरहित होनेके कारण वढेहुए इन्द्रको (शुद्धः आशीर्वान्) शुद्धि करनेवाले गो घृतादिसे मिलाहुआ सोम (ममत्तु) का प्रसन्न करे ॥ १ ॥

इन्द्र शुद्धो न आगहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः
शुद्धो रयिं निधारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥२॥

(इन्द्र शुद्धः नः आगहि) हे इन्द्र साम आदिसे शुद्ध हुआ तू हमारे कर्मानुष्ठानमें आओ (शुद्धाभिः ऊतिभिः शुद्धः) शुद्ध मरुतोंके साथ पापरहित हुआ तू आओ (शुद्धः रयिं निधारय) शुद्ध हुआ तू हमारे विषैं अधिकताके साथ धनको स्थापन कर (सोम्य शुद्धः ममद्धि) हे सोमके योग्य इन्द्र ! शुद्ध हुआ तू सोमसे हर्षको प्राप्त हो ॥ २ ॥

इन्द्र शुद्धो हि नो रयिꣳशुद्धो रत्नानि दाशुषे।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजꣳ सिषाससि३

(इन्द्र शुद्धः हि नः रयिम्) हे इन्द्र ! शुद्ध हुआ तू हमें धन दे (शुद्धः दाशुषे रत्नानि) शुद्ध हुआ तू हवि देनेवाले यजमानको बहुत से रत्न दे (शुद्धः वृत्राणि जिघ्नसे) पापरहित तू कर्ममें विघ्न करने वाले शत्रुओंको नष्ट करता है (शुद्धः वाजं सिषाससि) शत्रुमारण के दोषका परिहार होनेके लिये हमारे मंत्रोंसे शुद्ध हुआ तू हमें अन्न देना चाहता है अर्थात् जब २ मैं शत्रुओंको मारूं तब२ तुम शुद्धि देने वाले मंत्रोंसे मुझे शुद्ध करो इस इच्छासे हमें धन और अन्न देना चाहता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वादशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः।
देवस्य द्रविणस्यवः ॥ १ ॥

(द्रविणस्यवः) धनकी इच्छावाले हम (दिविस्पृशः,देवस्य अग्नेः) सूर्यरूप से आकाश में व्यापनेवाले प्रकाशवान् अग्निके (सिद्धं स्तोमम्) पुरुषार्थों के साधक स्तोत्रको (अद्य मनामहे) आज उच्चारण करते हैं ॥ १ ॥

अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा ।

स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥ २ ॥

(होता यः अग्निः मानुषेषु आ) होमको सिद्ध करनेवाला जो अग्नि मनुष्यों में रहता है (सः नः गिरः जुषत) वह अग्नि हमारी स्तुतियोंका सेवन करै (दैव्यं जनं यक्षत्) देवसंबंधी जनका यजन करै २

त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वितन्वते ॥ ३ ॥

(अग्ने जुष्टः वरेण्यः होता त्वम्) हे अग्ने ! सर्वदा प्रसन्न सबके वरण करनेयोग्य और होमके साधक तुम सबसे बडे हो । सब यजमान (त्वया यज्ञं वितन्वते) तुम्हारे द्वारा यज्ञानुष्ठान करते हैं ॥ ३ ॥

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः । वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्विरत्नधा दयते वार्याणि ॥ १ ॥

(त्रिपृष्ठं वृषणम्) तीन स्तोत्रवाले और कामनाओंकी वर्षा करनेवाले (वयोधां अङ्गोषिणम) अन्नके दाता और शब्द करनेवाले सोम की ओरको (वाणीः अभ्यवावशन्त) स्तोताओंकी वाणियें शब्द करती हैं (वरुणः न) वरुणकी समान (वना वसानः) जलोंको आच्छादन करताहुआ (सिन्धुः रत्नधाः) बहनेवाला और रत्नोंका दाता सोम (वार्याणि दयते) स्तोताओंको धन देता है ॥ १ ॥

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान्, जेता पवस्व सनिता धनानि । तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान्पृतनासु शत्रून् ॥ २ ॥

(शूरग्रामः सर्ववीरः) शूरोंके समूह और अनेकों वीरोंवाला (सहावान् जेता) सहनशील और शत्रुओंको जीतनेवाला (धनानि सनिता) धनोंका देनेवाला (तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा) तीखे आयुध और शीघ्रता करनेवाले धनुषवाला (समत्सु अषाढः) संग्रामोंमें किसीसे सह्य न होनेवाला (पृतनासु शत्रून् साह्वान्) सेनाओंमें शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाला हे सोम तू (पवस्व) द्रोणकलशमें बरस ॥ २ ॥

उरु गव्यूतिरभयानि कृण्वन्, समीचीने आ-पवस्वा पुरन्धी । अप: सिषासन्नुषस: स्वा३ऽ-३र्गा:, संचिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥३॥

हे सोम ! (उरुगव्यूति:) विस्तीर्ण मार्गवाला तू (अभयानि कृण्वन्) स्तुति करनेवालों को अभय देताहुआ (पुरन्धी समीचीने कुर्वन् आपवस्व) इन द्यावापृथिवीको सङ्गत करताहुआ बरस (अप: उषस: स्व: गा: सिषासन्) जल उषा सूर्य और किरणोंको पुष्टिके लिये सेवन करना चाहताहुआ (संचिक्रद) शब्द कर (मह: वाजान् अस्मभ्यम्) बहुतसे अन्न हमें दे ॥ ३ ॥

त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पति: । त्वं वृत्राणि हꣳस्यप्रतीन्येकइत्पुर्वनुत्तश्चर्षणी-धृति: ॥ १ ॥

(इन्द्र त्वम्) हे इन्द्र तू (शवसस्पति: ऋजीषी) अन्न और बलकी रक्षा करनेवाला तथा संस्कार कियेहुए सोमका स्वामी (यशा असि) और यशस्वी है (अनुत्त: चर्षणीधृति: त्वम्) किसीसे न दबनेवाला और यजमानादिकी रक्षा करके धारण करनेवाला तू (एक इत्) किसी की सहायताके विना ही (अप्रतीनि वृत्राणि पुरु हंसि) बड़े २ बलवान् भी असह्य शत्रुओंको अधिकताके साथ मारता है ॥ १ ॥

तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसꣳ राधोभागमिवेमहे । महीव कृत्ति: शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नुवन् ॥ २ ॥

(असुर इन्द्र) हे बलवान् इन्द्र ! (तं प्रचेतसं त्वा उ) ऐसे गुणों वाले और श्रेष्ठ ज्ञानवाले तुमसे ही (भागं इव) जैसे कोई अपने पिता से अपने भागका धन माँगता है तैसे ही हम (राध: नूनम् ईमहे) धन इस समय माँगते हैं (कृत्ति: इव) यश वा अन्नकी समान (ते मही शरणा) तेरा महान् स्थान द्युलोकमें है (ते सुम्ना न: प्राश्नुवन्) तुम्हारे पुत्रादि विषय के सुख हमें प्राप्त हों ॥ २ ॥

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

हे अग्ने (देवेषु देवम्) देवताओंमें अधिकतर दानी (होतारं अमर्त्यम्) देवताओंका आह्वान करनेवाले और अविनाशी (अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्) इस यज्ञके श्रेष्ठ कर्त्ता (यजिष्ठं त्वा ववृमहे) परम यष्टा तेरी हम भक्ति करते हैं ॥ १ ॥

अपां न पातꣳ सुभगꣳ सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम्। स नो मित्रस्य वरुणस्य सो-अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥ २ ॥

(अपां नपातम्) जलोंका पतन न करनेवाले अथवा हविसे जल, जलसे वनस्पति और वनस्पतिसे अग्नि होता है इसप्रकार जलों के पौत्र समान (सुभगं सुदीतिम्) श्रेष्ठ धन और सुन्दर दीप्तिवाले (श्रेष्ठशोचिषं अग्निं उ) श्रेष्ठ ज्वालावाले अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं (सः नः) वह अग्नि हमारे लिये (दिवि मित्रस्य वरुणस्य द्युम्नम् यक्षते) देवयजन भूमिमें मित्र और वरुण देवताके सुखके लिये यजन करे (सः अपाम्) वह अग्नि जल देवताके सुखके लिये भी यजन करे ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वादशाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः। स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ १ ॥

(अग्ने पृत्सु यं मर्त्यं अवाः) हे अग्निदेव! संग्रामोंमें जिस यजमान की तुम रक्षा करते हो (वाजेषु यं जुनाः) संग्रामोंमें जिस पुरुषको प्रेरणा करते हो (सः) वह यजमान (शश्वतीः इषः यन्ता) नित्य अन्नोंको वशमें करसकता है ॥ १ ॥

नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित्। वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ २ ॥

(सहन्त्य) हे शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले अग्ने! (अस्य कयस्य चित् पर्येता नकिः) ऐसे किसी भी यजमान पर आक्रमण करनेवाला

कोई नहीं है और इस यजमानका (श्रवाय्यः वाजः अस्ति) श्रवण करनेयोग्य सुन्दर बल है ॥ २ ॥

स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ३ ॥

(विश्वचर्षणिः सः) सकल मनुष्योंसे युक्त वह अग्नि (अर्वद्भिः वाजं तरुता अस्तु) अश्वोंके द्वारा संग्रामको तरनेवाला हो (विप्रेभिः सनिता अस्तु) ऋत्विजोंके सहित प्रसन्न हुआ अग्नि हमें इच्छित फल देनेवाला हो ॥ ३ ॥

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो, दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः । हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य, द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ १ ॥

(साकमुक्षः स्वसारः मर्जयन्त) एकसाथ सींचनेवाली कर्ममें इधर उधरको जातीहुई अँगुलियें सोमको शुद्ध करती हैं (दशधीतयः धीरस्य धनुत्रीः) दश अंगुलियें देवताओंके ध्यान करनेयोग्य वा चाहेहुए सोम की प्रेरक होती हैं । तदनन्तर (हरिः सूर्यस्यजाः पर्यद्रवत्) हरे वर्ण का सोम सूर्यकी जायारूप दिशाओंमेंको जाता है (वाजी न अत्यः) घोड़ेकी समान गतिवाला सोम (द्रोणं ननक्षे) द्रोणकलशमें व्यापता है १

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो, वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः । मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्, संगच्छते कलश उस्रियाभिः ॥ २ ॥

(वावशानः वृषा) देवताओंको चाहताहुआ और कामनाओंकी वर्षा करनेवाला (पुरुवारः) अनेकोंके वरण करनेयोग्य सोम (अद्भिः संदधन्वे) वसतीवरी जलों करकै धारण कियाजाता है (मातृभिः शिशुः न) जैसे कि—माता पिताकी चाहनावाले बालकको माता पिता दूध देकर धारण करते हैं । (मर्यः योषां न) जैसे मनुष्य तरुणी स्त्री को प्राप्त होता है तैसे ही (निष्कृतं अभियन्) अपने संस्कारयुक्त स्थान को जाताहुआ सोम (कलशे उस्रियाभिः सङ्गच्छते) द्रोणकलशमें गोघृतादिसे मिलता है ॥ २ ॥

उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया, इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः । मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥ ३ ॥

(उत अघ्न्यायाः ऊधः प्रपिप्ये) और न मारने योग्य गौके दुग्धस्थान अयनको सोम भक्षणके तृणादिमें प्रवेश करके अधिक पूर्ण करताहै (सुमेधाः इन्दुः धाराभिः सचते) श्रेष्ठ बुद्धिवाला वह सोम धाराओं करके मिलता है (गावः चमूषु मूर्धानं पयसा अभिश्रीणन्ति) गौएं पात्रोंमें स्थित उत्तम सोमको अपने दूधसे आच्छादित करती हैं (निक्तैः वसुभिः नः) जैसे कि—धुलेहुए वस्त्रोंसे आच्छादन करते हैं ॥ ३ ॥

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः । आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधेऽ३ऽस्मां अवन्तु ते धियः ॥ १ ॥

(इन्द्र रसिनः गोमतः नः सुतस्य पिब मत्स्व) हे इन्द्र ! रसयुक्त गोघृतादिसे मिलेहुए हमारे संस्कार किये सोमको पियो और तृप्त होओ (सधमाद्ये आपिः नः वृधे बोधि) साथ पियेजानेवाले सोमके विषयमें बंधुकी समान हमारी वृद्धि करनेके लिये सावधान हो (ते धियः अस्मान् अवन्तु) तेरी अनुग्रहरूपा बुद्धियें हमारी रक्षकहों॥१॥

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नस्तरभिमातये । अस्मांञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (वयं ते सुमतौ वाजिनः भूयाम) तुम्हारी अनुग्रहबुद्धि होने पर हम अन्नवान् हों ((अभिमातये नः, मा स्तः) शत्रुके लिये हमें नष्ट न होने दो । किन्तु (अभिष्टिभिः चित्राभिः ऊतिभिः अस्मान् अवतात्) प्रार्थना करने योग्य विचित्र प्रकारकी रक्षाओंके द्वारा हमारी रखवाली करो (सुम्नेषु नः आयामय) सुखोंके विषयमें हमें बड़ा करो अर्थात् हमें सदा सुखी रक्खो ॥ २ ॥

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे, सत्यामाशिरं परमे

व्योमनि। चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे, चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ १ ॥

(परमे व्योमनि अस्मै) अन्तरिक्ष में वर्त्तमान इस सोमके अर्थ (त्रिः सप्त) इक्कीस (धेनवः) तृप्त करनेवाली गौएं (सत्यां आशिरं दुदुहिरे) यथार्थ दुग्धादिको देती हैं। और यह सोम (यत्) जब (ऋतैः अवर्द्धत) यज्ञों से बढ़ता है। तब (अन्यानि चत्वारि भुवनानि) वसतीवरी आदि अन्य चार जलोंको (निर्णिजे चारूणि चक्रे) शोधने के लिये कल्याणरूप करता है ॥ १ ॥

स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण, उभे द्यावा काव्येना विशश्रथे। तेजिष्ठा अपो मंहना परिव्यत, यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः २

(चारुणः अमृतस्य भक्षमाणः सः) कल्याणकारी जलके लिये याचना किया हुआ वह (उभे द्यावा) दोनों पृथिवी और द्युलोकको (काव्येन विशश्रथे) स्तुति के द्वारा खुले हुए करदेता है अर्थात् जलसे पूर्ण करदेता है। (तेजिष्ठाः अपः मंहना परिव्यत) अत्यन्त दीप्त जलोंको महत्त्व के साथ आच्छादन करता है (यदि) जब कि ऋत्विज (देवस्य सदः श्रवसा विदुः) द्योतमान सोमके स्थानको हविसे युक्त होकर यज्ञके लिये ध्यान करते हैं ॥ २ ॥

ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवो, ऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु। येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत, आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥ ३ ॥

(अमृत्यवः अदाभ्यासः) मरणधर्म रहित और दूसरों से हिंसित होनेके अयोग्य (अस्य ते केतवः) इस सोम की वह प्रसिद्ध किरणें (उभे जनुषी अनु सन्तु) स्थावर जङ्गमरूप दोनो प्राणियों की रक्षा करें (येभिः नृम्णा च देव्या च पुनते) जिन किरणोंसे सोम बलोंको और देवताओं के योग्य अन्नोंको भी प्रेरणा करता है (आदित् राजानं मननाः अगृभ्णत) अभिषव के अनन्तर ही सोम को स्तुतियें प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वादशाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो, ऽ३ऽभि मित्रा-
वरुणा पूयमानः । अभी नरं धीजवनꣳ रथे-
ष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥ १ ॥

हे सोम ! (गृणानः वीति वायुं अभि अर्ष) स्तुति किया जाता हुआ तू पानके लिये वायुको प्राप्त हो (पूयमानः मित्रावरुणा अभि) पवित्र से शुद्ध होता हुआ मित्रावरुण देवताको प्राप्तहो (नरं धीजवनं रथेष्ठां अभि) सबके नेता बुद्धिकी समान वेगवाले रथमें स्थित अश्विनीकुमारों को प्राप्तहो (वृषणं वज्रबाहुं इन्द्रं अभि) मनोरथोंकी वर्षा करने वाले हाथमें वज्रधारी इंद्रको प्राप्त हो ॥ १ ॥

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षा, ऽभि धेनूः सुदुघाः
पूयमानः । अभि चन्द्रा भर्त्तवे नो हिरण्या,
ऽभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥ २ ॥

(देव सोम) हे स्तुतिके योग्य सोम ! तू हमें (सुवसनानि वस्त्रा अभ्यर्ष) श्रेष्ठ वस्त्रोंयुक्त रक्षा करनेवाले धन दे (पूयमानः सुदुघाः धेनूः अभि) पवित्रसे शोधित तू श्रेष्ठ दूधवाली नवीन विवाहिता गौएं दे (भर्त्तवे नः चन्द्रा हिरण्यानि अभि) भरणके लिये हमें आनन्ददायक सुवर्ण दे (रथिनः अश्वान् अभि) रथयुक्त घोड़े दे ॥ २ ॥

अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थि-
वा पूयमानः । अभि येन द्रविणमश्नुवामाभ्या-
र्षेयं जमदग्निवन्नः ॥ ३ ॥

हे सोम ! (पूयमानः) संस्कार कियाजाताहुआ तू (नः दिव्या वसूनि अभ्यर्ष) हमें द्युलोकके धन दे (पार्थिवा विश्वा अभि) भूलोकके सकल ऐश्वर्य दे (येन वयं द्रविणं अश्नुवाम अभि) जिस तेरी सामर्थ्यसे हम धनोंको भोगें वह सामर्थ्य भी हमें दे (जमदग्निवत् आर्षेयं नः) जैसे तूने जमदग्निको दिया था तैसे ऋषिकुमारोंके योग्य धन हमें भी दे ॥ ३ ॥

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय । तत्पृ-

थिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥ १ ॥

(अपूर्व्य मघवन्) हे सबसे आदिपुरुष धनवान् इन्द्र ! (वृत्रहत्याय यत् त्वं जायथाः) शत्रुओंका नाश करनेको जब तुम प्रकट हुए (तत् पृथिवीं अप्रथयः) तब तुमने पृथिवीको दृढ़ किया (उतो तत् दिवं अस्तभ्नाः) और तब ही तुमने द्युलोकको ऊँचा धाम बनाया ॥ १ ॥

तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।

तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तू जब प्रकट हुआ था (तत् ते यज्ञः अजायत) उससमय ही तेरे लिये अग्निष्टोम आदि यज्ञ प्रकट हुए थे (उत तत् हस्कृतिः अर्कः) और उस समय ही दिनकी व्यवस्था करनेवाला सूर्य प्रकट हुआ (यत् जातं यत् जन्त्वम्) जो उत्पन्न हुआ और जो कुछ उत्पन्न होगा (तत् विश्वं अभिभूः असि) उस सबका तूने तिरस्कार कियाहै

आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।

घर्मं न सामन् तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! (आमासु पक्वं ऐरयः)) अपक्व गौओंमें परिपक्व दूधको तूने प्रेरणा किया (दिवि सूर्यं आरोहयः) अन्तरिक्षमें सूर्यको स्थापित किया (धर्मं सामन् न) जैसे प्रवर्गको सोमोंसे तपाते हैं तैसे हे स्तोताओ (सुवृक्तिभिः तपत) श्रेष्ठ स्तुतियोंसे इन्द्रको तपाओ (गिर्वणसे जुष्टं बृहत्) वेदमंत्रोंसे प्रार्थना करने योग्य इन्द्रके अर्थ प्रसन्नता देने वाले बृहत् साम को गाओ ॥ ३ ॥

मत्स्यऽपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरा मदः । वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥

(हरिवः) हे पापहारिणी शक्तिवाले इन्द्र ! (महः पात्रस्य इव ते) यह महान् सोम जैसे धारण कर्ता पात्रका होताहै तैसे ही तेरा है (वृष्णो ते) अभीष्टफल देनेवाले तेरे लिये (मत्सरः मदः) मदकारी और तृप्तिदाता (वृषा इन्दुः) वर्षा करनेवाला और वहनवाला (वाजी सहस्रसातमः) अन्नवान् और सहस्रोंको दान देनेवाला साम सम्पादन किया है (अपायि मत्सि) इसको पियो और प्रसन्न होओ ॥१॥

आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाडऽमर्त्यः ॥२॥

(इन्द्र ते) हे इन्द्र तुझको (नः) हमारा (वृषा मदः) अभीष्ट-दाता और मदकारी (वरेण्यः सहावान्) वरणीय और हमारे उच्चारण किये मंत्रोंकी सहायतावाला (सानसिः पृतनाषाट्) हमारे सेवन करने योग्य और शत्रुसेनाओंका तिरस्कार करनेवाला (अमर्त्यः मत्सरः गन्तु) अविनाशी सोम प्राप्त हो ॥ २ ॥

त्वꣳहि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ३

हे इन्द्र ! (त्वं हि शूरः सनिता) तू ही निश्चय शूर है और दान देनेवाला है, इसकारण (मनुषः रथं चोदयः) मुझ मनुष्यके मनोरथको वा स्वर्गगमनके साधनको प्रेरणा कर और (सहावान्) सहायतायुक्त होकर (अग्निः शोचिषा पात्रं न) जैसे अग्नि अपनी ज्वालासे अपने आधारभूत पात्रको जला देता है तैसे (दस्युं अव्रतं ओषः) धोखा देनेवाले अर्थात् यज्ञके अधिकारी होकर भी यज्ञ न करनेवाले को भस्म कर ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वादशाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः द्वादशाध्यायश्च समाप्तः

त्रयोदश अध्याय

पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि ।
अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥ १ ॥

हे सोम ! तू (दिवः वृष्टिं नः सु आ पवस्व) अन्तरिक्षसे वर्षाको हमारे लिये सुन्दरताके साथ बरसा (अपां ऊर्मिं परि) जलोंकी तरङ्गोंको बरसा (अयक्ष्माः बृहतीः इषः) रोगरहित बहुतसे अन्नोंको बरसा १

तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।
जन्यास उप नो गृहम् ॥ २ ॥

हे सोम ! तू (तया धारया पवस्व) उस धारासे यहाँ बरस (यया जन्यासः गावः इह नः गृहं उप आगमन्) जिस धारासे शत्रुके देशकी गौएं इस देशमें हमारे घर आजायँ ॥ २ ॥

घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः ।
अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥

हे सोम ! (यज्ञेषु देववीतमः) यज्ञोंमें अधिकतर देवताओंका चाहा हुआ तू (अस्मभ्यं घृतं धारया पवस्व) हमारे निमित्त साररूप जल को धारोंसे बरसा (वृष्टिं आपव) वर्षाको गिरा ॥ ३ ॥

स न ऊर्जे व्या३ऽव्ययं पवित्रं धाव धारया ।
देवासः शृणवन् हि कम् ॥ ४ ॥

हे सोम ! (सः) वह अभिषव कियाहुआ तू (नः ऊर्जे) हमारे अन्नके लिये (अव्ययं पवित्रं धारया विधाव) ऊनके पवित्रमें धारसे पहुँच (देवासः हि कं शृणवन्) देवता अवश्य गमनसमयके तेरे शब्दको सुनें ॥ ४ ॥

पवमानो असिष्यदद्रक्षाᳫंस्यपजङ्घनत् ।
प्रत्नवद्रोचयन् रुचः ॥ ५॥

(रक्षांसि अपजङ्घनत्) राक्षसोंका नाश करताहुआ (रुचः प्रत्नवत् रोचयन्) अपनी दीप्तियोंको अति पुरातनसी प्रकाशित करता हुआ (पवमानः असिष्यदत्) सोम टपकता है ॥ ५ ॥

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरं गमाय जग्मये पश्चादध्वने नरः ॥ ६ ॥

हे अध्वर्यु ! (नरः) यज्ञोंका परिचालक तू (विश्वानि विदुषे) सकल जाननेयोग्य बातोंको जाननेवाले (अरङ्गमाय जग्मये) पर्याप्त गति और यज्ञोंमें जानेका स्वभाववाले (अपश्चादध्वने) सबके अग्रगामी (पिपीषते अस्मै प्रतिभर) पीनेकी इच्छावाले इस इंद्रको सोम दे ६

एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रᳫं सुतेभिरिन्दुभिः २

हे अध्वर्युओ ! (अमत्रेभिः ऋजीषिणम्) ग्रहचमसादि पात्रोंसे शत्रुओंके बलको ग्रहण करनेवाले (सुतेभिः इन्दुभिः) अभिषव किये हुए सोमोंसे युक्त (सोमेभिः सोमपातमम्) अत्यन्त सोमपान करनेवाले (एनं इन्द्रं आ प्रत्येतन) इस इन्द्रके अभिमुख जाकर प्रार्थना करो २

यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तं तमिदेषते ॥ ३ ॥

हे अध्वर्युओं ! (सुतेभिः इन्दुभिः सोमेभि) अभिषुत दिपते हुए सोमो करके (यदि प्रतिभूषथ) यदि इन्द्रकी शरणजाओगे तो (मेधिरः विश्वस्य वेद) यज्ञवाला इन्द्र तुम्हारे सकल मनोरथोंको ध्यानमें रक्खैगा और ध्यान में रखकर (धृषत्) शत्रुओंको भयदायक होता हुआ (तमित् एषते) तुम्हारी सकल कामनाओंको सफल करैगा ॥ ३ ॥

अस्मा अस्मा इदन्धसोध्वर्यो प्रभरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोभिशस्तेरवस्व-रत् ॥ ४ ॥

(अध्वर्यो) हे अध्वर्यु ! (अस्मा अस्मा इत्) इस इन्द्र के अर्थ ही तुम (अन्धसः सुतं प्रभर) अन्नरूप सोमके रसको अर्पण करो। वह इन्द्र (समस्य जेन्यस्य शर्द्धतः) समस्त जीतने योग्य उत्साही शत्रुके (अभिशस्तेः) हिंसनसे (कुवित् अवस्वरत्) अधिकतर हमारी रक्षा करै ॥ ४ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके अष्टादशाध्यायस्य प्रथम खण्डः समाप्तः

बभ्रवे नु स्वतवसेरुणाय दिविस्पृशे ।
सोमाय गाथमर्चत ॥ १ ॥

हे स्तोताओं ! (बभ्रवे स्वतवसे) बभ्रुवर्ण और अपने बलवाले (अरुणाय दिविस्पृशे) कभी अरुणवर्णवाले और द्युलोकका स्पर्श करनेवाले (सोमाय गाथं अन्वर्चत) सोम के अर्थ स्तुतिरूपा वाणीका उच्चारण करो ॥ १ ॥

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतꣳ सोमं पुनीतन ।
मधावाधावता मधु ॥ २ ॥

हे ऋत्विजो ! (हस्तच्युतेभिः अद्रिभिः) हाथमेंसे छूटेहुए पाषाणों से (सुतं सोमं पुनीतन) अभिषवकियेहुए सोमको पवित्रमें शुद्ध करो और मधौ मधु आधावत) मदकारी सोममें गौके दूधको डालो २

नमसेदुपसीदत दध्नेदभिश्रीणीतन ।
इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ३ ॥

हे ऋत्विजो ! (नमसा इत् उपसीदत) नमस्कारसे ही सोमको प्राप्त होओ (दध्ना इत् अभिश्रीणीतन) दधिसे भी सोमको मिलाओ (इन्द्रे इन्दुं दधातन) इन्द्रके विषै सोमको स्थापन करो ॥ ३ ॥

अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे ।
देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥ ४ ॥

(सोम) हे सोम (अमित्रहा विचर्षणिः) शत्रुओंका नाशक और विशेष द्रष्टा (देवेभ्यः अनुकामकृत्) देवताओंके अर्थ अभीष्ट काम करनेवाला तू (गवे शं पवस्व) हमारी गौओं को सुख दे ॥ ४ ॥

इन्द्राय सोम पातवे मदाय परिषिच्यसे ।
मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ५ ॥

(सोम मनश्चित् मनसः पतिः) हे सोम ! मनका ज्ञाता और मनका ईश्वर तू (इन्द्राय पातवे मदाय परिषिच्यसे) इन्द्र के पीनेके लिये और हर्ष प्राप्त होनेके लिये पात्रोंमें सींचाजाता है ॥ ५ ॥

पवमान सुवीर्यꣳ रयिꣳ सोम रिरीहि णः ।
इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥ ६ ॥

(इन्दो पवमान) हे दीप्त सोम ! तू (सुवीर्यं रयिम्) सुंदर वीरता युक्त धन (नः युजा इन्द्रेण) हमारे सहायक इन्द्रके द्वारा (नः रीरिहि) हमें दे ॥ ६ ॥

उद्घेदभिश्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥

(सूर्य) हे सूर्यस्वरूप इन्द्र ! (श्रुतामघम्) प्रसिद्ध धनवाले (वृषभं नर्यापसम्) याचकोंके लिये धनकी वर्षा करनेवाले और मनुष्यों के हितकारी कर्मवाले (अस्तारं अभि उदेषि) स्तोताकी ओरको लक्ष्य करके उदित होते हो ॥ १ ॥

नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।
अहिं च वृत्रहाऽवधीत् ॥ २ ॥

(यः नव नवतिम्) जो इन्द्र निन्यानवे (पुरः) शम्बरासुरके पुरों को (बाह्वोजसा बिभेद) भुजाओं के बलसे विदीर्ण करता हुआ (च वृत्रहा अहिं अवधीत्) और जो वृत्रासुरका नाशक इन्द्र किसीसे भी न मरनेवाले वृत्रासुरको मारता हुआ वह हमैं धन देय ॥ २ ॥

स न इन्द्रः शिवः सखाऽश्वावद्गोमद्यवमत् ।
उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥

(सः शिवः नः सखा इन्द्रः) वह कल्याणरूप हमारा मित्ररूप इन्द्र हमैं (अश्ववत् गोमत् यवमत् दोहते) अश्वों सहित गौओं सहित और अन्न सहित धन देय (गा धारा इव) जैसे दुहने के समय गौ बहुतसी दूधकी धारें देती है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके त्रयोदशाध्यायस्य द्वितीय खण्ड समाप्त.

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपता-
वविहुतम् । वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना
प्रजाः पिपर्त्ति बहुधा विराजति ॥ १ ॥

(विभ्राट्) विशेष दीप्यमान सूर्य (यज्ञपतौ अविहुतं आयुः दधत्) यज्ञ करनेवाले यजमानकी अकुटिल आयु करताहुआ (बृहत् सोम्यं मधु पिबतु) बहुतसे सोमरूप मधुको पियै (यः वातजूतः) जो सूर्य महावायु करकै प्रेरणा कियाहुआ (त्मना अभिरक्षति) स्वयं ही सब जगत्को देखताहुआ पालन करता है (प्रजाः पिपर्त्ति) वर्षा करकै प्रजाओंका पालन करता है (बहुधा विराजति) विशेषरूपसे विराज मान होता है ॥ १ ॥

विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मन्दिवो ध-
रुणे सत्यमर्पितम् । अमित्रहा वृत्रहा दस्यु-
हन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥ २ ॥

(विभ्राट् बृहत्) विशेष विराजमान और प्रौढ़ (सुभृतं वाजसातमम्)

पूर्ण पुष्ट और बल तथा अन्नका परम दाता (धर्मन् दिवः धरुणे अर्पितम्) वायुके धारण करने योग्य द्युलोकके धारणकर्त्ता सूर्यमण्डल में स्थापित (सत्यं अमित्रहा) अविनाशी और आवरण करनेवालोंका नाशक (दस्युहन्तमं असुरहा) वृथा समय खोनेवालों और असुरोंका नाशक (सपत्नहा ज्योतिः जज्ञे) तथा शत्रुओंका नाशक सूर्यसंबंधी तेज प्रकट हुआ ॥ २ ॥

इदꣳश्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् । विश्वभ्राड्भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम्॥३॥

(इदम्) यह सौर तेज (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ (ज्योतिषां ज्योतिः) ग्रह नक्षत्र आदि अन्य ज्योतियोंका भी प्रकाशक (उत्तमं विश्वजित्) उत्तम और विश्वको जीतनेवाला (धनजित् बृहत् उच्यते) धनको जीतने वाला और ऐसे अनेकों गुणोंसे युक्त कहाता है (विश्वभ्राट् भ्राजः) विश्वभरको प्रकाशित करनेवाला और स्वयं प्रकाशमय (महि सूर्य्यः) महान् सूर्य्य (दृशे) दीखने का कारण (उरुसहः) बहुत विस्तारवाला और अन्धकार का नाशक है (अच्युतम् ओजः पप्रथे) अविनाशी तेजोरूप बलको फैलाता है ॥ ३ ॥

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा । शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ १ ॥

(इन्द्र नः क्रतुं आभर) हे इन्द्र ! हमें कर्मका फल वा ज्ञान दो (यथा पिता पुत्रेभ्यः) जैसे पिता पुत्रोंको धन देता है तैसे (नः शिक्ष) हमें धन दो (पुरुहूत यामनि जीवाः) अनेकों के पुकारे हुए इन्द्र ! यज्ञ में हम (ज्योतिः अशीमहि) सूर्यको प्रतिदिन पावें ॥ १ ॥

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्योऽ३ऽमा शिवासोऽवक्रमुः । त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (अज्ञाताः वृजनाः दुराध्यः अशिवासः नः मा अवक्रमुः) जिनका गमन न मालूम हो ऐसे पापाचरणी दुष्टबुद्धि अमङ्गल पुरुष हमारा तिरस्कार न करसकें (शूर त्वया वयं प्रवतः) हे शूर ! तेरे द्वारा हम स्तोता रक्षित होते हुए (बह्वीः अपः अतितरामसि) बहुत से जलों के पार हों ॥ २ ॥

अद्याऽद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः । विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (अद्याद्य) जिस २ समय को आज इस शब्द से कहाजाता है (श्वः श्वः) जिसको कल्ह शब्दसे कहाजाता है (परे च) और जो परसों के शब्दसे कहाजाता है उस समय में हमारी रक्षा करो (सत्पते) हे सज्जनोंके पालक इन्द्र (विश्वा च अहा) सबही दिनो में (नः जरितॄन् दिवा नक्तं च रक्षिषः) हम स्तोताओंकी रात दिन रक्षा करो ॥ १ ॥

प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः संमिश्लो वीर्याय कम् । उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥ २ ॥

(अयं मघवा वीर्याय कम्) यह धनवान् इन्द्र वीर्य करनेके लिये(प्रभङ्गी शूरः) शत्रुओं को तोडनेवाला और पराक्रमी (तुवीमघः संमिश्लः) बहुत से धनवाला और भले प्रकार मिलाने वाला है (इन्द्र ते उभा बाहू वृषणा) हे इन्द्र ! तेरे दोनो भुज अभीष्टफलोंकी वर्षा करनेवाले हैं (शतक्रतो या वज्रं निमिमिक्षतुः) हे इन्द्र ! जो तुम्हारे भुजदण्ड वज्ररूपी आयुधको धारण करते हैं ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके त्रयोदशाध्यायस्य तृतीयः खंडः समाप्तः

जनीयन्तोन्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तꣳ हवामहे ॥ १ ॥

(जनीयन्तः पुत्रीयन्तः) पत्नीको चाहतेहुए और पुत्रोंकी इच्छा करतेहुए (सुदानवः अग्रवः) श्रेष्ठ दान करनेवाले शरणमें आयेहुए हम (नु सरस्वन्तं हवामहे) आज सरस्वती देवताका आवाहन करतेहैं १

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्याऽभूत् ॥ २ ॥

(उत नः प्रियासु प्रिया) और हमारे प्रिय पदार्थोंमें भी परमप्रिय (सप्तस्वसा) गायत्री आदि सात छन्द जिसकी बहिन हैं और नदी-रूपमें गङ्गा आदि सात नदियें जिसकी बहिन हैं ऐसी (सुजुष्टा सरस्वती) पुरातन ऋषियोंकी सेवन कीहुई सरस्वती देवी (स्तोम्या भूत्) स्तुति करनेयोग्य है ॥ २ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥

(यः सविता देवः) जो सविता देवता (नः धियः प्रचोदयात्) हमारे कर्मोंको वा धर्मादिविषयक बुद्धियोंको प्रेरणा करता है (तत् देवस्य सवितुः) तिस द्योतमान और सर्वान्तर्यामी रूपसे प्रेरक जगत्स्रष्टा परमेश्वरके (वरेण्यं भर्गः) सत्स्वरूप होनेके कारण वा जाननेयोग्य होनेके कारण भजनीय और अविद्या एवं उसके कार्योंको भस्म करनेवाले स्वयंज्योति परब्रह्मस्वरूप तेजका (धीमहि) हम ध्यान करते हैं। अथवा (यः नः धियःप्रचोदयात) जो सूर्य हमारे कर्मोंको प्रेरणा करता है (सविता देवस्य) उस सबके उत्पादक द्योतमान सूर्य के (तत् वरेण्यं भर्गः) उस सबके देखनेयोग्य होनेसे प्रसिद्ध, सबके भजनयोग्य और पापोंको ताप देनेवाले तेजोमण्डलको (धीमहि) हम ध्यान करनेयोग्य मानकर मनमें धारण करते है ॥ १ ॥

सोमानꣳ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ २ ॥

इसकी व्याख्या पीछे ऐन्द्रपर्वके द्वितीय अध्यायमें होचुकी है ॥ २ ॥

अग्न आयूꣳषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आ रे वाधस्व दुच्छुनाम् ॥ ३ ॥

(अग्ने आयूंषि पवसे) हे अग्ने ! तू हमारी आयुओंको पवित्र करता है (नः ऊर्जं इषं च आसुव) हमारे लिये बल और अन्न पहुँचा (दुच्छुनां आरे वाधस्व) कुत्तोंकी समान दुष्ट राक्षसोंको हमसे दूर कर और पीडित कर ॥ ३ ॥

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ १ ॥

(ता) वह मित्रावरुण देवता (नः) हमें (पार्थिवस्य दिव्यस्य) पृथिवीके और द्युलोकके (महः रायः शक्तम्) बहुतसा धन देनेको समर्थ हों (वां महि क्षत्रम्) तुम्हारा पूजनीय बल (देवेषु) देवताओं में प्रसिद्ध है, उसकी हम स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते ।
अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ २ ॥

(ऋतेन ऋतं सपन्ता) जलसे यज्ञको स्पर्श करतेहुए (इषिरं दक्ष आशाते) इच्छा करनेवाले वृद्धिको प्राप्तहुए यजमानको रक्षा करते हुए (अद्रुहा देवौ वर्द्धेते) द्रोह न करनेवाले मित्रावरुण देवता वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः ।
बृहन्तं गर्त्तमाशाते ॥ ३ ॥

(वृष्टिद्यावा) वृष्टिके निमित्त है स्तुति जिनकी (रीत्यापा) जिन को इच्छित वस्तुकी प्राप्ति होतीहै ऐसे (दानुमत्याः इषः पती) देने योग्य अन्नके स्वामी मित्रावरुण देवता (बृहन्तं गर्त्तं आशाते) बड़े भारी रथ पर सवार होते हैं ॥ ३ ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

परम ऐश्वर्यवान् होनेसे ही इन्द्रका इन्द्रपन है, उस परम ऐश्वर्य को इन्द्र अग्नि वायु आदित्य और नक्षत्ररूपसे स्थित होकर पाता है, सोई दिखाते हैं—(ब्रध्नम्) आदित्यरूपसे स्थित (अरुषम्) हिंसा रहित अग्निरूपसे स्थित (चरन्तम्) वायुरूपसे सर्वत्र विचरनेवाले इन्द्रको (परितस्थुषः) त्रिलोकीमें वर्त्तमान प्राणी (युञ्जन्ति) देवता मानकर अपने कर्ममें संयुक्त करते हैं (रोचना दिवि रोचन्ते) उस इन्द्रके ही मूर्त्तिविशेष नक्षत्र द्युलोकमें प्रकाशते हैं ॥ १ ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।

शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥

(अस्य रथे) आदित्यादि मूर्त्तियोंमें स्थित इन्द्रके रथमें (काम्या विपक्षसा) चाहनेयोग्य और रथके दोनो ओर जुड़ेहुए शोणा धृष्णू) लालवर्णके और प्रगल्भ (नृवाहसा हरी युञ्जन्ति) इन्द्र और उसके सारथिआदिको ढोनेवाले हरिनामक दो घोड़ोंको सारथि रथमें जोड़तेहैं

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥

(मर्याः) हे मनुष्यों ! इस आश्चर्यको देखो कि-यह आदित्य रूप इन्द्र (अकेतवे केतुं कृण्वन्) रात्रिमें निद्राके वशमें होनेके कारण ज्ञान रहित प्राणीको प्रातःकालके समय ज्ञान देताहुआ (अपेशसे पेशः) रात्रिमें अन्धकारसे ढके होनेके कारण मानो रूपरहितहुएको रूप देता हुआ अर्थात् प्रकाशित करताहुआ (उषद्भिः समजायथाः) प्रतिदिन उषःकालोंके द्वारा उदित होता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके त्रयोदशाध्यायस्य चतुर्थः खण्ड समाप्तः

अयꣳ सोम इन्द्र तुभ्यꣳ सुन्वे, तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि । त्वꣳ ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥ १ ॥

(इन्द्र अयं सोमः तुभ्यं सुन्वे) हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे लिये संस्कारयुक्त किया है (तुभ्यं पवते) यह तुम्हारे लिये पवित्र होता है (त्वं अस्य पाहि) तुम इसको पियो (त्वं ह यं चकृषे) तुमने ही जिस सोमको किया है (इन्दुं सोमं मदाय युज्याय त्वं ववृषे) जिस दीप्त सोमको मदके लिये और सहायताके लिये तुमने वरण कियाहै १

स ईꣳ रथो न भुरिषाडयोजि, महः पुरूणि सातये वसूनि । आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥ २ ॥

(स ई महः) वह यह महान् इन्द्र (भूरिषाड् रथः इव) अधिक बोझ सहनेवाले रथकी समान (पुरूणि वसूनि सातये) हमें बहुतसे

धन प्राप्त होनेके लिये (अयोजि) यज्ञमें संयुक्त किया जाताहै (आदीम्) युक्त होनेके अनन्तर (विश्वा नहुष्याणि जाता) सकल मनुष्योंके हमारे विरोधी पुरुष (ऊर्ध्वा) ऊपर को मुख करके (वने स्वर्षाता नवन्तु) प्रार्थनीय स्वर्गलाभ करानेवाले संग्राममें जायँ ॥ २ ॥

शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वाऽनभिशस्ता दिव्या यथा विट् । आपो न मक्षु सुमतिर्भवा नः, सहस्राप्साः पृतनाषाड् न यज्ञः ॥ ३ ॥

हे सोम ! (शुष्मी मारुतं शर्द्धः न पवस्व) बलवान् तू मरुत् देवताओंके बलकी समान पवित्र हो (यथा दिव्याः विट् अनभिशस्ताः) जैसे दिव्य प्रजायें अनिन्दितरूपसे पवित्र होती हैं (आपः न मक्षु नः सुमतिः भव) जलोंकी समान शीघ्र पवित्र हुआ तू हमारे लिये सुमति हो (सहस्राप्साः पृतनाषाट् न यज्ञः) अनेकों रूपवाला तू सेनाओंका तिरस्कार करनेवाले इन्द्रकी समान पूजनीय है ॥ ३ ॥

त्वमग्ने यज्ञानाᳬ होता विश्वेषाᳬ हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥

(अग्ने त्वं विश्वेषां यज्ञानां होता) हे अग्नि देव ! तुम सकल यज्ञों में होमको सिद्ध करनेवाले हो । क्योंकि (देवेभिः मानुषे जने हितः) देवताओंने तुमको मनुष्य यजमानोंमें होता रूपसे स्थापन करा है ॥ १ ॥

स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ २ ॥

हे अग्ने ! (सः नः अध्वरे) वह तुम हमारे यज्ञमें (मन्द्राभिः जिह्वाभिः) स्तुतियोग्य ज्वालाओंसे (महः यज) देवताओंका यजन करो (देवान् आवक्षि) इन्द्रादि देवताओंका आवाहन करो (यक्षि च) और उनको हवि देकर तृप्त भी करो ॥ २ ॥

वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥ ३ ॥

(वेधः सुक्रतो देव अग्ने) हे विधातः कर्मको श्रेष्ठ करनेवाले दाना-

द्विगुण युक्त अग्ने ! तुम (यज्ञेषु अध्वनः पथः च वेत्थ) यज्ञोंमें बड़े मार्ग और छोटे मार्गोंको भी जानते हो (इस कारणसे यज्ञमार्गसे चूके हुए यजमानको ठीक मार्ग बताओ ॥ ३ ॥

होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया ।
विदथानि प्रचोदयन् ॥ १ ॥

(होता अमर्त्यः) होमको सिद्ध करनेवाला और अमर (देवः विदथानि प्रचोदयन्) प्रकाशवान् और जाननेयोग्य कर्मोको प्रेरणा करता हुआ अग्नि (मायया) कर्मविषयक ज्ञानके साथ (पुरस्तात् एति) कर्म आरम्भ होनेके प्रथमकालमें ही हमारे समीप आता है ॥ १ ॥

वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्रणीयते ।
विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ २ ॥

(वाजी वाजेषु धीयते) बलवान् अग्नि संग्रामोमें देवताओं करके शत्रुओंके नाशके लिये स्थापन कियाजाता है (अध्वरेषु प्रणीयते) अग्निहोत्रादिके विषैं अध्वर्यु आदिकों करके आहवनीय आदि स्थानोमें स्थापित कियाजाता है, इसीकारण (विप्रः यज्ञस्य साधनः) मेधायुक्त अग्नि यज्ञादिका साधक होता है ॥ २ ॥

धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमादधे ।
दक्षस्य पितरं तना ॥ ३ ॥

जो अग्नि (धिया चक्रे) आधान पवमानेष्टिरूप कर्मके द्वारा आहवनीय रूपसे कियागया, इसीकारण (वरेण्यः) सकल यजमानोंके कर्मका अङ्गरूप होनेसे जो अग्नि (भूतानां गर्भं आदधे) स्थावर जङ्गमरूप सकल प्राणियोंके भीतर अपनेको ही गर्भरूपसे सर्वत्र स्थापन करता हुआ (पितरं दक्षस्य तना) सकल जगत्के पालक उस अग्नि को दक्ष प्रजापतिकी पुत्री वेदीरूपा भूमि दर्शपौर्णमास अग्निहोत्र आदि कर्मकी सिद्धिके लिये धारण करती है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके त्रयोदशाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

आ सुते सिञ्चत श्रियꣳ रोदस्योरभिश्रियम् ।
रसा दधीत वृषभम् ॥ १ ॥

हे अध्वर्युओ ! (सुते) गोदुग्धमें (रोदस्योः अभिश्रियम्) द्यावा पृथिवीका आश्रय करनेवाले अर्थात् अग्नि देवताका संयोग होनेसे द्यावा पृथिवीमें बढेहुए (श्रियं आसिञ्चत) बकरीके दूधको सींचो सेवनके अनन्तर (रसा वृषभं दधीत) बकरीके दूधमें अभीष्टदाता अग्नि को स्थापन करो ॥ १ ॥

ते जानत स्वमोक्या३ऽं सं वत्सासो न मातृभिः मिथो नसन्त जामिभिः ॥ २ ॥

(ते स्वं ओक्यासं जानत) वह गौएं अपने निवास महावीरको जानें अर्थात् तहां दुहानेको आवें (वत्सासः मातृभिः न) जैसे बछुड़े माताओंके पास जाकर मिलजाते हैं । तैसे (जामिभिः मिथः नसन्त) अपने बंधुओं सहित हरएक महावीरको आकर मिलें ॥ २ ॥

उपस्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥ ३ ॥

(स्रक्वेषु बप्सतः) ज्वालाओं से भक्षण करनेवाले अग्निके (नमः) अन्नरूप गो दुग्धको (धरुणम्) इन्द्र अग्निके धारक अजादुग्धको (दिवि उपकृण्वते) अन्तरिक्ष में अर्पण करते हैं अर्थात् जब अग्नि महावीर-स्थानको जलाता है तब उसके ऊपर दोनों प्रकारके दूधको सींचते हैं तदनन्तर (इन्द्रे अग्ना स्वः नमः) इन्द्र और अग्निके विषयमें सम्पूर्ण गोदुग्ध और अजादुग्धरूप अन्नका अर्पण करते हैं ॥ ३ ॥

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः । सद्यो जज्ञानो निरिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥ १ ॥

(ज्येष्ठं तदित्) जगत्का कारण और सबका आदिपुरुष होनेके कारण सबका बडा वह ब्रह्म ही (भुवनेषु आस) पृथिवी आदि सकल लोकोंमें स्वप्रकाशरूपसे दीप्तहुआ (यतः उग्रः त्वेषनृम्णः जज्ञे) जिस उपादानरूप ब्रह्मसे उग्र और प्रदीप्त बलवाला सूर्यरूप इन्द्र प्रकट हुआ और वह (जज्ञानः सद्यः शत्रून् निरिणाति) उदय होताहुआ शीघ्र ही उपासकोंके पापरूप शत्रुओं को नष्ट करता है (य अनु विश्वे ऊमाः मदन्ति) जिस सूर्यरूपसे उदय होतेहुए इन्द्र की ओरको देखकर सकल

प्राणी यह मुझे ही अभीष्ट फल देनेको उदित हुआ है ऐसा जानकर प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति। अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥

(शवसा वावृधानः) बलसे बढ़ाहुआ इसी कारण (भूर्योजाः शत्रुः) बड़ा बलवान् और बैरियोंको काटनेवाला इन्द्र (दासाय भियसं दधाति) समयको नष्ट करनेवाले शत्रुके लिये भयकरता है (अव्यनत् न व्यनत् च सस्नि) श्वास लेनेवाले जंगम और श्वास न लेनेवाले स्थावर प्राणियोंको भी वर्षा आदिसे सम्यक् प्रकार शुद्ध करता है। हे इन्द्र ! (ते मदेषु) तुम्हें हवि और स्तुतियोंसे हर्ष प्राप्त होनेपर (प्रभृता सं नवन्ते) तुम्हारे विशेषरूपसे पोषण कियेहुए सकल प्राणी स्तुति करनेको और हवि अर्पण करनेको इकट्ठे होते हैं ॥ २ ॥

त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः। स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाऽभियोधीः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! (त्वे विश्वे क्रतु व्यञ्जन्ति) तुम्हारे विषे सकल यजमान अनुष्ठानयोग्य कर्मको समाप्त करते हैं (अपि) पृथिवी आदि सकल भूत सकल प्राणियों के मन और सकल यज्ञ तुम्हारे विषें ही समाप्त कियेजाते हैं (यत् एते ऊमाः) क्योंकि-यह तुम्हें तृप्त करनेवाले यजमान (द्विः त्रिः भवन्ति) पहिले एकाकी होतेहुए फिर स्त्री और पुरुषरूप से उत्पन्न होकर दो बार और तदनन्तर सन्तान सहित तीनवार जन्म धारण करनेवाले होते हैं। हे इन्द्र तुम (स्वादोः स्वादीयः) प्यारे घर धन आदिकी अपेक्षा भी परम प्रिय सन्तानको (स्वादुना संसृज) प्रियरूप माता पिताके मिथुनसे संयुक्त करो (अदः मधु) इस प्रिय सन्तानको (मधुना सु अभियोधीः) हर्षके हेतु अन्य पौत्ररूप संतान से भलेप्रकार क्रीड़ा कराओ ॥ ३ ॥

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम्। स ईं

ममाद् महि कर्म कर्त्तवे महामुरुꣳसैनꣳसश्च-
द्देवो देवꣳ सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ १ ॥

(महिषः तुविशुष्मः) पूजनीय और अधिक बलवाला (तृम्पत्) तृप्त होता हुआ इन्द्र (त्रिकद्रुकेषु सुतम्) ज्योति गौ और आयुनामक अभिप्लवके दिनों में अभिषुत (यवाशिरं सोमम्) यवके सत्तुओं से मिलेहुए सोमको (विष्णुना) विष्णु देवताके साथ (यथावशं अपि-बत्) यथेच्छ पीता है (सः) वह सोम (महाम् उरुम्) महान् और विस्तीर्ण तेजवाले (ईम्) इस इन्द्रको (महि कर्म कर्त्तवे) वृत्रवध आदि महान् कर्म करने के लिये (ममाद्) हर्षयुक्त करता हुआ (सत्यः इन्दुः) सत्यरूप और टपकता हुआ (देवः सः) द्योतमान वह सोम (सत्यं देवम्) सत्यस्वरूप और सोमकी कामना करनेवाले (एनं इंद्रं सश्चत्) इस इंद्रको व्यापै ॥ १ ॥

साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ ।
साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः॥ दा-
ता राधः स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनꣳ
सश्चद्देवो देवꣳ सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तू (क्रतुना साकं जातः) कर्म वा प्रज्ञाके साथ प्रकट हुआ था (ओजसा साकं ववक्षिथ) बलके साथ विश्वके भारको उठाना चाहता है (प्रचेतन) हे श्रेष्ठ ज्ञानवाले इन्द्र ! (वीर्यैः साकं वृद्धः) शत्रुवध आदि पराक्रमोंके साथ वृद्धिको प्राप्तहुआ तू (मृधः सासहिः) संग्रामोंका तिरस्कार करता है (विचर्षणिः स्तुवते) पुण्य करनेवालों और पाप करनेवालोंको विशेषरूपसे देखनेवाला तू स्तुति करनेवाले यजमानके अर्थ (राधः काम्यं वसु दाता) इष्टसाधक प्रार्थनायोग्य धन देता है (सत्यः इन्दुः) सत्यस्वरूप और टपकताहुआ (देवः सः) द्योतमान वह सोम (सत्यं देवम्) सत्यस्वरूप और सोमकी कामना करनेवाले (एनं इन्द्रं सश्चत्) इस इन्द्रको व्यापै ॥ २ ॥

अधत्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधा भवदा-
रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्रवावृधे। अध-

त्त्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्रचेतय सैनꣳ सश्च-

द्देवो देवꣳ सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ ३ ॥

(अध त्विषीमान्) सोमपान करनेके अनन्तर दीप्तिमान् इन्द्र (ओजसा क्रिविं युधा अभ्यभवत्) बल करके क्रिविनामक असुरको युद्धमें जीतताहुआ (रोदसी आपृणत्) द्यावा पृथिवीको अपने तेजसे पूर्ण करताहुआ (अस्य मज्मना प्रवावृधे) इस पियेहुए सोमके बलसे अधिक वृद्धिको प्राप्त हुआ। वह इन्द्र सोमके दो भाग करके (अन्यं जठरे अधत्त) एक भागको अपने पेटमें धरताहुआ (ईं प्रारिच्यत) दूसरे भागको देवताओंके लिये बचाताहुआ। हे इन्द्र ! तू (प्रचेतय) उस सोमको पीनेके लिये देवताओंको चेतन कर। (सत्यः इन्दुः) सत्यस्वरूप और टपकताहुआ (देवः सः) द्योतमान वह सोम (सत्यं देवम्) सत्यस्वरूप और सोमकी कामाना करनेवाले (एनं इन्द्रं सश्चत्) इस इन्द्रको व्यापै ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके त्रयोदशाध्यायस्य षष्ठ खण्डः त्रयोदशाध्यायश्च समाप्त

चतुर्दश अध्याय

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथाविदे ।

सूनुꣳसत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥

हे स्तोता ! (सत्यस्य सूनुम्) यज्ञके पुत्रसमान (सत्पतिं गोपतिं इन्द्रं अभि प्र अर्च) सत्पुरुषोंके रक्षक गौओंके वा वेदमंत्रोंके स्वामी इन्द्रको अधिकतासे पूजो (गिरा यथा विदे) स्तुतिसे जिसप्रकार वह जानै कि—मुझे यज्ञमें जाना चाहिये ॥ १ ॥

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।

यत्राभि संनवामहे ॥ २ ॥

(हरयः) पापहारी इन्द्रके अश्व (अरुषी) दमकतेहुए (अधिबर्हिषि) बिछीहुई कुशाओं पर (आससृज्रिरे) स्थित हों (यत्र अभि संनवामहे) जिन कुशाओं पर स्थित इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं ॥२॥

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।

यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥

(गावः वज्रिणे इन्द्राय मधु आशिरं दुदुहे) गौएं वज्रधारी इन्द्रके लिये मधुर दुग्धादिको देती हैं (यत्)जब (उपह्वरे मधु सीम् विदत्) समीप में वर्त्तमान सोमरसको सब ओर से पीता है ॥ ३ ॥

आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रꣳसमत्सु भूषत । उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम ॥ १ ॥

हे ऋत्विजो ! (विश्वासु समत्सु) सकल असुरयुद्धों में (हव्यम्) सकल देवताओं करके अपनी रक्षाके लिये पुकारने योग्य इन्द्र को लक्ष्य करके (नः ब्रह्माणि सवनानि उप आभूषत) हमारे यज्ञ में स्तोत्रोंको वा हविरूप अन्नोंको तथा प्रातःसवन आदिको समीप में सुशोभित करो (वृत्रहन् परमज्याः ऋचीषम) पापके नाशक और युद्धों में शत्रुओंके नाशके लिये अविनाशी प्रत्यञ्चावाले वा बल करके श्रेष्ठ शत्रुओंको मारनेवाले तथा स्तुतियों के द्वारा अभिमुख करने योग्य हे इन्द्र ! तुम हमें इच्छित पदार्थ दो ॥ १ ॥

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् । तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (प्रथमः त्वं राधसां दाता असि) सबोंमें मुख्य तुम धनों के दाता हो (ईशानकृत् सत्यः असि) अपने उपासकोंको ऐश्वर्ययुक्त करनेवाले तुम सत्यकर्मा हो । इसीसे हम (तुविद्युम्नस्य) बहुतसे धन और अन्नवाले (शवसः पुत्रस्य महः) बलके पुत्रसमान तुम महात्मा के (युज्या वृणीमहे) धनोंकी प्रार्थना करते हैं ॥ २॥

प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत । इन्द्रमभि जायमानꣳ समस्वरन्

(दिवः पीयूषम्) स्वर्गवासी देवताओंके पीनेयोग्य (पुराण यत्) पुरातन सोमरूप अन्न (उक्थ्यम्)प्रशंसनीय है (पूर्व्यम्) उस पुरातन सोमरूप अन्नको (महः गाहात् दिवः आ निरधुक्षत) महान् अवगाहन द्युलोकसे अभिमुख होकर दुहते हैं तदनन्तर (इन्द्रं अभि जायमानं समस्वरन्) इन्द्रके निमित्त उत्पन्न हुए सोमकी स्तुति करते हैं ।

आर्दी केचित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यऽनूषत । दिवोन वार॑ सविता व्यूर्णुते ॥ २ ॥

(आत् पश्यमानासः दिव्याः वसुरुचः) तदनन्तर इसको देखतेहुए द्युलोकवासी वसुरुच (आप्यं ईं अभ्यनूषत) बान्धवोंके योग्य इस सोमकी स्तुति करतेहुए । किसके अनन्तर उन्होंने स्तुति की सो कहते हैं, कि—जबतक (दिव सविता) द्योतमान सबका प्रेरक सूर्य अन्धकार नहीं दूर करता है अर्थात् सूर्योदयसे पहिले ही सोमकी स्तुति की ॥

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाऽभि मज्मना । यूथे न निष्ठा वृषभो विराजसि ॥ ३ ॥

(पवमान अध) हे सोम ! इसके अनन्तर (यत् इमे रोदसी) जब इन द्यावापृथिवीके विषे (इमा विश्वा भुवना च) इन सकल प्राणियोंमें भी (मज्मना) बल करके (यूथे निष्ठा वृषभः न) गौओंके समूहमें विराजमान वृषभकी समान (विराजसि) विराजमान होते हैं ॥ ३॥

इमम् षु त्वमस्माकꣳ सनिं गायत्रं नव्याꣳसम् । अग्ने देवेषु प्रवोचः ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्ने ! (त्वं अस्माकम्) तुम हमारे (इमं उ षु) इस सामने होतेहुए भी (सनिम्) हविके दानको (नव्यांस गायत्र देवेषु प्रवोचः) नवीन स्तुतिरूप वचनको भी देवताओंके आगे विशेष रूपसे कहो॥१॥

विभक्ताऽसि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाकया । सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ २ ॥

(चित्रभानो विभक्ता असि) हे विचित्र किरणोंवाले अग्ने ! तुम विशिष्ट धनके देनेवाले हो (सिन्धोः उपाके ऊर्मा आ) जैसे नदीके समीपमें तरङ्गरूपा छोटी २ गलोंका विभाग करते हैं तैसे (दाशुषे सद्यः क्षरसि) हवि देनेवाले यजमानको तत्काल कर्मफलोंकी वर्षा करके देते हो ॥ २ ॥

आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु। शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ३ ॥

हे अग्ने (नः परमेषु वाजेषु आभज) हमें उत्तम द्युलोकके भोगोंमें पहुँचाओ (मध्यमेषु आ) अन्तरिक्ष लोकके भोगोंमें पहुँचाओ (अन्तमस्य वस्वः शिक्ष) भूलोकके धन दो ॥ ३ ॥

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह। अहꣳ सूर्य इवाजनि ॥ १ ॥

(पितुः ऋतस्य मेधाम्) पालन करनेवाले इन्द्रकी अनुग्रहरूप बुद्धिको (अहमित् परि जग्रह) मैंने ही पाया है इसीकारण (अहं सूर्यः इवः अजनि) मैं सूर्यकी समान प्रकाशमय प्रकट हुआ ॥ १ ॥

अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत्। येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥ २ ॥

(कण्व इव अहम्) कण्वकी समान मैं भी (प्रत्नेन जन्मना) पुरातन जन्म करके इन्द्रके विषयके स्तोत्रोंको शोभायमान करता हूँ (येन इन्द्रः शुष्मं दधे इत्) जिस स्तोत्रसमूहके द्वारा इन्द्र शत्रुओंके नाशक बलको अवश्य ही धारण करता है ॥ २ ॥

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः। ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥

(इन्द्र ये त्वां न तुष्टुवुः) हे इन्द्र ! जिन्होंने तेरी स्तुति नहीं की (च ये ऋषयः तुष्टुवुः) और जिन ऋषियोंने तेरी स्तुति की उनमें (ममेत्, सुष्टुतः वर्द्धस्व) मेरे ही स्तोत्रसे उत्तमताके साथ स्तुति कियाहुआ वृद्धिको प्राप्त हो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्दशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृतः। ये देवत्रा य आयवस्तेभिर्नो महया गिरः ॥ १ ॥

(सहस्कृत अग्ने) हे बलसे उत्पन्न कियेहुए अग्निदेव ! (विश्वेभिः अग्निभिः ब्रह्म जुषस्व) सकल पूजनीय अग्नियों सहित हमारे दिये

हुए हविका सेवन करो (ये देवत्रा) जो अग्नि देवताओं में है (ये आयुषु) जो अग्नि मनुष्योंमें है (तेभिः नः गिरः महय) उन अग्नियों के सहित हमारी स्तुतिरूपा वाणियोंको पूजो ॥ १ ॥

प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः तनये तोके अस्मदा सम्यक् वाजैः परीवृतः २

(यस्य वाजिनः) जिस अग्निके हविसे यजन करनेवाले बहुत हैं (सः अग्निः) वह अग्नि (विश्वेभिः अग्निभिः) सकल पूजनीय अग्नियों सहित (वाजैः परीवृतः) हमें देनेयोग्य अन्नों सहित(सम्यक्) ठीक समय पर (अस्म प्र आ) हमारे यहाँ अधिकतासे आवै (स तनये तोके) वह अग्नि हमारे पुत्र और पौत्रों के यहां भी आवे ॥२॥

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय । त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥ ३ ॥

(अग्ने त्वं अग्निभिः) हे अग्ने ! तू अपनी विभूतिरूप अग्नियों सहित (नः ब्रह्म यज्ञं च वर्द्धय) हमारे स्तोत्र और यज्ञको बढ़ा (त्वम् नः देवतातये रायः दानाय चोदय) तू हमारे यज्ञके निमित्त धनका दान करनेको देवताओंको प्रेरणा कर ॥ ३ ॥

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो, महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः । स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय १

(प्रथमा वृक्तबर्हिषः) सबोंमें मुख्य और यज्ञके लिये कुशच्छेदन करनेवाले (महे वाजाय श्रवसे) बहुतसे बल और अन्नके लिये (त्वे धियं दधुः) तुम्हारे विषै बुद्धिको स्थापन करतेहुए तिसकारण (वीर सः त्वम्) हे वीर सोम ! वह तू (नः वीर्याय चोदय) हमें सामर्थ्य के लिये प्रेरणा करो अथवा पुत्रविषयक सुखके लिये हमें प्रेरणा करो १

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कंचिज्जनपानमक्षितम् । शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः

हे सोम ! तू (श्रवसा अभ्यभिततर्दिथ) अन्नके कारण पवित्रको भेदन करताहुआ (न कञ्चित् जनपानं अक्षित उत्सम्) जैसे मनुष्यों के पीनेयोग्य कुण्डको पूर्ण रखनेके लिये किसी बावड़ी आदिको तोड़

कर जल निकालते हैं (गभस्त्योः शर्याभिः भरमाणः न) जैसे जल भरनेवाला भुजाओंकी अंगुलियोंसे किसी जलाशयको तोड़ता है ॥२॥

अजीजनो अमृत मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः । सदाऽसरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ३ ॥

(अमृत) हे मरणधर्मरहित सोम (ऋतस्य चारुणः अमृतस्य धर्मन्) सत्य और कल्याणरूप जलको धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें (कं मर्त्याय अजीजनः) सूर्यको मनुष्योंके लिये उत्पन्न करताहुआ और (सनिष्यदन्) देवताओंका सेवन करताहुआतू (वाजं अच्छ) संग्रामकी ओरको (सदा असरः) सदा जाता है ॥ ३ ॥

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु । प्र राधाᳬसि चोदयते महित्वना ॥ १ ॥

(इन्दुं इन्द्राय आसिञ्चत) सोमरसको इन्द्रके लिये सींचो (सोम्यं मधु पिबाति) सोमके मधुररसको इन्द्र पिये और पीकर (महित्वना राधांसि प्रचोदयते) अपनी महिमा से स्तोताओं को धन देय ॥ १ ॥

उपो हरीणां पतिᳬराधः पृञ्चन्तमब्रवम् । नूनᳬश्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥ २ ॥

(हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तम) पापहारी अश्वों के स्वामी और स्तोताओंको धनयुक्त करनेवाले इन्द्रकी (उपा अब्रवम) विशेषरूप से मैं स्तुति करता हूं (अश्व्यस्य स्तुवतः नूनं श्रुधि) अश्व ऋषिके पुत्र की अनुष्ठानकी हुई मेरी स्तुतिको हे इन्द्र ! तुम इस समय सुनो ॥२॥

नह्याऽ३ऽङ्ग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत् । न की राया नैवथा न भन्दना ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! (त्वत् पुरा न जज्ञे) तुमसे पहिले कोई उत्पन्न नहीं हुआ (अङ्ग वीरतरः नहि) हे समर्थ इन्द्र ! तुमसे अधिक वीर भी कोई नहीं हुआ (रायः नकिः) धनमें भी तुमसे अधिक कोई नहीं है (एवथा न) संग्रामोंमें चढ़ाई करनेवाला भी तुमसे अधिक कोई नहीं है (भन्दना न) स्तुतियोग्य भी तुमसे अधिक कोई नहीं है ॥३॥

नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् । पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥ १ ॥

हे यजमानो (ओदतीनां नदं वः) आदित्यरूपसे उषाओंके उत्पादक इन्द्रको तुम्हारे लिये आह्वान करता हूँ (योयुवतीनां नदम्) चन्द्र किरणोंके उत्पादकको तुम्हारे लिये आह्वान करता हूँ (अघ्न्यानां पतिं वः) गौओंके स्वामीको तुम्हारे लिये आह्वान करता हूँ (धेनूनां इषुध्यसि) हे यजमान ! तू गौओंके दूधरूप अन्नको चाहता है ॥ १ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्दशाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् । उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते

(द्रविणोदाः देवः) धनोंका दाता अग्नि देवता (वः पूर्णां आसिचं विवष्टु) तुम्हारी हविसे पूर्ण स्रुचको कामना करें । उत्सिञ्चध्वं वा) और सोमसे पात्रको सींचो (पृणध्वं वा) और पात्रको हविसे पूर्णकरो (आदित् देव वः ओहते) तदनन्तर ही अग्निदेव तुम्हारा भरण करता है ॥ १ ॥

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत । दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥ २ ॥

(देवाः) देवता (प्रचेतसं तम्) श्रेष्ठ बुद्धिवाले उस अग्निको (अध्वरस्य वह्निं होतारं अकृण्वत) यज्ञका वाहक और होता बनाते हुए (अग्निः) वह अग्नि (विदधते दाशुषे जनाय) उपासना करनेवाले और हवि देनेवाले यजमान के अर्थ (सुवीर्यं रत्नं दधाति) सुन्दर वीरतायुक्त रमणीय धन देता है ॥ २ ॥

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः । उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥ १ ॥

(यस्मिन् व्रतानि आदधुः) जिस अग्निमें यजमानोंने कर्म समर्पण किये (गातुवित्तमः अदर्शि) विशेष मार्गोंका ज्ञाता वह अग्नि प्रकट हुआ (सुजातं आर्यस्य वर्द्धनम्) सम्यक् प्रकार प्रकट हुए और श्रेष्ठ वर्णके वृद्धिकर्त्ता (अग्निं नः गिरः उपोनक्षन्तु) अग्नि देवताको हमारी स्तुतिरूप वाणियें प्राप्त हों ॥ १ ॥

यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः । सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाऽग्निं धीभिर्नमस्यत ॥ २ ॥

(यस्मात् चर्कृत्यानि कृण्वतः) जिस कारण कि—कर्त्तव्य कर्म करनेवाले मनुष्योंको (कृष्टयः रेजन्ते) अन्य मनुष्य कम्पायमान करते हैं, तिसकारण इससमय हे मेरे मनुष्यों ! (सहस्रसाम्) सहस्रों गौएं और धन देनेवाले अग्निको (मेधसातौ धीभिः त्मना नमस्यत) यज्ञमें कर्त्तव्य कर्मोंसे स्वयं प्रणाम करो ॥ २ ॥

प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना । अनु मातरं पृथिवीं विवावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥ ३ ॥

इसकी व्याख्या आग्नेय पर्व अध्याय १ खण्ड ५ में होचुकी ॥ ३ ॥

अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या १३ वें अध्याय ४ खण्डमें होचुकी ॥ १ ॥

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥ २ ॥

(पाञ्चजन्यः ऋषिः) देव मनुष्य आदि पाँच प्रकारके प्राणियोंको अभीष्ट फल देनेवाला और सबका द्रष्टा (पवमानः अग्निः) पवमान रूप अग्नि (पुरोहितः) कर्मके लिये ऋत्विजों करके आगे स्थापन कियागया है (त महागयं ईमहे) उस अनेकों यज्ञशालाओंवाले अग्नि को हम याचना करते हैं ॥ २ ॥

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
दधद्रयिं मयि पोषम् ॥ ३ ॥

(अग्ने स्वपाः) हे अग्ने श्रेष्ठ कर्मवाले तुम (अस्मे) हमें (वर्चः पवस्व) तेज दो (मयि रयिं पोषं दधत्) मेरे विषें धन और पुष्ट गौ आदि को स्थापन करो ॥ ३ ॥

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ १ ॥

(पावक) हे पवित्र करनेवाले (अग्ने देव) अग्निदेव (रोचिषा मन्द्रया जिह्वया) अपनी दीप्तिसे और देवताओंको हर्ष देनेवाली जिह्वा से (देवान् आवक्षि यक्षि च) देवताओंका आवाहन करो और यजन भी करो ॥ १ ॥

तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् ।
देवाँ आ वीतये वह ॥ २ ॥

(घृतस्नो चित्रभानो) हे घृतसे उत्पन्न हुए और नाना प्रकारकी दीप्तिवाले अग्निदेव (स्वर्दृशं तं त्वा ईमहे) स्वर्गके द्रष्टा तिस तुझ से हम याचना करते हैं, कि—(वीतये देवान् आवह) हवि भक्षण करनेके लिये देवताओंका आवाहन कर ॥ २ ॥

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳसमिधीमहि ।
अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३ ॥

(कवे अग्ने) हे अनुभवी अग्निदेव ! (वीतिहोत्रं द्युमन्तम्) यज्ञ के प्रेमी और दीप्तिमान् (बृहन्तं त्वा अध्वरे समिधीमहि) महान् तुझ को यज्ञमें प्रज्वलित करते हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्दशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि ।
विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ १ ॥

(विश्वासु धीषु वन्द्य अग्ने) सकल कर्मोंमें वन्दनीय हे अग्ने !

(गायत्रस्य प्रभर्मणि) गायत्री छन्दवाले सूक्तके निमित्त होनेपर (नः ऊतिभिः अव) हमको अपने रक्षाके साधनोंसे रक्षा करो ॥ १ ॥

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम्। विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (सत्रासाहं वरेण्यम्) एकसाथ दारिद्र्यके नाशक और वरणीय (विश्वासु पृत्सु दुष्टरम्) सकल संग्रामोंमें शत्रुओंको दुस्तर (रयिं नः आभर) धन हमें दे ॥ २ ॥

आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ॥ ३ ॥

(अग्ने नः जीवसे) हे अग्निदेव ! हमारे जीवनके लिये (सुचेतुना) सुन्दर ज्ञानसे युक्त (विश्वायुपोषसं मार्डीकम्)जीवनभर शरीर आदि के पोषक और सकल सुखदायक (रयिं नः धेहि) धन हमें दो ॥३॥

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु। तेन जेष्म धनं धनम् ॥ १ ॥

(नः धियः) हमारे कर्म वा स्तुतियें (अग्निं हिन्वन्तु) अग्निको हमारे यज्ञके लिये उद्यत करें (आजिषु आशुं सप्तिं इव) जैसे कि— योद्धा संग्रामोंमें शीघ्रगामी घोड़ेको उद्यत करते हैं (तेन धनं धनं जेष्म) उस अग्निके द्वारा हम सकल धनोंको जीतें ॥ १॥

यया गा आकरामहै सेनयाग्ने तवोत्या । तां नो हिन्व मघत्तये ॥ २ ॥

(सेनया यया तव ऊत्या) सेनारूप वा धनसहित जिस तुम्हारी रक्षासे (अग्ने) हे अग्निदेव ! (गाः आकरामहै) गौओंको पावैं (तां नः मघत्तये हिन्व) उस रक्षाको हमें धन प्राप्त होनेके लिये प्रेरणा करो

आऽग्ने स्थूरꣳ रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्गिध खं वर्त्तया पविम् ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (स्थूरं पृथुं गोमन्तं अश्विनं रयिं आभर) बहुतसे विस्तारवाले गौओं और घोड़ोंसे युक्त धन हमें दो(खं अङ्गिध)

आकाशको अपने तेजोंसे प्रकाशित करो (पर्वि वर्त्तय) आयुधको हमारे शत्रुओंमें घुमाओ ॥ ३ ॥

अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यꣳ रोहयो दिवि ।
दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (जनेभ्यः ज्योतिः दधत्) सकल प्राणियों के लिये प्रकाश करतेहुए तुमने (नक्षत्रं अजरम्)निरन्त गमन करने वाले और जरारहित (सूर्यं दिवि आरोहयत्) सूर्यको द्युलोकमें स्थापन किया है ॥ ४ ॥

अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत ।
बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥ ५ ॥

(अग्ने विशां केतु प्रेष्ठः श्रेष्ठः असि)हे अग्निदेव' तुम यजमानोंके ज्ञान दाता अतएव परमप्यारे और सबसे श्रेष्ठ हो (उपस्थसत्) यज्ञशाला में स्थित हुए तुम (स्तोत्रे वयः दधत् बोध) स्तोताको अन्न देतेहुए हमारे स्तोत्रको स्वीकार करो ॥ ५ ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥ १ ॥

(मूर्धा) देवताओंमें श्रेष्ठ (दिवः ककुत्) द्युलोकसे भी ऊँचा (पृथिव्याः पतिः अयं अग्निः) पृथिवीका स्वामी यह अग्नि (अपां रेतांसि जिन्वति) जलके बीजरूप सकल स्थावर जङ्गम प्राणियोंको प्रेरणा करता है ॥ १ ॥

ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वःपतिः ।
स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥ २ ॥

(अग्ने स्वःपतिः) हे अग्ने ! स्वर्गका स्वामी तू (वार्यस्य दात्रस्य हि ईशिषे) वरणीय और देनेयोग्य धनके स्वामी हो (शर्मणि तव स्तोता स्याम्) सुख पानेके लिये मैं तुम्हारा स्तोता होऊँ ॥ २ ॥

उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
तव ज्योतींष्यर्चयः ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (शुचयः शुक्राः) निर्मल और स्वेतवर्ण (भ्राजन्तः अर्चयः) दीप्यमान अर्चियें (तव ज्योतींषि उदीरते) तुम्हारे तेजों को प्रेरणा करती हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्दशाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः चतुर्दशाध्यायश्च समाप्तः

पञ्चदश अध्याय

कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः ।

कोह कस्मिन्नसि श्रितः ॥ १ ॥

(अग्ने जनानां ते कः जामिः) हे अग्निदेव ! मनुष्योंमें तुम्हारा बन्धु कौन है? अर्थात् तुम सकल गुणोंमें अधिक हो इस कारण तुमसा तुम्हारा बन्धु कोई नहीं है (दाश्वध्वरः कः) सच्चे दानसे तुम्हारा यजन करनेवाला कौन है? (को ह) तू कैसे स्वरूपवाला है इस बातको कौन जानता है ? (कस्मिन् श्रितः असि) तू किस स्थानका आश्रय करके रहता है ? उस स्थानको भी कोई नहीं जानता तो फिर हम तुम्हारा दर्शन कैसे होसका है ? ॥ १ ॥

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः ।

सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ २ ॥

(अग्ने त्वं जनानां जामिः मित्रः, प्रियः असि) हे अग्निदेव ! ऐसे अचिन्त्य प्रभाववाले भी तुम अनुग्रह करनेके कारण सब पुरुषोंके बन्धु और तृप्त करनेवाले तथा यजमानोंके रक्षक हो (ईड्यः सखिभ्यः सखा) स्तुतियोग्य तुम ऋत्विजोंके सखासमान अत्यन्त प्रिय हो ॥ २ ॥

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् ।

अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ३ ॥

(अग्ने नः) हे अग्निदेव ! हमारे लिये (मित्रावरुणा यज) मित्रावरुण देवताओंको हविसे पूजो (देवान् यज) देवताओंको पूजो (ऋतम्) अमोघ फलदाता यज्ञको पूजो और इसके लिये (बृहत् स्वं दमं यक्षि) बड़ीभारी अपनी यज्ञशालाको प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः ।

समग्निरिध्यते वृषा ॥ १ ॥

(ईड्येन्यः नमस्यः) स्तुतियोंसे पूजनीय और सबके नमस्कार करने योग्य (तमांसि तिरः) अन्धकारोंका तिरस्कार करनेवाला (दर्शतः वृषा अग्निः) दर्शनीय और अभीष्टफलदाता अग्नि (इध्यते) आहुतियोंके द्वारा प्रज्वलित कियाजाता है ॥ १ ॥

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः ।
तꣳहविष्मन्त ईडते ॥ २ ॥

(वृषा उ) अवश्य ही इच्छित फलोंकी वर्षा करनेवाला (अश्वः न देववाहनः) जैसे घोड़ा राजाको अपने नगरमें पहुँचाता है तैसे ही देवताओंको हविके समीप पहुँचानेवाला (अग्निः समिध्यते) अग्नि आहुतियोंसे भलेप्रकार प्रदीप्त कियाजाता है (तं हविष्मन्त ईडते) ऐसे अग्निकी हम यजमान हवि लियेहुए स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि ।
अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥

(वृषन् अग्ने) हे अभीष्ट फलोंकी वर्षा करनेवाले अग्निदेव (वृषणः वयम्) घृत आदिकी आहुति देनेवाले हम (वृषणम्) आहुतियोंके द्वारा जलकी वर्षा करनेवाले (दीद्यन्तं बृहत् समिधीमहि) दिपतेहुए महान् अग्निको प्रज्वलित करते हैं ॥ ३ ॥

उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः ।
अग्ने शुक्रास ईरते ॥ १ ॥

(दीदिवः) हे दीप्त अग्ने ! (समिधानस्य ते) भलेप्रकार प्रज्वलित कियेजातेहुए तेरी (बृहन्तः शुक्रासः) बड़ी और जाज्वल्यमान (अर्चयः उदीरते) लपटें निकलती हैं ॥ १ ॥

उप त्वा जुह्वो मम घृताचीर्यन्तु हर्यत ।
अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥ २ ॥

(हर्यत अग्ने) हे कामना कियेहुए अग्निदेव ! (मम घृताचीः जुह्वः त्वा उपयन्तु) मेरी घी बरसानेवालीं स्रुचे तुम्हें प्राप्त हों (नः हव्याः जुषस्व) हमारे हवियोंको सेवन करो ॥ २ ॥

मन्द्रꣳ होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् ।

अग्निमीडे स उ श्रवत् ॥ ३ ॥

(मन्द्रं होतारम्) हर्ष देनेवाले और देवताओंके आह्वानकर्त्ता (ऋत्विजं चित्रभानुम्) प्रत्येक ऋतुमें यजन करनेयोग्य और नानाप्रकार की किरणोंवाले (विभावसुं अग्निं ईडे) दीप्तिरूप धनवाले अग्निकी स्तुति करता हूँ (सः श्रवत् उ) वह अग्नि हमारी स्तुतिको अवश्य ही सुनता है ॥ ३ ॥

पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया । पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ १ ॥

(अग्ने नः एकया पाहि) हे अग्ने ! हमें एक ऋचासे रक्षा करो (उत द्वितीयया पाहि) और दूसरी ऋचासे रक्षा करो (ऊर्जां पते तिसृभिः गीर्भिः पाहि) हे बलोंके स्वामी ! तीन वाणियोंसे रक्षाकरो (वसो चतसृभिः पाहि) हे व्यापक चार वाणियोंसे रक्षाकरो ॥ १ ॥

पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव । त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥ २ ॥

हे अग्ने ! (विश्वस्मात् रक्षसः अराव्णः नः पाहि) सकल राक्षसों से और अदाताओंसे हमारी रक्षा कर (स्म वाजेषु प्राव) हमें संग्रामों में रक्षित कर (हि) क्योंकि (नेदिष्ठं आपिं त्वामिद्धि) अत्यन्त समीपस्थ बन्धुरूप तुमको ही (देवतातये वृधे नक्षामहे) यज्ञसिद्धिके लिये और वृद्धिके लिये शरण जाते हैं ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वादशाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

इनो राजन्नरतिः समिद्धो, रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि । चिकिद्विभाति भासा बृहताऽसिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥ १ ॥

हे अग्ने ! (इनः) तू सबका ईश्वर है । (अरतिः समिद्धः) हवि लेकर देवताओंको प्राप्त होनेवाला और सम्यक् प्रकार दीप्त (रौद्रः

सुषुमान्) शत्रुओंको भयदायक और उपासकोंके लिये श्रेष्ठ पदार्थ उत्पन्न करनेवाला (दक्षाय अदर्शि) यजमानोंके धनादिवृद्धि वा कर्मवृद्धिके लिये सर्वो करके देखाजाता है (चिकित् विभाति) सब को जाननेवाला विशेषरूपसे दीप्त होता है (रुशतीं अपाजन्) श्वेत दीप्तिको सब ओर फैलाता हुआ (बृहता भासा) बड़ीभारी ज्वाओंके तेजसहित (असिक्नीं एति (सायंकालके होमकी सिद्धिके लिये रात्रिको प्राप्त होताहै ॥ १ ॥

कृष्णां यदेनीमभि वर्पसाऽभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम्। ऊर्ध्वं भानुं सूर्यो स्तम्भायन्दिवो वसुभिररतिर्विभाति ॥ २ ॥

वह अग्नि (यत्) जब (बृहतः पितुः जां योषां जनयन्) महान् और सब जगत्का पालन करनेवाले पितासमान आदित्यसे उत्पन्न हुई उषाको प्रकाशित करताहुआ (कृष्णां एनीं) कृष्ण वर्णकी बीततीहुई रात्रिको (वर्पसा अभिभूत) अपने ज्वालारूपसे दबाता है, उस समय (अरतिः) गमनस्वभाव अग्नि (दिवः वसुभिः) द्युलोकको छादेनेवाले अपने तेजोंसे (सूर्यस्य भानुं) सूर्यकी दीप्तिको (ऊर्ध्वं स्तभायन्) ऊपर ही रोकताहुआ (विभाति) विशेषरूपसे दिपता है २

भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्। सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्, उशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥ ३ ॥

(भद्रः भद्रया सचमानः आगात्) कल्याणरूप और सेवनीय उषा से सेवन कियाहुआ अग्नि गार्हपत्यसे आहवनीयको प्राप्त होता है, (पश्चात् जारः स्वसारं अभ्येति) तदनन्तर शत्रुओंका नाशक वह स्वयं आई हुई उषाको प्राप्त होताहै (सुप्रकेतैः द्युभिः वितिष्ठन् अग्निः) परमचेतन तेजोंके साथ सर्वत्र वर्त्तमान वह अग्नि (उशद्भिः वर्णैः रामं अभ्यस्थात्) स्वेतवर्णके फैलेहुए अपने तेजोंसे रात्रिके अन्धकार को सायं होमके समय हटाकर स्थित होता है ॥ ३ ॥

कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम्। वराय देव मन्यवे ॥ १ ॥

(अङ्गिरः ऊर्जः नपात् देव अग्ने) हे सर्वअग्रगामी हविरूप अन्नके प्रपौत्र द्योतमान अग्ने ! (वराय मन्यवे ते) सबके वरणीय और शत्रुओंके ऊपर क्रोध करनेवाले तेरे अर्थ (कया उपस्तुतिम्) किस वाणी से स्तोत्र अर्पण करूँ ? ॥ १ ॥

दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो ।
कदु वोच इदं नमः ॥ २ ॥

(सहस यहः) हे बलसे उत्पन्नहुए अग्निदेव ! (कस्य यज्ञस्य मनसा दाशेम) कौनसे देवयजन करनेवाले यजमानके मनसे युक्त हुए हम तुम्हें हवि अर्पण करें ? (इदं नमः कत् वोचे उ) यह हवि वा नमस्कार कब उच्चारण करूँ ? ॥ २॥

अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः।
वाजद्रविणसो गिरः ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! (अध) इसके अनन्तर (त्वं हि) तुम ही (अस्मभ्यं कुरु) हमारे लिये ऐसा करो कि—(नः विश्वाः गिरः) हमारी सकल स्तुतिरूप वाणियें (सुक्षिताः वाजद्रविणसः) हमें श्रेष्ठ पुत्रपौत्रादियुक्त वा श्रेष्ठस्थानोंके स्वामी और अन्न तथा धनयुक्त करें ॥ ३ ॥

अग्न आयाह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं
बर्हिरासदे ॥ १ ॥

(अग्ने होतारं त्वा वृणीमहे) हे अग्निदेव ! देवताओंका आह्वान करनेवाले तुम्हारी हम प्रार्थना करते हैं (अग्निभिः आयाहि) अपनी विभूतिरूप अग्नियों सहित आओ (यजिष्ठं त्वाम्) पूजनीय तुमको (प्रयता हविष्मती) अध्वर्युओंके हाथकीनियत कीहुई घृतमयी हवि (बर्हिः आसदे) कुशाओं पर प्राप्त हो (अनक्तु) वह प्राप्त होकर तुम्हें सींचे ॥ १ ॥

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्च-
रन्त्यध्वरे । ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं

यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ २ ॥

(सहसः सूनो अङ्गिरः) हे बलके पुत्र सर्वत्रगामी ! (त्वा अध्वरे अच्छ) तुम्हें यज्ञमें प्राप्त होनेको (स्रुचः चरन्ति) स्रुचजाती हैं (ऊर्जः नपातं घृतकेशम्) अन्न वा बलके रक्षक और प्रदीप्त ज्वाला वाले (पूर्व्यम् अग्निम्) मनोरथ पूर्ण करनेवाले वा पुरातन अग्निकी (यज्ञेषु ईमहे) यज्ञोंमें स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् । अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुम् पुरुप्रशस्त-मूतये ॥ १ ॥

(नः गिरः) हमारी स्तुतियें (शीरशोचिषं दर्शतं अच्छ यन्तु) अज्ञानशील ज्वालाओंवाले दर्शनीय अग्निके अभिमुख जायँ (ऊतये) हमारी रक्षाके लिये (नमसा यज्ञासः) घृतादिरूप हविसे युक्त हमारे यज्ञ (पुरूवसुं पुरुप्रशस्तं अच्छ) अधिक धनी परमप्रशंसनीय अग्नि के अभिमुख प्राप्त हों ॥ १ ॥

अग्निꣳ सूनुꣳ सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् । द्विता योऽभूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥ २ ॥

(यः अमृतः) जो अग्नि देवताओंमें अमरणधर्मा है वह (मर्त्येषु आ अभूत्) मनुष्योंमें भी है (द्विता) इस रीतिसे दो प्रकारका है । देवताओंमें अग्निका अमर होना प्रसिद्ध ही है, अब मनुष्योंमें कैसा है सो कहते हैं (विशि होता मन्द्रतमः) मनुष्य यजमानरूप प्रजाओंमें होमको सुसिद्ध करनेवाला और परम आनन्द देनेवाला होता है । (सहस सूनुं जातवेदसं अग्निम्) बलके पुत्रसमान प्राणिमात्रके ज्ञाता अग्निको (वार्याणां दानाय आ) अन्न धनादिके दानके लिये आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चदशाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

अदाभ्यः पुर एता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ॥ १ ॥

(मानुषीणां विशां पुरः एता) मनुष्य प्रजाओंका सन्मार्गदर्शक होने से अग्रगन्ता, अतएव (तूर्णी.) वैदिक कर्मका अनुष्ठान करनेमें आलस्यरहित हुई उन प्रजाओंका (रथः) हवि पहुँचानेके कारण रथकी समान (सदा नवः अग्निः) प्रत्येक कर्ममें तत्काल मन्थनसे उत्पन्न कियाजानेके कारण सदा नवीन अग्नि (अदाभ्यः) किसीके तिरस्कारके योग्य नहीं है ॥ १ ॥

अभि प्रयाꣳसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥ २ ॥

(दाश्वान् मर्त्यः) हवियोंको अर्पण करनेवाला यजमान (वाहसा) हवि पहुँचानेवाले अग्निके द्वारा (प्रियांसि अभि अश्नोति) प्रिय अन्नोंको सब ओरसे पाता है (पावकशोचिषः क्षयम्) और पवित्र प्रकाशवाले अग्निसे स्थानको पाता है ॥ २ ॥

साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥ ३ ॥

(अभियुजः विश्वाः साह्वान्) चढ़ाई करनेवाली सकल सेनाओंका अपने बलसे तिरस्कार करनेवाला (अमृक्तः देवानां क्रतुः अग्निः) शत्रुओंसे न दबनेवाला देवताओंका पोषक अग्नि (तुविश्रवस्तमः) अधिकतासे अनेकों प्रकारके अन्नोंवाला है, इसकारण हमें भी बहुतसा अन्न देय ॥ ३ ॥

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १ ॥

(आहुतः अग्निः नः भद्रः) आहुतियोंसे तृप्त कियाहुआ अग्नि हमारे लिये कल्याणरूप हो (सुभग भद्रा रातिः) हे श्रेष्ठ धनवाले अग्निदेव कल्याणरूप तुम्हारा दान हमें प्राप्त हो (अध्वरः भद्रः) हमारा यज्ञ कल्याणरूप हो (उत प्रशस्तयः भद्राः) और स्तुतियें भी कल्याणरूप हों १

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः । अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये ॥ २ ॥

हे अग्ने (वृत्रतूर्ये मनः भद्रं कृणुष्व) संग्राममें हमारे मनको कल्याण दाता करो (येन समत्सु सासहिः) जिस मनसे तुम संग्रामोंमें शत्रुओं को तिरस्कार करते हो (शर्धतां भूरि स्थिरा अवतनुहि) तिरस्कार करनेमें समर्थ शत्रुओंकी दृढ़ सेनाओंको भी पराजित करो (अभिष्टये ते वनेम) हम अभीष्ट फल पानेके लिये हवि और स्तोत्रोंसे तुम्हारी आराधना करते हैं ॥ २ ॥

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ १ ॥

(सहसः यहः अग्ने) हे बलके पुत्र अग्ने (गोमतः वाजस्य ईशानः) तुम बहुतसी गौओंसहित अन्नके स्वामी हो (जातवेदः अस्मे महि श्रवः देहि) हे जातवेदः ! हमें बहुतसा अन्न दो ॥ १ ॥

स इधानो वसुः कविरग्निरीडेन्यो गिरा ।
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ २ ॥

(सः अग्निः) वह अग्नि (इधानः वसुः) दीप्त और सबको निवास देनेवाला (कविः गिरा ईडेन्यः) अनुभवी और वेदमन्त्रोंमे स्तुति करनेयोग्य है (पुर्वणीक अस्मभ्य रेवत् दीदिहि) हे अनेकों सुखरूप ज्वालाओंसे युक्त अग्ने ! हमारे लिये धनहित प्रज्वलित हूजिये ॥ २ ॥

क्षपो राजन्नुत त्मनाऽग्ने वस्तोरुतोषसः ।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ३ ॥

(राजन् अग्ने) हे विराजमान अग्निदेव ! (वस्तोः उत उषसः) सकल दिनोंमें और रात्रियोंमे (क्षप) राक्षसादिकोंको अपने पुरुषों के द्वारा पीड़ित करो (उत त्मना) और स्वयं भी उनको पीड़ा दो (तिग्मजम्भ सः रक्षसः प्रतिदह) हे तीक्ष्णमुख ऐसे ! तुम उन राक्षसोंको एक एक करकै भस्म करदो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चदशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

विशो विशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ १

हे ऋत्विजों और यजमानो ! (वः) तुम (विशः विशः अतिथिम्) सकल

प्रजाके पूजनीय (पुरुप्रियं अग्निम्) बहुतोंके प्यारे अग्निकी स्तुतिसे उपासना करो (वः शूषस्य मन्मभिः) तुम्हारे लिये बलप्राप्त करानेवाले साधनोंसे और स्तोत्रोंसे (दुर्यं वचः स्तुषे) गुहामें स्थित अग्नि की वाणीसे स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम्।
प्रशꣳसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥

(यम्) जिसको (जनासः हविष्मन्तः) यजमान हवि धारण किये हुए (मित्र न) आदित्यकी वा मित्रकी समान (सर्पिरासुतिम्) घृत के हवनके साथ (प्रशस्तिभिः प्रशंसन्ति) स्तोत्रोंसे प्रशंसा करते हैं २

पन्याꣳसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता।
हव्यान्यैरयद्दिवि ॥ ३ ॥

(पन्यांसं जातवेदसम्) तुमने अच्छा किया इसप्रकार यजमानकी प्रशंसा करतेहुए अग्निकी स्तुति करते हैं (यः देवतातिं उद्यता हव्यानि) जो देवयज्ञमें उद्यत हवियोंको (दिवि ऐरयत्) द्युलोकमें प्रेरणा करता है अर्थात् देवताओंके पास पहुँचाता है ॥ ३ ॥

समिद्धमग्निꣳ समिधा गिरा गृणे, शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम्। विप्रꣳ होतारं पुरुवारमद्रुहं, कविꣳ सुम्नैरीमहे जातवेदसम्

(समिधा समिद्धं अग्निं गिरा गृणे) सामधाओंसे दीप्तहुए अग्नि की वेदमंत्रोंसे स्तुति करता हूँ (शुचिं ध्रुवं पावकं अध्वरे पुरः) स्वयं शुद्ध निश्चल और दूसरोंको पवित्र करनेवाले पावकको मैं यज्ञमें आगे स्थापन करता हूँ (विप्रं होतारम्) मेधावी और देवताओंका आह्वान करनेवाले (पुरुवारं अद्रुहम्) अनेकोंसे वरणीय और सबके अनुकूल (कविं जातवेदसम्) अनुभवी अग्निको (सुम्नैः ईमहे) धन की याचना करते हैं ॥ १ ॥

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्। देवासश्च मर्त्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (देवासः च मर्त्तासः च) देवता और मनुष्य भी (अमृतं युगे युगे हव्यवाहम्) अमर और प्रत्येक यज्ञानुष्ठान के समय में देवताओंके पास हवि पहुँचानेवाले (पायुं ईड्यं त्वाम्) पालन कर्त्ता और स्तुतिके योग्य तुमको (दूतं दधिरे) दूत बनातेहुए और वह दोनो देवता और मनुष्य (जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे) जागरणस्वभाव व्याप्त और प्रजारक्षक अग्निकी नमस्कार वा हविसे उपासना करते हैं ॥ २ ॥

विभूषन्नग्न उभयाँ अनुव्रता, दूतो देवाना॒ रजसी समीयसे । यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहे, ऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥ ३ ॥

(अग्ने उभयान् विभूषन्) हे अग्ने ! देवता और मनुष्य दोनोको सुशोभित करतेहुए तुम (अनुव्रता देवानां दूतः) कर्मोंमें देवताओंके दूत होतेहुए (रजसी समीयसे) द्युलोकमें हवि पहुँचानेको और इस लोकमें हवि लेजानेको विचरते हो (यत् ते) क्योंकि तुम्हारे लिये (धीतिं सुमतिं आवृणीमहे) कर्म और श्रेष्ठ स्तुतिको भजते हैं (अध त्रिवरूथः अस्मान् शिवः भव) इसके अनन्तर तीनो स्थानोमें स्थित तू हमको सुखकारी होओ ॥ ३ ॥

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥ १ ॥

हे अग्ने ! (हविष्कृतः) यजमानके लिये (गिरः जामयः देदिशती.) स्तुतियें बहिनोंकी समान तुम्हारे गुणोंको गातीहुई (वायोः अनीके त्वा उपास्थिरन्) वायुके समीप तुम्हें प्रदीप्त करतीं हुई स्थापित करती हैं ॥ १ ॥

यस्य त्रिधात्ववृत्तं बर्हिस्तस्थावसंदिनम् । आपश्चिन्निदधा पदम् ॥ २ ॥

(यस्य) जिस अग्निका (त्रिधातु अवृतम्) तीन पर्वोवाला और आवरणरहित (असन्दिनं बर्हिः तस्थौ) विना बँधाहुआ कुशसमूह स्थित है तिस अग्निमें (आपः चित् पदं निदधाति) जल भी पद स्थापन करता है ॥ २ ॥

पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः ।
भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥ ३ ॥

(मीढुषः देवस्य पदम) अभीष्टफल देनेवाला द्योतमान अग्निका स्थान (अनाधृष्टाभिः ऊतिभिः) अबाधित रक्षाओंसे सेवनीय होता है तथा इसकी (उपदृक्) उपदृष्टि भी (सूर्य इव भद्रा) सूर्यकी समान भजनीय है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चदशाध्यायस्य चतुर्थ खण्डः पञ्चदशाध्यायश्च समाप्त

षोडश अध्याय

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ १ ॥

(इन्द्र आयवः) हे इन्द्र ! मनुष्य स्तोता (पूर्वपीतये) सबसे पहिले सोम पीनेके लिये (स्तोमेभिः त्वा अभि) स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति करते हैं (समीचीनासः ऋभवः समस्वरन) इकट्ठेहुए ऋभु आदि स्तोता तुम्हारी ही स्तुति करतेहुए (रुद्रा. पूर्व्यं गृणन्त) रुद्रपुत्रोंने पुरातन वृद्ध तुम्हारी स्तुति की ॥ १ ॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यꣳ शवो मदे सुतस्य विष्णवि । अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ २ ॥

(इन्द्रः सुतस्य विष्णवि मदे) इन्द्र देवता अभिषुत सोमका सर्वशरीरव्यापी हर्ष प्राप्त होनेपर (अस्येत् वृष्ण्यं शवः वावृधे) इस यजमानके ही वीर्य और बलको बढ़ाता है (आयवः अद्य) मनुष्य स्तोता इससमय (पूर्वथा) पूर्वकालकी समान (अस्य तं महिमानं अनुष्टुवन्ति) इस इन्द्रकी पूर्वोक्त महिमाका गान करते हैं ॥ २ ॥

प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
इन्द्राग्नी इष आवृणे ॥ १ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र अग्नि देवताओं ! (उक्थिनः) वेदपाठी (त्वां प्रार्चन्ति) तुम्हारी स्तुतियोंमे पूजा करते हैं (नीथाविदः जरितारः) सामगानमें प्रवीण उद्गाता आदि इच्छित फल पानेके लिये तुम्हारी पूजा करते हैं (इषः आ वृणे) मैं भी अन्न पानेके लिये तुमसे प्रार्थना करता हूँ ॥ १ ॥

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥ २ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि देवताओं ! (दासपत्नीः) शत्रुओं की पालन कीहुई (नवतिं पुरः) नब्बे पुरियोंको (एकेन कर्मणा) एक ही उद्योगसे (साकम्) एकसाथ (अधूनुतम्) कम्पायमान करतेहुए ऐसे तुम्हें मैं आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥

इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्रयन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्याऽ३ऽअनु ॥ ३ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि देवताओं ! (धीतयः) होता आदि (ऋतस्य पथ्या अनु) कर्मफलके मार्गोंकी ओरको ध्यान देकर (अपसः परि उपप्रयन्ति) हमारे कर्मानुष्ठानके सब ओर अधिकतासे वर्त्तमान हैं ॥ ३ ॥

इन्द्राग्नी तविषाणि वाᳬ सधस्थानि प्रयाᳬसि च । युवोरप्तूर्यᳬ हितम् ॥ ४ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि देवताओं ! (वां तविषाणि प्रयांसि सधस्थानि) तुम्हारे बल और अन्न परस्पर मिलेहुए रहते हैं (अप्तूर्यं युवोः हितम्) वर्षाकी धाराओंका प्रेरकपन तुम्हारे विषैं स्थितहै ४

शग्ध्यू३ऽषु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः । भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥

(इन्द्र शग्धि) हे इन्द्रदेव ! अभीष्टफल दो (विश्वाभिः ऊतिभिः शचीपते शूर) सकल रक्षाओं सहित हे शचीपति शूर इन्द्र ! (भगं

न यशसम्) भाग्यकी समान यशस्वी (वसुविदं त्वां अनुचरामसि) धन प्राप्त कराने वाले आपकी हम उपासना करते है ॥ १ ॥

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः । नकिर्हि दानं परि मर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदाभर ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम (अश्वस्य पौरः) अश्वोंकी पूर्त्ति करनेवाले (गवां पुरुकृत् असि) गौओंकी अधिकता करनेवाले हो।(देव हिरण्ययः उत्सः) हे देव ! सुवर्णमय और प्रवाहकी समान तृप्त करनेवाले हो । हे इन्द्र ! (त्वे दानम्) तुम्हारे विषैं वर्त्तमान हमारे देनेयोग्य धनको (न किः हि परिमर्धिषत्) कोई भी नष्ट नहीं करसकता है । इसकारण (यत् यत् यामि) जो जो मैं याचना करता हूँ (तत् आभर) वह दो ॥ २ ॥

त्व ँ ँ ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये । उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये १

(त्वं वसुत्तये हि एहि) हे इन्द्र ! तुम मुझे धन देनेको अवश्य ही आओ (चेरवे भगं विदाः) और आकर सदाचरणसे रहनेवाले मुझे ऐश्वर्य दो (मघवन् गविष्टये उद्वावृषस्व) हे धनाधीश ! गौएं चाहने वाले, मुझे गौएं दो (इन्द्र अश्वमिष्टये उत्) हे इन्द्र अश्वोंकी चाहना वाले मुझे अश्व दो ॥ १ ॥

त्वं पुरु सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मँहसे । आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (त्वम्) तुम (पुरूणि सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे) बहुतसे सहस्रों और सैंकड़ों गौओं आदिके यूथ हवि देनेवाले यजमानको देतेहो (पुरन्दरं इन्द्रम्) शत्रुओंके नगर नष्ट करनेवाले इन्द्रको (अवसे) रक्षाके लिये (गायन्तः) स्तुति करतेहुए (विप्रवचसः आ चकृम) अनेकों प्रकारके श्रेष्ठ वचनवाले हम अभिमुख करते हैं ॥ २ ॥

यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्

मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्रस्तोमा यन्त्व-ग्नये ॥ १ ॥

(होता मन्द्रः यः) देवताओंका आह्वान करनेवाला और आनन्द देनेवाला जो अग्नि (विश्वा वसु जनानां दयते) सकल प्रकारके धन अपने सेवकोंको देता है (अस्मै अग्नये) इस अग्निके अर्थ (मधो न प्रथमानि) मदकारी सोमकी समान मुख्य (पात्रा स्तोमा प्रयन्तु) पात्र और स्तोत्र प्राप्त हों ॥ १ ॥

अश्वं न गीर्भी रथ्यꣳ सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः । उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

(दस्म विश्पते) हे दर्शनीय प्रजाओंके स्वामी अग्निदेव ! जिस तुझको (सुदानवः देवयवः) श्रेष्ठ दानवाले और देवताओंको अपना बनानेवाले यजमान (रथ्य अश्वं न गीर्भिः मर्मृज्यन्ते) रथमें जुतने वाले घोड़ेकी समान स्तुतियोंसे सेवा करते हैं । वह तू हमारे यजमानोंके (तनये तोके उभे) पुत्र पौत्र दोनोंमें (मघोनां राधः पर्षि) धनवानोंका धन दो ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके षष्ठाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ॥ १ ॥

(वरुण मे इमं हवं श्रुधि) हे वरुणदेव ! मेरे इस आह्वानको सुनो (अद्य मृडय च) और आज मुझे सुख भी दो (अवस्युः त्वां आचके) रक्षा चाहताहुआ मैं तुम्हारे अभिमुख होकर स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

कया त्वं न ऊत्याऽभि प्रमन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आभर ॥ १ ॥

(वृषन्) हे इच्छित फल वरसानेवाले इन्द्र ! (कया ऊत्या) किस रक्षाके द्वारा (त्वं नः अभिप्रमन्दसे) तुम हमको अधिक आनन्द देते हो (कया स्तोतृभ्यः आभर) और किस रक्षक आगमनसे हम स्तोताओंका भरण करते हो ॥ २ ॥

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रꣳ समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये १

(देवातातये इन्द्रमित् हवामहे) यज्ञके लिये सब देवताओंमें इन्द्रका ही आह्वान करते हैं (अध्वरे प्रयति इन्द्रम्) यज्ञका फैलाव होनेपर इन्द्रका आह्वान करते हैं (समीके वनिनः इन्द्रम) यज्ञसमाप्ति होने पर सेवा करनेवाले हम इन्द्रका ही आह्वान करते हैं (धनस्य सातये इन्द्रम) धनके लाभके लिये इन्द्रका आह्वान करते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् । इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥ २ ॥

(इन्द्रः शवः मह्ना रोदसी पप्रथत्) यह इन्द्र अपने बलकी महिमा से द्युलोक और पृथ्वी लोकको पूर्ण करता हुआ (इन्द्रः सूर्यम अरोचयत्) अद्रने राहुके ढकेहुए सूर्यको प्रकाशित किया (इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे) इस इन्द्रमें ही सकल भुवन ठहरे हुए हैं (स्वानासः इन्दवः इन्द्रे) अभिषूयमाण सोम इन्द्रमें ही नियमित होते हैं ॥ २ ॥

विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः, स्वयं यजस्व तन्वा॒ऽ३ऽ स्वाहिते। मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास, इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ १ ॥

(विश्वकर्मन्) हे विश्वभरके कर्मोंका साधन करनेवाले विश्वकर्मा नामक इश्वर ! (हविषा वावृधानः) हविरूप विश्वके कर्म से वा मेरे दिये हुए हविसे वृद्धिको प्राप्त होताहुआ (स्वयं) स्वयं ही (तन्वा स्वाहिते यजस्व) अपने शरीरकी आहुति दिये हुए अग्नि में हविको अर्पण करो (अन्ये जनासः) यज्ञ न करनेवाले अन्य मनुष्य (अभितः मुह्यन्तु) चारों ओर मोहको प्राप्तहों (इह) इस यज्ञमें (अस्माकं मघवा) हमारे दिये हुए हविरूप धनसे धनवाला यह इन्द्र (सूरिः अस्तु) स्वर्गका दाता हो ॥ १ ॥

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषाꣳसि तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।

धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः। विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभि-र्ऋक्वभिः ॥ २ ॥

(पुनानः) पूयमान सोम (हरिणया अया रुचा) हरे वर्णकी इस दीप्यमान धारासे (विश्वा द्वेषांसि तरति) सकल द्वेषियों का नाश करता है (सूरः स्वसृभिः न) जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे अन्धकार का नाश करता है (पृष्ठस्य धारा रोचते) दशापवित्र पर सींचे हुए उस सोमकी धारा दिपती हैं (पुनानः हरिः अरुषः) स्वच्छ किया हुआ हरे वर्णका सोम देदीप्यमान होता है (यः सप्तास्यैः ऋक्विभिः ऋक्विभिः विश्वा रूपा परि याति) जो सोम रसको ग्रहण करनेवाले ६ मुख जिनके ऐसे स्तुत्य तेजोंसे सकल नक्षत्रों में व्याप्त होता है ॥२॥

प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सᳪं रश्मिभि-र्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः। अ-ग्मन्नुक्थानि पौᳪंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्, वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता॥

(चेकितत् प्राचीं प्रदिशं अनुयाति) जाननेवाला सोम पूर्वा नामक श्रेष्ठ दिशाको जाताहै (दैव्यः दर्शतः रथः रश्मिभिः संयतते) दिव्य और दर्शनीय तुम्हारा रथ सूर्यकी किरणोंसे मिलता है (पौंस्या उक्थानि अग्मन्) पौरुषके सूचक स्तोत्र इन्द्रको प्राप्त होते हैं (जैत्राय इन्द्रं हर्षयन्) जयप्राप्तिके कारणभूत वह स्तोत्र इन्द्रको प्रसन्न करते हु (वज्रः च) वज्र भी इन्द्रको प्राप्त होताहै (यत् समत्सु अन-पच्युता भवथः) जब संग्रामोंमें हे सोम और इन्द्र तुम दोनो शत्रुओं से पराजय नहीं पाते हो तब स्तोत्र और आगमन आदि होते हैं ॥३॥

त्वᳪं ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्म-र्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे। परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः। त्रि-धातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे॥

हे सोम तू ! (पणीनां त्यत् वसु) पणियोंके हरेहुए उस गौ आदि धनको (विद) प्राप्त हुआ (आ ऋतस्य धीतिभिः मातृभिः स्वेद्मे सम्मर्जयसि) और यज्ञको धारण करनेवाला वसतीवरी नामक जलों करके अपने यज्ञमें भलेप्रकार शुद्ध होताहै (परावतः न साम तत्) दूर देशसे जैसे सामकी ध्वनि सुनीजाती है तैसे तुम्हारी सामध्वनि सबोंकरके सुनीजाती है (यत्र धीतयः रणन्ति) जिस ध्वनिके होने पर यज्ञके कर्त्ता यजमान आनन्दमें मग्न होते हैं (रोचमानः त्रिधातुभिः अरुषीभिः) वह दिपताहुआ सोम तीनो लोकोंको धारण करनेवाली दीप्तियोंसे (वयः दधे वयः दधे) स्तोताओंको अन्न देता है यजमानोंको अन्न देता है ॥ ४ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके षोडशाध्यायस्य द्वितीयः खण्ड समाप्तः

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत । नृवत्कृणुह्यूतये ॥ १ ॥

(उत) और हे पूषा देवता ! (गोषणिं अश्वसाम्) गौएं देनेवाली और घोड़े देनेवाली (वाजसां उत नृवत्) अन्नोंकी देनेवाली और पुत्र सेवकादि पुरुषोंकी देनेवाली (धियम्) बुद्धिको अथवा कर्मको (नः ऊतये कृणुहि) हमारी रक्षाके लिये करो ॥ १ ॥

शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ॥ २ ॥

(सत्यशवसः नरः) हे अमोघ बलवाले मरुतो ! (शशमानस्य स्वेदस्य) स्तुतियोंसे तुम्हारी सेवा करनेवाले और स्तुतिके मंत्रोंको उच्चारण करनेमें हुए परिश्रमके कारण स्वेदयुक्त हुए (वा वेनतः) और चाहनावाले स्तोताके (कामस्य विद) इच्छित फलको दो ॥ २ ॥

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृडीका भवन्तु नः ॥ १ ॥

(ये अमृतस्यः सूनवः) जो अमर प्रजापतिके पुत्र हैं वह देवता (नः गिरः उपशृण्वन्तु) हमारी स्तुतियोंको सुनैं (नः सुमृडीकाः भवन्तु) हमारे लिये श्रेष्ठ सुख देनेवाले हों ॥ १ ॥

प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे ।

शुची उप प्रशस्तये ॥ १ ॥

(शुची) हे पवित्र द्यावापृथिवी ! (प्रशस्तये उप) प्रशंसा करने के लिये तुम्हारे समीपमें (द्यवी वाम्) द्योतमान तुम दोनोके अथ (उप-स्तुति महि अभिभरामहे) स्तोत्रको अधिकताके साथ सम्पादन करतेहैं

पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः ।
ऊह्याथे सनादृतम् ॥ २ ॥

हे देवियों ! (तन्वा दक्षेण) अपनी मूर्त्ति करके और बल करके भी (मिथः पुनाने) यज्ञ और यजमान प्रत्येकको शुद्ध करती हुई तुम (राजथः) ईश्वरी होती हो (सनात् ऋतं ऊह्याथे) सदा यज्ञका निर्वाह करती हो ॥ २ ॥

मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
परि यज्ञं निषेदथुः ॥ ३ ॥

(मही) महती द्यावा पृथिवी देवियें ! तुम (मित्रस्य साधथः) मित्रभूत स्तोताके अभीष्टको सिद्ध करती हो (ऋतं तरन्ती यज्ञं परि निषेदथुः) अन्नको तारती और पूर्ण करती हुई सब ओरसे यज्ञका आश्रय करती हो ॥ ३ ॥

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! (अयमु ते) यह सोम तेरे निमित्त सम्पादन किया है (समतसि) जिस सोमको तुम भलेप्रकार निरन्तर प्राप्त होते हो (कपोतः गर्भधि इव) जैसे कि—कपोत पक्षी गर्भधारिणी कपोतीको प्राप्त होता है (तच्चित्) तिस कारणसे ही (नः वचः ओहसे) हमारी स्तुतिको प्राप्त होते हो ॥ १ ॥

स्तोत्रꣳ राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।
विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २ ॥

(राधानां पते गिर्वाहः) धनोंके स्वामी और स्तुतियोंके उठायेहुए (वीर) हे शूर इन्द्र ! (यस्य ते स्तोत्रम्) जिन तुम्हारा स्तोत्र ऐसा है तिन तुम्हारी (विभूतिः सूनृता अस्तु) लक्ष्मी प्रिय सत्यरूपा वाणीहो॥२॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो।
समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥

(शतक्रतो अस्मिन् वाजे) हे इन्द्र ! इस संग्राममें (नः ऊतये) हमारी रक्षाके लिये (ऊर्ध्वः तिष्ठ) उत्सुक रहो। हम तुम मिलकर (अन्येषु) और कार्योंमें (संब्रवावहै) विचार करें ॥ ३ ॥

गाव उप वदाऽवटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १ ॥

(गावः) हे गौओं ! तुम (अवटे उपवद) महावीरको प्राप्त होओ क्योंकि (यज्ञस्य रप्सुदा) यज्ञके साधन मंत्रसे दुहनेयोग्य गौ और और अजाके दूध बहुत अपेक्षित हैं (उभा कर्णा हिरण्यया) इस महावीरके दोनो कर्णरूपरुक्म सुवर्ण रजतमय हैं ॥ १ ॥

अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु ।
अवटस्य विसर्जने ॥ २ ॥

(अद्रयः) आदर कियेजाते हुए अध्वर्यु आदि (अभ्यारमित्) समीप पहुँचकर ही (निषिक्तं मधु) क्षीर रूप मधुको (पुष्करे) बहुत बड़े उपयमनीय पात्रमें डालते हैं (अवटस्य विसर्जने) महावीरके विसर्जन के समय होमनेके अनन्तर महावीरको आसन्दीमें स्थापन करो ॥२॥

सिञ्चन्ति नमसाऽवटमुच्चाचक्रं परिज्मानम्।
नीचीनबारमक्षितम् ॥ ३ ॥

(उच्चाचक्रम्) जिसके ऊपरके भागमें चक्र बनाहुआ है (परिज्मानम्) नीचे होकर गएहुए (नीचीनबारम्) नीचे द्वारवाले (अक्षितम्) क्षीणतारहित (अवटं नमसा सिञ्चन्ति) महावीरको नमस्कार के साथ होमते हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके षोडशाध्यायस्य तृतीय खंड समाप्त

मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम
तुर्वशं यदुम् ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! (उग्रस्य तव सख्ये मा भेम) तीक्ष्णस्वभाववाले तुम्हारी मित्रता प्राप्त होनेपर हम किसी भी शत्रुसे भयभीत न हों (मार्थमिस्म) किसीसे भी पीडित न हों (वृष्णः ते महत् कृतं अभिचक्ष्य) उपासकोंके मनोरथ पूरे करनेवाले तेरा बड़ाभारी वृत्रवधादि चरित्र स्तुतिके योग्य है, क्योंकि—(तुर्वशं यदुं पश्येम) हम तुर्वश और यदुको आपके अनुग्रहसे आनन्दके साथ जीवित देखते हैं ॥ १ ॥

सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति । मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥ २ ॥

(वृषा) अभीष्टफलदाता इन्द्र (सव्यां स्फिग्यं अनु) बाईं ओरके कमरके भागसे (वावसे) सकल प्राणियोंको आच्छादित करता है (दानः अस्य न रोषति) काटनेवाला शत्रु इस इन्द्रको कष्ट नहीं देसकता है अथवा हे यजमान हवियोंका अर्पण करनेवाला तू इस इंद्रके क्रोधको नहीं उत्पन्न होने देता है (सारघेण सम्पृक्ताः धेनवः) मधुमक्षिकाके मधुकी समान रसवाले दुग्धादिसे युक्तहुए धेनुकी समान आनन्ददायक हैं हमारे सोम (तूयं एहि) शीघ्र ही हमारे समीप आओ और आकर (द्रव) जिस उत्तरवेदीमें सोम होमेजाते हैं उसमें शीघ्र पहुंचो और फिर (पिब) अध्वर्युके दियेहुए सोमको पियो ॥ २ ॥

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम । पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत ॥ १ ॥

(पुरूवसो) हे बहुतधनवाले इन्द्र ! (मम याः इमाः गिरः) मेरी जो यह स्तुतियें हैं (त्वा वर्द्धन्तु) तुम्हें वृद्धियुक्त करें (पावकवर्णाः शुचयः विपश्चितः) अग्निसमान तेजवाले यह शुद्ध स्तोता (स्तोमैः अभ्यनूषत) स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे । सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ २ ॥

(अयं सहस्रं ऋषिभिः सहस्कृतः) यह इन्द्र सहस्रों ऋषियों करकै बलवान् कियाहुआ (समुद्र इव पप्रथे) समुद्रकी समान विस्तारको प्राप्त हुआ (अस्य सत्यः सः महिमा शवः) इस इन्द्रकी सत्य यह महिमा और बल (यज्ञेषु विप्रराज्ये गृणे) यज्ञोंमें ब्राह्मणोंके स्तुतिरूप शब्दोंके युद्धमें स्तुति की जाती है ॥ २ ॥

यस्याऽयं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः। तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥ १ ॥

(यस्य अयं विश्वः आर्यः शेवधिपा अरिः) जिस यज्ञका यह सब लोक प्रभुभी भृत्यकी समान निधिका रक्षक है (अर्ये रुशमे) स्वामी और नियन्ता (पवीरवि) सरस्वतीके पिता (तिरश्चित् तुभ्येत्) तिरोभूत भी हे इन्द्र तेरे अर्थ ही (सः रयिः अज्यते) वह हविरूप धन प्राप्त होताहै अभिप्राय यह है. कि—ब्राह्मण क्षत्रियादि सब लोक गृहस्पति है वह राजसूय आदि यज्ञोंकी सेवकाईसे बढ़ता है, ऐसा यज्ञ मन्त्ररूपा सरस्वती के पितास्थानीय परमेश्वररूप में गूढ़ होकर भी हे इन्द्र ! तेरे अर्थ हवि देनेको ही प्रकट होताहै,ऐसी तेरी महिमाहै १

तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः। अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यꣳ शवोऽस्मे इन्दवः ॥ २ ॥

(तुरण्यवः विप्रासः) यागादि कर्ममें त्वरा करनेवाले प्रवीण ऋत्विज (मधुमन्तं घृतश्चुतम्) मधुक्षीर आदिकी आहुतियों से युक्त और घृत जिसपर टपक रहा है ऐसे (अर्क आनृचुः) पूजनीय इन्द्रकी पूजा करते हैं। इस लिये कि—(अस्मे रयिः पप्रथे) हमारा हविरूप धन प्रसिद्ध हो (वृष्ण्यंशवः) सोमकी वर्षा करनेवाला बलभी प्रसिद्ध हो (अस्मे स्यानासः इन्दवः) हमारे यहां के संस्कार कियेहुए सोम प्रसिद्ध हों ॥ २ ॥

गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनियः। शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ १ ॥

(सुदक्ष इन्दो) हे श्रेष्ठ बलवाले सोम (सुतः नः) अभिषव किया हुआ तू हमें (गोमत् अश्ववत् धनिव) यज्ञकी साधन गौओंसे युक्त और घोड़ोंसे युक्त धन दे। तदनन्तर (शुचिं वर्णं च गोषु अधिधारय)पवित्र दीप्यमान वर्ण और रसकोमें गौके दुग्धादिमें मिलाऊँ १

स नो हरीणां पत इन्दो देव प्सरस्तमः ।
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥ २ ॥

(हरीणां पते देव इन्दो) हमारे हरे वर्णके पशुओं के स्वामी हे दिव्य सोम ! (प्सरस्तमः नर्यः) अत्यन्त दीप्त रूपयुक्त और ऋत्विजोंका हितकारी (सः नः रुचे भव) यह तू हमारी दीप्तिका करनेवाला हो (सखा सख्ये इव) जैसे कि-मित्र,अपने मित्रके लिये दीप्ति करता है२

सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कंचिदत्रिणम् ।
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥ ३ ॥

हे सोम ! (त्वं सनेमि अस्मत् आ) तुम पुरानी मित्रता हमारे विषैं प्रकट करो (अदेवं कश्चित् अत्रिणं अप) हमारी दीप्तिको रोकनेवाले प्रत्येक राक्षसको हमसे दूर करो (इन्दो साह्वान्) हे सोम शत्रुओं का तिरस्कार करनेवाला तू (बाधः परि) बाधा देनेवालों को नष्ट करो (द्वयुम) झूठ सत्य दोनो से युक्त अथवा भीतर बाहर दो प्रकारकी मायावाले राक्षसको हमसे दूर करो ॥ ३ ॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुꣳ रिहन्ति मध्वाऽभ्यञ्जते। सिंधोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणꣳ हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥१॥

उस सोमको ऋत्विज (अञ्जते) गोदुग्धादिसे मिलाते हैं (व्यञ्जते) अनेकोंप्रकारसे मिलाते हैं (समंजते) भलेप्रकार मिलाते हैं । देवता (क्रतुरिहन्ति) उस यज्ञकर्त्ता सोमका स्वाद लेते हैं (मध्वा अभ्यंजते) फिर उस ही सोमका मधुर गोरससे मिलाते हैं । उस ही सोमको (सिंधोः उच्छ्वासे) रसके आधारभूत ऊँचे स्थानमें (पतयन्तं उक्षणम्) जातेहुए सेचन करनेवाले (पशुम्) द्रष्टा सोमको (हिरण्यपावाः अप्सु गृभ्णते) सुवर्णसे पवित्र करतेहुए वसतीवरी जलोंमें ग्रहण करते हैं ॥ १ ॥

विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारा ऽत्यन्धो अर्षति। अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद्वृषा हरिः ॥ २ ॥

हे ऋत्विजो ! (विपश्चिते पवमानाय गायत) मेधावी पवमान सोम की स्तुति गाओ (महि धारा न अन्धः अत्यर्षति) वह सोम बड़ी-भारी वर्षाकी धाराकी समान रसरूप अन्नको देता है (अहिः न जीर्णात्वचं अतिसर्पति) सर्पकी समान पुरानी त्वचाको अभिषव आदिकर्मसे त्यागता है (वृषा हरिः) अभीष्टफलदाता हरे वर्णका सोमरस (अत्यः न क्रीडन् असरत्) अश्वकी समान क्रीड़ा करता हुआ द्रोण कलशमें जाता है ॥ २ ॥

अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः। हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥ ३ ॥

(अग्रेगः राजा) अग्रगामी और विराजमान (आप्यः तविष्यते) जलोंमें संस्कार कियाजाताहुआ सोम स्तुति कियाजाता है जो सोम (अह्नां विमानः भुवनेषु अर्पितः) चन्द्रकलाकी न्यूनाधिकताके वशीभूत होनेसे दिनोंकी रचना करनेवाला और वसतीवरी जलोंमें स्थापित है वह सोम स्तुति कियाजाता है और (हरिः घृतस्नुः) हरेवर्णका तथा जलोंमें फैलाहुआ (सुदृशीकः अर्णवः) सुन्दर दर्शनीय और जलवान् (ज्योतीरथः) ज्योतिर्मय रथवाला (रायः ओक्यः) धन प्राप्त करानेवाला और स्थान प्राप्त करानेवाला है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके षोडशाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः षोडशाध्यायश्च समाप्तः

सप्तदश अध्याय

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः। चनो धाः सहसो यहो ॥ १ ॥

(सहसः यहः अग्ने) हे बलके पुत्र अग्निदेव ! (विश्वेभिः अग्निभिः) सकल आहवनीय अग्नियोंसे युक्त तुम (इमं यज्ञम्) इस हमारे यज्ञ को (इदं वचः) और इस हमारी स्तुतिका सेवन करतेहुए (चनः धाः) हमें अन्न दो ॥ १ ॥

यच्चिद्धि शश्वता तना देवं देवं यजामहे ।

त्वे इद्धूयते हविः ॥ २ ॥

(यच्चिद्धि) यद्यपि (शश्वता तना) नित्य और विस्तारवाले हवि से (देवं देवं यजामहे) इन्द्र वरुण आदि अन्य देवताओंका यजन करते हैं तथापि (हविः) वह सब हवि (त्वयि एव हूयते) तुम्हारे विषें ही होमाजाता है ॥ २ ॥

प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।

प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ३ ॥

(विश्पतिः होता) प्रजाओंका पालक और होमका साधक (मन्द्रः वरेण्यः) प्रसन्नरूप और वरणीय अग्नि (नः प्रियः अस्तु) हमारा प्यारा हो(स्वग्नयः वयं प्रियाः) श्रेष्ठ अग्निवाले हम भी तुम्हारे प्रिय हों

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।

अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥

हे ऋत्विज यजमानो ! (विश्वतः जनेभ्यः परि) सकल लोकोंसे ऊपर स्थित (इन्द्रं वः हवामहे) इन्द्रको तुम्हारे लिये आह्वान करते हैं। इसकारण वह इंद्र (अस्माकं केवलः अस्तु) हमारा असाधारण हो अर्थात् हमारे ऊपर औरोंसे अधिक अनुग्रह करे ॥ १ ॥

स नो वृषन्नमुं चरुꣳ सत्रादावन्नपावृधि ।

अस्मभ्यमऽप्रतिष्कुतः ॥ २ ॥

(सत्रादावन्) हे हमारे सकल अभीष्टफलोंको एक साथ देनेवाले (वृषन्) हे वृष्टि करनेवाले इन्द्र (सः) वह प्रसिद्ध तू (नः अमुं चरुं अपावृधि) हमारे इस मेघको उद्घाटित करो (अस्मभ्यं अप्रतिष्कुतः) हमारे लिये निषेधका शब्द उच्चारण करनेवाले नहीं हो ॥ २ ॥

वृषा यूथेव वꣳसगः कृष्टीरियर्त्योजसा ।

ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ३ ॥

(ईशानः अप्रतिष्कुतः) समर्थ और याचना किये हुए पदार्थका कभी निषेध न करनेवाला (वृषा) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाला इन्द्र

(ओजसा कृष्टीः इयर्त्ति) अपने बलसे अनुग्रह करनेको मनुष्योंके पास पहुँचता है (वंसगः यूथंव) जैसे सुंदर गतिवाला वृषभ गौओंके यूथ में पहुँचताहै ॥ ३ ॥

त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधाꣳसि चोदय । अ-
स्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः

(वसो चित्रः त्वम्) हे व्यापक अग्ने ! दर्शनीय तू (ऊत्या राधांसि नः चोदय) रक्षा सहित अन्न हमें दो (अग्ने त्वं अस्य रायः रथी असि) हे अग्ने ! तुम इस धनके पहुँचानेवाले हो (नः तुचे गाधं नु विदा) हमारे पुत्रादि को प्रतिष्ठा शीघ्र दो ॥ १ ॥

पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः
अग्ने हेडाꣳसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि
ह्वराꣳसि च ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वम्) तू (अदब्धैः अप्रयुत्वभिः) किसी से भी हिंसित न होनेवाले और इकट्ठेहुए (पर्त्तृभिः) रक्षाके साधनों से (तोकं तनयं पर्षि) पुत्र और पौत्रका पालन कर (दैव्या हेडांसि नः युयोधि) देवसम्बन्धी क्रोधोंको हमसे दूर कर (अदेवानि ह्वरांसि च) मनुष्योंकी हिंसाओंको भी हमसे दूर कर ॥ २ ॥

किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्ववक्षे शि-
पिविष्टो अस्मि । मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्
यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥ १ ॥

(विष्णो) हे विष्णो ! (ते तत् नाम) तुम्हारा वह नाम (किं परिचक्षि) क्या प्रसिद्ध करनेयोग्य है ? किन्तु स्वयं प्रसिद्ध है (यत् नाम) जिस नामको (शिपिविष्ट अस्मि इति प्रवक्षे) मैं शिपिविष्ट अर्थात् किरणों करके युक्त हूँ, ऐसा कहते हो। ऐसे प्रसिद्धरूपवाले हो इसकारण (एतद् वर्पः अस्मत् मा अपगूहः) इसरूप को हमसे छिपाहुआ मत रक्खो (यत्) जोकि (समिथे) संग्राममें (अन्यरूपः इत्) अन्यरूपको धारण करके ही (बभूथ) हमारे सहायक होते हो इसकारण परमतेजस्वी विष्णुरूपका हमें दर्शन दो ॥ १ ॥

प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् । तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ २ ॥

(शिपिविष्ट) हे किरणोंसे युक्त विष्णुभगवन् ! (ते तत्) तुम्हारे उस प्रसिद्ध विष्णुनामको (अर्यः) स्तुतियों वा हवियोंका स्वामी (वयुनानि विद्वान्) जाननेयोग्य पदार्थोंको जानताहुआ (हव्यम्) आह्वानयोग्य नामको मैं (अद्य प्रशंसामि) आज प्रशंसा करता हूँ (तम्) तिस (तवसम्) परमवृद्ध (अस्य रजस. पराके क्षयन्तम्) इसलोक के दूरदेशमें निवास करनेवाले (त्वा अतव्यान् गृणामि) तुम विष्णु को तुम्हारा छोटा मैं स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

वषट् ते विष्णवास आकृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् । वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

(विष्णो ते आसः आ वषट् कृणोमि) हे विष्णुदेव ! तुम्हारे निमित्त मुखसे अभिमुख वषट्कारके द्वारा हविका होम करता हूँ (शिपिविष्ट) हे किरणोंसे युक्त विष्णो ! (तत् मे हव्यं जुषस्व) उस वषट्कार युक्त मेरे हविका सेवन करो (सुष्टुतयः मे गिरः त्वा वर्द्धन्त) श्रेष्ठ स्तुतिरूपा मेरी वाणियें तुम्हें बढ़ावें (यूयम्) हे विष्णो ! तुमको आदि लेकर सब देवता (स्वस्तिभिः नः सदा पात) कल्याणरूपा शक्तियोंसे हमारी सदा रक्षा करो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तदशाध्यायस्य प्रथमः खंडः समाप्तः

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु आयाहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता १

(वायो शुक्र) हे वायुदेव ! व्रत करने आदिसे दीप्तहुआ मैं (दिविष्टिषु) द्युलोकके सुखोंकी इच्छायें होनेपर (ते मध्वः) तुम्हारे निमित्त मधुर सोमरस (पूर्व अयामि) औरोंसे पहिले अर्पण करता हूँ (देव स्पार्हः) हे वायुदेव ! चाहने योग्य तुम (नियुत्वता) नियुत् नामक अपने अश्वके द्वारा (सोमपीतये आयाहि) सोम पान करनेको आइये १

इन्द्रश्च वायवेषाᳬ सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवाᳬ हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् २

(वायो) हे वायु तुम (इंद्रः च) और इन्द्र भी (एषां सोमानां पीतिं अर्हथः) इन ग्रहण करेहुए सोमोंका पान करनेके योग्य हो (हि युवां इन्दव यन्ति) निश्चय तुमको सोम प्राप्त होते हैं (निम्नं आपः न सध्र्यक्) जैसे कि—खोदेहुए नीचे स्थानमें को जल एक साथ ही पहुँचते हैं ॥ २ ॥

वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथᳬ शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आयातᳬ सोमपीतये ३

(वायो इन्द्रः च) हे वायुदेव ! तुम और इन्द्र (शवसः पती) बल के रक्षक (शुष्मिणा) बलवान् (नियुत्वन्ता) नियुत नामक घोड़ो वाले तुम दोनो (नः ऊतये) हमारी रक्षा करनेके लिये (सोम पीतये) सोमपान करनेको (सरथं आयातम) एकसे रथमें बैठकर आओ ॥ ३ ॥

अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्रगाहसे ।
यदी विवस्वतो धियो हरिᳬ हिन्वन्ति यातवे १

(क्षपा अध) रात्रिके अनन्तर प्रातःकालके समय (परिष्कृतः) जलोंसे शोभायमान हे सोम ! तू (वाजान् अभि प्रगाहसे) बल वा अन्नोंकी ओरको जाताहै (विवस्वतः धियः) उपासना करनेवाले यजमानकी कर्मकी साधन अगुलियें (हरिं यातवे यदि हिन्वन्ति) हरे वर्णके तुझ सोमको पात्रोंमें जानेके लिये यदि प्रेरणा करती है तब तुम सवनोंको प्राप्त होते हो ॥ १ ॥

तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः २

(अस्य तं मर्जयामसि) इस सोमके रस रसको शोधते हैं (यः मदः इन्द्रपातमः) जो मदकारी रसरूप और इन्द्रके अत्यन्त पीनेयोग्य है (यं सूरयः पुरा च नूनं) जिस सोमरसको स्तोताओंने पहिले धारण किया और अब भी धारण करते हैं (गावः आसभिः दधुः) तृणादिमें स्थित जिस सोमको गौएं मुखोंसे तृणादिरूप करके भक्षण करती है॥२॥

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ३

(पुनानं पुराण्या गाथया अभ्यनूषत) पवमान सोमको पुरातन स्तुतियों स्तोता प्रशंसा करते हैं (उतो) और (नाम बिभ्रतीः) कर्म के लिये नम्रताको धारण करतीहुई (धीतयो देवानां कृपन्त) अंगुलियें देवताओंको सोमरूप हवि देनेकेलिये समर्थ होती हैं ॥ ३ ॥

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमो-
भिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥

(अध्वराणां सम्राजं त्वा अग्निं नमोभिः वन्दध्यै) यज्ञोंके राजा तुझ अग्निको स्तुतियों करके और हवियों करके हम वन्दना करते हैं (वारवन्तं अश्वं न) जैसे घोड़ा अपने बाधक मच्छर आदिको बालोंसे दूर करदेता है तैसे तुम भी अपनी ज्वालाओंसे हमारे विरोधियोंको हटाओ ॥ १ ॥

स घ नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥

(स घ नः सुशेवः) वही अग्नि हमारे लिये मांगलिक सुखवाला हो (शवसा सूनुः पृथुप्रगामा) बलका पुत्र और बड़े गमनवाला वह अग्नि (अस्माकं मीढ्वान् बभूयात्) हमारे मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला हो २

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।
पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥ ३ ॥

हे अग्ने (विश्वायुः) विश्वव्यापी तू (दूरात् च आसात् च) दूरसे और समीपसे भी (अघायोः मर्त्यात्) हमारा अनिष्ट करना चाहते हुए मनुष्यसे (नः सदमित् निपाहि) हमारी सदा रक्षा करो ॥ ३ ॥

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः

(इन्द्र त्वम) हे इन्द्र ! तू (प्रतूर्तिषु विश्वाः स्पृधः अभि असि) संग्रामोंमें सकल शत्रुसेनाओंका तिरस्कार करते हो (तूर्य त्वम्) हे

शत्रुओंके बाधक इन्द्र ! तू (अशस्तिहा) देवताओंकी विपत्तियोंका नाशक है (जनिता) असुरोंकी विपत्तियोंका उत्पादक है (वृत्रतूः) सकल शत्रुओंका सब प्रकारसे बाधक है (तरुष्यतः असि) बाधा देने-वालोंको सब प्रकारसे कष्टदाता है ॥ १ ॥

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा । विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (तुरयन्तं ते शुष्मम्) शत्रुओंका नाश करनेवाले तेरे बल के (क्षोणी मातरा शिशुं न अनु ईयतुः) द्यावापृथिवी,जैसे माता पिता बालकके पीछे २ जाते हैं तैसे अनुगामी होते हैं (इन्द्र) हे इन्द्र (यत् वृत्रं तूर्वसि) क्योंकि तू वृत्र नामक शत्रुको नष्ट करता है इसकारण (ते मन्यवे) तेरे क्रोधके निमित्त (विश्वाः स्पृधः) सकल संग्राम कर-नेवाली सेनाएं (श्नथयन्त) खिन्न होती हैं ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके षष्ठदशाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्त्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥ १ ॥

(यज्ञः इन्द्रं अवर्द्धयत्) यजमानोंका कियाहुआ यज्ञ इन्द्रको बढ़ाता है, (यत) क्योंकि वह इन्द्र (दिवि ओपशं चक्राणः) अन्तरिक्षमें मेघ को छायाहुआ वा अपनेमें स्थित वीर्यको अन्तरिक्षमें करताहुआ (भूमिं व्यवर्त्तयत्) वर्षा आदि देकर भूमिको विशेष पुष्ट करता है॥ १ ॥

व्या३न्तरिक्षमातिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥ २ ॥

(सोमस्य मदे) सोमको पीनेसे हर्ष होनेपर (इन्द्रः) इन्द्र (रोचना अन्तरिक्षम्) दीप्यमान अन्तरिक्षको (वि अतिरत्) विशेषरूपसे सम्पन्न करता है (यत्) क्योंकि (वलम् अभिनत्) मेघको विदीर्ण करता है ॥ २ ॥

उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥

(गुहासती. गाः आविष्कृण्वन अङ्गिरोभ्यः उदाजत्) गुहामें स्थित होकर भी न दीखती हुई अपहारकोंकी छिपाई हुई गौओंको प्रकाशित करताहुआ ऋषियोंको लाकर देताहै (वलं अर्वाञ्च नुनुदे) उन हरण करनेवालोंके अधिपति बलनामक असुरको नीचा मुखकरके भगादेताहै ३

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।

आच्यावयस्यूतये ॥ १ ॥

यजमान कहता है कि— हे स्तोतः (सत्रासाहम्) अनेकोंका तिरस्कार करनेवाले (वः विश्वासु गीर्षु आयतम्) तुम्हारे सकल स्तोत्रोंमें फैलेहुए (त्यमु) उस इन्द्रको ही (ऊतये) हमारी रक्षाके लिये (आच्यावयसि) अपने स्तोत्रोंसे यज्ञमें हमारे अभिमुख भेजो ॥ १ ॥

युध्मꣳसन्तमनर्वाणꣳ सोमपामनपच्युतम्।

नरमवार्यक्रतुम् ॥ २ ॥

(युध्म सन्तं अनर्वाणम) शत्रुओंके ऊपर प्रहार करते हुए विद्यमान तथा दूसरोंसे जिनकी गति नही रोकी जाती एसे (अनपच्युत सोमपाम्) संग्रामोंमें शत्रुओंसे न दबनेवाले और सोम पीनेवाले तथा उस सोमका मद होने पर (अवार्यक्रतुं नरम्) जिनके पराक्रम को योधा नही निवारण करसकते ऐसे सबके नेता इन्द्रका हमारे यज्ञमें आवाहन करो ॥ २ ॥

शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरुविद्वाँ ऋचीषम ।

अवा नः पार्ये धने ॥ ३ ॥

(ऋचीषम इन्द्र) हे दर्शनीय इन्द्र! (विद्वान) सब विषयोंके जाननेवाले तुम (रायः आ) बहुतसे धन शत्रुओंसे लेकर (नः पुरु शिक्ष) हमें अनेकों वार दो (पार्ये धने नः अव) शत्रुओंके हरण कियेहुए धन से हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥

तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव दक्षमुत क्रतुम् ।

वज्रꣳशिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥

हे इन्द्र (धिषणा) स्तुति (त्यत् इन्द्रियं बृहत्) उस तुम्हारे बडे भारी बलको (तव दक्षम्) तुम्हारे शत्रुओंको सुखानेवाले बलको

(उत क्रतुम्) और पराक्रम रूप कर्मको (वरेण्यं वज्रम्) वरणीय वज्रको (शिशाति) तीक्ष्ण करती है ॥ १ ॥

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥

(इन्द्र द्यौः तव पौंस्यं पृथिवी श्रवः वर्द्धति) हे इन्द्र ! द्युलोक तेरे बलको और पृथिवी तेरे यशको बढ़ाती है (त्वाम्) ऐसे तुमको (आपः पर्वतासः च हिन्विरे) जल और मेघ अपना स्वामी समझ कर प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! (बृहन् क्षय) महान् पहुँचनेयोग्य स्थानरूप या परम धाम का देनेवाला (विष्णुः मित्रः वरुणः च गृणाति) विष्णु मित्र और वरुण तुम्हारी स्तुति करता है (मारुतं शर्द्धः त्वां अनुमदति) मरुत् देवता का बल तुम्हें हर्ष देता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तदशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ।
अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥

(अग्ने देव) हे अग्निदेव (कृष्टयः) यजमान (ओजसे) बल पाने के लिये (ते) तुम्हारे अर्थ (नमः गृणन्ति) नमस्कारका उच्चारण करते हैं। इसीकारण मैं भी तुम्हें प्रणाम करता हूँ (अमैः अमित्रं अर्दय) तुम अपने बलोंसे शत्रुओंका नाश करो ॥ १ ॥

कुवित्सु नो गविष्टयेग्ने संवेषिषो रयिम् ।
उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्ने तुम (नः गविष्टये) हमारी गौओंकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये (कुवित्सु रयिं संवेषिषः) बहुतसा धन दो (उरुकृत् नः उरु कृधि) बड़ा करनेवाले तुम मुझे बड़ा करो ॥ २ ॥

मा नो अग्ने महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा ।
संवर्ग सं रयिं जय ॥ ३ ॥

(अग्ने नः महाधने) हे अग्ने ! हमें इस संग्राममें (मा परावर्क्) मत त्यागो (यथा भारभृत) जैसे भारवाही अन्तमें ही भारको त्यागता है मध्यमें नहीं (संवर्गं रयिं सञ्जय) शत्रुओंसे इकट्ठे कियेहुए धन को हमारे निमित्त जीतो ॥ ३ ॥

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ १ ॥

(विश्वाः विशः) सकल प्रजाएं (अस्य मन्यवे सं नमन्त) इस इन्द्रके क्रोधके अर्थ वा मननके साधन स्तोत्रके अर्थ भलेप्रकार नम्र होती हैं (समुद्राय सिन्धवः इव) जैसे समुद्रकी ओरको नदियें स्वयं ही नमती चलीजाती हैं ॥ १ ॥

वि चिद्वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना।
वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥

(दोधतः वृत्रस्य चित् शिरः) और जगत्को अत्यन्त कम्पायमान करनेवाले वृत्रासुरके शिरको (वृष्णिना शतपर्वणा वज्रेण विबिभेद) वीरता भरे सैकड़ों धारवाले वज्रसे काटताहुआ ॥ २ ॥

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्त्तयत् ।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ३ ॥

(अस्य तत् ओजः तित्विषे) इस इन्द्रका वह बल प्रदीप्तहुआ (यत् इन्द्रः) जिस बलसे यह इन्द्र (उभे रोदसी) दोनो द्युलोक और भूलोकको (चर्म इव समवर्त्तयत्) चर्मकी समान भलेप्रकार अपने अधीन रखता है अर्थात् जैसे कोई किसी चमड़ेको कभी चौड़ा करदेता है और कभी तै करके सकुचित करलेता है तैसे ही यह दोनो लोक इंद्र के वशमें हैं ॥ ३ ॥

सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे घोड़े (सुमन्मा वस्वी) श्रेष्ठज्ञानवाले और धनवान् (रन्ती सूनरी) रमणीय और सुन्दर नेत्रोंवाले हैं ॥ १ ॥

सरूप वृषन्नागहीमौ भद्रौ धुर्यावभि ।
ताविमा उपसर्पतः ॥ २ ॥

(सरूप वृषन्) हे नित्य एकसमानरूपवाले अभीष्टफलदाता इन्द्र (भद्रौ इमौ धुर्यौ अभि आगहि) कल्याणरूप इन रथमें जोड़ेहुए सवारीके योग्य घोडोंके द्वारा हमारे यज्ञमें शीघ्र आइये (तौ इमौ उपसर्पतः) ऐसे यह घोड़े आपकी भलेप्रकार सेवा करते हैं ॥ २ ॥

नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्ये आपस्य तिष्ठति ।
शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥ ३ ॥

हे ऋत्विज् यजमानो! (दशभिः शृङ्गेभिः इवदिशन्) दोनो हाथोंकी दश अगुलियोंसे हमारे इच्छित पदार्थ देतेहुए इन्द्र देवता (आपस्य मध्ये तिष्ठति) यज्ञमें सोमरसके मध्यमें स्थित है उनको देखो और (शीर्षाणि निमृढ्वम्) तुम इन्द्रके आगमनसे होनेवाले कल्याणोंको शिरसे धारण करो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तदशाध्यायस्य चतुर्थ खण्डः सप्तदशाध्यायश्च समाप्तः

अष्टादश अध्याय

पन्यं पन्यमित्सोतार आधावत मद्याय ।
सोमं वीराय शूराय ॥ १ ॥

(सोतारः) हे अभिषव करनेवाले अध्वर्युओं ! (मद्याय वीराय) प्रसन्न करनेयोग्य और पराक्रमी (शूराय) शूर इन्द्रके अर्थ (पन्यं पन्यं इत्) सर्वत्र ही प्रशंसाके योग्य (सोमं आ धावत) सोमको सन्मुख जाकर अर्पण करो ॥ १ ॥

एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।
इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥ २ ॥

(ब्रह्मयुजा शग्मा) स्तोत्र और हविके द्वारा रथमें जोडेजातेहुए सुखदायक वा समर्थ (हरी) पापनाशक इन्द्रके घोड़े (इह) इस यज्ञमें (सखायं गिर्वणसं इन्द्रम् आवक्षत) मित्ररूप और वेदमंत्रोंसे स्तुति करनेयोग्य इन्द्रको लावें ॥ २ ॥

पाता वृत्रहा सुतमा घागमन्नारे अस्मत् ।
नियमते शतमूतिः ॥ ३ ॥

(सुत पाता वृत्रहा) अभिषुत सोमको पीनेके स्वभाववाला वृत्रासुरका नाशक इन्द्र (घ आ गमत्) अवश्य ही आवै (अस्मत् आरे) हमसे दूर न रहै और आकर (शतमूतिः) अनेकों प्रकारसे रक्षा करनेवाला इन्द्र (नियमते) हमारे शत्रुओंका तिरस्कार करें अथवा हमें धन देय ॥ ३ ॥

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्राऽतिरिच्यते ॥ १ ॥

(इन्द्र इन्दवः त्वा आविशन्तु) हे इन्द्र ! यह बहतेहुए सोमरस तुमको प्राप्त हों (सिन्धवः समुद्र इव) जैसे कि बहतीहुई नदियें जाकर समुद्रमें पहुँचजाती हैं । इसकारण हे इन्द्र ! (त्वा न अतिरिच्यते) कोई भी देवता धनमें वा बल में तुमसे अधिक नहीं है ॥ १ ॥

विव्यक्थ महिना वृषन् भक्षꣳ सोमस्य जागृवे य इन्द्र जठरेषु ते ॥ २ ॥

(वृषन् जागृवे) हे अभीष्ट पदार्थोंकी वर्षा करनेवाले सदा सावधान इन्द्र ! तुम (सोमस्य भक्ष महिना विव्यक्थ) सोमका पान करने के लिये अपनी महिमासे सर्वत्र व्याप्त रहते हो (इन्द्र) हे इन्द्र (यः ते जठरेषु) जो सोम तुम्हारे उदरोंमें प्रवेश करता है ॥ २ ॥

अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् । अरं धामभ्य इन्दवः ॥ ३ ॥

(वृत्रहन् इन्द्र !) हे पापनाशक इन्द्र (सोमः ते कुक्षये अरं भवतु) हमारा दिया हुआ सोम तेरी कोखके लिये पर्याप्त हो (इन्दव) धामभ्यः अरम्) हमारे सोम तुम्हारे तेजोके प्रभावसे सब देवताओंके निमित्त पर्याप्त हों ॥ ३ ॥

जराबोध तद्विविड्ढि विशे विशे यज्ञियाय । स्तोमꣳरुद्राय दृशीकम् ॥ १ ॥

(जराबोध) हे स्तुतिसे प्रज्वलित कियेहुए अग्ने ! (विशे विशे यज्ञियाय तद् विविड्ढि) प्रत्येक यजमानरूप प्रजाके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये यज्ञसंबन्धी अनुष्ठानके सिद्ध करनेको यज्ञशालामें प्रवेश

कर यजमान भी (रुद्राय) तुझ रुद्रस्वभाव अग्निके अर्थ (दृशीकम) दर्शनीय श्रेष्ठ स्तुतिको करता है ॥ १ ॥

स नो महाꣳ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः ।
धिये वाजाय हिन्वतु ॥ २ ॥

(महान् अनिमानः) सबसे बड़ा और अपरिच्छिन्न (धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः सः) धूमसे विदित होनेवाला और बहुत आनन्द देनेवाला अग्नि (नः धिये वाजाय हिन्वतु) हमें ज्ञानके लिये और अन्नके लिये प्रेरणा करै ॥ २ ॥

स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः ।
उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥ ३ ॥

(विश्पतिः दैव्यः) प्रजाओंका रक्षक और देवताओंका संबन्धी (केतुः बृहद्भानुः सः) दूत और अनेकों किरणोंवाला वह अग्नि (रेवान् इव) जैसे धनवान् राजा वन्दियोंके स्तोत्रको सुनता है तैसे (नः उक्थेभिः शृणोतु) हमारी स्तोत्रमयी वाणियोंको सुने ॥ ३ ॥

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥

हे स्तोताओ ! (सुते) सोमका अभिषव होनेपर (वः) तुम (पुरुहूताय सत्वने) अनेकों यजमानों करके आह्वान कियेहुए शत्रुओंको छांटनेवाले वा धनोंका दान करनेवाले इन्द्रके अर्थ (तत् सचा गाय) उस स्तोत्रको इकट्ठे होकर गाओ (यत् गवे न) जो स्तोत्र जैसे गौ को भुस सुखकारी होता है तैसे (शाकिने शम्) शक्तिमान् इन्द्रको सुखकारी होता है ॥ १ ॥

न घा वसुर्नियमते दानं वाजस्य गोमतः ।
यत्सीमुपश्रवद्गिरः ॥ २ ॥

(वसुः) वह सर्वव्यापक इन्द्र (गोमतः वाजस्य दानम्) बहुतसी गौओंसे युक्त अन्नके दानको (न घ नियमते) किसीप्रकार भी नहीं रोकता है (यत् सीम्) यदि यह इन्द्र (गिरः उपश्रवत्) हमारी स्तुतियोंको सुनलेय ॥ २ ॥

कुविन्त्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहाऽगमत्।
शचीभिरप नो वरत् ॥ ३ ॥

(दस्युहा) भक्तोंको कष्ट देनेवाले दैत्योंका नाशक इन्द्र (कुविन्त्सस्य गोमन्तं व्रजं प्रागमत्) बडी हिंसा करनेवाले दैत्यके गौओंसे भरे गोठ को बहुधा अपने वशमें करलेता है (हि) क्योंकि वह दैत्य (शचीभिः नः गाः अपवरत्) अपने कर्म वा प्रज्ञाओंके द्वारा हमारी गौओंको हरण करताहुआ ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके अष्टादशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुले ॥ १ ॥

(विष्णुः) वामन अवतार धारण करनेवाले विष्णुने (इदम्) इस दीखतेहुए सब जगत्के उद्देश्यसे (विचक्रमे) विशेषरूपसे आक्रमण किया उस समय (त्रेधा) तीन प्रकारसे (पदम्) अपने चरणको (निदधे) स्थापन किया (अस्य) इस विष्णुके (पांसुले) धूलियुक्त चरणस्थान में (समूढम्) यह सब जगत् सबप्रकार अन्तर्गत होगया ॥ १ ॥

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ २ ॥

(अदाभ्यः) कोई भी जिसकी हिंसा न करसकै ऐसे (गोपाः) सकल जगत्के रक्षक (विष्णुः) विष्णुभगवान्ने (अतः) पृथिवी आदि इन तीनों लोकोंमें (धर्माणि) अग्निहोत्र आदिको (धारयन्) पोषण करतेहुए (त्रीणि पदा) तीन चरणोंसे (विचक्रमे) आक्रमण किया

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

हे ऋत्विक् आदि पुरुषो ! (विष्णोः) विष्णुके (कर्माणि) पालन आदि कर्मोंको (पश्यत) देखो (यतः) जिन विष्णुके कर्मोंसे (व्रतानि) अग्नि होत्रादि कर्मोंको (पस्पशे) सकल यजमान करते हैं वह विष्णु भगवान् (इन्द्रस्य) इन्द्रके (युज्यः सखा) अनुकूल सखा है ॥ ३ ॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ४ ॥

(सूरयः) विद्वान् (विष्णोः) विष्णुके (परमम्) श्रेष्ठ (तत्) उस शास्त्रोंमें प्रसिद्ध (पदम्) स्थानको शास्त्रदृष्टिसे (सदा पश्यन्ति) सर्वदा देखते हैं (दिवि इव) जैसे आकाशमें (आततम्) सब ओर को फैलाहुआ (चक्षुः) नेत्र (पश्यति) विशदरूपसे देखता है ॥ ४ ॥

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांऽसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ५ ॥

(विष्णोः) विष्णुका (यत्) जो (परमं पदम्) परम पद है (तत्) उस पदको (विपन्यवः जागृवांसः विप्रासः समिन्धते) विशेषरूप से स्तुति करनेवाले प्रमादरहित विद्वान् ऋत्विज भलेप्रकार दीप्त करते हैं ॥ ५ ॥

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्या अधि सानवि ॥ ६ ॥

(विष्णुः) परमेश्वर (पृथिव्याः) इस भूतलसे (अधिसानवि) ऊँचे (यतः) स्वर्गादि लोकमें (विचक्रमे) नानाप्रकारसे चरणको रखताहुआ (अतः) इस भूतलप्रदेशमें (नः) हमें (देवाः) विष्णु आदि देवता (अवन्तु) पापसे वा शत्रुसे रक्षा करें ॥ ६ ॥

मो षु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्निरीरमन् ।
आरात्ताद्वा सधमादं न आगहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! (त्वा) तुम्हे (वाघतश्च न) यह ऋत्विज भी (अस्मत् आरे) हमसे दूर (मा निरीरमन्)अत्यन्त रमण न करावें, इस कारण तुम (आरात्ताद्वा) दूर वर्त्तमान होकर भी (न सधमादं आ गहि) हमारे यज्ञमें आइये (इह वा सन्) और यहां विद्यमान होकर भी (उप श्रुधि) हमारे स्तोत्रको सुनो ॥ १ ॥

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष

आसते। इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे नपादमादधुः ॥ २ ॥

हे इन्द्र! (ते सुते) तुम्हारे लिये सोमका संस्कार होनेपर (ब्रह्मकृतः) स्तोत्र पढ़नेवाले ऋत्विज (मधौ मक्षः न) मधुमें मक्खिकाओं की समान (सचा आसते) साथ बैठते हैं (वसूयवः जरितारः) धन चाहनेवाले स्तुतिकर्त्ता (इष्टम्) अपनी अभिलाष को (रथे पादं न) रथमें चरणकी समान (आदधुः) समर्पण करते हैं ॥ २ ॥

अस्तावि मन्म पूर्व्यं, ब्रह्मेन्द्राय वोचत। पूर्वीऋतस्य बृहतीरनूषत, स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥

(अस्तावि) वह इन्द्र हमारे स्तोत्रोंसे स्तुति कियाजाता है, हे ऋत्विजों! (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (पूर्व्यं मन्म ब्रह्मवोचत) पुरातन और मनन करनेयोग्य स्तोत्र को पढ़ो (पूर्वीः ऋतस्यबृहतीः अनूषत) पूर्वकाल के यज्ञसम्बन्धी बृहती छन्दवाले बृहत्सामोंको पढ़ो (स्तोतुः मेधाः असृक्षत) मुझ स्तोताकी ऐसी ही बुद्धियोंको ईश्वर देय ॥ १ ॥

समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणीः समु सूर्यम्। सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥ २ ॥

(इन्द्रः) इन्द्र (बृहतीः रायः) बहुतसे धन (समधूनुत) मुझे देय (क्षोणीः सम) भूमियें मुझे भलेप्रकार देय (सूर्यं सम्) सूर्य कैसी दीप्ति मुझे देय (शुचयः शुक्रासः इन्द्रं सम्) निर्मल सोम इन्द्रको प्राप्त होते हैं (गवाशिरः सोमाः अमन्दिषुः) गोदुग्ध सहित सोमरस इन्द्रको प्रसन्न करते हैं ॥ २ ॥

इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परिषिच्यसे। नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम (वृत्रघ्ने इन्द्राय पातवे) वृत्रासुरके नाशक इंद्र

के पीनेके लिये (परिषिच्यसे) तू पात्रोंमें भराजाता है (दक्षिणावते) ऋत्विजोंको देनेकी दक्षिणावाले (वीराय) वीर इन्द्रके अर्थ हवि देने को (स्दनासदे) यज्ञशालामें स्थित (नरे) यजमान को फल देनेके लिये सींचाजाता है ॥ १ ॥

तꣳ सखायः पुरुरुचं वयं यूयं च सूरयः । अश्याम वाजगन्ध्यꣳ सनेम वाजपस्त्यम् २

(सखायः) हे स्तोताओं ! (सूरयः यूयम्) बुद्धिमान् तुम (वयं च) और हम यजमान भी (तं पुरुरुचं वाजगन्ध्यं अश्याम) उस बड़ी दीप्तिवाले और बलकारी और सुगन्धिमय वस्तुओंसे प्रस्तुत हुए सोमरसको पियें (वाजपस्त्य सनेम) बलकारी सोमको पियें ॥ २ ॥

परि त्यꣳ हर्यतꣳ हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण । यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ३

इसकी व्याख्या पवमानपर्वके ५ वें अध्यायके ८ वें खण्डमें हो चुकी ३

कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति । श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजꣳ सिषासति ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या ऐन्द्रपर्वके ३ अध्याय के ५ वें खण्डमें हो चुकी ॥ १

मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु । तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥ २ ॥

हे इन्द्र (मघोनः तव प्रिया वसु) धन वाले तुम्हारे अर्थ हवि रूप प्रिय धनोंको (ये ददति) जो पुरुष अर्पण करते हैं उनको (वृत्रहत्येषु चोदय) यज्ञ और संग्रामोंमें प्रेरणा करो (हर्यश्व) हे पापहारी अश्ववाले इन्द्र ! (तव प्रणीती) तुम्हारी प्रेरणासे (सूरिभिः) स्तोता और पुत्रादिकों सहित (विश्वा दुरिता तरेम) सकल दुःखोंके पार होजायँ ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके अष्टदशाध्यायस्य द्वितीय खण्डः समाप्तः

एदु मधोर्मदिन्तरꣳ सिञ्चाऽध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः ॥ १ ॥

(अध्वर्यो) हे अध्वर्यु (मध्वोः अन्धसः) मदकारी सोमरूप अन्नके (मदिन्तरं इत् आसिञ्च) अत्यन्त आनन्ददायक सोमरसको अवश्य ही इन्द्रके सन्मुख बरसाओ (वीरः सदावृधः एव हि स्तवते) समर्थ और सदा बलका बढ़ानेवाला यह इन्द्रही स्तुति कियाजाताहै॥

इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।
उदानꣳश शवसा न भन्दना ॥ २ ॥

(हरीणां स्थातः इन्द्र) हे पापहारी अश्वों के स्वामी इन्द्र ! (ते पर्व्यस्तुतिं) तुम्हारी पुरातन ऋषियोंकी कीहुई और इस समय भी कीजातीहुई स्तुति (शवसा न किः उदानंश) कोई भी अपने बलसे नहीं पासकता (भन्दना न) सबके पूजनीय तुम्हारे तेज वा धनको भी कोई नहीं पासकता अर्थात् तुम्हारी समान बलवान् तेजस्वी वा धनी कोई नहीं है ॥ २ ॥

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ।
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ३ ॥

(श्रवस्यवः) अपने लिये अन्न चाहनेवाले हम (वाजानां पतिम्) बलोंके वा अन्नों के स्वामी (अप्रायुभिः यज्ञेभिः वावृधेन्यम्) कर्म में प्रमादरहित वा कर्म करते समय मध्यमें उठकर कहीं न जानेवाले मनुष्योंसे युक्त यज्ञोंकरकै बढ़ानेयोग्य (वः तम्) तुम्हारे उस इन्द्रको (अहूमहि) आह्वान करते हैं ॥ ३ ॥

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।
देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ १ ॥

हे स्तोतः ! (स्वर्णरं तं गूर्धय) स्वर्गमें देवताओंको हवि पहुँचाने वाले उस प्रसिद्ध अग्निकी स्तुति करो (देवासः देवं अरतिं दधन्विरे) स्तुति करनेवाले ऋत्विज दानादि गुणयुक्त और प्राप्त होनेयोग्य धन को पाते हैं । हे अग्ने ! तुम (हव्यं देवत्रा ऊहिषे) पुरोडाश आदि हवि को देवताओंमें सब ओरसे पहुँचाते हो ॥ १ ॥

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम्। अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥ २ ॥

(सोभरे विप्र) हे हवि देकर देवताओंको तृप्त करनेवाले ऋषे (विभूतरातिं चित्रशोचिषम्) बहुतसा दान देनेवाले और विचित्र किरणों वाले (सोमस्य अस्य यन्तुरम्) सोम है साधन जिसका ऐसे इस यज्ञके पूर्णकर्त्ता (पूर्व्यं अग्निं अध्वराय ईं ईडिष्व) पुरातन अग्निको यज्ञके निमित्त अवश्य ही स्तुति करो ॥ २ ॥

आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम ! (अद्रिभिः स्वानः) पाषाणोंसे अभिषव किया जाताहुआ तू (अव्यया वाराणि तिरः आ) भेड़की ऊनके दशापवित्र में को छनताहुआ वरस (हरिः चम्वोः विशत्) हरे वर्णका सोम अधिषवणके फलकोंके ऊपर कलशमें प्रवेश करता है (पुरि जनः न) जैसे कि—नगरमें कोई पुरुष प्रवेश करता है ऐसा तू (वनेषु सदः दधिषे) काठके वसतीवरी पात्रोंमें स्थान को करता है ॥ १ ॥

स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः। अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥ २ ॥

(वाजयुः) बल वा अन्न चाहनेवाला (मीढ्वान् सप्तिः न अनुमाद्यः) वीर्य सींचनेवाले घोड़ेकी समान हर्षदायक (सः पवमानः सोमः) वह शोधन कियाजाताहुआ सोम (मेष्यः अण्वानि तिरः) भेड़की ऊन के पवित्रेमेंको छनताहुआ (ऋक्वभिः विप्रेभिः मामृजे) स्तुति करने वाले ऋत्विजों करके स्तुति कियाजाताहुआ शुद्ध होता है ॥ २ ॥

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम्। तस्मा उ

अद्य सवने सुतंभरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १ ॥

(वयं एनं वज्रिणम्) हम इस वज्रधारी इन्द्रको (इदा ह्यः इह) इस समयके और बीतेहुए इन दिनोंमें (अपीपेम) सोमसे तृप्त करते हैं (तस्मा उ) उस इन्द्रके अर्थ ही (इदा) इस यज्ञमें (सुतं भर) अभिषव करेहुए सोमको अर्पण करो (नूनं श्रुते आभूषत) इस समय स्तोत्रका श्रवण होने पर अध्वर्यु आदिके समीप आवै ॥ १ ॥

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आगहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ २ ॥

(अस्य वयुनेषु) इस इन्द्रके मार्गों में वा प्रज्ञानों में (उरामथिः वारणः वृकश्चित्) मार्ग में जानेवालोंको कष्ट देनेवाला और सबको रोकनेवाला लुटेरा भी (आभूषति) अनुकूल होजाता है (सः इन्द्रः) ऐसे शक्तिमान् हे इन्द्र ! (नः इमं स्तोमं जुजुषाणः) हमारे इस स्तोत्र का सेवन करते हुए (चित्रया धिया प्रागहि) नानाप्रकारके फलरूप बुद्धि से युक्त होकर आइये ॥ २ ॥

इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥ १ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र अग्नि देवताओ ! (दिवः रोचना) स्वर्गके प्रकाशक तुम (वाजेषु परिभूषथः) संग्रामो में सबका तिरस्कार करतेहो (वां वीर्यं तत् प्रचेति) तुम्हारी सामर्थ्य ही उन संग्रामोमें विजयको ज्ञापित करती है ॥ १ ॥

इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या अनु ॥ २ ॥

इसकी व्याख्या उत्तरार्चिक अध्याय १६ खण्ड १ में होचुकी ॥ २ ॥

इन्द्राग्नी तविषाणि वाᳬसधस्थानि प्रयाᳬसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ॥ ३ ॥

इसकी व्याख्या उत्त० अध्याय १६ खण्ड १ में होचुकी ॥ ३ ॥

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयोदधे । अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या ऐन्द्रपर्व अध्याय ३ खण्ड ७ में होचुकी ॥ १ ॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे । नकिष्ट्वा नियमदासुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ २ ॥

(मृगः) शत्रुओंको खोजनेवाला (वारणः दानः न) जैसे हाथी मदके जलोंको धारण करता है तैसे (पुरुत्रा चरथं दधे) अनेकों यज्ञोंमें विचरणशील मदको धारण करता है (त्वा नकिः नियमत्) तुम्हें कोई भी अपने वशमें नहीं करसकता (सुते आगमः) हे इन्द्र ! सोमके अभिषुत होनेपर आइये (नः महान्) हमारे पूजनीय तुम (ओजसा चरसि) अपने बलसे सर्वत्र विचरते हो ॥ २ ॥

य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः । यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्यागमत् ॥ ३ ॥

(यः उग्रः सन्) जो उद्गीर्ण बलवाला होकर (अनिष्टृतः) शत्रुओंसे पार न पायाहुआ (स्थिरः) अचल (रणाय संस्कृतः) युद्ध के लिये शस्त्रोंसे भूषित हुआ (मघवा इन्द्रः) धनवान् इन्द्र (यदि स्तोतुः हवं शृणवत्) यदि स्तोताके आह्वानको सुनलेता है तो (न योषति) अन्यत्र नहीं जाता है (आगमत्) तहां ही आता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके अष्टादशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः । अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥

(शुक्रासः इन्दवः) उज्ज्वल और दिपतेहुए (पवमानाः सोमाः) पूयमान सोम (विश्वानि काव्या अभि असृक्षत) सकल वैदिक स्तोत्रोंके साथ सुसिद्ध किये जाते हैं ॥ १ ॥

पवमाना दिवस्पर्य्यन्तरिक्षादसृक्षत ।
पृथिव्या अधि सानवि ॥ २ ॥

(पवमानाः) सोम (दिवः) अन्तरिक्षसे (पृथिव्या· अधिसानवि) भूमिके ऊँचे स्थान यज्ञवेदीमें (पर्यसृक्षत) सुसिद्ध होते हैं २

पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः ।
घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥ ३ ॥

(आशवः शुभ्राः) वेगवान् और स्वेतवर्णके (पवमानासः इन्दवः) पूयमान सोम (विश्वाः द्विषः अपघ्नन्तः असृग्रम्) सकल द्वेषियोंका नाश करतेहुए सुसिद्ध होते हैं ॥ ३ ॥

तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानाऽपराजिता ।
इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ १ ॥

(तोशा वृत्रहणा) शत्रुओंको बाधा देनेवाले और पापके नाशकर्त्ता (सजित्वाना अपराजिता) समान विजय पानेवाले और किसीसे तिरस्कृत न होनेवाले (वाजसातमा इन्द्राग्नी हुवे) अन्नके परमदाता इन्द्र और अग्नि देवताको इस कर्ममें सोमपानके लिये आह्वान करताहूँ

प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
इन्द्राग्नी इष आवृणे ॥ २ ॥

इसकी व्याख्या उत्तरार्चिक अध्याय १६ खण्ड १ में होचुकी ॥२॥

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।
साकमेकेन कर्मणा ॥ ३ ॥

इसकी व्याख्या उत्त० अ० १६ खण्ड १ में होचुकी ॥ ३ ॥

उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ १ ॥

(सहस्कृत अग्ने) हे बलसे उत्पन्नहुए अग्निदेव ! (प्रयस्वन्तः) हविरूप अन्नको लियेहुए हम (रण्वसंदृशं त्वा उप) रमणीय और

दर्शनीय आपके समीप (गिरः ससृज्महे) स्तुतियोंका उच्चारण करते हैं ॥ १ ॥

उप छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् ।
अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (हिरण्यसन्दृशः घृणेः ते) सुवर्णकी समान तेजवाले और दिपतेहुए तुम्हारे (शर्म वयं उप अगन्म) शरण आश्रय वा सुखको हम प्राप्त होते हैं (छायां इव) जैसे धूपसे अत्यन्त तपे-हुए पुरुष छायाकी शरण में जाते हैं ॥ २ ॥

य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः ।
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३ ॥

(यः) जो अग्नि (उग्रः धन्वी इव) परमबली धनुषधारीकी समान (शर्यहा) बलका नाशक है (वंसगः न तिग्मशृङ्गः) श्रेष्ठ गमनवाले वृषभकी समान तीखे शृङ्गोंवाला है (अग्ने) ऐसे हे अग्निदेव ! तुमने (पुरः रुरोजिथ)असुरोंकी तीन पुरियोंको नष्ट किया है ॥ ३ ॥

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् ।
अजस्रं घर्ममीमहे ॥ १ ॥

हे अग्ने (ऋतावानं वैश्वानरम्) यज्ञके संबन्धी सकल मनुष्यों के हितकारी (ज्योतिषस्पतिं अजस्रम्) तेजके पालक और अविच्छिन्न (घर्मं ईमहे) दिपते हुए तुमसे हम अभीष्ट पदार्थकी याचना करते हैं॥

य इदं प्रति पप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन् ।
ऋतूनुत्सृजते वशी ॥ २ ॥

(यः)जो अग्नि (इदम्) इस जगत् को (यज्ञस्य स्वः उत्तिरन्) अनुष्ठीयमान यज्ञके सकल विघ्नोंके पार उतारता हुआ अथवा स्वर्ग के महाफलको देता हुआ (प्रति पप्रथे) सर्वत्र प्रसिद्ध होताहै(वशी) जगत् को वशमें करनेवाला वह अग्नि (ऋतून् उत्सृजते) वसन्त आदि ऋतुओंको उत्तम करता है ॥ २ ॥

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य।

सम्राडेको वि राजति ॥ ३ ॥

(भूतस्य भव्यस्य कामः) पूर्वकाल में उत्पन्न हुए और आगेको होनेवाले सकल प्राणियोंका चाहा हुआ (सम्राट् एकः अग्निः) भले प्रकार विराजमान अद्वितीय अग्निदेव (प्रियेषु धामसु विराजति) अपने प्रिय पृथिवी आदि लोकों में विराजता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके अष्टादशाध्यायस्य चतुर्थः खंडः अष्टादशाध्यायश्च समाप्तः

एकोनविंश अध्याय

अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्वा ३ꣳ स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥ १ ॥

(कविः अग्निः) अनुभववाला अग्निदेवता (प्रत्नेन जन्मना) सनातन स्तोत्रसे (स्वां तन्वं शुम्भानः) अपने तेजःस्वरूपको शोभायमान करताहुआ (विप्रेण वावृधे) ऋत्विज करकै बढ़ायाजाता है ॥ १ ॥

ऊर्जो नपातमाहुवेऽग्निं पावकशोचिषम् । अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥ २ ॥

(ऊर्जः नपातम्) अन्नके पुत्र (पावकशोचिषम्) पवित्र करनेवाली दीप्तिवाले (अग्निम्) अग्निको (स्वध्वरे अस्मिन् यज्ञे (असुरोंसे अत्यन्त अहिंसित इस यज्ञमें (आहुवे) आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥

स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा । देवैरासत्सि बर्हिषि ॥ ३ ॥

(मित्रमहः अग्ने) हे मित्रोंके पूजनीय अग्निदेव ! (सः) ऐसा तू (शुक्रेण शोचिषा) ज्वालाओंवाले तेज करकै (देवैः बर्हिषि आसत्सि) देवताओं सहित यज्ञमें विराजो ॥ ३ ॥

उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः । नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥

(अद्रिवः सोम) हे पाषाणोंसे सुसिद्ध हुए सोम ! (ते शुष्मासः) तेरे वेग (रक्षः भिन्दन्तः उदस्थुः) राक्षसोंको विदीर्ण करतेहुए उठते

हैं (याः स्पृधः नुदस्व) जो हमें बाधा देनेवाली शत्रुओंकी सेना हैं उनको तुम पीड़ा दो ॥ १ ॥

अया निजघ्निरोजसा रथसंगे धने हिते। स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥ २ ॥

हे सोम ! तू (अया ओजसा निजघ्निः) इस किये हुए बलसे शत्रुओंको नष्ट करनेवाला है। ऐसे तुमको (अबिभ्युषा हृदा) निर्भय मनसे युक्त मैं (रथसङ्गे हिते) हमारे रथोंके सङ्गम शत्रुओंके नष्ट होने पर (धने स्तवै) धनके निमित्त मैं स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या। रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥ ३ ॥

(पवमानस्य अस्य व्रतानि) पवमान इस सोमके कर्म (दूढ्या नाधृषे) दुष्ट राक्षसोंसे तिरस्कृत नहीं होसकते (यः त्वा पृतन्यति) हे सोम ! जो शत्रु तुझसे युद्ध करना चाहता है (रुज) उसको पीड़ा दे ३

तꣳ हिन्वन्ति मदच्युतꣳ हरिं नदीषु वाजिनम्। इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥

(मदच्युतं हरिम्) आनन्दकी वर्षा करनेवाले और पापहारी (वाजिनं मत्सरम्) बलयुक्त और मदकारी (तं इन्दुम्) उस सोमको (नदीषु इन्द्राय हिन्वन्ति) वसतीवरी जलोंमें इन्द्रके अर्थ प्रेरणा करते हैं ॥ ४ ॥

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः। मा त्वा केचिन्नियेमुरिन्न पाशिनोऽतिधन्वेव ताꣳ इहि ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (मन्द्रैः मयूररोमभिः) आनन्द देनेवाले और मोरके रोमकी समान रोमवाले (हरिभिः) पापहारी अश्वोंवाले तुम (आयाहि) यज्ञमें आइये (केचित्) कोई भी (त्वा मा नियेमुः) तुम्हें न रोकें (पाशिनः न) जैसे कि पाशधारी व्याधे पक्षियोंको रोका करते हैं (धन्वेव तान् अति इहि) मरुदेशकी समान उन विघ्नकारियोंको लांघकर शीघ्र आओ ॥ १ ॥

वृत्रखादो बलꣳ रुजः पुरां दर्मो अपामजः । स्थाता रथस्य हर्यो रभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः ॥ २ ॥

(इन्द्रः) वह इन्द्र (वृत्रखादः) वृत्रासुरका नाशक (बलं रुजः) मेघका भेदक (पुरां दर्मः) शत्रुओंके नगरोंको तोड़नेवाला (अपामजः) जलोंका प्रेरक (हर्योः अभिस्वरे रथस्य स्थाता) अश्वोंको हमारी ओरको प्रेरणा करनेपर रथ पर स्थित होनेवाला (दृढाचित् आरुजः) अति बलवान् भी शत्रुओंको नष्ट करनेवाला है ॥ २ ॥

गम्भीराꣳ उदधीꣳरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव । प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तू (गम्भीरान् उदधीन् इव) जैसे गम्भीर समुद्रोंको जल से पुष्ट करता है (क्रतुं पुष्यसि) तैसे ही इस यज्ञ करनेवाले यजमान को इच्छित फल देकर पुष्ट करता है (सुगोपाः गाः इव) जैसे श्रेष्ठ गोपाल तृणादिके द्वारा गौओंको पुष्ट करता है (यथा धेनवः यवसं प्र) जैसे गौएं तृणादिको पाती हैं तैसे तुम सोमको पीते हो (कुल्याः ह्रदं इव आशते) वह सोम जैसे कृत्रिम नदियें जलाशयको प्राप्त होती हैं तैसे तुम्हें प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

यथा गौरो अपाकृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् । आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमागहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ १ ॥

(गौरः तृष्यन्) गौर मृग पिलासा होकर (यथा) जैसे (अपकृतम्) जलभरे (इरिणं अवैति) सरोवरको जानकर उधरको जाता है तैसे (आपित्वे प्रपित्वे) सखाभावको प्राप्त होनेपर हे इन्द्र ! तुम (नः तूयं आगहि) हमारे समीप शीघ्र ही आओ और आकर (कण्वेषु सचा सुपिब) हम कण्वोंके विषै एक ही यत्नसे विद्यमान सोमको श्रेष्ठतासे पियो ॥ १ ॥

मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते । आमुष्या सोममपिबश्चमूसुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ॥ २ ॥

(मघवन् इन्द्र) हे धनवान् इन्द्र ! (सुन्वते राधः देयाय) अभिषव करनेवाले के अर्थ धनदेनेको (इन्दवः त्वा मदन्तु) सोम तुम्हें प्रसन्न करें । तुम (चमूसुतम्) मित्रावरुणके जलोंसे संस्कार कियेहुए (सोमं आमुष्य अपिबः) सोमको बलात्कारसे ग्रहण करके पीते हो (तत् ज्येष्ठं सहः दधिषे) इसकारण तुम बडेभारी श्रेष्ठ बलको धारण करते हो ॥ २ ॥

त्वमङ्ग प्रशꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् । न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः

(अङ्ग शविष्ठ) हेबलवान् इंद्र! (देवः) दीप्यमान तुम (मर्त्यं प्रशंसिषः) स्तुति करनेवाले मनुष्यकी प्रशंसा करते हो (मघवन् इन्द्र त्वदन्यः मर्डिता नास्ति) हे धनवान् इन्द्र तुम्हें छोड़कर दूसरा कोई सुखदाता नहींहै (ते वचः ब्रवीमि) इसकारण तुम्हारे लिये स्तुति बोलताहूँ ॥१॥

मा ते राधाꣳसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदाचना दभन् । विश्वा च न उप मिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥ २ ॥

(वसो) हे व्यापक इन्द्र (ते राधांसि) तुम्हारे भूत (अस्मान् कदाचन मा दभन्) हमें कभी विनष्ट न करें (ते ऊतयः मा) कम्पायमान करनेवाले तुम्हारे पवन हमें नष्ट न करें (मानुष) हे मनुष्याके हितकारी इन्द्र ! (चर्षणिभ्यः नः) हम मन्त्रद्रष्टाओंको (विश्वा वसूनि आ उपमिमीहि) सकल धन लाकर दो ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिक एकोनविंशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदर्शि दुहिता ॥ १ ॥

(स्या सूनरी) वह प्राणियोंको श्रेष्ठ प्रेरणा करनेवाली (जनी स्वसुः परि व्युच्छन्ती)फलोंको उत्पन्न करनेवाली और अपनी बहिन समान रात्रिके पिछले भागमें अन्धकारका नाश करनेवाली (दिवः दुहिता) आदित्य की पुत्री समान उषा (प्रत्यदर्शि) सबके देखनेमें आती है॥

अश्वेव चित्राऽरुषी माता गवामृतावरी ।
सखाऽभूदश्विनोरुषाः ॥ २ ॥

(अश्वेव चित्रा) अश्वकी समान विचित्रवर्ण की (अरुषी गवां माता) दीप्यमान और किरणोंकी रचना करनेवाली(ऋतावरी उषाः) यज्ञवाली उषा (अश्विनोः सखा) अश्विनीकुमारों के साथ स्तुति वाली (अभूत्) होती है ॥ २ ॥

उत सखाऽस्यश्विनोरुत माता गवामसि ।
उतोषो वस्व ईशिषे ॥ ३ ॥

(उत अश्विनोः सखा असि) और अश्विनी कुमारों की सहचा-रिणी है (उत गवां माता असि) और किरणोंका निर्माण करनेवाली है (उत उषः वस्वः ईशिषे) और हे उषा ! तू धनकी स्वामिनी है ॥

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥

(एषः प्रिया) यह दृश्यमान और सबकी प्यारी (अपूर्व्या उषा) पहिले मध्य रात्रिके समय विद्यमान न रहने वाली उषादेवता (दिवः व्युच्छति) द्युलोकसे आकर अन्धकारको नष्ट करती है (अश्विनौ वां बृहत् स्तुषे)हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारी बहुतसी स्तुति करता हूँ॥

या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् ।
धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥

(या देवा) जो अश्विनीकुमार देवता (दस्रा सिन्धुमातरा) दर्शनीय और समुद्रसे उत्पन्न हुए हैं (रयीणां मनोतरा) धनोंके मन से देनेवाले (धिया वसुविदा) कर्म करके धनके देनेवाले हैं ॥ २ ॥

वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि ।
यद्वाᳬ रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! (वां रथः) तुम्हारा रथ (जूर्णायां अधिविष्टपि) नाना शास्त्रों में प्रशंसनीय स्वर्गलोक में (यद् विभिः पतात्) जब अश्वों के द्वारा जाता है, उस समय (वां ककुहास वच्यन्ते) तुम्हारी स्तुतियें बोलीजाती हैं ॥ ३ ॥

उषस्तच्चित्रमाभराऽस्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १ ॥

(वाजिनीवति उषः) हे हविरूप अन्नयुक्त उषादेवि ! (अस्मभ्यं तत् चित्रं आभर) हमैं वह विचित्र धन दो (येन तोकं च तनयं च धामहे) जिस धनसे पुत्रोंका और पौत्रोंका भी भरण पोषण करें १॥

उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि ।
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ २ ॥

(गोमति अश्वावति) हमारे देनेयोग्य गौओंसे और अश्वोंसे युक्त (सूनृतावति विभावरि उषः) प्यारी और सत्यवाणीवाली हे प्रकाश युक्त उषादेवि ! (अद्य इह) इसप्रभात काल में यहां (अस्मे रेवत्) जिसप्रकार हमैं धन प्राप्त होनेके कर्मके उपयोगी हो तैसे (व्युच्छ) रात्रिके अन्धकारको दूर कर ॥ २ ॥

युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वा२ँ अद्यारुणा२ँ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्यावह ॥ ३ ॥

(वाजिनीवति उषः) हे हविरूप अन्नवाली उषादेवि ! अरुणान् अश्वान्) लाल वर्णके अश्वस्थानीय एक प्रकार के वृषभोंको (अद्य युंक्ष्व हि) इस समय रथमें जोड़ो (अथ विश्वा सौभगानि नःआवह) फिर सकल सौभाग्य हमैं दो ॥ ३ ॥

अश्विना वर्त्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथꣳसमनसा नियच्छतम् ॥ १ ॥

(अश्विना) हे व्यापक देवताओं ! (दस्रा) शत्रुओंका नाश करने वाले तुम (अस्मत् वर्त्तिः आ) हमारे घरकी ओरको (गोमत् हिरण्यवत् रथम्) बहुतसी गौएं और सुवर्ण से युक्त रथको (समनसा) समानचित्त होतेहुए (अर्वाक् नियच्छतम्) हमारे सन्मुख लाकर खड़ा करो ॥ १ ॥

एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्त्तनी।
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥ २ ॥

(उषर्बुधः इह सोमपीतये) उषःकालमें जगनेवाले घोडे इस यज्ञ में सोम पीनेके लिये (दस्रा मयोभुवा) शत्रुओंका नाश करनेवाले और भक्तोंको आरोग्यसुख देनेवाले (हिरण्यवर्त्तनी) सुवर्णका है रथ जिनका ऐसे (देवा) अश्विनीकुमार देवताओंको (आवहन्तु) लावें २

यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः
आ न ऊर्ज वहतमश्विना युवम् ॥ ३ ॥

(अश्विना) हे अश्विनीकुमारो ! (यौ) जो तुम (दिवः) द्युलोक से (उपश्लाकनीयं ज्योतिः) प्रशंसनीय तेजको (इत्था जनाय चक्रथुः) इस हमारे अनुभवमें आनेवाले प्रकारसे करतेहुए (युवम्) वह तुम (नः ऊर्ज आवहतम्) हमें बलदायक अन्न दो ॥ ३ ॥

सामवेद उत्तरार्चिके एकोनविंशाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन
इषꣳ स्तोतृभ्य आभर॥ १ ॥

(तं अग्निं मन्ये) उस अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ (यः वसुः) जो सर्वत्र व्यापक है (अस्तं यं धेनवः यन्ति) आश्रयभूत जिस अग्निको गौएं तृप्त करनेको प्राप्त होतीहैं (अस्तं आशवः अर्वन्तः) आश्रयभूत जिस अ-अग्निको शीघ्रगामी घोड़े प्राप्त होते हैं (अस्तं नित्यासः वाजिनः) आश्रयभूत जिस अग्निको नित्यकर्ममें लगे रहनेवाले हविको धारण करे हुए यजमान प्राप्त होतेहैं (स्तोतृभ्यः इषं आभर) हम स्तुति कर नेवालोंको हे अग्ने ! अन्न दो ॥ १ ॥

अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः।
अग्नी राये स्वाभुवꣳ सुप्रीतो याति वार्यमि-
षꣳ स्तोतृभ्य आभर॥ २ ॥

(अग्निः हि) अग्नि देवता अवश्य ही (विशे वाजिनं ददाति) यज

मानके अर्थ अन्नवान् पुत्रको वा अश्वको अथवा अन्नको देताहै (विश्वचर्षणिः) सकल मनुष्य जिसके रक्षा करने योग्य हैं वा सकल मनुष्य जिसका पूजन करते हैं अथवा जो विश्वभरका द्रष्टा है (सः अग्निः) वह अग्नि देवता (प्रीतः) प्रसन्न हुआ (स्वाभुवं) भले प्रकार सर्वत्र व्याप्त (वार्यं राये) सबके प्रार्थनीय धनके देनेको(याति) पहुँचता है (स्तोतृभ्यः इषं आभर) ऐसे अग्निदेव ! तुम स्तुति करने वालोंको अन्न दो ॥ २ ॥

सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सꣳ सुजातासः सूरय इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ ३ ॥

(सः अग्निः) वह अग्नि है कि (यः वसुः) जो व्यापक अग्नि (गृणे) स्तुति कियाजाता है (यं धेनवः समायन्ति) जिसको गौ यज्ञके निमित्त पहुँचाती हैं (अर्वन्तः रघुद्रुवः सम्) घोड़े धीरे २ की चालसे पहुँचाते हैं (सुजातासः सूरयः सम्) सुन्दरतापूर्वक प्रकट हुए विद्वान् पहुँचाते हैं (स्तोतृभ्यः अन्नं आभर) हम स्तोताओं को अन्न दो ॥ ३ ॥

मह नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजातेअश्वसूनृते ॥ १ ॥

(अद्य) आज यज्ञके दिन (उषः) हे उषादेवी ! (दिवित्मती) दीप्ति वाली तू (न महे राये) हमें बहुतसे धनकी प्राप्ति होनेके लिये (बोधय) प्रकाशित करो (यथाचित् नः अबोधयः) जैसा कि पहिले हमें प्रकाशित किया था (सुजाते अश्वसूनृते) हे सुन्दर प्रादुर्भाववाली हे सत्य प्रिय वाणीवाली देवि ! (वाय्ये सत्यश्रवसि) वय्यके पुत्र मुझ सत्यश्रवाके ऊपर अनुग्रह करो ॥ १ ॥

या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः । सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये, सुजाते अश्वसूनृते ॥ २ ॥

(दिवः दुहितः) हे सूर्य्यकी पुत्री ! (या) जिस तूने (सुनीथे शोचद्रथे व्यौच्छः) सुनीथ नामा शुचद्रथके पुत्रके विषै के अन्धकारों को पहिले दूर करा (सुजाते सत्यसूनृते) सुन्दर रीतिसे उत्पन्न और सत्य प्रिय वाणीवाली (सा) वह तू (सहीयसि वाय्ये सत्यश्रवसि) अत्यन्त बलवान् वय्यके पुत्र मुझ सत्यश्रवाके ऊपर अनुग्रह करो ।२।

सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः । यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥

(दिवः दुहितः) हे द्युलोक की पुत्री उषादेवि! (आभरद्वसुा) धन ला कर देनेवाली तू (नः अद्य व्युच्छ) हमारे आजके दिन अन्धकार को दूर करो (सहीयसि) हे अत्यन्त बलवाली ! (या व्यौच्छः) जो तू पहिले अन्धकारको दूर करनीहुई (सुजाते अश्वसूनृते) हे सुन्दर प्रादुर्भाववाली और हे सत्य प्रियवाणी वाली ! (वाय्ये सत्यश्रवसि) वय्यके पुत्र मुझ सत्यश्रवाके ऊपर अनुग्रह करो ॥ ३ ॥

प्रति प्रियतमꣳरथं वृषणं वसुवाहनम् । स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतꣳहवम् ॥१॥

(अश्विनौ) हे अश्विनीकुमारो ! (स्तोता ऋषिः) स्तुति करनेवाला मंत्रद्रष्टा (वाम्) तुम्हारे (वृषणं वसुवाहनम्) फलोंकी वर्षा करनेवाले और धन पहुँचाने वाले (प्रति प्रियतमं रथम्) परमप्रिय रथको (स्तोमेभिः प्रतिभूषति) स्तोत्रोंसे सुशोभित करता है, इसकारण (माध्वी) हे मधुविद्या के जाननेवालो (मम हवं श्रुतम्) मेरे आह्वानको सुनो ॥ १ ॥

अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहꣳ सना दस्रा हिरण्यवर्त्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा, माध्वी मम श्रुतꣳहवम् ॥ २ ॥

(अश्विना) हे अश्विनीकुमारो ! (अत्यायातम्) यजमानोको अतिक्रमण करके आओ (अहं विश्वाः सना तिरः) मैं अपने सकल विरोधियोंका सदा तिरस्कार करूँ (दस्रा हिरण्यवर्त्तनी) शत्रुओं के नाशक और सुवर्णमय रथवाले (सुषुम्णा सिन्धुवाहसा) श्रेष्ठ धन वाले और नदियों को बहानेवाले (माध्वी) मधुविद्या के जाननेवाले तुम (मम हवं श्रुतम्) मेरे आह्वानको सुनो ॥ २ ॥

आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम्। रुद्रा हिरण्यवर्त्तनी जुषाणा वाजिनी वसू, माध्वी मम श्रुतꣳहवम् ॥ ३ ॥

(अश्विना) हे अश्विनीकुमारो (रुद्रा हिरण्यवर्त्तनी) रुद्रपुत्र और हिरण्यमय रथवाले (वाजिनीवसू जुषाणा) अन्नयुक्त धनवाले और यज्ञका सेवन करतेहुए (युवं आगच्छतम्) तुम आओ (माध्वी हवं श्रुतम्) हे मधुविद्याके जाननेवालो मेरे आह्वानको सुनो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके एकोनविंशाध्यायस्य तृतीय खण्डः समाप्तः

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवा-यतीमुषासम् । यह्वा इव प्रवयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥

(अग्निः जनानां समिधा अबोधि) अग्नि अध्वर्यु आदिकों की समिधाओं से चेतन हुआ (धेनुं इव) जैसे अग्निहोत्र के निमित्त धेनुके प्रति प्रातःकाल चेतन हुआ जाता है (आयतीं उषासं प्रति) आतेहुए उषःकाल में (भानवः) उस प्रज्वलितहुए अग्निकी किरणें (वयां प्रोज्जिहानाः यह्वाः इव) अपनी शाखाओंको फैलानेवाले बड़े भारी वृक्षोंकी समान (नाकं अच्छ प्रसस्रते) अन्तरिक्ष की ओरको फैलती हैं ॥ १ ॥

अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सु-मनाः प्रातरस्थात् । समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि ॥ २ ॥

(होता अग्निः देवान् यजथाय अबोधि) यह होमका साधक अग्नि देवताओंके यजनके लिये प्रज्वलित होता है। वह अग्नि (प्रातःसुमनाः) प्रातःकालके समय यजमानों के ऊपर अनुग्रहबुद्धि रूप सुंदर मन वाला होकर (ऊर्ध्वः अस्थात्) ऊपरको उठता है (समिद्धस्य रुशत् पाजः अदर्शि) प्रज्वलित हुए इस अग्निका प्रकाशवान् ज्वालारूप बल दीखता है। तदनन्तर (महान् देवः तमसः निरमोचि) यह महान् देवता सब जगत् को अन्धकारसे मुक्त करता है ॥ २ ॥

यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः। आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥ ३ ॥

(यत् ईम्) जब यह अग्नि (गणस्य रशनां अजीगः) समूहरूप जगत्की रज्जुकी समान चेष्टाको रोकनेवाले अन्धकारको निगलजाता है अर्थात् प्रज्वलित होता है, उस समय (शुचिः अग्निः) दीप्त हुआ अग्नि (शुचिभिः गोभिः) दीप्त किरणोंसे (अङ्क्ते) सकल जगत्को प्रकट करता है (आत्) तदनन्तर ही (दक्षिणा) बडीभारी घृतकी धारा (वाजयन्ती जुहूभिः युज्यते) हविरूप अन्न देना चाहती हुई जुहूनामक यज्ञपात्रों से युक्त होती है (उत्तानां ऊर्ध्वः अधयत्) उस ऊपर फैलीहुई घृतकी धाराको ऊँचा होकर पीता है३

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा। यथा प्रसूता सवितुः सवायँवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥

(ज्योतिषां इदम् ज्योतिः श्रेष्ठम्) ग्रह नक्षत्र आदि सकल ज्योतियोंमें यह उषा नामकी ज्योति सबसे बढ़कर है अर्थात ग्रह नक्षत्र आदि केवल अपनेको ही प्रकाशित करते हैं दूसरेको प्रकाशित नहीं करते, चन्द्रमा यद्यपि दूसरोंको प्रकाशित करताहै परन्तु उसका प्रकाश उतना स्पष्ट नहीं है और उषाका प्रकाश तो एकसाथ सब जगत्का अन्धकार दूर करके विशेष प्रकाश फैलादेता है (आ अगात्) ऐसा प्रकाश पूर्वदिशा में आया, और आनेपर (चित्रः प्रकेतः) विचित्र प्रकारका और सकल पदार्थोंका ज्ञापक (विभ्वा अजनिष्ट) व्याप्त

होकर प्रकट हुआ (यथा सवितुः प्रसूता रात्री) जैसे सूर्यसे उत्पन्न हुई रात्रि (उषसे सवाय) उषाकी उत्पत्तिके लिये (योनिं आरक्) अपने अन्तिमभागरूप स्थानको कल्पना करती है ॥ १ ॥

रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः। समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाते ॥ २ ॥

(रुशती श्वेत्या) दीप्त श्वेतवर्णकी उषा (रुशद्वत्सा आगात्) प्रकाशमय है सूर्यरूप वत्स जिसका ऐसी आई (यस्याः कृष्णा सदनान् आरैक्) आई हुई उषाके लिये रात्रिने अपने पिछले पहररूप स्थानोंकी कल्पना करी,यह रात्रि और उषा दोनो (समानबन्धू) सूर्यनामक एक ही है बान्धव जिनका ऐसी अर्थात् उषाका उदय होनेहुए सूर्यसे सम्बन्ध होताहै और रात्रिका अस्त होतेहुए सूर्यसे सम्बन्ध होताहै इसकारण सूर्यरूप बंधुवालीं (अमृते) कालरूप नित्य होनेसे जिनका कभी मरण ही नहीं होता ऐसीं (अनूची) पाहले रात्रि फिर उषा इसप्रकार क्रम से आनेजानेवालीं अथवा सूर्यकी गतिके अनुसार चलनेवालीं (वर्णं आमिनाते) सकल प्राणियोंके रूपको उत्पन्न करती हुईं अथवा अपने रूपको नष्ट करती हुईं, उषासे रात्रिका अन्धकार दूर होताहै और रात्रिसे उषाका प्रकाशस्वरूप दूर होताहै ऐसीं वह दोनो (द्यावा चरतः) अन्तरिक्ष मार्गसे प्रतिदिन विचरती हैं ॥ २ ॥

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे। न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥

(स्वस्रोः अध्वा समानः) उषा और रात्रिरूपा दोनो बहिनोका आकाशरूप मार्ग एक ही है (अनन्तः) उनका वह मार्ग अविनाशी है (तं देवशिष्टे अन्यान्या चरतः) उस मार्गमें प्रकाशमय सूर्यसे शिक्षा पाईहुई एक एक क्रमसे विचरती हैं (सुमेके नक्तोषासा) सकल प्राणियोंकी श्रेष्ठ उत्पत्ति करनेवाली रात्रि और उषा (विरूपे समनसा) अन्धकार और प्रकाशस्वरूप विरुद्ध रूपोंवाली और एकसमान मनिवाली हैं इसकारण (न मेथेते न तस्थतु.) न परस्पर स्पर्धा करती हैं न कहीं स्थित रहती हैं, किंतु सदा लोकोंके ऊपर अनुग्रह करनेको आतीजाती हैं ॥ ३॥

आभात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः । अर्वाञ्चा नूनꣳ रथ्येह यातं पीपिवाꣳसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥

(उषसां अनीकं अग्निः आभाति) उषःकालोंका मुखरूप अग्नि दीप्त होताहै (विप्राणां देवयाः वाचः उदस्थुः) विद्वान् स्तोताओंकी देवताओंको चाहनेवाली स्तुति उठती हैं, इसकारण (रथ्या अश्विना) हे रथके अभिमानी अश्विनीकुमारो ! (अर्वाञ्चा) हमारे अभिमुख होतेहुए (नूनं इह) आज यज्ञके दिन इस यज्ञमें (पीपिवांसं घर्मं अच्छ आयातम्) अपने अङ्गोंसे पुष्ट दीप्त यज्ञके प्रति अथवा गोघृतादिसे पुष्ट प्रवर्ग्यके प्रति आओ ॥ १ ॥

न सꣳस्कृतं प्रमिमीतो गमिष्ठाऽन्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह । दिवाभिपित्वेऽवसा गमिष्ठा प्रत्यवर्त्तिं दाशुषे शंभविष्ठा ॥ २ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! (संस्कृतं न प्रमिमीतः) संस्कार किये हुए घर्मको नष्ट न करो, किन्तु (अन्ति नूनं इह गमिष्ठा अश्विना उपस्तुता) घर्मके समीप इस समय इस यज्ञमें अवश्य पहुँचनेवाले तुम अश्विनीकुमार स्तुति किये जाते हो (दिवाभिपित्वे अवसा अवर्त्तिं प्रत्यागमिष्ठा) दिनका प्रारम्भ काल प्रातःकाल होनेपर रक्षा करनेवाले अन्न सहित, जैसे प्राणजाते हुए को अन्न प्राप्त होता है तैसे प्राप्त होते हो और आकर (दाशुषे शम्भविष्ठा) हवि देनेवाले यजमान को सुखदेते हो ॥ २ ॥

उतायातꣳ संगवे प्रातरह्नो मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य । दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥

(अश्विना) हे अश्विनीकुमारो ! (अह्न)दिनके (सङ्गवे) सङ्गवकाल में, पिछलीरात में गौएं ठंडी घास खाकर दुहने के स्थान पर आती हैं उसको सङ्गवकाल कहते है उस समय (प्रातः)प्रातःकाल में (मध्यन्दिने) मध्याह्नमें (सूर्यस्य उदिता) सूर्यके प्रचण्डता के

समय अपराह्ण काल में (दिवा) दिन में (नक्तम्) रात में अर्थात् हरसमय (शन्तमेन अवसा) परमसुखदायक रक्षा सहित (आयातम्) आओ (उत) और (इदानीं पीतिः न) इस समय अन्य देवताओं के पानकी समान (ततान) सोमपान करो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके एकोनविंशाध्यायस्य चतुर्थः खण्ड समाप्त.

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत, पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते । निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः, प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥१॥

(त्या. एताः उषसः) वह यह प्रभातकालके अभिमानी देवता (केतुं अक्रत) अन्धकारसे ढकेहुए सकल जगत्के ज्ञापक प्रकाशको करतेहुए इसकारण (रजसः पूर्वे अर्द्धे) अन्तरिक्षके पूर्वकी ओरके अर्धभागमें (भानु अञ्जते) प्रकाशको प्रकट करते हैं (धृष्णवः आयुधानि इव) जैसे योधा शस्त्रोंका संस्कार करते हैं तैसे (निष्कृण्वानाः) अपने प्रकाशसे जगत्का संस्कार करतेहुए (गावः अरुषीः) गमनका है स्वभाव जिनका ऐसे और दिपनेवाले (मातरः उषसः) सूर्यके प्रकाशको रचनेवाले वा जगत्की जननी समान प्रभातकालके अभिमानी देवता (प्रतियन्ति) प्रतिदिन आते हैं वह देवता हमारी रक्षा करें १

उदपतन्नरुणा भानवो वृथा,स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत । अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा,रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २ ॥

(अरुणाः भानवः) अरुण वर्णके उषःकालके प्रकाश (वृथा उदपतन्) अनायास ही उदय होतेहैं तदनन्तर उषःकालके देवता (स्वायुजः) सुखपूर्वक रथमें जोडनेके योग्य (अरुषीः गाः अयुक्षत) श्वेतवर्णकी पहिले उठीहुई किरणोंको अपने वाहनभूत चौपाये वृषभों की समान अपने रथमें जोड़ते हुए इसप्रकारके रथपर चढ़कर (उषासः) प्रभातकाल के अभिमानी देवता (पूर्वथा वयुनानि अक्रन्) पहिले दिनोंमें सकल प्राणियोंके ज्ञानोंको करतेहुए, उषःकाल होनेपर ही सकल प्राणी ज्ञानयुक्त होतेहैं तदनन्तर (अरुषीः) विराजमान वह प्रभातकालके देवता (रुशन्तं भानुं अशिश्रयुः) शुक्लवर्ण सूर्यकी सेवा करते हैं अर्थात् सूर्यके साथ एकाकार होजाते हैं ॥ २॥

अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः, समानेन योजनेना परावतः। इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे, विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

(सुकृते सुदानवे) सुकर्म करनेवाले और श्रेष्ठदान देनेवाले (सुन्वते यजमानाय) अभिषव करनेवाले यजमानके अर्थ (विश्वेदह इषं वहन्तीः) बहुतसा अन्न देतेहुए (नारीः) जगत्को प्रेरणा करनेवाले उषःकालके देवता (विष्टिभिः) अपने तेजोंसे (समानेन योजनेन आ परावतः अर्चन्ति) एक ही उद्योगसे दूरदेश पश्चिमदिशा पर्यन्त आकाशको पूजते हैं अर्थात् एकसाथ व्याप्त होजाते हैं (अपसः न) जैसे कि— युद्ध करनेको लगेहुए पुरुष अपने आयुधोंसे सब देशोंमें फल पड़ते हैं ३

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यू३षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा। आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥

(अग्निः ज्मः अबोधि) यह अग्नि स्थापित होनेपर वेदीसे प्रज्वलित हुआ (सूर्यः उदेति) सूर्य उदय होता है (मही उषा अर्चिषा चन्द्रा वि आवः) बड़ाभारी उषा बड़ेभारी तेजसे प्राणियोंको आनंद देतीहुई अन्धकारोंको दूर करता है (अश्विना) इसकारण हे अश्विनीकुमारो ! (रथं यातवे आयुक्षाताम्) रथको यज्ञशाला में जाने के लिये जोड़ो (सविता देवः जगत् पृथक् प्रासावीत्) सकल कर्मोंकी आज्ञा देनेवाला देवता सकल प्राणियोंको अपने २ कर्ममें लगावै ॥१॥

यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं, घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम्। अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥

(अश्विना) हे अश्विनीकुमारो ! (यद् वृषणं रथं युञ्जाते) जब अभीष्ट फल देनेवाले रथको जोडतेहो तब (नः क्षत्रं घृतेन मधुरेण उक्षतम) हमारे बलको वा हमारी क्षत्रिय जातिको घृतकी समान पोषक अमृतसे सींचते हो और (अस्माकं पृतनासु ब्रह्म जिन्वतम्)

हमारी पुत्र सेवकादि प्रजाओं में ब्रह्मतेज वा अन्नको दो और (वयं शूरसाता धनां भजेमहि) हम शूरोंके संग्रामोमें उनके धनको पावैं २

अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो, जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः। त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः, शं न आवक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ३

(अश्विनोः रथः अर्वाक् यातु) अश्विनीकुमारोंका रथ हमारे सन्मुख आवै (त्रिचक्रः मधुवाहनः) तीन पहियों वाला और अमृतका धारण करनेवाला (जीराश्वः, सुष्टुतः) शीघ्रगामी घोड़ोंसे युक्त और हमारा स्तुति किया हुआ (त्रिबन्धुरः मघवा विश्वसौभगः) नीचे ऊँचे तीन काठोंवाला धनभरा और सकल सौभाग्ययुक्त वह रथ (नः द्विपदे चतुष्पदे शं आवक्षत्) हमारे दो पाये पुत्रादि और चौपाये गौ घोड़े आदिको सुख देय ॥ ३ ॥

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यान्ति वृष्टयः। अच्छा वाजꣳ सहस्रिणम् ॥ १ ॥

हे सोम ! (ते असश्चतः धारा.) तेरी सङ्गरहित धारें (सहस्रिणं वाजं अच्छ प्रयन्ति) अपरिमित अन्न हमें देती हैं (दिवः वृष्टयः न) जैसे द्युलोककी वर्षा की धारें प्रजाओंको बहुतसा अन्न देती हैं ॥१॥

अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति। हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥

(हरिः) पापहारी वा हरेवर्णका सोम (विश्वा प्रियाणि काव्या चक्षाणः) सकल देवताओं के प्रिय कर्मोंको देखता हुआ (आयुधा तुञ्जानः) अपने शस्त्रोंको राक्षसोंके ऊपर प्रेरणा करता हुआ (अभ्यर्षति) यज्ञमें आता है ॥ २॥

स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः। श्येनो न वꣳसु षीदति ॥ ३ ॥

(सुव्रतः सः) श्रेष्ठ कर्मवाला वह सोम (आयुभिः मर्मृजानः इभः राजा इव) ऋत्विजोंसे शुद्ध किया जाता हुआ निर्भय राजाकी समान

(श्येनः न) बाज पक्षी की समान वेगसे (वंसु सीदति) वसतीवरी जलोंमें पहुँचता है ॥ ३ ॥

स न विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि ।
पुनान इन्दवाभर ॥ ४ ॥

(इन्दो पुनानः) हे सोम ! पूयमान तू (दिवः अधि) द्युलोक में स्थित (उत पृथिव्याः) और पृथ्वीलोक में स्थित (विश्वा वसु नः आभर) सकल धन हमें दे ॥ ४ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके एकोविंशाध्यायस्य पञ्चम: खण्डः एकोविंशोऽध्यायश्च समाप्तः

विंश अध्याय

प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्ण सुतस्यौजसः ।
देवाँ अनुप्रभूषतः ॥ १ ॥

(वृष्णोः सुतस्य) अभीष्ट फलोंकी वर्षा करनेवाले और संस्कार कियेहुए (देवान् अनु प्रभूषतः) देवताओंके विषै प्रभु बननेकी इच्छा-वाले (अस्य धाराः ओजसः प्राक्षरन्) इस सोमकी धारें बल से सींचीगई ॥ १ ॥

सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा ।
ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥ २ ॥

(वेधसः कारवः) यज्ञकर्मके विधाता अध्वर्यु आदि (गिरा गृण-न्तः) वाणीसे स्तुति करतेहुए (ज्योतिः जज्ञानम) दीप्यमान और बढ़तेहुए (उक्थ्यं सप्तिं मृजन्ति) स्तुतियोग्य और बढ़तेहुए सोमको शोधते हैं ॥ २ ॥

सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो ।
वर्द्धा समुद्रमुक्थ्य ॥ ३ ॥

(प्रभूवसो उक्थ्य सोम) हे बहुत धनवाले स्तुतियोग्य सोम ! (पुना-नाय ते) पूयमान तेरे (तानि सुषहा) वह तेज श्रेष्ठ रक्षा करनेवाले है (समुद्रं वर्द्धः) समुद्रकी समान उसको रससे पूर्ण कर ॥ ३ ॥

एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे १

(यः इन्द्रः नाम श्रुतः) जो इन्द्र नामसे प्रसिद्ध है (एषः ऋत्वियः प्रह्मा) जो यह वसन्तादिमें यज्ञादिके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होताहै (गृणे) उसकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

त्वमिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः ॥ २ ॥

(शवसः पतेः) हे बलके स्वामी अर्थात् परम बलवान इन्द्र ! (त्वामित्) तुमको ही (संयतः न) सम्यक्प्रकार नियममें रहनेवाले पुरुष केसी (गिरः) वेदमन्त्रोंकी स्तुतियें (यन्ति) प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥

वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (पथा स्रुतयः यथा) जैसे राजमार्गसे छोटे २ मार्ग अनेकों ओरको जाते हैं तैसे ही (त्वत् रातयः वियन्तु) तुमसे अनेकों प्रकारके दान उपासकोंकी ओरको जाते हैं ॥ ३ ॥

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्त्तयामसि ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पतिम् ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! हम (ऊतये सुम्नाय) अपनी रक्षा और सुखके लिये (रथं यथा) रथकी समान (तुविकूर्मि ऋतीषहम्) अनेकों कर्मवाले और हिंसकोंका तिरस्कार करनेवाले (शविष्ठं सत्पतिम) अत्यन्त बलवान् और सज्जनोंके रक्षक (त्वा इन्द्रं आवर्त्तयामसि) तुम इन्द्रकी परिक्रमा करते हैं ॥ १ ॥

तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते ।
आपप्राथ महित्वना ॥ २ ॥

(तुविशुष्म तुविक्रतो) महान् बली और अनेकों विचित्र कर्मवाले (शचीवः मते) अनेकों पराक्रमोंसे युक्त हे पूजनीय इन्द्र ! (विश्वया महित्वना आपप्राथ) विश्वव्यापी महिमासे तुमने विश्वभरको पूर्ण करा है ॥ २ ॥

यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः ।
हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥ ३ ॥

(यस्य महः ते हस्ता) जिस तुझ महापुरुषके हाथ (ज्मायन्तं हिरण्ययं वज्रं परीयतुः) पृथिवीमें सर्वत्र व्यापनेवाले सुवर्णमय वज्रको ग्रहण करते हैं ॥ ३ ॥

आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो ३ नार्वा । सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ १ ॥

(यः) जो अग्नि (नार्मिणीं पुरम्) यजमानोंकी वेदीरूप स्थानको (अदीदेत्) दीप्त करता है (यः अर्वा नभन्यः न अन्यः कविः) जो अग्नि गमनशील वायुकी समान अपेक्षित स्थान पर जानेवाला और क्रान्तदर्शी है (शतात्मा सूरः न रुरुक्वान्) अनेकों यजमानोंकी यज्ञ शालाओंमें अनेकों रूपसे रहनेवाला जो अग्नि सूर्यकी समान दीप्यमान रहता है ॥ १ ॥

अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजाᳬसि शुशुचानो अस्थात् । होता यजिष्ठो अपाᳬ सधस्थे ॥ २ ॥

यह अग्नि (द्विजन्मा) दो अरणियोंसे मथने पर उत्पन्न हुआ (त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानः) गार्हपत्य आदि तीन स्थान और सकल पृथिव्यादि लोकोंको प्रकाशित करता (होता यजिष्ठः) देवताओंका आह्वान करनेवाला और परमपूजनीय होताहुआ (अपां सधस्थे अस्थात्) प्रोक्षणादिके जलोंके स्थान यागशालामें स्थित होता है

अयᳬस होता यो द्विजन्मा, विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या । मर्त्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥

(यः द्विजन्मा) जो दो अरणियोंसे उत्पन्न हुआ है (सः होता) वह देवताओंका आह्वान करनेवाला (अयम्) यह अग्नि (विश्वा वार्याणि) सकल श्रेष्ठ कर्मोंको (श्रवस्या दधे) हविरूप अन्न वा यशकी इच्छासे धारण करता है (अस्मै यः मर्त्यः ददाश) इस अग्निको जो मनुष्य यजमान हवि देता है (सुतुकः) वह श्रेष्ठ पुत्रवाला होता है ॥ ३ ॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रᳬहृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ १ ॥

(अग्ने अद्य) हे अग्ने ! आजके दिन हम ऋत्विज आदि (ओहैः

ते स्तोमैः) इन्द्रादिको पहुँचानेवाले तुम्हारे स्तोत्रोंसे (अश्वं न वोढा-रम्) अश्वकी समान हवि पहुँचानेवाले (क्रतुं न भद्रम्) यज्ञकी समान सेवनीय (हृदिस्पृशं तं ऋध्यामः) हृदयके प्यारे तिस अग्निको हम बढ़ाते है ॥ १ ॥

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्ने ! (अधा हि) इस समय ही तुम (भद्रस्य दक्षस्य) सेवनीय और बढेहुए (साधोः ऋतस्य) अभीष्टफलोंके साधक और सत्यरूप (बृहतः क्रतो रथी बभूथ) हमारे बड़ेभारी यज्ञके नेता होते हो ॥ २ ॥

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वा३र्ण ज्योतिः अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (ज्योतिः स्वः न) ज्योतिर्मय सूर्यकी समान (विश्वेभिः अनीकैः सुमनाः) सकल तेजोंसे श्रेष्ठ मनवाला तू (नः एभिः अर्कैः) हमारे इन स्तोत्रोंसे वा अन्नोंसे अथवा (नः अर्कैः एभिः) हमारे पूजनीय इन इन्द्रादि देवताओं सहित (नः अर्वाङ् भव) हमारे सन्मुख होओ ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके विंशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रꣳ राधो अमर्त्य । आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः १

(अमर्त्य जातवेदः अग्ने) मरणधर्म रहित और प्राणिमात्रके ज्ञाता हे अग्निदेव ! (त्वम्) तुम (उषसः) उषादेवतासे (दाशुषे) यज-मानके अर्थ (विवस्वत् चित्रं राधः) विशेष स्थान सहित नानाप्रकार का धन (आवह) पहुँचाओ (अद्य उषर्बुधः देवान्) आजके दिन उषःकालमें चेतनतायुक्त देवताओंको इस यज्ञमें पहुँचाओ ॥ १ ॥

जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीर-ध्वराणाम् । सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (जुष्टः दूतः) सेवा कियेहुए और देवताओंका सन्देशा पहुँचानेवाले (हव्यवाहनः अध्वराणां रथीः असि) हविको पहुँचानेवाले और यज्ञोंके रथरूप हो (अश्विभ्यां उषसा सजूः) अश्विनीकुमार और उषा देवताके साथ होकर (अस्मे सुवीर्यं बृहत् श्रवः धेहि) हमारे विषें सुंदर वीरतायुक्त बहुतसे अन्नको स्थापन करो ॥ ३ ॥

विधुं दद्राणꣳ समने बहूनां, युवानꣳ सन्तं पलितो जगार। देवस्य पश्य काव्यं महित्वा, ऽद्या ममार स ह्यः समान ॥ १ ॥

इस मन्त्रमें कालात्मा इन्द्रकी स्तुति कीजाती है, कि-(विधुं समने बहूनां दद्राणं) सकल कार्योंके कर्त्ता और संग्राममें अनेकों शत्रुओंको विदीर्ण करनेवाले (युवानं सन्तं पलितः जगार) ऐसे युवा पुरुषको भी इन्द्रकी आज्ञासे बुढ़ापा निगललेता है (देवस्य महित्वा काव्यं पश्यत) हे पुरुषो ! ऐसे कालात्मा इन्द्रदेवकी महिमाभरी सामर्थ्यको देखो (अद्य ममार) बुढ़ापेको प्राप्तहुआ जो पुरुष आज मरताहै (सः ह्यः समान) वह दूसरे दिन फिर अन्य जन्म धारण करके प्रकट होता है, इसप्रकार यह शरीरकी चार प्रकारकी दशायें कहीं ॥ १ ॥

शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः। यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥ २ ॥

(शाक्मना शाकः) अपने बलसे समर्थ (अरुणः सुपर्णः आ) अरुण वर्ण का कोई श्रेष्ठ पक्षी आता है (यः महः शूरः सनात् अनीडः) जो महान् पराक्रमी पुरातन और कहीं भी स्थान बनाकर न रहनेवाला है अर्थात् इन्द्र किसी यज्ञमें अग्निकी समान स्थिति नहीं करता है, इसप्रकार इन्द्रका पक्षीरूपसे वर्णन किया। वह पक्षी इन्द्र (यत् चिकेत) जिस बातको कर्त्तव्यरूपसे जानलेता है (तत् सत्यं इत्) वह सफल ही होती है (मोघं न (निष्फल नहीं होती है (उत स्पार्हं वसु जेता) और वह स्पृहणीय धनको शत्रुओंसे जीतता है (उत दाता) और स्तुति करनेवालों को देता है ॥ २ ॥

ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि, येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री । ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥ ३ ॥

वह इन्द्र (एभिः वृष्ण्या पौंस्यानि आददे) इन मरुतोंके साथ वर्षा करनेवाले बलोंको ग्रहण करता है (येभिः वृत्रहत्याय वज्री औक्षत्) जिन मरुतों के सहित प्राणियोंका उपद्रव शान्त करनेके लिये वज्रधारी इन्द्र वर्षा करता है (ये देवाः) जो मरुत् देवता (मन्हः क्रियमाणस्य कर्मणः) महान् इन्द्र करके कियेजाते हुए वर्षारूप कर्मकी सहायताके लिये (ऋतेकर्म उदजायन्त) वर्षारूप कर्म में उन्मुख होते हैं ॥ ३ ॥

अस्ति सोमो अयꣳसुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥ १ ॥

(अयं सोमः सुतः अस्ति) यह सोम हमने मरुतों के लिये अभिषुत किया है (अस्य स्वराज मरुतः उत अश्विना पिबन्ति) इस सोमको अपने तेजसे दीप्यमान मरुत देवता और अश्विनीकुमार पीते हैं ॥ १ ॥

पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिषधस्थस्य जावतः ॥ २ ॥

(मित्रः) सबको अपने अपने कर्ममें प्रवृत्त करनेसे सखारूप मित्र देवता (अर्यमा वरुणः) अर्यमा और दुःखोंको दूर करनेवाला वरुण देवता यह तीनों (तना पूतस्य) दशापवित्र से शुद्ध हुए (त्रिषधस्थस्य जावतः पिबन्ति) तीन पात्रों में स्थित स्तुति से प्रस्तुत हुए सोमको पीते हैं ॥ २ ॥

उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ३ ॥

(उतो इन्द्रः) और इन्द्र (सुतस्य गोमतः अस्य जोषम्) अभिषव किये गोघृतादिसे मिलेहुए इस सोमके पानरूप सेवनको (प्रातः

नु मत्सति) प्रातःसवनमें शीघ्र ही चाहता है (होता इव) जैसे कि होता देवताओंकी स्तुति करना चाहता है ॥ ३ ॥

बण्महाँ असि सूर्य, बडादित्य महाँ असि । महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥ १ ॥

(सूर्य महान् असि बट्) हे सूर्य ! तू महान् है यह सत्य है (आदित्य महान् असि बट्) हे आदित्य ! तू अधिकबली है यह सत्य है (पनिष्टम महः सतः ते महिमा) हे परम स्तुतियोग्य ! गौरवसे रहने वाले तुम्हारी महिमाकी स्तोता प्रशंसा करते हैं (पनिष्टम मह्ना महान् असि) हे स्तुतियोग्य सूर्य ! तुम महत्वके कारण सबके पूजनीय हो १

बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि, सत्रा देव महाँ असि । मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ २ ॥

(सूर्य श्रवसा महान् असि बट्) हे सूर्य ! तुम अन्नके द्वारा बड़े दाता हो यह बात सत्य है (देव देवानां मन्हा महान् असि सत्रा) हे द्योतमान सूर्य तुम देवताओंमें महत्वके कारण सबसे बड़े हो यह सत्य ही है (असुर्यः पुरोहितः) असुरोंका नाशकर्त्ता और देवताओंका बड़ा हितकारी है (ज्योतिः विभु अदाभ्यम्) तुम्हारा तेज व्याप्त और किसीसे न दबनेवाला है ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके त्रिंशाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥ १ ॥

(मदानां पते) हे सोमोंके स्वामी इन्द्र ! (हरिभिः नः सुतं उपयाहि) सैकड़ों सहस्रों विभूतियोंवाले अश्वोंके द्वारा हमारे यज्ञमें अभिषुत सोमको पीनेके लिये शीघ्र आओ (हरिभिः नः सुतं उप) अश्वोंके द्वारा हमारे यज्ञमें अभिषुत सोमको पीनेके लिये शीघ्र आओ १

द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः ।

उप नो हरिभिः सुतम् ॥ २ ॥

(वृत्रहन्तमः शतक्रतुः यः इन्द्रः) वृत्रासुर वा पापका अत्यन्त नाशक और अनेकों प्रकारके पराक्रमवाला जो इन्द्र (द्विता विदे) वृत्रवध आदि में उग्र और जगत् की रक्षाके समय शान्त इसप्रकार दो रूपवाला सबोंसे जानाजाता है (हरिभिः नः सुतं उप) अश्वोंके द्वारा हमारे यज्ञमें अभिषुत सोमके पीनेको शीघ्र आओ ॥ २ ॥

त्वꣳ हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३ ॥

(वृत्रहन् हि त्वं एषां सोमानां पाता असि) हे पापनाशक इन्द्र क्योंकि तुम इन सोमोंको पीनेवाले हो इसकारण (हरिभिः नः सुतं उप) अश्वोंके द्वारा हमारे यज्ञमें अभिषुत सोमके पीनेको आओ ३

प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् । विशः पूर्वीः प्रचर चर्षणिप्राः ॥

हे मेरे पुरुषो ! (वः महे वृधे) तुम बहुतसे धनोंको भी बढानेवाले (महे प्रभरध्वम्) महान् इन्द्रके अर्थ सोम अर्पण करो (प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वम्) श्रेष्ठ मतिवाले इन्द्रके अर्थ सुन्दर स्तोत्रको पढ़ो (चर्षणिप्राः पूर्वीः विशः प्रचर) हे मनुष्योंकी कामनायें पूर्ण करने वाले इन्द्र ! तुम्हें हविसे पूर्ण करनेवाली प्रजाओंके समीप जाओ ॥१॥

उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः । तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः २

(विप्राः) ऋत्विज (उरुव्यचसे महिने इन्द्राय) जिसकी बड़ीभारी व्यापकता है ऐसे महान् इन्द्रके अर्थ श्रेष्ठ स्तुति और हविरूप अन्न अर्पण करते हैं (तस्य व्रतानि धीरा न मिनन्ति) उस इन्द्रके दक्षिणादि कर्मोंको देवता भी नहीं रोकते हैं ॥ २ ॥

इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै । हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥ ३ ॥

(सत्रा राजानं अनुत्तमन्युं इन्द्रं एव) सबोंके ईश्वर जिसके क्रोध को कोई भी बाधा न देसके ऐसे इन्द्रको ही (वाणीः सहध्यै दधिरे)

स्तुतियें शत्रुओंका तिरस्कार करनेको आगे करती हैं इसकारण हे स्तोतः! तू भी (हर्यश्वाय आपीन् संबर्हय) इन्द्रकी स्तुति करनेको अपने बान्धवोंको उत्तेजना दो ॥ ३ ॥

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय। स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् १

(इन्द्र यत् यावतः) हे इन्द्र! जब कि तुम जितने धनके स्वामी हो (एतावत् अहं ईशीय) उतने ही धनका मैं भी स्वामी होऊँ (रदद्वसो) हे धनोंके देनेवाले! मैं (स्तोतारं इत् दधिषे) अपने स्तोताको धन देकर धारण करहीसकूं (पापत्वाय न रंसिषम्) धनहीन होनेके लिये न दूँ ॥ १ ॥

शिक्षेयमिन्महयते दिवे दिवे राय आ कुहचिद्विदे। न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न ॥ २ ॥

(कुहचिद्विदे महयते) चाहे तहाँ रहकर तुम्हारी पूजा करनेवाले पुरुषको (दिवे दिवे रायः शिक्षेयं इत्) प्रतिदिन धनोंका दान अवश्य ही करता हूँ। इस इन्द्रके वाक्यको सुनकर उपासक कहता है, कि (मघवन् त्वदन्यत् आप्यं नहि) हे इन्द्रतुम्हारे सिवाय हमारा और कोई बान्धव नहीं है (वस्यः पिता च न अस्ति) और प्रशंसा योग्य रक्षकभी तुम्हें छोड़कर दूसरा कोई नहीं है ॥ २ ॥

श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम्। कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा १

हे इन्द्र! (विपिपानस्य अद्रेः हवं श्रुधि) विशेष सोमपान करना चाहतेहुए मुझ दृढ़ उपासकके आह्वानको सुनो (अर्चतः विप्रस्य मनीषां बोध) स्तुति करनेवाले विप्रकी स्तुतिको स्वीकार करो (इमा दुवांसि अन्तमा सचा कृष्वा) इन सेवाओंको परम समीपस्थ सहायक होकर स्वीकार करो ॥ १ ॥

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान्। सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि २

हे इन्द्र ! (तुरस्य ते गिरः) शत्रुओंका नाश करनेवाले तेरी स्तुतियोंको (असुर्यस्य विद्वान् न अपि मृष्ये) और बलको जानताहुआ मैं नहीं छोड़ता हूँ (सुष्टुतिं न) श्रेष्ठ स्तुतिको भी नहीं छोड़ता हूँ (स्वयशः ते नाम सदा विवक्मि) हे असाधारण कीर्त्तिवाले तेरे स्तोत्रको सदा उच्चारण करता हूँ ॥ २ ॥

भूरि हि ते सवना मानुषेषु, भूरि मनीषी हवते त्वामित् । मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः ॥ ३ ॥

(मघवन् मानुषेषु ते भूरि सवना) हे इन्द्र ! हम यजमानोंके यहां तुम्हारे बहुतसे सोमाभिषव हैं (मनीषी त्वामित् भूरि हवते) स्तोता तुमको ही अधिकतर आह्वान करता है, इसकारण (अस्मत् आरे ज्योक् मा कः) हमसे दूर चिरकालपर्यन्त मत रहो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके विंशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत । अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा । अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ १ ॥

हे स्तोताओ ! (अस्मै इन्द्राय पुरो रथम्) इस इन्द्रके रथके आगे (शूषं सुप्रोऽर्चत) बलको भलेप्रकार पूजो (समत्सु) संग्रामोंमे (सङ्गे अभीके चित्) शत्रुओंके बलके अत्यन्त निकट आनेपर भी (लोककृत्) लोकोंका पालनकर्त्ता (वृत्रहा) शत्रुओंका नाशक इन्द्र (अस्माकं चोदिता) हम स्तोताओंको धन देताहुआ (बोधि) हमारी सेवाओंको जानो (अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्ताम्) दुष्ट शत्रुओंकी धनुषों पर चढ़ीहुई खोटी प्रत्यञ्चाएं नष्ट हों ॥ १ ॥

त्वं सिन्धूँ रवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् । अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् । तं त्वा परिष्वजामहे । नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥

(इन्द्र त्वम) हे इन्द्र ! तुम (सिंधून् अधराचः) बहनेवाले जलके प्रवाहों से भरे नीचेको मुख होकर जानेवाले मेघोंको बरसाओ, क्योंकि तुमने (अहि अहन्) अन्तरिक्षमें जातेहुए मेघको तोड़ा है, इसकारण हे इन्द्र ! तुम (अशत्रु जज्ञिषे) शत्रुरहित होते हो (विश्वं वार्यं पुष्यसि) तुम सकल वरणीय पदार्थोंकी पुष्टि करते हो (तं त्वा परिष्वजामहे) ऐसे आपको हम हवि और स्तुतियोंसे वशमें करते हैं (अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्ताम्) दुष्ट शत्रुओंकी धनुषों पर चढ़ीहुई प्रत्यञ्चाएं नष्ट हों ॥ २ ॥

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति
या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका
अधि धन्वसु ॥ ३ ॥

(नः विश्वाः अरातयः अर्यः सुवि नशन्त) हमारे सकल अन्न धनादिको न बढ़नेदेनेवाले और चढ़ाई करनेवाले शत्रु भलेप्रकार नष्ट होगए । हे इन्द्र ! तुम्हारे अर्थ (धियः) हमारे कर्म प्रवृत्त हों (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यः न जिघांसति) जो हमारा वध करना चाहता है (शत्रवे वधं अस्तासि) उस शत्रुके मारनेके लिये शस्त्र छोड़ते हो (ते या रातिः वसु ददिः) तुम्हारा जो धन देनेवाला हाथ है वह हमें धन देय (अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्ताम्) शत्रुओंके धनुषों पर चढ़ीहुई प्रत्यञ्चाएं नष्ट हों ॥ ३ ॥

रेवाँ इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः ।
प्रेदु हरिवः सुतस्य ॥ १ ॥

(हरिवः) हे पापहारी अश्वोंवाले इन्द्र (रेवतः स्तोता रेवान् स्यात् इत्) तुम धनवान् की स्तुति करनेवाला धनवान् अवश्य ही हो, कभी दरिद्र न हो (त्वावतः मघोनः सुतस्य प्रेदुः) तुमसे धनवान् ऐश्वर्यवान् का स्तोता अवश्य ही ऐश्वर्यशाली हो ॥ १ ॥

उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत ।
न गायत्रं गीयमानम् ॥ २ ॥

हे इन्द्र (न) इससमय (अगोः रयिं आचिकेत) स्तुति न करने वाले के धनको जानते हो (न) इस समय (शस्यमानं उक्थं च) पढेजातेहुए स्तोत्रको भी जानते हो (न) इससमय (गीयमानं गायत्रम्) गायेजाते हुए गायत्र नामक सामको भी जानतेहो, इसकारण हम भी तुम्हारी स्तुति करते हैं॥ २ ॥

मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परादाः ।
शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र तुम (पीयत्नवे न मा परादाः) हिंसा करनेवाले शत्रुके अर्थ हमैं न छोड़ो (शर्द्धते मा) तिरस्कार करनेवाले के लिये हमैं न छोड़ो (शचीवः शचीभिः शिक्ष) हे शक्तिमान् इन्द्र ! अपने पराक्रमों से हमैं अभीष्ट धन दो ॥ ३ ॥

एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो १

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (हरिभिः कण्वस्य सुष्टुतिं उपायाहि) पापहारी अश्वोंके द्वारा यजमानकी श्रेष्ठ स्तुतिके समीप आओ (अमुष्य दिवः शासतः) इस इन्द्रके द्युलोकका शासन करते हुए हम बड़े सुखमें रहते हैं (दिवावसो दिव यय) हे दीप्त धनवाले इन्द्र तुम स्वर्गलोक को पधारो ॥ १ ॥

अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो २

(अत्र एषां नेमिः) इस यज्ञ में इस अभिषव के पाषाणों की धार (उरां वृकः न विधूनुते) जैसे भेड़को भेड़िया कम्पायमान करता है तैसे विशेषरूपसे कम्पायमान करती है (अमुष्य दिवः शासतः) इस इन्द्रके द्युलोक का शासन करते समय हम बड़े सुख में रहते हैं (दिवावसो दिवं यय) हे दीप्त धनवाले इन्द्र तुम स्वर्ग लोक को पधारो ॥ २ ॥

आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ३

हे इन्द्र (इह सोमी वदन् ग्रावा) इस यज्ञमें सोमवाला शब्द करता हुआ अभिषवका पाषाण (घोषेण आवक्षत्) ध्वनिके साथ तुझे सोम पहुँचावै (अमुष्य दिवः शासतः) इस इन्द्रके द्युलोकका शासन करते समय हम बड़े सुखमें रहते हैं (दिवावसो दिवं यय) हे दीप्त धनवाले इन्द्र ! तुम स्वर्गलोकको पधारो ॥ १ ॥

पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥१॥

(सोम मधुमत्तमः मन्दयन्) हे सोम ! अत्यन्त मधुर रसवाला तू हर्षदायक होताहुआ (इन्द्राय पवस्व) इन्द्रके निमित्त आओ ॥१॥

ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥२॥

(विपश्चितः सुतासः) विशेष बुद्धिवर्द्धक और अभिषव कियेहुए (शुक्राः ते) निर्मल वह सोम (वायुं असृक्षत) वायुको प्रकट करतेहुए २

असृग्रन्देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥३॥

यह अभिषुत सोम (वाजयन्तः देववीतये असृग्रन्) यजमानोंके लिये अन्न चाहतेहुए देवताओंके पीनेके लिये ऋत्विजों करकै दिये जाते हैं (रथा इव) जैसे कि—स्वामीके लिये शत्रुओंका धन और बल चाहतेहुए रथ देवताओंके गमनके लिये विसर्जन कियेजाते हैं ॥३॥

सामवेदोत्तरार्चिके विंशाध्यायस्य चतुर्थ खण्ड समाप्तः

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुꣳ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवाच्या कृपा। घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः १

(दास्वन्त वसोः) परमदानी और निवासके हेतु (सहसः सूनुं जातवेदसम्) मन्थनकालमें बलसे उत्पन्न होनेवाले और प्राणिमात्र के ज्ञाता (विप्रं न जातवेदसम्) ब्राह्मणकी समान परममान्य (यः देवः स्वध्वरः) जो दिव्यस्वरूप यज्ञका सुन्दर निर्वाह करताहुआ (ऊर्ध्वया देवाच्या कृपा) अत्युत्तम और देवताओंको पूजनेवाली सामर्थ्य से वा देवताओंको हवि पहुँचानेवाली शक्तिसे युक्त होकर (शुक्रशोचिषः आजुह्वानस्य) दीप्ततेज और चारोंओरसे होमेजानेवाले (सर्पिषः घृतस्य विभ्राष्टिं अनु) बहनेवाले और विलेपनसे दीप्तहुए घृतकी

विशेष कान्तिको स्वयं भी चाहता है (अग्निं हातारं मन्ये) उस देव-सेनाओंके अग्रणी वा यज्ञोंमें आगे लियेजानेवाले अग्निको अपने यज्ञों में देवताओंका आह्वान करनेवाला वा होमका साधक मानता हूँ॥ १॥

यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः । परिज्मानमिव द्यांहोतारं चर्षणीनाम् । शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः

(विप्र शुक्र) हे मेधावी और प्रज्वलित ज्वालाओंवाले अग्निदेव ! (वयं यजमानाः) हम यजन करना चाहते हैं इसकारण (मन्मभिः विप्रेभिः मन्मभिः) मनन है साधन जिनका ऐसे ऋत्विजोंसे और मंत्रोंसे युक्त हुए (अङ्गिरसां ज्येष्ठम्) अङ्गारोंमें ज्वालायुक्त (यजिष्ठं त्वा हुवेम) परमपूजनीय तुम्हारा आह्वान करते हैं। तदनंतर (द्यां इव परिज्मानम्) सूर्यकी समान चारों ओरको जानेवाले (चर्षणीनां होतारम्) पहिले मनुष्य और पीछे यज्ञादि करनेसे देवभाव को प्राप्त होने वालोंका अह्वान करनेवाले (शोचिष्केशं वृषणं यम) केशोंकी समान लंबी लपटोंवाले और अभीष्टफल वरसाने वाले आपकी ओरको (विशः इमाः) प्रवेश करनेवाली यह प्रजायें (जूतये प्रअवन्तु) स्वर्ग आदि इच्छितफल पानेकेलिये आपको तृप्त करें ॥ २ ॥

स हि पुरु चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः । वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् । निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥

(सः हि) वह स्तुति कियाहुआ अग्नि अवश्य ही (विरुक्मता ओजसा) विशेष दिपतेहुए ज्वालारूप बलकरकें (पुरुचित् दीप्यमान.) अत्यन्त अधिक दीप्त होताहुआ (द्रुहन्तरः परशुः न) द्रोह करनेवालो को काटनेवाले फरसे की समान (द्रुहन्तरः भवति) हमसे द्रोह करने वाले शत्रुओंका नाशक होता है (यस्य समृतौ वीडुचित् श्रुवत्) जिसका संग होने पर दृढ़ पाषाण आदि भी टूटजाता है (यत् स्थिरम्

वनेव) जो अविचल पर्वत आदि हैं वह भी जलकी समान छिन्न भिन्न होजाता है, इस कारण यह अग्नि (निःषहमाणः यमते) शत्रुओं को निःशेष करताहुआ क्रीड़ा करता है (न अयते) पलायन नहीं करताहै (धन्वसहा न अयते) धनुषधारी की समान शत्रुओंके सामने से नहीं भागता है ३

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो। बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥ १ ॥

(अग्ने तव वयः श्रवः) हे अग्ने ! तुम्हारा अन्न प्रशंसनीय है (विभावसो अर्चयः महि भ्राजन्ते) हे दीप्तिरूप धनवाले ! तुम्हारी दीप्तियें बड़ी शोभा पाती हैं (बृहद्भानो कवे) हे बड़ी दीप्तिवाले अनुभवी अग्निदेव ! (शवसा उक्थ्यं वाजं दाशुषे दधासि) बलकरके युक्त प्रशंसनीय अन्न तुम हवि अर्पण करनेवाले यजमानको देते हो ॥ १ ॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना। पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥ २ ॥

हे अग्ने (पावकवर्चाः) शुद्ध करनेवाली है दीप्ति जिसकी ऐसा (शुक्रवर्चाः) निर्मल है तेज जिसका ऐसा (अनूनवर्चाः) पूर्णतेजस्वी तू (भानुना उदियर्षि) तेजके साथ प्रकट होता है, ऐसा तू (पुत्रः) पुत्ररूप से (मातरा विचरन्) यज्ञमें मातृरूपा अरणियोंमें प्राप्त होता हुआ (उपावसि) समीपके यजमानोंकी रक्षा करता है (उभे रोदसी पृणक्षि) दोनों द्यावा पृथिवीको संयुक्त करताहै अर्थात् हविसे द्युलोकको और वृष्टिसे इसलोकको पूर्ण करता है ॥ २ ॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः। त्वे इषः संदधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ ३ ॥

(ऊर्जः नपात्) हे पार्थिव अन्नरूप अरणियोंके पुत्र ! (जातवेदः) हे प्राणिमात्रके ज्ञाता अग्निदेव ! (सुशस्तिभिः मन्दस्व) श्रेष्ठ स्तुति

करनेवाले हमारे किये हुएको स्वीकार करो (धीतिभिः हित)हमारे किये हुए अग्निहोत्रादि कर्मोंसे तृप्त होओ (भूरिवर्पसः चित्रोतयः) अनेकों रूपवाले और जिनसे बड़ी तृप्ति होती है ऐसे(वामजाताः इषः) श्रेष्ठ जन्मवाले अन्नोंको (त्वे सन्दधुः) यजमान तुम्हारे विषैं ही होमते हैं ॥ ३ ॥

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य । स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥ ४ ॥

(अमर्त्य अग्ने) हे मरणधर्मरहित अग्निदेव (जन्तुभिः इरज्यन्) उत्पन्न हुए शत्रुओं से स्पर्धा करता हुआ अथवा उत्पन्न हुए अपने तेजोंसे ईश्वर होता हुआ (अस्मे रायः प्रथयस्व) हमारे धनको बढा (सः दर्शतस्य वपुषः विराजसि) ऐसा तू तेजोमय शरीरसे विशेष दीप्त होता है, इसकारण (दर्शतं क्रतु पृणक्षि) दर्शनीय कर्मको फल से युक्त करता है ॥ ४ ॥

इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳराधसो महः । रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳरयिम् ॥ ५ ॥

(अध्वरस्य इष्कर्त्तारम्) यज्ञका संस्कार करनेवाले (प्रचेतसं महः राधसः क्षयन्तम्) श्रेष्ठ ज्ञानवाले और बहुतसे धनके ईश्वर (वामस्य रातिम्) और धन देनेवाले तुम्हारी हम स्तुति करते है, ऐसे तुम (सुभागां महीं इषं सानसिं रयिं दधासि) सौभाग्य युक्त बहुतसा धन और भोगनेयोग्य धन स्तुति करनेवालोंको देते हो ॥ ५ ॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः । श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ ६ ॥

(जनाः) ऋत्विज यजमान आदि (ऋतावानं महिषम्) यज्ञके सम्बंधी और पूजनीय (विश्वदर्शतं अग्निम्) विश्वभरके दर्शनीय अग्निको सुम्नाय पुरः दधिरे) सुखके लिये सब कर्मोंमें प्रथम पूर्व

दिशामें स्थापन करते हैं और हे अग्ने ! (श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं) स्तुतियों को भलेप्रकार सुननेवाला है कान जिनका ऐसे और अत्यन्त प्रसिद्ध (दैव्यं त्वा युगा मानुषा गिरा) देवताओंके सम्बंधी तुम्हें पतिपत्नी युगलरूप यजमान वेदवाणी से स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

सामवेदोत्तरार्चिक विशाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्त·

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः । यस्य त्वꣳसख्यमाविथ ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वं यस्य सख्यं आविथ) तुम जिस यजमानके मित्रभावको प्राप्त होतेहो (सः) वह यजमान (सुवीराभिः वाजकर्मभिः तव ऊतिभिः प्रतरति) जिनमें वीरपुत्रोंकी प्राप्ति होतीहै और अन्न तथा बलकी प्राप्ति होती है ऐसी तुम्हारी रक्षाओंसे वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवादद । त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥ २ ॥

(सिष्णो द्रप्सः नीलवान्) हे सोमसे सींचेजानेवाले अग्निदेव ! वहनेवाला शकटरूपी स्थानमें स्थित हुआ (वाशः ऋत्वियः) शब्दायमान और वसन्त आदि ऋतुविशेषमें उत्पन्न हुआ (इन्धानः आददे) दिपताहुआ सोम तुम्हारे विषैं होमनेके लिये अध्वर्युसे ग्रहण किया जाता है (त्वं महीनां उषसां प्रियः असि) तू बडे२ उषःकालोंका मित्र है, क्योंकि—उषःकालमें अग्नियें होमके लिये प्रज्वलित कीजाती हैं, (क्षपः वस्तुषु राजसि) रात्रिसंबंधी ढकनेवाली वस्तुओंके होने पर तू प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः । तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥ १ ॥

(ऋत्वियं गर्भं तं ओषधीः दधिरे) ऋतुमें प्रातरुप गर्भरूप तिस अग्निको ओषधि धारण करती है (तं अग्निं मातरः आपः जनयन्त)

उस अग्नि को धारण कर्त्ता होनेसे माताकी समान जल उत्पन्नकरते हैं (वनिनः च समानं तमित्) वनस्पति भी गर्भभावसे प्रवेश करने के कारण अपने तुल्य तिस अग्निको ही उत्पन्न करते हैं (अन्तर्वतीः वीरुधः च विश्वहा सुवते) गर्भवती ओषधियें भी विश्वदाहक तिस अग्निको ही उत्पन्न करती हैं ॥ ३ ॥

अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो विराजति । महिषीव विजायते ॥ १ ॥

(अग्निः इन्द्राय पवते) यज्ञमें अग्रणी अग्नि इन्द्रके लिये हमारे दिये हुए पुरोडाशसे अधिक दिपता है (शुक्रः दिवि विराजति) दीप्त हो कर अन्तरिक्षमें विशेष प्रकाशित होता है (महिषी इव विजायते) जैसे महिषी तृणादिसे दूध घी आदि उत्पन्न करता है तैसे ही देवताओंके अर्थ अनेकों अन्न उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति । यो जागार तमयꣳसोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १ ॥

(यः जागार) जो सदा जागृत रहता है (त ऋचः कामयन्ते) उस को ऋचाएं चाहती हैं (यः जागार तं उ सामानि यन्ति) जो जागृत् रहता है उसको ही स्तोत्ररूप साम प्राप्त होते हैं (यः जागार तं अयं सोमः आह) जो जागृत रहता है उससे यह सोम कहताहै कि मुझे स्वीकार करो, हे अग्ने ! (तव सख्ये) ऐसे आपके मित्रभाव को प्राप्त होनेपर (अहं न्योकाः अस्मि) मैं नियत स्थानवाला होऊं १

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति । अग्निर्जागार तमयꣳसोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१॥

(अग्निः जागार) अग्नि जागृत रहता है (तं ऋचः कामयन्ते) उसको ऋचा चाहती है (अग्निः जागार तं उ सामानि यन्ति) अग्नि जागृत रहता है उसको ही स्तोत्ररूप साम प्राप्त होते ह (अग्नि जागार तं अयं सोमः आह) अग्नि जागृत रहता है उससे यह सोम कहता है कि—मुझे स्वीकार करो, हे अग्ने (तव सख्ये) ऐसे आपका

मित्रभाव प्राप्त होनेपर (अहं न्योकाः अस्मि) मैं अवश्य ही किसी स्थानका अधिपति होऊँ ॥ १ ॥

नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्य ।
युञ्जे वाच ँ शतपदीम् ॥ १ ॥

(पूर्वसद्भ्य. सखिभ्यः नमः) जो यज्ञमे प्रारम्भकालसे पूर्व स्थित होते हैं उन मित्रकी समान हितकारी देवताओंके अर्थ नमस्कार करते हैं (साकन्निषेभ्यः नमः) जो यज्ञमे साथ स्थित रहते हैं उन देवताओंके अर्थ नमस्कार करते हैं (शतपदीं वाच युञ्जे) हमें अभीष्ट फल देने के लिये असख्यों मार्गवाली स्तुतिरूप ऋचाका प्रयोग करता हूँ ॥१॥

युञ्जे वाच ँ शतपदीं गाये सहस्रवर्त्तनि ।
गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥ २ ॥

(शतपदीं वाच युञ्जे) असंख्यों मार्गोवाला स्तोत्र प्रस्तुत और वक्ष्यमाण देवताओंके अर्थ प्रयोग करता हूँ (गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् सहस्रवर्त्तनि गाये) गायत्र नामक त्रैष्टुभ नामक और जागत् नामक साम की ऋचाको जिसप्रकार कि—वह अनेकों मार्गोसे हमैं अभीष्ट फल देय तिसप्रकार उनका गान करता हूँ ॥ २ ॥

गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विश्वा रूपाणि संभृता ।
देवा ओकाँसि चक्रिरे ॥ ३ ॥

(गायत्रं त्रैष्टुभं जगत्) गायत्री त्रिष्टप् और जगती छन्दवाली ऋचाओंके समूहरूप (सम्भृता) उद्गाता करके नियत कियेहुए (विश्वा रूपाणि) अनेकों स्वरूपवाले (ओकांसि) स्थानोंको (देवा. चक्रिरे) अग्नि आदि देवता करते हैं ॥ ३ ॥

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥ १ ॥

(अग्निः ज्योतिः) अग्नि ज्योति है (ज्योतिः अग्निः) ज्योति अग्नि है (इन्द्रः ज्योतिः) इन्द्र ज्योति है (ज्योतिः इन्द्र) ज्योति इन्द्र है (सूर्यः ज्योतिः) सूर्य ज्योति है (ज्योतिः सूर्यः) ज्योति सूर्य है ॥१॥

पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा ।

पुनर्नः पाह्यंहसः ॥ २ ॥

(अग्ने ऊर्जा पुनः निवर्त्तस्व) हे अग्निदेव बलसहित हमें फिर प्राप्त होओ (इषा आयुषा पुनः) अन्न और आयुसहित फिर प्राप्त हो-ओ (नः अंहसः पुनः पाहि) हमें पापसे फिर रक्षा करो ॥ २ ॥

सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ३ ॥

(अग्ने रय्या सह निवर्त्तस्व) हे अग्निदेव ! रमणीय धनसहित हमें प्राप्त होओ (विश्वतः परि) सबोंके ऊपर (विश्वप्स्न्या धारया पिन्वस्व) विश्वभरका उपभोग करनेवाली धारासे हमें सींचो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके विंशाध्यायस्य षष्ठ खण्डः समाप्तः

यदिन्द्राऽहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ १ ॥

(इन्द्र यथा त्व वस्वः एकः इत्) हे इन्द्र ! जैसे तुम धनके अकेले ही स्वामी हो (यत् अहं ईशीय) ऐसे ही यदि मैं ऐश्वर्ययुक्त होजाऊँ तो (मे स्तोता गोसखा स्यात्) मेरा स्तोता गौओंवाला होजाय फिर आप ईश्वरका स्तुति कर्त्ता गौओंवाला क्यों न होगा ? ॥ १ ॥

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं, शचीपते मनीषिणे ।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

(शचीपते यत् अहं गोपतिः स्याम) हे शक्तिमान इन्द्र ! यदि मैं गौओंका स्वामी होजाऊँ तो (अस्मै मनीषिणे दित्सेय शिक्षेयम) इस मनीषी स्तोताको देना चाहूं और फिर धनदूँ ॥ २ ॥

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।
गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥

(इन्द्र ते सूनृता धेनुः) हे इन्द्र ! तेरी सत्य मधुर स्तुतिरूपा वाणी गौरूप होकर (पिप्युषी) यजमानकी वृद्धि करना चाहती हुई (सुन्वते यजमानाय गां अश्वं दुहे) सोमका अभिषव करनेवाले यजमानके अर्थ गौ घोड़े आदि सकल अभीष्ट पदार्थोंको दुह देती है ॥ ३ ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥

(हि आपः मयोभुवः स्थ) क्योंकि जो तुम जल सुखको उत्पन्न करनेवाले हो (ताः नः ऊर्जे दधातन) वह तुम हमको अन्नकी प्राप्ति के लिये समर्थ करो (महे रणाय चक्षसे) महान् रमणीय ज्ञानको पाने के योग्य करो ॥ १ ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥

हे जलो ! (इह वः यः रसः शिवतमः) इस लोकमें तुम्हारा जो रस परम सुखरूप है (तस्य नः भाजयत) वह रस हमें सेवन कराओ (उशतीः मातरः इव) जैसे कि पुत्रोंकी वृद्धि चाहनेवाली मातायें अपने स्तनोंके रसका सेवन कराती हैं ॥ २ ॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥

(आपः यस्य क्षयाय जिन्वथ) हे जलो ! तुम जिस पापके विनाश के लिये हमें प्रेरणा करते हो (तस्मै अरं वः गमाम) उस पापक्षयके लिये शीघ्र ही तुम्हें हम अपने शिर पर डालते हैं, हे जलो! (नः जनयथ च) हम पुत्र पौत्रादिको उत्पन्न करनेमें प्रयुक्त करो ॥ ३ ॥

वात आ वातु भेषजꣳ शंभु मयोभु नो हृदे ।
प्र न आयूꣳषि तारिषत् ॥ १ ॥

(वातः नः हृदे शम्भु मयोभु भेषजं आ वातु) वायु हमारे हृदयके लिये रोगोंको शान्त करनेवाला और सुखको उत्पन्न करनेवाला औषधरूप होकर बहे (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमारे आयुकारी अन्नों को बढ़ावे ॥ १ ॥

उत वात पिताऽसि न उत भ्रातोत नः सखा ।
स नो जीवातवे कृधि ॥ २ ॥

(उत वात नः पिता असि) और हे वायो ! तुम हमारे पिताकी

समान उत्पन्न करनेवाले और रक्षा करनेवाले हो (उत भ्राता) और भ्राताकी समान प्रेम करनेवाले हो (उत नः सखा) और हमारे हितकारी मित्र हो (सः नः जीवातवे कृधि) वह तुम हमें जीवनके हेतु यज्ञके करनेमें समर्थ करो ॥ २ ॥

यददो वात ते गृहे३ऽमृतं निहितं गुहा। तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ३ ॥

(वात ते गृहे) हे वायो ! तुम्हारे स्थानमें (यत् अद अमृतं गुहा निहितम्) जो यह अविनाशि धन गुहामें स्थित है (विभावसो तस्य नः धेहि) हे विशेष प्रकाशयुक्त धनवाले वायो ! वह धन हमें दो ३

अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रं हिरण्ययं बिभ्रदत्कं सुपर्णः। सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः परि स्वयं मेधमृज्रो जजान ॥ १ ॥

(सुपर्णः वाजी) गरुड़की समान वेग वा बलवाला (विश्वरूपः ऋज्रः) अनेकों प्रकारके प्रकाशवाला पाककारी अग्नि (जनित्रं अत्कम्) अपने उत्पत्तिस्थान अरणिके बिलको अपने तेजसे व्याप्त और इसी कारण (हिरण्ययं अभि बिभ्रत्) मानो सुवर्णकी समान दमकताहुआ पूर्णरूपसे पुष्ट करके (सूर्यस्य भानुम्) सूर्यके प्रकाशको (ऋतुथा वसानः) समय समय पर रात्रिमें वस्त्रकी समान ढकताहुआ वा धारण करताहुआ (मेधं परि जजान) यज्ञके निमित्त स्वयं प्रकट होताहै ॥ १ ॥

अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत्संबभूव। अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥ २ ॥

(रेतः विश्वरूपं यत् तेजः अप्सु शिश्रिये) सारभूत नानाप्रकारका अन्नरूप तेज जलोंका आश्रय करके रहताहै (यत् पृथिव्यां अधि संबभूव) जो भूतल पर स्थित है, वह (अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः) आकाशमें अपनी किरणोंके समूहको फैलाताहुआ (वृष्णः अश्वस्य रेतः कनिक्रन्ति) सोमकी आहुतिका आह्वान करताहुआ अत्यन्त शब्द करता है ॥ २ ॥

अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः (सूर्यस्य भानुं) यज्ञो दधार । सहस्रदाः शतदा भूरिदावा, धर्त्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥ ३ ॥

(दिवः भुवनस्य धर्त्ता) स्वर्गका और सकल भुवनोंका धारण करनेवाला (विश्पतिः) प्रजाओंका पालन करनेवाला (सहस्रदा शतदा वा भूरिदा) याचकोंको उनकी इच्छानुसार सहस्र सौ वा असंख्य धन देनेवाला (यज्ञः अयम्) यजन करनेवाला यह अग्नि (युक्ता सहस्रा परिवसानः) अपने से मिलीहुई सहस्रों किरणों को चारों ओर फैलता हुआ रात्रि में (सूर्यस्य भानुं दधार) सूर्यके भी प्रकाश को स्वयं ही धारण करता है ॥ ३ ॥

नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा । हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ १ ॥

हे वेन ! (सुपर्णं पतन्तम्) सुन्दर पतनवाले और अन्तरिक्षमें जाते हुए (हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतम्) सुवर्णमय पक्षोंवाले और जलके अभिमानी वरुणदेवताके दूत (यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम्) नियामक बिजलीरूप अग्नि के स्थान अन्तरिक्षमें पक्षीरूपसे वर्त्तमान और वर्षा के द्वारा सब जगत् के पोषक (त्वा हृदा वेनन्तः) तुम्हें मनसे चाहतेहुए स्तोता (नाके यत् अभिचक्षत) अन्तरिक्षमें जब देखते हैं तब (उप) तुम प्राप्त होते हो ॥ १ ॥

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् प्रत्यङ् चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि । वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वाऽर्ऽण नाम जनत प्रियाणि ॥ २ ॥

(ऊर्ध्वः गन्धर्वः प्रत्यङ्) ऊपर वर्त्तमान जलोंका धारण करनेवाला वेन हमारे अभिमुख होता हुआ (नाके अधि अस्थात्) अन्तरिक्ष में स्थित होता है । क्या करता हुआ ? (अस्य चित्रा आयुधानि बिभ्रत्)

अपने आश्चर्यभूत आयुधोंको धारण करता हुआ (दृशे सुरभि कं अत्कं वसानः) दर्शनके लिये सुन्दर और फैलनेवाले अपने रूपको सर्वत्र आच्छादन करता हुआ (स्वः न नाम प्रियाणि जनत) जैसे सूर्य अपने रूपको दिखाने के लिये सर्वत्र व्यापजाता है तैसे । तदनन्तर जलोंको सबके अनुकूल करता है अर्थात् वर्षा करता है ॥ २ ॥

द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन्गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् । भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ३ ॥

(विधर्मन् द्रप्सः) अन्तरिक्ष में स्थित और जलकी बिन्दुओंवाला (गृध्रस्य चक्षसा पश्यन्) रसोंको चाहनेवाले सूर्यके तेजसे प्रकाशित हुआ मेघ (यत् समुद्रं अभिजिगाति) जब मेघ की ओरको जाता है तब (भानुः शुक्रेण शोचिषा) सूर्य स्वच्छ तेजसे (तृतीये रजसि चकानः) तीसरे लोकमें दीप्त होता हुआ (प्रियाणि चक्रे) सबके प्यारे जलोंकी वर्षा करता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके विंशाध्यायस्य सप्तमः खण्डः विंशाध्यायश्च समाप्तः

एकविंश अध्याय

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् । संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतꣳ सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥ १ ॥

(आशुः भीमः वृषभः न शिशानः) शीघ्रता करनेवाला वा व्यापक और भयानक वृषभकी समान शत्रुओंको भय देनेवाला (घनाघनः चर्षणीनां क्षोभणः) पापियोंका नाशक और द्वेषियोंको क्षोभित करने वाला (संक्रन्दनः अनिमिषः) देवद्वेषियोंको रुलानेवाला और अपने यज्ञमें जागने तथा युद्धादिमें आलस्य रहित (एकवीरः इन्द्र) अद्वितीय वीर इन्द्र (शतं सेनाः साकं अजयत्) सैकड़ों सेनाओंको एक ही उद्योगसे जीतलेता है ॥ १ ॥

संक्रन्दनेनाऽनिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना । तदिन्द्रेण जयत तत्स-

हव्यं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ २ ॥

(युधः नरः) हे योद्धा मनुष्यो! (सङ्क्रन्दनेन अनिमिषेण) देवद्वेषियों को रुलानेवाले और निरालस्य (जिष्णुना युत्कारेण) जयशील और युद्ध करनेवाले (दुश्च्यवनेन धृष्णुना इषुहस्तेन वृष्णा इन्द्रेण) कुल-रोंमे विचलित न होनेवाले शत्रुओंको तर्जना देनेवाले हाथ में बाण-लिये और वर्षा करनेवाले इन्द्रके द्वारा (तत् जयत) उस युद्धको जीतो (तत् सहध्वम्) उस शत्रुओं के बलका तिरस्कार करो ॥ २ ॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन । सꣳसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्यू३ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३ ॥

(सः इषुहस्तैः वशी) वह इन्द्र बाणधारी मरुत् आदि योधाओंको वशमें रखता है (सः निषङ्गिभिः) वह खड्गधारी योधाओंको वशमें रखता है (सः इन्द्रः युधः गणेन संस्रष्टा) वह इन्द्र युद्ध करताहुआ शत्रुसमूहके साथ भिड़जाता है (संसृष्टजित् सोमपाः) इकट्ठे होकर युद्ध करनेवालोंको जीतनेवाला और सोमपान करनेवाला है (बाहुशर्धी उग्रधन्वा) भुजाओंमें बलवाला है और धनुषको उद्यत रखता है (प्रतिहिताभिः अस्ता) छोड़ेहुए बाणोंसे अवश्य ही मारडालनेवाला है ३

बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहाऽमित्राँ अपबाधमानः । प्रभञ्जन्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ ४ ॥

(बृहस्पते) हे बहुतोंके रक्षक इन्द्र (रथेन परिदीय) रथपर चढ़कर आओ, आकर (रक्षोहा अमित्रान् अपबाधमानः) राक्षसोंका नाशकर्त्ता और शत्रुओंको पीड़ा देताहुआ (सेनाः प्रभञ्जन् प्रमृण) शत्रुओंकी सेनाओंको छिन्न भिन्न करताहुआ नष्ट कर (युधा जयन्) युद्धमें सर्वत्र विजय पाताहुआ (अस्माकं रथानां अविता एधि) हमारे रथोंका रक्षक हो ॥ ४ ॥

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः । अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा

जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (बलविज्ञायः स्थविरः) सबके बलोंको जाननेवाला और महान् (प्रवीरः सहस्वान्) परमवीर और दूसरोंको दबानेकी शक्ति रखनेवाला (वाजी सहमानः) अन्नवान् और शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाला (उग्रः अभिवीर) तीक्ष्णबली और चारों ओर हैं वीर सेवक जिसके ऐसा (अभिसत्वा सहोजाः) सामर्थ्यवान् और बलसे उत्पन्नहुआ (गोवित्) स्तुतिको प्राप्त होनेवाला तू (जैत्रं रथं आतिष्ठ) हमारी सहायता करनेको विजय देनेवाले रथपर चढ़ ॥ २ ॥

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा । इमꣳ सजाता अनुवीरयध्वमिन्द्रꣳ सखायो अनुसꣳ रभध्वम् ॥ ३ ॥

(सजाताः) हे साथ उत्पन्न हुए वीरो ! (गोत्रभिदं गोविदम्) पर्वतोंके तोड़नेवाले और स्तुतिको प्राप्त होनेवाले (वज्रबाहुं अज्म जयन्तम्) वज्रधारी और संग्रामको जीतनेवाले (ओजसा प्रमृणन्तम्) बलसे शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले (इमं इन्द्रं अनुवीरयध्वम्) इस इन्द्रको आगे करके वीरकर्म युद्धको करो (सखायः अनु संरभध्वम्) हे मित्रो! इस इन्द्रके शत्रुओं पर क्रोध करनेपर तुम भी क्रोधमें भरजाओ॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः । दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽ३ऽस्माकꣳ सेना अवतु प्रयुत्सु ॥ १ ॥

(गोत्राणि सहसा अभिगाहमानः) मेघोंमें बलात्कारसे प्रवेश करताहुआ (अदयः वीरः) शत्रुओं पर दया न करनेवाला और पराक्रमी (शतमन्युः दुश्च्यवनः) सौ यज्ञोंवाला वा बहुत क्रोधवाला और किसीसे चलायमान न होनेवाला (पृतनाषाट् अयुध्यः इन्द्रः) शत्रुसेनाओंका तिरस्कार करनेवाला और जिसके ऊपर कोई प्रहार न करसकै ऐसा इन्द्र (युत्सु अस्माकं सेनाः प्रावतु) संग्रामोंमें हमारी सेनाओं की रक्षा करै ॥ १ ॥

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर

एतु सोमः। देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ २ ॥

(आसां इन्द्रः नेता) हमारी सहायताको आईहुई इन सेनाओंका इन्द्र नायक हो (बृहस्पतिः दक्षिणा यज्ञः सोमः पुरः एतु) बृहस्पति दक्षिणा यज्ञ और सोम आगे हों (मरुतः अभिभञ्जतीनां जयन्तीनां देवसेनानां अग्रं यन्तु) मरुत् देवता मर्दन करनेवालीं और विजय पानेवालीं देवसेनाओंके आगे चलें ॥ २ ॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुताᳬशर्ध उग्रम्। महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ३ ॥

(वृष्णः इन्द्रस्य) अभीष्टफलदाता इन्द्रका (राज्ञः वरुणस्य) राजा वरुणका (आदित्यानां मरुतां उग्रं शर्द्धः) आदित्य और मरुतोंका उग्रबल हमारा हो (महामनसां भुवनच्यवानां जयतां देवानां घोषः उदस्थात्) उदारचित्त और लोकोंको सींचनेवाले विजयी देवताओंका जयशब्द उठता है ॥ ३ ॥

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनाᳬसि। उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ १ ॥

(मघवन् आयुधानि उद्धर्षय) हे इन्द्र ! हमारे आयुधोंको उत्तम हर्षयुक्त करो (मामकानां सत्वनां मनांसि उत्) हमारे सैनिकों के मनोंको हर्षयुक्त करो (वृत्रहन् वाजिनां वाजिनानि उत्) हे इंद्र ! अश्वोंके वेगोंको प्रकट करो (जयतां रथानां घोषाः उद्यन्तु) विजय पानेवाले रथोंके शब्द प्रकट हों ॥ १ ॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु। अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥ २ ॥

(अस्माकं समृतेषु ध्वजेषु इन्द्रः) हमारे शत्रु सेनाओं में पहुँचे हुए ध्वजाधारी सैनिकों में इन्द्र रक्षा करै (अस्माकं याः इषवः ताः जयन्तु) हमारे जो बाण हैं वह शत्रुओंको जीतें (अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु) हमारे वीर सबसे ऊपर हों (देवाः अस्मान् उ हवेषु अवत) हे देवताओं ! हमारी ही सग्रामों में रक्षा करो ॥ २ ॥

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना । तां गूहत तमसाऽपव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात् ॥ ३ ॥

(मरुतः या असौ ओजसा स्पर्धमाना परेषां सेना नः अभ्येति) हे मरुतों ! जो यह बलसे स्पर्धा करती हुई शत्रुओंकी सेना हमारी ओर को चढ़कर आती है (तां अपव्रतेन तमसा गूहत) उस को जिस में कुछ काम न होसकै ऐसे अन्धकारसे छादो (यथा एतेषां अन्यः अन्यं न जानात्) जैसे इनमें एक दूसरे को जान भी न सकै ॥ ३ ॥

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यघे परेहि । अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनाऽमित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ १ ॥

(अघे परेहि) हे पापकी अभिमानिनी देवते ! हमसे दूर हो (अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती अङ्गानि गृहाण)इन हमारे शत्रु योधाओंके चित्त को मोहित करती हुई उनके अङ्गोंको पकड़ (अभिप्रेहि) उनके ऊपर चढ़ाई करके जा और (हृत्सु शोकैः निर्दह) उनके हृदयों मे शोकोंके द्वारा दाह डाल (अमित्राः अन्धेन तमसा सचन्ताम्) हमारे शत्रु घोर अन्धकारसे युक्त हों ॥ १ ॥

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु । उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथाऽसथ २

(नरः) हे हमारे योधाओं ! (प्रेत जयत) चढ़ाई करके जाओ और जीतो (इन्द्रः वः शर्म यच्छतु) इन्द्र तुम्हे सुख देय (वः बाहवः उग्राः सन्तु) तुम्हारे भुजदण्ड उग्र हों (यथा अनाधृष्याः असथ) जिसमें कि—तुम किसीसे तिरस्कार न पाओ ॥ २ ॥

अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसᳩशिते । गच्छाऽमित्रान्प्रपद्यस्व माऽमीषां कञ्चनोच्छिषः

(ब्रह्मसंशिते शरव्ये) वेदमंत्रोंसे तीक्ष्ण करेहुए हे हिंसा करनेवाले बाण ! (अवसृष्टा परापत) छोड़ाहुआ तू दूर चलाजा और जाकर (अमित्रान् प्रपद्यस्व) हमारे शत्रुओंको प्राप्त हो (अमीषां कञ्चन मा उच्छिषः) इन शत्रुओं में से किसीको भी शेष न छोड़ ॥ ३ ॥

कङ्काः सुपर्णा अनुयन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना । मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयाᳩस्येनाननु संयन्तु सर्वान् ॥ १ ॥

(सुपर्णाः कङ्काः एनान् अनुयन्तु) सुन्दरपरोंवाले मांस भक्षी पक्षी इन शत्रुओंके पीछे लगें (असौ सेना गृध्राणां अन्नं अस्तु) यह शत्रु सेना गृध्रपक्षियोंकी भोजन रूप हो (एषां मा अमोचि) इन शत्रुओंमें से कोई भी न बचै (इन्द्र अघहारश्च न) हे इन्द्र ! जो अधिक पापी न हो वह भी न छूटै (वयांसि एनान् सर्वान् अनुसंयन्तु) पक्षीरूप मांसभक्षी राक्षस इन सबोंका पीछा लें ॥ १ ॥

अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि ।
उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥ २ ॥

(मघवन् वृत्रहन् इन्द्र) हे धनवान् शत्रुनाशक इन्द्र तुम (अग्निःच) अग्नि भी (उभौ) तुम दोनो (अस्मान् अभि शत्रूयतीम्) हमारे प्रति शत्रुता करनेवाली (अमित्रसेनां प्रति दहतम्) शत्रुसेनाको भस्म करदो ॥२॥

यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु ।
विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ३ ॥

(यत्र) जिस संग्राम में (विशिखाः कुमाराः इव) बड़ी शिखावाले कुमारों की समान (बाणाः संपतन्ति) बाण पड़ते हैं (तत्र नः)

तहां हमैं (ब्रह्मणस्पतिः अदितिः शर्म यच्छतु) ब्रह्मस्पति अदिति देवता सुख देय (विश्वाहा शर्म यच्छतु) सर्वदा सुख देय ॥ ३ ॥

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याऽभिदासतः १

(इन्द्र रक्षः विजहि) हे इन्द्र राक्षसजातिका विनाश करो (मृधः वि) संग्राम करनेवाले शत्रुओंका विनाश करो (वृत्रस्य हनू विरुज) हमारी उन्नतिको रोकनेवाले असुरके कपोलोंको तोड़ो (वृत्रहन् अभिदासतः अमित्रस्य मन्युं) हे इन्द्र ! हमारी भारी हानि करनेवाले शत्रु के क्रोध को भी विनष्ट करो ॥ १ ॥

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः॥२॥

(इन्द्र नः मृधः विजहि) हे इन्द्र ! हमारे संग्रामकारी शत्रुओं का विनाश करो(पृतन्यतः नीचा यच्छ)युद्ध करनेके लिये अपनी सेनाओं को चाहते हुए शत्रुओंको भी नीचा मुख करके लौटाओ (यः अस्मान् अभिदासति) जो शत्रु हमैं चारों ओरसे क्षीण करना चाहता है उसको (अधरं तमः गमय) निकृष्ट अन्धकार अर्थात् मरणदशामें पहुँचाओ ॥ २ ॥

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवनावनाधृष्यौ सुप्रती-काववसह्यौ। तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणाꣳ सहो महत् ॥ ३ ॥

(याभ्यां असुराणां महत् सहः जितम्) जिन्होंने असुरोंके बड़ेभारी बलको जीता (तौ इन्द्रस्य) उन इन्द्रके (स्थाविरौ युवानौ) स्थूल तरुण (अनाधृष्यौ सुप्रतीकौ) किसीके वशमें न आनेवाले और हाथी की सूंडकी समान (असह्यौ बाहू) असह्य भुजदण्डोंको (योगे आगते प्रथमौ युञ्जीत)संग्रामका अवसर आनेपर सबसे पहिले नियुक्त करै ३

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजाऽमृतेनानुवस्ताम्।उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु

जयन्तं त्वाऽनु देवा मदन्तु ॥ १ ॥

हे राजन्! (ते मर्माणि वर्मणा छादयामि) तेरे मर्मस्थानोंको कि जिनमें विधने पर मनुष्य शीघ्र मरजाता है उन अङ्गोंको कवचसे ढकता हूँ, तदनन्तर (सोमः राजा त्वा अमृतेन अनु वस्ताम्) सोमराजा तुझै अमृतसे आच्छादन करै (वरुणः ते उरोः वरीयः कृणोतु) वरुण भी तेरे अर्थ बड़ेसे बड़ा सुख करै (देवाः जयन्तं त्वा अनुमदन्तु) सकल देवता विजय पातेहुए तुझै आनन्द दें ॥ १ ॥

अन्धा अमित्रा भवताऽशीर्षाणोऽहय इव ।
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरं वरम्

(अमित्राः अशीर्षाणः अहयः इव अन्धाः भवत) हे शत्रुओ! तुम शिर कटेहुए सर्पोंकी समान अन्धे होजाओ (तेषां अग्निनुन्नानां वः) उन अग्निके भस्मीभूत कियेहुए तुम शत्रुओंमेंसे (वरं वरं इन्द्रः हन्तु) श्रेष्ठ श्रेष्ठको इन्द्र नष्ट करै ॥ २ ॥

यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्त सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरꣳशर्म वर्म ममान्तरम् ॥ ३ ॥

(यः स्वः अरणः) जो ज्ञातिवाला हमसे प्रेमभाव नहीं रखता है (यः च निष्ट्यः नः जिघांसति) और जो छुपकर दूरसे ही हमारी हिंसा करना चाहता है (त सर्वे देवाः धूर्वन्तु) उसको सकल देवता नष्ट करें (ब्रह्म मम अन्तरं वर्म) मन्त्र मेरा बाणोंको रोकनेवाला कवच है (शर्म वर्म मम अन्तरं अस्तु) कल्याणमय कवच मेरा रक्षक हो ३

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आजगन्था परस्याः । सृकꣳ सꣳशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रूँस्ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र तू (कुचर गिरिष्ठाः मृगः न भीमः) हिंसक चरण वाले पर्वतनिवासी सिंहकी समान भयदायक है वह तू (परस्याः परा-

वतः आजगन्थ) दूरसे भी दूर द्युलोकसे आओ, और आकर (सृकं तिग्मं पविं संशाय) दूरतक पहुँचानेवाले तीक्ष्ण वज्रको तीक्ष्ण करके (शत्रून् वितांढि) हमारे वैरियोंको विशेषरूपसे नष्ट करो (विमृधः नुदस्व) संग्राम करनेको उद्यत हुए अन्य शत्रुओंका भी विशेष रूपसे तिरस्कार करो ॥ १ ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २ ॥

(देवाः कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम) हे सकल देवताओं! आपके अनुग्रहसे हम अपने कानोंसे सेवन करनेयोग्य कल्याणरूप वचनको सुननेमें समर्थ हों अर्थात् हम कभी भी बहिरे न हों (यजत्राः) यज्ञोंमें चरु पुरोडाश आदिके द्वारा यजन करनेयोग्य हे देवताओं! (अक्षिभिः भद्रं पश्येम) अपने नेत्रोंसे कल्याणरूपको देखसकें अर्थात् हमारी दृष्टिमें कभी कमी न आवे (स्थिरैः अङ्गैः तनूभिः) दृढ़ हाथ पैर आदि अवयव और शरीरोंको प्राप्तहुए हम (तुष्टुवांसः) तुम्हारी स्तुति करतेहुए (यत् आयुः देवहितम्) जो एक सौ सोलह वर्षकी वा एक सौ बीस वर्षकी आयु प्रजापति देवताने नियत की है (व्यशेमहि) उसको हम पावें ॥ २ ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ३ ॥

(वृद्धश्रवाः इन्द्रः नः स्वस्ति) बहुत है स्तोत्र वा हविरूप अन्न जिसका ऐसा इन्द्र देवता हमारा अविनाशरूप स्वस्ति करे (विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति) सबोंको जाननेवाला वा सकल ज्ञान ही जिसके धन हैं ऐसा पुष्टि देनेवाला पूषानामक देवता हमारा अविनाशरूप स्वस्ति करे (अरिष्टनेमिः तार्क्ष्यः नः स्वस्ति) अहिंसित आयुध-

वाला तत्पुत्र गरुत्मान् देवता हमारा अविनाशरूप स्वस्ति करै (बृहस्पतिः नः स्वस्ति दधातु) बड़े २ देवताओंका स्वामी महादेव हमारा अविनाशरूप स्वस्ति करै ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके एकविंशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

इति श्रीसामवेदसंहितायां युक्तप्रान्तान्तर्गत—मुरादाबादनगर-
निवासिना—काशीस्थसंस्कृतमहाविद्यालये, षड्दर्शनाध्यापक-
महामहोपाध्यायनिखिलतंत्रस्वतन्त्रस्वर्गीयस्वामिराममिश्र-
शास्त्रिभ्योऽधिगतविद्येन-भारद्वाजगोत्रगौडवंश्यपण्डित-
भोलानाथात्मजेन-सनातनधर्मपताकासम्पादकेन
ऋषिकुमारोपनामधारिणा-रामस्वरूपशर्मणा
विरचितः श्रीमत्सायणाचार्यकृत-
भाष्यानुगः सान्वयभाषानु-
वादः समाप्तः ।

श्रीविक्रमाब्दः १९६९ ईशवीयाब्दः १९१२ ।

मिलने का पता—

प० रामस्वरूप शर्मा

मैनेजर-सनातनधर्म प्रेस मुरादाबाद.